एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं । उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे देशोने ॥ चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं । उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे देशोने ॥ चतुर्णां क्षपकाणां सामान्योक्तम् ॥ अचक्षुर्दर्शनिषु मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तानां सामान्योक्तमन्तरम् ॥

न अस्ति एकजीवं प्रति जघन्येन अन्तर्मुहूर्तं	=नहीं है एक जीव के लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त ।
उत्कर्षेण देशोने द्वे सागरोपमसहस्रे	=उत्कृष्टकरि कुछ न्यून दो हजार सागर प्रमाण है
चतुर्णाम् उपशमकानां	=(चक्षुर्दर्शनवालों में) चार उपशमश्रेणी अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराय (उपशांतकषाय) वालों का
नाना-जीव अपेक्षया सामान्यवत्	=(अन्तर) अनेक जीवकी अपेक्षासे संक्षेप (में पूर्व उक्त गुणस्थान) सम है अर्थात जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पृथक्त्व (मध्य तीन और नौ) वर्ष है (पृ० २२४)
एकजीवं प्रति जघन्येन अन्तर्मुहूर्तं	=एक जीवके लिये (=प्रति) जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण देशोने द्वे सागरोपमसहस्रे	=उत्कृष्टकरि कुछ हीन दो सहस्र सागर प्रमाण है
चतुर्णां क्षपकाणां	=(चक्षुर्दर्शनवालों में) चार क्षपक श्रेणी अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराय-(क्षीणकषाय)वालोंका
सामान्य-उक्तम्	=(अन्तर) संक्षेप (प्रकरण में) वर्णित (गुणस्थानवत्) है अर्थात् नाना जीव की अपेक्षा जघन्य एकसमय है। उत्कृष्ट छैमास है एकजीव प्रति अन्तरनहीं है (पृ० २२५)
अचक्षुर्दर्शनिषु मिथ्यादृष्टि-आदि-क्षीणकषाय-अन्तानां सामान्य उक्तम् अन्तरम्	=अचक्षुर्दर्शन वालों में मिथ्यादृष्टि से (=आदि) क्षीणकषाय गुणस्थानवाले =पर्यन्तनिका संक्षेप (प्रसंग में पहिले) कहा हुआ (गुणस्थानवत्) अन्तर है अर्थात मिथ्यादृष्टी अचक्षुर्दर्शनवालोंका अनेक जीवकी अपेक्षा से अन्तर नहीं है

(१) चक्षुर्दर्शन वाले जीव और अचक्षुर्दर्शन वाले जीव भी प्रथम मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से क्षीणकषाय तक बारह गुणस्थानों में होते हैं।

अवधिदर्शनिनाश्वावधिज्ञानिवत् ।।

एक जीवके लिये जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट कुछघाटि एकसो पचीस सागर प्रमाण है। अचक्षुदर्शनवाले सासादन सम्यग्दृष्टिका अन्तर नानाजीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवां भाग है। एक जीवका जघन्य पल्यके असंख्यातवां भाग है। उत्कृष्ट कुछ हीन अर्द्ध पुद्गलपरिवर्तन है। अचक्षुदर्शनवाले मिश्रगुणस्थानवर्तियोंका नानाजीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है। उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवां भाग है। एक जीवका जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट कुछ हीन अर्द्धपुद्गल परिवर्तन है।। अचक्षुदर्शनवाले अविरत सम्यग्दृष्टिसे लेकर अप्रमत्त गुणस्थानतकनिका नानाजीवकी अपेक्षासे अन्तर नहीं है एक जीवके लिये जघन्य अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्ट कुछ हीन अर्द्धपुद्गल परिवर्तन है।। अचक्षुदर्शनवाले चार उपशम श्रेणी (आठवां-नवमां-दशवां-ग्यारहवां-गुणस्थान) वालोंका अन्तर नानाजीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पृथक्त्व वर्ष है। एक जीवके लिये जघन्य अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्ट कुछ घाटि अर्द्धपुद्गल परिवर्तन है।। चार क्षपक श्रेणी (अपूर्वकरण आठवां अनिवृत्तिकरण नवमां सूक्ष्मसाम्पराय दशमां क्षीणकषाय बारहवां गुणस्थान) वालोंका नानाजीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है। उत्कृष्ट छह मास है एकजीवके लिये अन्तर नहीं है।

अवधि-दर्शनिनः। =अवधि दर्शनवालोंका (विरहकाल अर्थात् अन्तर)

अवधि ज्ञानिवत्(१) =अवधि-ज्ञानियोंके सदृश है अर्थात् अवधिदर्शन वाले (=अवधिज्ञानवाले) असंयत सम्यग्दृष्टीका नानाजीवकी अपेक्षासे अन्तर नहीं है। एकजीवके प्रति जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि कुछ घाटि एक कोड पूर्व है।। अवधि दर्शनवाले संयमा संयमीका अनेक जीवकी अपेक्षासे अन्तर नहीं है। एकजीवके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि

(१) मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान, कुअवधिज्ञान मिथ्यात्वअपेक्षा, सासादन दूसरा गुणस्थान तक होता है। मिश्रगुणस्थानमें तीन अज्ञान और तीन ज्ञान मिश्ररूप मिले हुये हैं (पृष्ठ ८८, ८९ का टिप्पणी देखो)। अवधिज्ञान और अवधिदर्शन चौथेसे बारहवां गुणस्थान तक हैं और मनःपर्ययज्ञान छठेसे बारहवां गुणस्थान तक है।।

केवलदर्शनिन केवलज्ञानिवत् ॥ (१०) लेश्यानुवादेन–कृष्णनीलकापोतलेश्येषु मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्।

कुछ अधिक छ्यासठि सागर प्रमाण है ॥ (अवधि दर्शनवाले) प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानवर्तियोंका नाना जीव अपेक्षासे अन्तर नहीं है। एक जीवके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि कुछ अधिक तेतीस सागर प्रमाण है। (अवधिदर्शनवाले या अवधिज्ञानवाले) च्यार उपशम श्रेणीवालोंका नानाजीव अपेक्षासे गुणस्थानवत् है (जो पृष्ठ २२४ के अनुकूल) जघन्य एक समय है उत्कृष्ट तीन बरससे ऊपर और नौ वर्षके नीचे (=पृथक्त्व वर्ष) है एक जीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि कुछ अधिक छ्यासठि सागर प्रमाण है (अवधिदर्शनवालोंमें-अवधिज्ञानवालोंमें) च्यार क्षपक श्रेणीवालोंका अनेक जीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि एक समय है उत्कृष्टकरि पृथक्त्व वर्ष है। एक जीवकी अपेक्षासे अन्तर नहीं है। (देखो पृष्ठ २४७-२४८)

केवलदर्शनिनः ॥ केवलज्ञानिवत्॥	=केवल दर्शनवालोंका (वियोगकाल) केवलज्ञानी (सयोग केवली और अयोग केवली) सदृश है अर्थात् सयोगकेवलीका नानाजीव अपेक्षासे और एकजीव अपेक्षासे अन्तर नहीं है। अयोगकेवलियोंका नानाजीव अपेक्षासे जघन्यकरि एक समय है उत्कृष्टकरि छेमास है एक जीवकी अपेक्षासे कुछ भी अन्तर नहीं है॥ (देखो पृष्ठ २२५)
[१०] लेश्या-अनुवादेन॥ कृष्ण-नील-	=लेश्याके कथनानुसारकरि कृष्ण-नील-
कापोत-लेश्येषु ॥ मिथ्यादृष्टि-	=कापोत लेश्याधारकों में मिथ्यादर्शन प्रथम गुणस्थानवाले और
असंयतसम्यग्दृष्ट्योः ॥ नाना-जीव-	=असंयमी या अविरत चौथे गुणस्थानवालोंके अनेक जीवकी
अपेक्षया ॥ न अस्ति अन्तरम् ॥१॥	=अपेक्षासे अन्तर (अर्थात् विरहकाल-वियोगकाल-बिछोहकाल) नहीं है

(१) कृष्ण नील कापोत लेश्यायें मिथ्यात्वसे असंयत तक, पीत-पद्म लेश्यायें मिथ्यात्वसे अप्रमत्त गुणस्थान तक, शुक्ल मिथ्यात्वसे सयोगी तक है।

एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं । उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सप्तदशसप्तसागरोपमाणि देशोनानि ॥ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च । उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सप्तदशसप्तसागरोपमाणि देशोनानि ॥ तेजःपद्मलेश्ययोर्मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं । उत्कर्षेण द्वे सागरोपमे अष्टादश च सागरोपमाणि सातिरेकाणि ॥

एक-जीवं ।। प्रति॰जघन्येन ।। अन्तर्मुहूर्तः ।।	=एकजीवके लिये जघन्यकरि (अन्तर) अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण ।। त्रयस्त्रिंशत् ।।।	=उत्कृष्टकरि (सातवां नरककी अपेक्षासे कुछ न्यून) तेतीस (सागर प्रमाण)
सप्तदश ,।।। (सप्तदश ।।-सप्तदश ,।)	=(और पांचवां नरककी अपेक्षासे कुछ हीन) सत्रह (सागर प्रमाण)
सप्त ।।।। (सप्त ।।-सप्त ।।) सागरोपमाणि ,।।। देशोनानि	=(और तीसरे नरककी विवक्षासे) कुछघाटि सात सागर के बराबर है
सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्ट्योः ।।	=(कृष्ण नील कापोत लेश्यावर्तियोंमें) सासादनसम्यग्दृष्टी, मिश्रगुणस्थान वालोंका
नाना-जीव-अपेक्षया ।।। सामान्य-वत्॰	=(विरहकाल) अनेक जीव प्रति संक्षेप (प्रसंगमें पूर्व उक्त गुणस्थान) तुल्य है अर्थात् जघन्य अन्तरकाल एक समय है उत्कृष्ट पल्यका असंख्यातवां भाग है
एकजीवं ।। प्रति॰ जघन्येन ।। पल्योपम-असंख्येय-	=एकजीवके लिये जघन्यकरि पल्यके असंख्यातवां
भागः ।। च॰अन्तर्मुहूर्तः ,। उत्कर्षेण ,।	=भाग और अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्टकरि (सातवां नरकमें कुछ हीन)
त्रयस्त्रिंशत् सप्तदश	=तेतीस (सागर प्रमाण) और (पांचवां नरक प्रति कुछ न्यून) सत्रह (सागर)
सप्त-सागरोपमाणि ।।।। देशोनानि ।।।।	=(तीसरे नरककी अपेक्षा से) कुछ घाटि सात सागर प्रमाण (विरहकाल) है
तेजःपद्मलेश्ययोः ।। मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्ट्योः ।।	=पीत-पद्म-लेश्यावालों में मिथ्यादृष्टि और अविरतसम्यग्दृष्टियों में
नाना-जीव-अपेक्षया ।।न॰अस्ति ।। अन्तरम् ।।।	=अनेक जीव की अपेक्षा से अन्तर काल नहीं है
एक-जीवं ।। प्रति॰जघन्येन ,। अन्तर्मुहूर्तः ।।	=एक जीव की अपेक्षा से जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण ।। द्वे ।।। सागरोपमे ।।। च स-अतिरेकाणि ।।।।	=उत्कृष्टकरि दो सागर प्रमाण है। और (=च) कुछ अधिक
अष्टादश ।।। सागरोपमाणि ।।।।	=अठारह सागर प्रमाण है ॥

(१) टिप्पणि पृष्ठ १२१ पर देखो (२) टिप्पणि पृष्ठ १७१ पर देखो ॥ (३) इस सर्व को समास मानकर अन्तमें समस्त वाक्य प्रथमा विभक्ति बहुवचन नपुंसक लिंग में है ॥

सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् ॥ एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च । उत्कर्षेण द्वे सागरोपमे अष्टादश च सागरोपमाणि सातिरेकाणि ॥ संयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तसंयतानां नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम् ॥ शुक्लेश्येषु मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेणैकत्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि ॥ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्ट्यो

सासादन	=(पीत-पद्मलेश्यावर्तियों में) सासादन
सम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्ट्यो ॥	=सम्यग्दृष्टीका और मिश्र (तीसरे) गुणस्थानवर्तियोंका (अन्तरकाल)
नाना जीव अपेक्षया ॥ सामान्य-वत्*	=अनेक जीवकी अपेक्षासे संक्षेप (प्रसगमें पूर्व कथित गुणस्थान) वत् है अर्थात् जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पल्यका असंख्यातवां भाग है (पृष्ठ २२२)
एक-जीवं ॥ प्रति* जघन्येन ॥ पल्योपम-असंख्येय	=एक जीवके लिये जघन्यकरि पल्योपमके असंख्यातवां
भागः ॥ च अन्तर्मुहूर्तः ॥ उत्कर्षेण ॥ द्वे ॥॥	=भाग और (–च) अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि (कुछ अधिक) दो सागर
सागरोपमे॥॥ च सातिरेकाणि अष्टादश ॥॥ सागर	–प्रमाण और (कुछ अधिक) अठारह सागर
उपमाणि ॥॥ संयतासंयत-प्रमत्त-	–प्रमाण है । (पीत-पद्मलेश्यावालों में) देशसंयमी, प्रमत्तसंयमी और
अप्रमत्त संयतानां ॥ नाना-जीव-अपेक्षया ॥	–अप्रमत्तसंयमियोंका नानाजीव अपेक्षासे
च एक-जीव-अपेक्षया ॥ न* अस्ति अन्तरम्॥॥	–और एकजीवकी विवक्षासे अन्तर नहीं है
शुक्लश्येषु ॥ मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्ट्यो ॥	–शुक्ललेश्यावालोंमें मिथ्यादर्शनवाले और असंयमीसम्यग्दृष्टियोंका
नाना-जीव अपेक्षया॥ न अस्ति अन्तरम् ॥ एक-	–अनेकजीवकी विवक्षासे विरहकाल (–अन्तरकाल) नहीं है । एक
जीवं ॥ प्रति जघन्येन॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥ उत्कर्षेण॥	–जीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है उत्कर्षकरि
देशोनानि॥ एकत्रिंशत्॥ सागर-उपमाणि ॥॥	–कुछघाटि इकतीस सागर प्रमाण है
सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्ट्यो ॥	–(शुक्ललेश्याके धारक) सासादन सम्यग्दृष्टि और मिश्रगुणस्थानवालोंका

नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च । उत्कर्षेणैकत्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि ॥ संयतासंयतप्रमत्तसंयतयोस्तेजोलेश्यावत् ॥ अप्रमत्तसंयतस्य नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्यमुत्कृष्टं चान्तर्मुहूर्तं ॥ अंयदोत्ति छल्लेस्साओ सुहतियलेस्सा हु देसविरदतिये ॥ तत्तो दु

नाना-जीव-अपेक्षया ॥ सामान्य-वत्*	—नानाजीवकी विवक्षासे संक्षेप (प्रसंगमें पूर्व कथित गुणस्थान) सदृश है अर्थात् जघन्य अन्तर एक समय है उत्कृष्ट पल्य के असंख्यातवां भाग है
एक-जीवं ॥ प्रति* जघन्येन ॥ पल्योपम असंख्येय	—एक जीव के लिये जघन्यकरि पल्यके असंख्यातवां
भागः ॥ च* अन्तर्मुहूर्तः ॥ उत्कर्षेण ॥ देशोनानि ॥	—भाग और (=च) अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि कुछ घाटि
एकत्रिंशत् ॥ सागरोपमाणि ॥ संयतासंयत-	—इकतीस सागर प्रमाण है । (शुक्ललेश्यावाले) देशसंयमी और
प्रमत्तसंयतयोः ॥ तेजः लेश्यावत्*	=प्रमत्तसंयमियों का (विरहकाल) पीतलेश्यावालों के सदृश है अर्थात् नाना जीव अपेक्षा से और एक जीव प्रति कुछ अन्तर नहीं है (पृष्ठ २५८)
अप्रमत्तसंयतस्य ॥ नाना-जीव	=(शुक्ललेश्यावाले) अप्रमत्तसंयमी (सातवां गुणस्थानवर्तीका) अनेक जीवकी
अपेक्षया ॥ न* अस्ति ॥ अन्तरम् ॥ एकजीवं ॥	=अपेक्षा से अन्तर नहीं है । एक जीवके
प्रति* जघन्यम् ॥ उत्कृष्टं ॥ च अन्तर्मुहूर्तः ॥	=लिये जघन्य और (=च) उत्कर्ष अन्तर्मुहूर्त है ॥
अयदोत्ति (=अयदो ॥ त्ति* =असंयत ॥ इति*)	=असंयत(मिथ्यात्व-सासादन-सम्यग्मिथ्यात्व अविरत चार गुणस्थानों)तक (=इति)
छल्लेस्साओ (=छ-लेस्साओ ॥ =षट् ॥ लेश्याः ॥)	=छहों (कृष्ण-नील-कापोत-पीत-पद्म-शुक्ल) लेश्या हैं ॥
सुहतियलेस्सा (=सुहतियलेस्सा ॥ =शुभत्रयलेश्याः ॥)	=शुभ अथवा प्रशस्त तीन (पीत-पद्म-शुक्ल) लेश्या
हु देसविरद—(=हु* देसविरद =हि* देशविरत-)	=ही (=हु =हि) देशविरत या संयतासंयत (पांचवें)
तिये ॥ तत्तो दु(=तिये ॥ तत्तो* दु* =त्रये ॥ ततः* तु)	—प्रमत्त विरत (छठे) अप्रमत्त विरत (सातवां इन) तीन गुणस्थानों में है । किन्तु (=दु=तु) वहां (अप्रमत्त) से (आगे अपूर्वकरण आदि अयोगकेवली तक

*जैसे रमाआ रमा रमाऊ प्रथमाविभक्ति बहुवचन स्त्रीलिंगमें रमा शब्दके रूप है वैसेही लेस्सा शब्द के लेस्साआ लेस्सा तथा लेस्साऊ रूप हैं ।

अभव्यानां नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम् ॥ (१२) सम्यक्त्वानुवादेन क्षायिकसम्यग्दृष्टिष्वसंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण पूर्वकोटी देशोना ॥ संयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तसंयतानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् ।

मव्य जीवों में असंयतसम्यग्दृष्टी से अप्रमत्तसंयमी तकनिका नानाजीव अपेक्षासे अन्तर नहीं है । एक जीव के लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि कुछ घाटि आधा पुद्गल परिवर्तन है ॥

मव्य जीवों में चार उपशमश्रेणीवालोंका नानाजीव अपेक्षासे जघन्य एक समय है । उत्कृष्ट पृथक्त्व वर्ष है । एक जीव के लिये जघन्य अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्ट कुछ न्यून अर्द्ध पुद्गल परिवर्तन है ॥ मव्य जीवोंमें चार क्षपक श्रेणीवालोंका और अयोगकेवलियों का नाना जीव अपेक्षा से जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छे मास है । एक जीव की अपेक्षा से अन्तर नहीं है ॥ मव्य जीवोंमें सयोग केवलियों का नाना जीव और एक जीव अपेक्षा से अन्तर नहीं है ॥ (पृष्ठ २२२—२२५)

अभव्यानाम् ॥ नाना-जीव-अपेक्षया ॥ च एक जीव-अपेक्षया ॥ न अस्ति अन्तरम् [१२] सम्यक्त्व-अनुवादेन क्षायिकसम्यग्दृष्टिषु ॥ असंयतसम्यग्दृष्टे ॥ नाना जीव अपेक्षया ॥ न अस्ति अन्तरम् ॥ एकजीवं प्रति जघन्येन ॥ अन्तर्मुहूर्त ॥ उत्कर्षेण ॥ देशोना ॥ पूर्वकोटी ॥ संयतासंयत प्रमत्त-अप्रमत्त-संयतानाम् ॥ नाना जीव अपेक्षया ॥ न अस्ति अन्तरम् ॥

=अभव्य जीवों का अनेक जीवकी विवक्षा से और एक जीवकी =अपेक्षा से अंतर (विरहकाल) नहीं है ॥ (१२) सम्यग्दर्शनकी अपेक्षा से =क्षायिक सम्यग्दृष्टियों में असंयतसम्यग्दर्शनवालेका अनेक =जीवकी अपेक्षासे विरहकाल नहीं है । एक जीवके लिये =जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि कुछ घाटि =एक करोड पूर्व है । (क्षायिक सम्यग्दर्शनविषै) संयमासंयमी प्रमत्तसंयमी =अप्रमत्तसंयमियोंका नानाजीवकी अपेक्षा से =विरहकाल नहीं है ॥

एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि सातिरेकाणि ॥ चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि सातिरेकाणि ॥ शेषाणां सामान्यवत् ।

एक-जीवम् ।। प्रति॰जघन्येन ।। अन्तर्मुहूर्तः ।।	=एक जीवकी अपेक्षासे (=प्रति) जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण ।। स-अतिरेकाणि ।।। त्रयस्त्रि -सागर	=उत्कृष्टकरि कुछ अधिक तेतीस सागर
उपमाणि ।।। चतुर्णाम् ।।	=प्रमाण (=उपम) है ॥ (क्षायिक सम्यग्दर्शन में) चार (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराय-उपशांतकषाय गुणस्थान)
उपशमकानाम् ।। नाना-जीव अपेक्षया ।।	=उपशमश्रेणीवालोंका अनेक जीवकी अपेक्षासे
सामान्य-वत्॥	=संक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहा हुआ गुणस्थान)सदृश (अन्तर) है अर्थात् जघन्य एक समयहै उत्कृष्ट तीन वर्षसे उपर नौ से नीचे(वर्ष) है (पृष्ठ २२४)
एक-जीवम् ।। प्रति॰जघन्येन ।। अन्तर्मुहूर्तं ।।	=एक जीवके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण ।। स-अतिरेकाणि ।।। त्रयस्त्रिंशत्सागर–	=उत्कृष्टकरि कुछ अधिक तेतीस सागर
उपमाणि ।।। शेषाणाम् ।।	=प्रमाण (=उपम) है ॥ अवशेष अथवा बचेहुये (चार क्षपकश्रेणी वाले सयोग केवली और अयोग केवली) निका
सामान्यवत् ॥	=संक्षेप (प्रसंगमें पहिले कहा हुआ गुणस्थान) समान (अन्तर) है अर्थात् चार क्षपकश्रेणी वालोंका और अयोगकेवालियों का नाना जीव अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छै मासहै । एक जीव प्रति अन्तर नहीं है ॥ सयोग केवलियोंका नानाजीव और एक जीव प्रति अन्तर नहीं है ॥

(१) उपशमसम्यक्त्व चार से ग्यारह गुणस्थान तक है । वेदक सम्यक्त्व चार से सात गुणस्थान तक है और क्षायिक चार से चौदह तक है-॥

अभव्यानां नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम् ॥ (१२) सम्यक्त्वानुवादेनक्षायिक-सम्यग्दृष्टिष्वसंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण पूर्वकोटी देशोना ॥ संयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तसंयतानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् ।

भव्य जीवों में असंयतसम्यग्दृष्टी से अप्रमत्तसंयमी तकनिका नानाजीव अपेक्षासे अन्तर नहीं है । एक जीव के लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि कछु घाटि आधा पुद्गल परिवर्तन है ॥

भव्य जीवों में चार उपशमश्रेणीवालोंका नानाजीव अपेक्षासे जघन्य एक समय है । उत्कृष्ट पृथक्त्व वर्ष है । एक जीव के लिये जघन्य अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्ट कुछ न्यून अर्द्ध पुद्गल परिवर्तन है ॥ भव्य जीवोंमें चार क्षपक श्रेणीवालोंका और अयोगकेवलियों का नाना जीव अपेक्षा से जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छै मास है । एक जीव की अपेक्षा से अन्तर नहीं है ॥ भव्य जीवोंमें सयोग केव-लियों का नाना जीव और एक जीव अपेक्षा से अन्तर नहीं है ॥

(पृष्ठ २२२—२२५)

अभव्यानाम् ॥ नाना-जीव-अपेक्षया ॥ च एक-जीव अपेक्षया ॥ न अस्ति अन्तरम् [१२] सम्यक्त्व-अनुवादेन क्षायिकसम्यग्दृष्टिषु ॥ असंयतसम्यग्दृष्टेः ॥ नाना जीव-अपेक्षया ॥ न अस्ति अन्तरम् ॥ एकजीवं प्रति ॥ जघन्येन ॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥ उत्कर्षेण ॥ देशोना ॥ पूर्व-कोटी ॥ संयतासंयत प्रमत्त अप्रमत्त संयतानाम् ॥ नाना-जीव अपेक्षया ॥ न अस्ति अन्तरम् ॥

=अभव्य जीवों का अनेक जीवकी विवक्षा से और एक जीवकी
=अपेक्षा से अन्तर (विरहकाल) नहीं है ॥ (१२) सम्यग्दर्शनकी अपेक्षा से
=क्षायिक सम्यग्दृष्टियों में असंयतसम्यग्दर्शनवालेका अनेक
=जीवकी अपेक्षासे विरहकाल नहीं है । एक जीवके लिये
=जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि कछु घाटि
=एक करोड़ पूर्व है । (क्षायिक सम्यग्दर्शनविषे) संयमासंयमी प्रमत्तसंयमी
=अप्रमत्तसंयमियोंका नानाजीवकी अपेक्षा से
=विरहकाल नहीं है ॥

उत्कृष्टं चान्तर्मुहूर्तः॥ संयतासंयतस्य नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेण चतुर्दश रात्रिदिनानि। एकजीवं प्रति जघन्यमुत्कृष्टं चान्तर्मुहूर्तः॥ प्रमत्ताप्रमत्तसंयतयोर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेण पञ्चदश रात्रिदिनानि। एकजीवं प्रति जघन्यमुत्कृष्टं चान्तर्मुहूर्तः॥ त्रयाणामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेण वर्षपृथक्त्वम्। एकजीवं प्रति जघन्यमुत्कृष्टं चान्तर्मुहूर्तः॥ उपशान्तकषायस्य नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्।

उत्कृष्टम् ,॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥ संयतासंयतस्य ॥	=उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त (विरह काल) है। (उपशम सम्यग्दृष्टियोंमें) देश संयमीका
नाना जीव अपेक्षया ॥ जघन्येन ॥ एकः ॥ समयः ॥	=अनेक जीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि एक समय (अन्तरकाल) है
उत्कर्षेण ॥ चतुर्दश ॥ रात्रिदिनानि ॥ एकजीवम्	=उत्कृष्टकरि चौदह रात्रि दिवस है। एक जीवकी
प्रति॰ जघन्यम् ॥ च उत्कृष्टम् ॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥	=अपेक्षासे जघन्य और (=च) उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है
प्रमत्त-अप्रमत्तसंयतयोः ॥	=(उपशम सम्यग्दृष्टियोंमें) प्रमत्त और अप्रमत्तसंयमियोंका (अन्तर)
नाना जीव अपेक्षया ॥ जघन्येन ॥ एकः ॥ समयः ॥	=अनेक जीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि एक समय है
उत्कर्षेण , पञ्चदश ॥ रात्रि दिनानि ॥ एकजीवम्	=उत्कृष्टकरि पन्द्रह राति दिवस है। एक जीवकी
प्रति॰ जघन्यम् ॥ च उत्कृष्टम् ॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥	=अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट विरहकाल अन्तर्मुहूर्त है।
त्रयाणाम् ॥	=(उपशम सम्यग्दृष्टियों में) तीन (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसांपराय)
उपशमकानाम् ॥ नाना जीव-अपेक्षया ॥ जघन्येन ॥	=उपशमश्रेणियोंका नानाजीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि
एकः ॥ समयः ॥ उत्कर्षेण ॥ वर्षपृथक्त्वम् ॥	=एक समय है। उत्कृष्टकरि पृथक्त्व (तीन से ऊपर नौ से नीचे) वर्ष है
एकजीवम् ॥ प्रति॰ जघन्यम् ॥ च उत्कृष्टम् ॥	=एक जीवकी अपेक्षा से (=प्रति) जघन्य और (=च) उत्कृष्ट
अन्तर्मुहूर्तः ॥ उपशान्तकषायस्य ॥	=अन्तर्मुहूर्त है ॥ (उपशम सम्यग्दर्शनवालोंमें) उपशान्तकषाय वालेका
नाना-जीव-अपेक्षया ॥ सामान्य-वत्॰	=(विरहकाल) अनेक जीवकी अपेक्षासे संक्षेप (में पूर्व उक्त गुणस्थान)सम है अर्थात्‌जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पृथक्त्व बरस है (पृष्ठ २२४)

क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टिष्वसयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् ॥ एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं । उत्कर्षेण पूर्वकोटी देशोना ॥ संयतासंयतस्य नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं । उत्कर्षेण षट्षष्टिसागरोपमाणि देशोनानि ॥ प्रमत्ताप्रमत्तसंयतयोर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं । उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि सातिरेकाणि ॥ औपशमिकसम्यग्दृष्टिष्वसयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समय । उत्कर्षेण सप्त रात्रिदिनानि ॥ एकजीवं प्रति जघन्यम्

क्षायोपशमिक-सम्यग्दृष्टिषु ।। असंयतसम्यग्दृष्टेः ।।	=वेदक सम्यग्दर्शनवालों में अविरत सम्यग्दृष्टी का
नाना जीव अपेक्षया ।।। न अस्ति अन्तरम् ।।।।	=अनेक जीवकी अपेक्षासे विरहकाल नहीं है
एकजीवम् ।। प्रति॰ जघन्येन ।। अन्तर्मुहूर्तः ।।	=एक जीवके लिये (=प्रति) जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त (विरहकाल) है
उत्कर्षेण ।। पूर्वकोटी ।।। देशोना ।।।	=उत्कृष्टकरि कुछहीन एक करोड़ पूर्व है ॥
संयतासंयतस्य ।। नाना-जीव अपेक्षया ।।।	=(वेदकसम्यग्दृष्टियों में) देशसंयमी का अनेक जीव की अपक्षा से
न अस्ति अन्तरम् ।।।। एकजीवम् ।। प्रति जघन्येन ।।	=विरहकाल नहीं है । एकजीव के लिये (=प्रति) जघन्यकरि
अन्तर्मुहूर्तः ।। उत्कर्षेण ।। देशोनानि ।।। षट्षष्टि	=अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि कुछहीन छ्यासठि
सागरोपमाणि।।।। प्रमत्त	=सागर प्रमाण है ॥ (वेदक सम्यग्दर्शनवालों में) प्रमत्त और
अप्रमत्तसंयतयोः ।। नाना-जीव अपेक्षया ।।।	=अप्रमत्त संयमियों का अनेक जीवकी अपेक्षा से
न अस्ति अन्तरम् ।।।। एक-जीवम् प्रति॰ जघन्येन ।।	=विरहकाल नहीं है । एक जीवके लिये जघन्यकरि
अन्तर्मुहूर्तः ।। उत्कर्षेण ।। स अतिरेकाणि ।।।	=अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि कुछ अधिक
त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि ।।।। औपशमिकसम्यग्दृष्टिषु ।।	=तेतीस सागर के बराबर (अन्तर काल) है । उपशमसम्यग्दृष्टियों में
असंयत-सम्यग्दृष्टेः ।। नाना-जीव-अपेक्षया ।।।	=अविरत सम्यग्दृष्टी का (विछोहकाल) अनेक जीवकी अपेक्षा से
जघन्येन ।। एकः ।। समय ।। उत्कर्षेण ।। सप्त ।।।	=जघन्यकरि एक समय है । उत्कृष्टकरि सात
रात्रिदिनानि ।।।। एक-जीवम् प्रति॰ जघन्यम् ।।।	=रात दिवस है । एक जीवके लिये जघन्य और (=च)

असंयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेण सागरोपमशतपृथक्त्वम्॥ चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेण सागरोपमशतपृथक्त्वम्। चतुर्णां क्षपकाणां सामान्यवत्। असंज्ञिनां नानाजीवापेक्षयैकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम्॥ तदुभय-

असंयतसम्यग्दृष्टि आदि अप्रमत्त-अन्तानाम्॥	=(सैनी में) असंयमी सम्यग्दर्शन वालेसे अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती सबनिका
नानाजीव अपेक्षया॥ न अस्ति अन्तरम्॥	=अनेक जीवकी विवक्षासे विरहकाल (= अन्तर) नहीं है
एक जीवम्॥ प्रति जघन्येन॥ अन्तर्मुहूर्तः॥	=एक जीव की अपेक्षा से जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण॥ सागरोपम-शतपृथक्त्वम्॥	=उत्कृष्टकरि तीनसौ सागरसे ऊपर और नौसौ सागर के नीचे प्रमाण है
चतुर्णाम्॥	=(सैनियों में) चार (अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मलोभ-उपशान्तकषाय)
उपशमकानाम्॥ नानाजीव अपेक्षया॥ सामान्यवत्॥	=उपशम श्रेणीवालोंका अनेक जीवकी अपेक्षासे संक्षेप (में गुणस्थान) वत् है अर्थात् जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पृथक्त्व वर्ष अन्तर है (२२४)
एक जीवम्॥ प्रति जघन्येन॥ अन्तर्मुहूर्तः॥	=एक जीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण॥ सागरोपम-शत पृथक्त्वम्॥	=उत्कृष्टकरि पृथक्त्व (= तीन से ऊपर नौसे नीचे) सौ सागर प्रमाण है
चतुर्णाम्॥	=(सैनियोंमें) चार (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मलोभ-क्षीणकषाय)
क्षपकाणाम्॥ सामान्यवत्॥	=क्षपक श्रेणीवालों का अन्तर संक्षेप (विषयमें पूर्व उक्त गुणस्थान) सदृश है अर्थात् नानाजीव की अपेक्षा से जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छे मास है एक जीव प्रति विरह काल नहीं है (पृष्ठ २२५ देखो)
असंज्ञिनाम्॥ नाना-जीव अपेक्षया॥ च एकजीव-अपेक्षया॥ न अस्ति अन्तरम्॥ तत्-उभय-	= असंज्ञियोंका (जो मिथ्यात्वगुणस्थानमें हैं) नाना जीवकी अपेक्षा से और एक जीवकी विवक्षा से अन्तर नहीं है॥ उन (सैनीमनसहित असैनी मनरहित) दोनों

(१) सैनी अथवा मनसहित जीव मिथ्यात्व प्रथम गुणस्थान से क्षीणकषाय बारहवाँ गुणस्थानतक होते हैं असैनी केवल मिथ्यात्व गुणस्थान में है।

एकजीव प्रति नास्त्यन्तरम् ॥ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यङ्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैक समयः । उत्कर्षेण पल्योपमासंख्येयभाग । एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् ॥ मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम् ॥ (१३) सञ्ज्ञानुवादेन- सञ्ज्ञिषु मिथ्यादृष्टे सामान्यवत् ॥ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यङ्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीव प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च । उत्कर्षेण सागरोपम शतपृथक्त्वम् ॥

एक जीवम् । प्रति॰ न॰ अस्ति अन्तरम् ,॰	=एक जीवके लिये वियोगकाल (=अन्तर) नहीं है ।
सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यङ्मिथ्यादृष्ट्यो ॥	=सासादनसम्यग्दर्शनवाले और मिश्रगुणस्थानवालेका (अन्तर)
नाना-जीव-अपेक्षया ॥ जघन्येन ॰ एक ॥ समय ॥	=अनेक जीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि एक समय है ॥
उत्कर्षेण ॥ पल्योपम-असंख्येय-भागः ॥ एकजीवं ॥	=उत्कृष्टकरि पल्यके असंख्यातवां अंश है । एक जीवकी
प्रति न अस्ति अन्तरम् ॥ मिथ्यादृष्टे ॥ नानाजीव—	=अपेक्षासे अन्तर नहीं है ॥ मिथ्यादर्शनवालेका अनेक जीवकी
अपेक्षया ॥ च एक-जीव-अपेक्षया ॥ न अस्ति अन्तरम्	=अपेक्षासे और (=च) एक जीवकी अपेक्षासे अन्तर (काल) नहीं है ।
[१३] सञ्ज्ञा-अनुवादेन ॥ सञ्ज्ञिषु ॥ मिथ्यादृष्टेः ॥	=(१३) सैनी (=मन सहित जीव) निकी अपेक्षासे सैनियोंमें मिथ्यादृष्टिका
सामान्यवत् ॰	=संक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहा हुआ गुणस्थान) सदृश (अन्तर) है अर्थात् सैनियोंमें मिथ्यादृष्टीका नाना जीवकी अपेक्षासे अन्तर नहीं है । एक जीवके लिये जघन्य अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्ट कुछ न्यून एकसौ पचीस सागर प्रमाण है (पृष्ठ २२३ देखो)
सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यङ्मिथ्यादृष्ट्योः ॥	=(सैनी जीवोंमें) सासादन सम्यग्दर्शनवालेका और मिश्रगुणस्थानवालेका
नानाजीव अपेक्षया ॥ सामान्यवत् ॰	=(अन्तर) अनेक जीव प्रति संक्षेप (प्रसंगमें पूर्व उक्त गुणस्थान) सदृश है अर्थात् जघन्य एक समय है । उत्कृष्ट पल्यका असंख्यातवां भाग है (२२३ २२४)
एक जीवम् ॥ प्रति॰ जघन्येन ॥ पल्योपम-	=एक जीवके लिये जघन्यकरि पल्योपमके
असंख्येय भागः ॥ च अन्तर्मुहूर्तः ॥ उत्कर्षेण ॥	=असंख्यातवां भाग और (=च) अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि

उत्कर्षेणांगुलासंख्येयभाग असंख्येयासंख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्य । असयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमतान्तानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं ॥

उत्कर्षेण ।। अंगुल-असंख्येयभागः ।।	—उत्कृष्टकरि (सूचीरूप) अंगुल के असंख्यातवां भाग है अर्थात् सूच्यंगुल के असंख्यातवां भाग के बराबर आकाश में या आकाश के जितने प्रदेश गणना में हैं उतने समयों के बराबर विरह काल या अंतरकाल है
असंख्येयासंख्येयाः ।।। उत्सर्पिणि-अवसर्पिण्यः ।।।	—(वे पूर्वोक्त समय) असंख्यातासंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल हैं अर्थात् सूच्यंगुल के असंख्यातवां भाग में जितने आकाशके प्रदेश संख्या में हैं उतनी ही (गणना अन्तर काल) के समयों की है और ये समय गिनती में उन समयों के बराबर हैं जितने कि समय असंख्यातासंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी कालों (असंख्यातासंख्यात कल्प कालों) में है
असंयत-सम्यग्दृष्टि-आदि-अप्रमत्त-अन्तानां ।।	—असंयतसम्यग्दृष्टी से अप्रमत्तसंयमी (सातवां गुणस्थान वर्ति) नि तक
नानाजीव-अपेक्षया ।। न-अस्ति अन्तरम् ।।।	—अनेक प्राणियों की अपेक्षा से अन्तर नहीं है
एकजीवं ।। प्रति॰ जघन्येन ।। अन्तर्मुहूर्तः ।।	—एक जीव की अपेक्षा से जघन्य अन्तर्मुहूर्त है ॥

(१) "असंख्येया" पृष्ठ ८६ (द्वितीय संस्करण के पृष्ठ ४९) में दो बार आया है। यह छापे की अशुद्धि है। पृष्ठ ८० (पृष्ठ ४९) में असंख्येयासंख्येया आया है वही शुद्ध है क्योंकि जय चन्द्रजी की वचनिका मुद्रित पृष्ठ १११ और हस्तलिखित वचनिका में भी दोनों स्थानों में असंख्यातासंख्यात वाक्य है और मतलब भी यही है कि सूच्यंगुलके असंख्यातवां भागके आकाश प्रदेशोंकी गणना असंख्यातासंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी (न कि असंख्याते उत्सर्पिणी अवसर्पिणी) कालों के समयों के बराबर है ॥

(२) पृष्ठ ८६, ८० (द्वितीय संस्करण के पृष्ठ ४९) में दोनों स्थानोंमें "असंख्येयभाग" (= असंख्यातवांभाग) के स्थान में 'असंख्येभागा' असंख्यातेभाग अशुद्ध छप गया है क्योंकि सूच्यंगुल के असंख्यातवां भाग (न कि असंख्याते भाग) के आकाश के प्रदेशों की संख्या असंख्यातासंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी कालोंके समयोंके बराबर गणनामें हैं। क्योंकि "अंगुल असंखभागे" इत्यादि गाथा तथा टिप्पणी (२) पृष्ठ२२१में देखो॥ 'सूच्यंगुलासंख्येयभाग'

(३) "अंगुल" पृष्ठ ८६ ८७ व ६८ में जहाँ जहाँ पर अंगुल शब्द आये हैं वहां वहां सूच्यंगुलसे प्रयोजन है न कि प्रतर (वर्ग) अंगुलसे या घनअंगुल से अर्थात् एक प्रमाण अंगुल (न कि उत्सेध अंगुल या आत्मांगुल) लंबे और एक प्रदेश चौड़े और ऊंचे आकाश में जितने प्रदेश होते हैं उसे सूच्यंगुल कहते हैं सूच्यंगुल के कथन में सूत्रो, जघन्ययुक्त संख्यात प्रमाण इत्यादि शब्द आये हैं अतः अलौकिक गणित के (१) संख्यामान और उपमामान दोनों भेद जो तत्त्वार्थ सूत्र के अगले अध्यायों के सूत्रों से भी सम्बन्ध रखते हैं नीचे के पृष्ठ २३० से २७६ तक लिखे जाते हैं। अलौकिक गणित के मुख्य दो भेद हैं एक संख्यामान और दूसरा उपमामान। संख्यामान के मूल ३ भेद हैं, अर्थात् १ संख्यात

व्यपदेशरहिताना सामान्यवत् ॥ (१४) आहारानुवादेन-आहारकेषु मिथ्यादृष्टे सामान्यवत्। सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यङ्मिथ्यादृष्टयोर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च।

व्यपदेश-रहितानाम् ॥	=नामों से वर्जित (सयोगकेवली और अयोगकेवली) निका (विरहकाल)
सामान्य-वत्*	=संक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहाहुआ गुणस्थान) समान है अर्थात् सयोगकेवलियों का नाना जीवकी अपेक्षासे और एक जीव की अपेक्षासे अन्तर नहीं है अयोग केवलियोंका नाना जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छे मास है एकजीव प्रति अन्तर नहीं है (पृष्ठ २२५)
(१४)आहार-अनुवादेन ॥ आहारकेषु ॥ मिथ्यादृष्टेः ॥	=आहारके कथनानुसारकरि आहारकोंमें मिथ्यादृष्टीका (अन्तर)
सामान्यवत्●	=संक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहा हुआ गुणस्थान) समान है अर्थात् आहारक मिथ्यादृष्टिका नाना जीवकी अपेक्षासे अन्तर नहीं है एक जीवके प्रति जघन्य अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्ट एकसौ बत्तीस सागर से कुछ न्यून है
सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यङ्मिथ्यादृष्ट्योः ॥	=(आहारकों में) सासादनसम्यग्दृष्टि और मिश्रगुणस्थानवालोंका
नाना-जीव अपेक्षया ॥ सामान्यवत्●	=नाना जीवकी अपेक्षासे संक्षेप (प्रसंगमें पूर्व-उक्त गुणस्थान) वत् (अन्तर) है अर्थात् जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पल्यका असंख्यातवांभागहै (पृष्ठ २२३)
एकजीवम् ॥ प्रति जघन्येन॥ पल्योपम-	=एक जीव के लिये जघन्यकरि पल्योपमके
असंख्येयभागः ॥ च अन्तर्मुहूर्तः ॥	=असंख्यातवांभाग और(=च) अन्तरमुहूर्त है ॥

(१) आहारक जीव मिथ्यात्व से सयोगकेवली गुणस्थान तक १३ स्थानों में होते हैं अनाहारक जीव, मिथ्यात्व सासादन असंयत सम्यग्दृष्टि, सयोगकेवली और अयोगकेवली इन पांच स्थानों में (और सर्वसिद्ध) होते हैं अर्थात् विग्रहगतिको प्राप्तहोनेवाले चारों गति संबंधी जीव, प्रतर और लोक पूर्ण समुद्घात करनेवाले सयोगकेवली, अयोगकेवली, सर्वसिद्ध (भगवान), इतने जीवतो अनाहारक होतेहैं। अन्य शेष जीव आहारक होते हैं॥ गोम्मटसार जीव कांड गाथा ६६६॥

इस अनवस्था कुंडके भरनेपर दूसरी एक सरसों अनवस्था कुंडोंकी गिनती करने के लिये शलाका कुंडमें डालनी । मध्य लोक में असंख्यात द्वीप समुद्र हैं । जिनमें सबके बीचमें जम्बूद्वीप है । इसका प्रमाण एक लक्षयोजन है उसके चारों ओर लवण समुद्र है । उसको चारों ओरसे घेरकर घातकीखंड है । इस प्रकार द्वीपके आगे समुद्र समुद्र, के आगे द्वीप क्रमसे असंख्यात द्वीप समुद्र हैं । चौड़ाई दूनी दूनी होती गई है । किसी द्वीप या समुद्र की परिधि (गोलाई) के एक तट से दूसरे तट तक की चौड़ाई को सूची कहते हैं । जैसे लवण समुद्रकी सूची ५ लाख योजन है ।

अब अनवस्था कुंड में से समस्त सरसोंको निकालकर किसी देव के द्वारा एक सरसों द्वीपमें एक सरसों समुद्रमें अनुक्रम से डालते चलिये, जिस द्वीप या समुद्रमें सब सरसों पूर्ण कर अंतकी सरसों डालो उसी द्वीप या समुद्रकी सूची के समान सूची वाला और एक सहस्रयोजन गहराईवाला दूसरा अनवस्थाकुंड बनाइये और उसको भी सरसों से शिखाऊ भर एक दूसरी सरसों शलाका कुंडमें डालिये इस दूसरे अनवस्था कुंडकी सरसों को भी निकालकर जिस द्वीप या समुद्र में पहिले समाप्त हुई थी उसके आगे एक सरसों द्वीपमें और एक (सरसों) समुद्र में डालते चलिये जहां ये सरसों भी समाप्त हो जावें वहां उसी द्वीप या समुद्र की सूची प्रमाण चौड़ा और एक सहस्र योजन गहरा तीसरा अनवस्था कुंड बनाकर उसे सरसों से शिखाऊ भरिये और शलाका कुंड में तीसरी सरसों डालिये इस तीसरे कुंड की भी सरसों निकालकर आगेके द्वीप समुद्रों में एक एक सरसों डालते डालते जब सरसों समाप्त हो जाय तब पूर्वोक्तानुसार चौथा अनवस्था कुंड भरकर चौथी सरसों शलाका कुंडमें डालिये इसी प्रकार एक एक अनवस्था कुंड की एक एक सरसों शलाका कुंड में डालते डालते जब शलाका कुंड भी शिखाऊ भर जाय तब एक सरसों प्रति शलाका कुंड में डालिये इसी प्रकार एक एक अनवस्था कुंड की एक एक सरसों शलाका कुंड में डालते डालते जब दूसरी बार भी शलाका कुंड (शिखाऊ) भर जाय तो दूसरी सरसों प्रतिशलाकाकुण्ड में डालिये एक एक अनवस्था कुण्ड की एक एक सरसों शलाकाकुंड में और एक एक शलाकाकुंडकी एक एक सरसों प्रतिशलाकाकुंडमें डालते डालते जब प्रतिशलाकाकुण्डभी भर जाय तब एक सरसों महाशलाकाकुण्डमें डालिये, जिस क्रमसे एक बार प्रति शलाकाकुंड भरा है उसी क्रमसे दूसरी बार भरने पर दूसरी सरसों महाशलाका कुण्डमें डालिये । इसी प्रकार एक एक प्रतिशलाका कुंडकी सरसों महाशलाका कुंडमें डालते डालते जब महाशलाका कुंड भी भरजाय उस समय

(टिप्पणी) २ असंख्यात और ३ अनंत। असंख्यातके तीन भेद हैं १ परीतासंख्यात २ युक्तासंख्यात और ३ असंख्यातासंख्यात। अनंतके भी ३ भेद हैं —१ परीतानंत २ युक्तानंत ३ अनंतानंत। संख्यात का एक भेद ही है। ऐसे संख्यात का एक भेद असंख्यात और अनंत के तीन तीन भेद सब मिल कर संख्यामान के ७ भेद हुए। इन सातों में से प्रत्येक के जघन्य (सब से छोटा मध्यम बीच के) और उत्कृष्ट (सबसे बड़ा) की अपेक्षा से तीन तीन भेद हैं इस प्रकार संख्यामान के २१ भेद हुए अर्थात् (1) जघन्य संख्यात मध्यम संख्यात उत्कृष्ट संख्यात

(२) जघन्य परीतासंख्यात, मध्यम परीतासंख्यात, उत्कृष्ट परीतासंख्यात जघन्य युक्तासंख्यात मध्यम युक्तासंख्यात उत्कृष्ट युक्तासंख्यात, जघन्य असंख्यातासंख्यात, मध्यम असंख्यातासंख्यात उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात,

(3) जघन्य परीतानन्त, मध्यम परीतानन्त, उत्कृष्ट परीतानन्त ; जघन्य युक्तानन्त, मध्यम युक्तानन्त, उत्कृष्ट युक्तानन्त ; जघन्य अनन्तानन्त मध्यम अनन्तानन्त उत्कृष्ट अनन्तानन्त ॥

एकमें एकका भाग देने से अथवा एकको एकसे गुणाकारकरने से कुछभी हानि वृद्धि नहीं होती। अतः संख्याका आरम्भ दो के अङ्क से ग्रहण किया है। और एक को गणना (गिनती) शब्द का वाच्य (कहने वाला) माना है, इस लिये जघन्य संख्या का प्रमाण दो (२) है। तीन चार पांच इत्यादि एक हीन उत्कृष्ट संख्यात पर्यन्त मध्यम संख्यात के भेद हैं। एक न्यून जघन्य परीतासंख्यात को उत्कृष्ट संख्यात कहते हैं

अब आगे जघन्य परीत संख्यात का प्रमाण कितना है सो लिखते हैं। अलौकिक गणित का स्वरूप लौकिक गणित से कुछ विलक्षण है लौकिक गणित से स्थूल और स्वल्प (थोड़े) पदार्थों का परिमाण किया जाता है, किन्तु अलौकिक गणित से सूक्ष्म और अनन्त पदार्थों की हीनाधिकता का बोध कराया जाता है। जघन्य परीतासंख्यात का स्वरूप समझाने के लिये जो उपाय लिखा जाता है वह किसी ने किया नहीं था किन्तु बड़े गणित का परिमाण समझाने के लिये एक कल्पित उपाय मात्र है ॥

कल्पना कीजिये कि अनवस्था, शलाका, प्रति शलाका, और महा शलाका, नाम के चार गोल कुण्ड हैं। जिन में से प्रत्येक का व्यास (= गोल पदार्थ की एकतट से दूसरे तट तक की चौड़ाई) एक लक्ष योजन (योजन का प्रमाण यहां दो सहस्र कोस का समझना) और गहराई (ऊंडाई) का प्रमाण एक सहस्र योजन है। इनमें से अनवस्था कुंडका गोल सरसों से शिखाऊ (पृथ्वी पर अनाजकी राशिके भांति) भरना। इस अनवस्था कुंड में १९९७११२९ ३८ ४५ १३११ ६६ ६६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ,, सरसों छियालीस अंक प्रमाण गणित शास्त्रके अनुसार समाते। यहां अपूर्णांक का ग्रहण नहीं करना।

इस अनवस्था कुंडके भरनेपर दूसरी एक सरसों अनवस्था कुडोंकी गिनती करने के लिये शलाका कुंडमें डालनी। मध्य लोक में असंख्यात द्वीप समुद्र हैं। जिनमें सबके बीचमें जम्बूद्वीप है। इसका व्यास एक लक्षयोजन है उसके चारों ओर लवण समुद्र है। उसको चारों ओरसे घेरकर धातकीखंड है। इस प्रकार द्वीपके आगे समुद्र समुद्र के आगे द्वीप क्रमसे असंख्यात द्वीप समुद्र हैं। चौड़ाई दूनी दूनी होती गई है। किसी द्वीप या समुद्र की परिधि (गोलाई) के एक तट से दूसरे तट तक की चौड़ाई को सूची कहते हैं। जैसे लवण समुद्रकी सूची ५ लाख योजन है।

अब अनवस्था कुंड में से समस्त सरसोंको निकालकर किसी देव के द्वारा एक सरसों द्वीपमें एक सरसों समुद्रमें अनुक्रम से डालते चलिये जिस द्वीप या समुद्रमें सब सरसों पूर्ण कर अंतकी सरसों डाले उसी द्वीप या समुद्रकी सूची के समान सूची वाला और एक सहस्रयोजन गहराईवाला दूसरा अनवस्थाकुंड बनाइये और उसको भी सरसों से शिखाऊ भर एक दूसरी सरसों शलाका कुंडमें डालिये इस दूसरे अनवस्था कुंडकी सरसों को भी निकालकर जिस द्वीप या समुद्र में पहिले समाप्त हुई थी उसके आगे एक सरसों द्वीपमें और एक (सरसों) समुद्र में डालते चलिये जहाँ ये सरसों भी समाप्त हो जावें वहाँ उसी द्वीप या समुद्र की सूची प्रमाण चौड़ा और एक सहस्र योजन गहरा तीसरा अनवस्था कुंड बनवाकर उसे सरसों से शिखाऊ भरिये और शलाका कुंड में तीसरी सरसों डालिये इस तीसरे कुंड की भी सरसों निकालकर आगेके द्वीप समुद्रों में एक एक सरसों डालते डालते जब सरसों समाप्त हो जाय तब पूर्वोक्तनुसार चौथा अनवस्था कुंड भरकर चौथी सरसों शलाका कुंडमें डालिये इसी प्रकार एक एक अनवस्था कुंड की एक एक सरसों शलाका कुंड में डालते डालते जब शलाका कुंड भी शिखाऊ भरजाय तब एक सरसों प्रति शलाका कुंड में डालिये इसी प्रकार एक एक अनवस्था कुंड की एक एक सरसों शलाका कुंड में डालते डालते जब दूसरी बार भी शलाका कुंड (शिखाऊ) भर जाय तो दूसरी सरसों प्रतिशलाकाकुण्ड में डालिये एक एक अनवस्था कुण्ड की एक एक सरसों शलाकाकुंड में और एक एक शलाकाकुंडकी एक एक सरसों प्रतिशलाकाकुंडमें डालते डालते जब प्रतिशलाकाकुण्डभी भर जाय तब एक सरसों महाशलाकाकुण्डमें डालिये, जिस क्रमसे एक बार प्रति शलाकाकुंड भरा है उसी क्रमसे दूसरी बार भरने पर दूसरी सरसों महाशलाका कुण्डमें डालिये। इसी प्रकार एक एक प्रतिशलाका कुंडकी सरसों महाशलाका कुंडमें डालते डालते जब महाशलाका कुंड भी भरजाय तब जघन्य

सबसे बड़े अतके अनवस्थाकुंडमें जितनी सरसों समाई उतनाही जघन्य परीतासंख्यातका प्रमाण है ।

संख्याप्रमाण के मूलभेद सात कहेथे इन सातोंके जघन्य मध्यम उत्कृष्टकी अपेक्षासे इक्कीस भेद कहे । यहांपर आगेके मूलभेद के जघन्य भेदमें से एक घटाने से पिछले मूल भेदका उत्कृष्ट भेद होता है जैसे जघन्य परीतासंख्यात में से एक घटाने से उत्कृष्ट संख्यात तथा जघन्य युक्तसंख्यात में से एक घटाने से उत्कृष्ट परीतासंख्यात होता है । इसी प्रकार अन्य स्थानोंमें भी जानना । जघन्य और उत्कृष्ट भेदों के बीचके सब भेद मध्यम भेद कहलाते हैं । इस प्रकार मध्यम और उत्कृष्ट केस्वरूप जघन्य के स्वरूप को जानने से ही ज्ञात होसकते हैं इसलिये अब आगे जघन्य भेदोंका ही स्वरूप लिखाजाता है । जघन्यसंख्यात और जघन्य परीतासंख्यात का स्वरूप ऊपर लिखा जाचुका है अब आगे जघन्य युक्तसंख्यात का प्रमाण लिखते हैं ।

जघन्य परीतासंख्यात प्रमाण दो राशि लिखना, एक विरलनराशि और दूसरी देयराशि विरलनराशिका विरलन करना अर्थात् विरलनराशिका जितना प्रमाण है उतने एके लिखना और प्रत्येक एकेके ऊपर एक एक देयराशि रखकर समस्त देयराशियोंका परस्पर गुणन करने से जो गुणन फल हो उतना ही जघन्य युक्तसंख्यातका प्रमाण है भावार्थ यदि जघन्य परीतासंख्यातका प्रमाण चार मानाजाय तो चार का विरलनकर १,१,१,१, प्रत्येक एकके ऊपर देयराशि चार चार रखकर, ४ ४ ४ ४ चारों चौकोंका परस्पर गुणन करनेसे गुणनफल २५६ जघन्य युक्तासंख्यातका प्रमाण होगा । इसही जघन्य युक्तासंख्यातको आवलीभी कहते हैं क्योंकि एक आवली में जघन्य युक्तासंख्यातका प्रमाण समय होते हैं । जघन्य युक्तासंख्यातके वर्ग (एक राशिको उसी से गुणा कार करने से जो गुणनफल होता है उसको वर्ग कहते हैं जैसे ५ का वर्ग २५) को जघन्य असंख्यातासंख्यात कहते हैं । अब आगे जघन्य परीतानंतका प्रमाण कहते हैं–

जघन्य असंख्यातासंख्यातप्रमाण तीनि राशि अर्थात् १ विरलनराशि २ देयराशि ३ शलाका लिखना । विरलनराशिका विरलनकर प्रत्येक एकके ऊपर देयराशि रखकर समस्त देयराशियोंका परस्पर गुणाकार करना, और शलाकाराशि में से एक घटाना, इस पाये हुये गुणनफल प्रमाण

एक विरलन और एक देय इस प्रकार दो राशिकरना । विरलनराशिका विरलनकर प्रत्येक एकके ऊपर देयराशि रखकर समस्त देयराशियोंका परस्पर गुणाकार करना और शलाकाराशिमेंसे एक और घटाना । इस दूसरीवार पाये हुये गुणनफल प्रमाण पुनः विरलन और देयराशि करना और पूर्वोक्तअनुसार समस्त देयराशियोंका परस्पर गुणाकार करना तथा शलाकाराशियों में से एक और घटाना इसही अनुक्रमसे नवीन नवीन गुणनफल प्रमाण विरलन और देयके क्रमसे एक एक बार देयराशियों का गुणाकार होने पर शलाकाराशि में से एक एक घटाते घटाते जब शलाकाराशि समाप्त होजाय उस समय जो अन्तिम गुणनफलरूप महाराशि होय उस प्रमाण फिर विरलन देय-शलाका ये तीनि राशि लिखनी । विरल राशिका विरलनकर प्रत्येक एकके ऊपर देयराशि रख देयराशिका परस्पर गुणाकार करते करते पूर्वोक्तक्रमानुसार एक बार देयराशियोंका गुणाकार होनेपर शलाकाराशिमें से एक एक घटाते घटाते जब यह द्वितीयबार स्थापनकी हुई शलाकाराशिभी समाप्त होजाय उस समय इस अन्तकी गुणनफलरूप महाराशि प्रमाण पुनः विरलन-देय शलाका ये तीनिराशि लिखनी । पूर्वोक्त क्रमानुसार जब यह तीसरीबार स्थापना की हुई शलाकाराशि भी समाप्त होजाय उस समय यह अन्तिम गुणनफलरूप जो महाराशि हुई वह असंख्यातासंख्यातका एक मध्यम भेद है ।

कथित क्रमानुसार तीनिबार तीनितीनि राशियों के गुणन विधा को शलाकात्रयनिष्ठापन कहते हैं आगे भी जहां "शलाकात्रयनिष्ठापन" ऐसा पद आवे वहां ऐसाही विधा । समझ लेना । इस महा राशि में लोक प्रमाण (जिसका कथन उपमामान के कथन में कहा जायगा) लोकप्रमाण धर्मद्रव्यके प्रदेश लोकके प्रमाण अधर्मद्रव्यके प्रदेश, लोक प्रमाण एक जीव के प्रदेश, लोक प्रमाणलोकाकाशके प्रदेश, लोकसे असंख्यात गुणा अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवों का प्रमाण और उसके भी असंख्यात लोक गुणा तथापि सामान्यपनेसे असंख्यात लोक प्रमाण प्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवोंका प्रमाण—ये छह राशि मिलाना । इस योगफलप्रमाण विरलन-देय-शलाका ये तीनि राशि स्थापनकर पुर्वोक्तानुसार शलाकात्रय निष्ठापन करना । इसप्रकार करने से जो महाराशि उत्पन्न हो उस में बीसकोडाकोडी सागर प्रमाण कल्पकालके समय असंख्यात लोक प्रमाण स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान (स्थितिबंधको कारण भूतआत्मा के परिणाम) इनसे भी असंख्यात गुणे तथापि असंख्यात लोक प्रमाण अनुभागबंधाध्यवसाय स्थान और इनसे भी असंख्यात गुणे तथापि असंख्यात लोक प्रमाण मन वचन काय योगों के अविभाग प्रतिच्छेद (गुणोंके अंश) ये चार राशि मिलाना । इस दूसरे योगफल प्रमाण फिर—

विरलन-देय शलाका ये तीनराशि स्थापन करना और पूर्वोक्त क्रमानुसार शलाकात्रय निष्ठापन करना । इस प्रकार शलाकात्रय-निष्ठापन करनेसे जो राशि उत्पन्न हो उसको जघन्य परीतानंत कहते हैं । जघन्य परीतानंतका विरलनकर प्रत्येक एकके ऊपर जघन्य परीतानंतका रख जघन्य परीतानंतोंका परस्पर गुणाकार करनेसे जो राशि उत्पन्न हो उसको जघन्य युक्तानंत कहते हैं । अभव्य जीवोंका प्रमाण जघन्य युक्तानंतके समान है । जघन्य युक्तानंतके वर्गको जघन्य अनंतानंत कहते हैं ।

अब आगे केवल ज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेदोंके प्रमाणस्वरूप उत्कृष्ट अनंतानंतका स्वरूप कहते हैं— जघन्य अनंतानंत प्रमाण विरलन देय शलाका ये तीन राशि स्थापनकर शलाकात्रय निष्ठापन करना । इस प्रकार शलाकात्रय निष्ठापन करनेसे जो महाराशि उत्पन्न हो वह अनंतानंतका एक मध्यम भेद है । अनंतके दूसरे दो भेद हैं, एक सक्षय अनंत और दूसरा अक्षयअनंत । यहां तक जो संख्या हुई वह सक्षयअनंत है इससे आगे अक्षयअनंतके भेद हैं । क्योंकि, इस महाराशिमें आगे छह राशि अक्षय अनंत मिलाई जाती हैं । नवीन वृद्धि न होने पर भी व्यय करते करते जिस राशिका अंत नहीं आवे उसको अक्षयअनंत कहते हैं । इस महाराशिमें जीवराशिके अनंतवें भाग सिद्धराशि, सिद्धराशिसे अनंतगुणी निगोदराशि, वनस्पतिकायिकराशि, जीवराशिसे अनंतगुणी पुद्गलराशि, पुद्गलसे भी अनंतगुणे तीनकालके समय और अलोकाकाशके प्रदेश ये छह राशि मिलानेसे जो योगफल हो उस प्रमाण विरलन देय शलाका ये तीनराशि स्थापनकर शलाकात्रयनिष्ठापन करना । इस प्रकार शलाकात्रयनिष्ठापन करनेसे जो राशि उत्पन्न हो उसमें धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्यके अगुरुलघु गुणके अनंतानंत अविभागप्रतिच्छेद मिलाकर योगफल प्रमाण विरलन-देय शलाका स्थापनकर फिर शलाकात्रयनिष्ठापन करना । इस प्रकार शलाकात्रयनिष्ठापन करनेसे मध्यम अनंतानंतका स्वरूप जो महाराशि उत्पन्न हुई उसको केवल ज्ञानके अविभागप्रतिच्छेदोंके समूहरूप राशिमेंसे घटाना और जो शेष बचे उसमें पुन वही महाराशि मिलानेसे केवलज्ञानके अविभागप्रतिच्छेदोंका प्रमाणस्वरूप उत्कृष्ट अनंतानंत होता है । उक्त महाराशिको केवलज्ञानमेंसे घटाकर फिर मिलानेका अभिप्राय यह है कि, केवलज्ञानके अविभागप्रतिच्छेदोंका प्रमाण उक्त महाराशिसे बहुत बड़ा है । उस महाराशिको किसी दूसरी राशिसे गुणाकार करने पर भी केवल ज्ञानके प्रमाणसे बहुत न्यून रहता है इसलिये केवल ज्ञानके अविभागप्रतिच्छेदोंके प्रमाणका महत्व दिखलानेके लिये उपर्युक्त विधान किया है । इस प्रकार संख्या मानके इक्कीस भेदोंका कथन समाप्त हुआ ।

अब आगे उपमामानके आठ भेदोंका स्वरूप लिखते हैं। जो प्रमाण किसी पदार्थकी उपमा देकर कहा जाता है उसे उपमामान कहते हैं। उपमामानके आठ भेद हैं १ पल्य (अर्थात् नाज भरनेके जो खात्तो उसकी उपमा है) २ सागर (यहाँ लवण समुद्रकी उपमा है) ३ सूच्यंगुल ४ प्रतरांगुल ५ घनांगुल ६ जगच्छ्रेणी ७ जगत्प्रतर और ८ लोक। इनमेंसे पल्यके तीन भेद हैं १ व्यवहारपल्य २ उद्धारपल्य और ३ अद्धा पल्य। व्यवहारपल्यका स्वरूप पूर्वाचार्योंने इसप्रकार कहा है कि पुद्गलद्रव्यके सबसे छोटे खंडको (टुकड़ेको) परमाणु कहते हैं। अनन्तानंत परमाणुओंके स्कंधको (समूहरूप पिंडको) अवसन्नासन्न कहते हैं ८ अवसन्नासन्नका एक सन्नासन्न, ८ सन्नासन्नका एक त्रुटरेणु ८ त्रुटरेणुका एक त्रसरेणु, ८ त्रसरेणुका एक रथरेणु ८ रथरेणुका एक उत्तम भोग भूमिवालोंका बालाग्रभाग, ८ उत्तम भोग भूमिवालोंके बालाग्रका एक मध्यमभोग भूमिवालोंका बालाग्र ८ मध्यमभोग भूमिवालोंके बालाग्रका एक जघन्यभोगभूमिवालोंका बालाग्र, ८ जघन्यभोगभूमिवालोंके बालाग्रका एक कर्मभूमिवालोंका बालाग्र ८ कर्मभूमिवालोंके बालाग्रकी एक लीख, ८ लीखोंका एक सरसों ८ सरसोंका एक जौ और ८ जौका एक अंगुल होता है। इस अंगुलको 'उत्सेधांगुल' कहते हैं। चारों गतियोंके जीवोंके शरीर और देवोंके नगर तथा मन्दिरादिकका परिमाण इसी अंगुलसे वर्णन किया जाता है इस उत्सेधांगुलसे पांचसौ गुणा प्रमाणांगुल (भरत क्षेत्रके अवसर्पिणी कालके प्रथम चक्रवर्तिका अंगुल) है। इस प्रमाणांगुलसे महापर्वत नदी द्वीप समुद्र इत्यादिकका परिमाण कहा जाता है। भरत ऐरावत क्षेत्रके मनुष्योंका अपने अपने कालमें जो अंगुल है उसे आत्मांगुल कहते हैं इससे झारी कलस धनुष ढोल हल मूसल, छत्र, चमर इत्यादिकका प्रमाण वर्णन किया जाता है। छह अंगुलका एक पाद, दो पादका एक बिलस्त दो बिलस्तका एक हाथ चार हाथका एक धनुष, दो सहस्र धनुषका एक कोस, चार कोसका एक योजन होता है। प्रमाणांगुलसे निष्पन्न एक योजन प्रमाण गहरा और एक योजन प्रमाण व्यासवाला एक गोलगर्त (गढ़ा) बनाना उस गर्तको उत्तम भोगभूमिवाले मेढ़के बालोंके अग्रभागोंसे भरना। गणित करनेसे उसगर्तके रोमकी संख्या ४१३४५२६३०३०८ २०३१७७७४९५१२१९२०००००००००००० ०००० हुई (अध्याय ३ सूत्र ३८की टिप्पणी गणितके लिये देखो) इसगर्तके एक एक रोमको सौ सौ बरस पीछे निकालते निकालते जितने कालमें वे सब रोम समाप्त होजाय उतने कालको व्यवहार पल्यका काल कहते हैं। उपर्युक्त रोम संख्याको सौबरसके समयसमूह से गुणा करने पर व्यवहार पल्यके समयोंका प्रमाण होता है।

[१ वर्षके २ अयन, १ अयनकी तीन ऋतु, १ ऋतुके २ मास, १ मासके ३० अहोरात्रि १ अहोरात्रिके ३० मुहूर्त १ मुहूर्तकी संख्यात आवली और १ आवली के जघन्य युक्तासंख्यात प्रमाण समय होते हैं]। व्यवहार पल्यके एक एक रोम खंडके असंख्यात कोटि वर्षके समय समूह प्रमाण खंड करने से उद्धार पल्यके रोम खंडोंका प्रमाण होता है जितने उद्धारपल्यके रोम खंड हैं उतने ही उद्धार पल्यके समय जानने। एक कोटीके वर्गको कोड़ाकोड़ी कहते हैं द्वीप समुद्रोंकी संख्या उद्धारपल्य से है अर्थात् उद्धार पल्यके समयोंको पच्चीस कोड़ाकोड़ीसे गुणा करने से जो गुणनफल होता है उतनेही सब द्वीप समुद्र हैं। उद्धार पल्यके प्रत्येक रोमखंडके असंख्यात वर्षके समय समूह प्रमाण खंड करने से अद्धापल्यके रोम खंड होते हैं। जितने अद्धापल्यके रोमखंड हैं उतने ही अद्धापल्यके समय हैं।

उत्कर्षेणाङ्गुलासंख्येयभागः असंख्येयासंख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः ॥ चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेणाङ्गुलासंख्येयभागः असंख्येयासंख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः ॥

उत्कर्षेण ।, अंगुल-असंख्येय-भागः ।,	—उत्कृष्टकरि सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग है (इस भागके प्रदेशों के तुल्य है)
असंख्येयासंख्येयाः ।॥ उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः ।।	—(येप्रदेश संख्यामें) असंख्यातासंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणीके समयोंके तुल्य है
चतुर्णाम् ।। उपशमकानाम् ।।	—चार उपशमश्रेणी (आठवेंसे ग्यारहवां गुणस्थान) वालेनिका (अन्तर)
नाना-जीव-अपेक्षया ।, सामान्यवत्*	—अनेक जीव की विवक्षासे सामान्य (प्रकरण में कथित गुणस्थान) सम है अर्थात जघन्यकरि एक समय है उत्कृष्टकरि पृथक्त्व (तीनसे ऊपर नौसे नीचे) वर्ष है (पृष्ठ २२४)
एकजीवं ।। प्रति जघन्येन ।, अन्तर्मुहूर्तः ।।	—(चार उपशम श्रेणी वालों का) एक जीव की अपेक्षा से जघन्य अन्तर्मुहूर्त है
उत्कर्षेण ।, अंगुल-असंख्येयभागः ।।	—उत्कृष्टकरि सूच्यंगुल के असंख्यातवां भाग (के आकाश प्रदेशों के तुल्य) है
असंख्येयासंख्येया ।॥ उत्सर्पिण्यवसर्पिण्य ।॥	—(ये प्रदेश गिनतीमें) असंख्यातासंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणीके समयोंके तुल्य है

कर्मोंकी स्थिति अद्धापल्यसे वर्णन की गई है पल्यको दश कोडाकोडी से गुणा करनेपर सागर होता है अर्थात् दशकोडाकोडी व्यवहार पल्यका एक व्यवहार सागर दश कोडाकोडी उद्धारपल्यका एक उद्धार सागर और दश कोडाकोडी अद्धापल्यका एक अद्धा सागर होता है किसी राशिको जितनी बार आधा आधा करने से एक शेष रहे उसको अर्धच्छेद कहते हैं जैसे ४ को दोबार आधा आधा करनेसे एक होता है अतः चार के अर्धच्छेद २ हैं। आठ के तीन हैं। सोलह के अर्धच्छेद चार हैं इसही प्रकार सर्वत्र लगा लेना अद्धापल्यकी अर्द्धच्छेदराशिका विरलनकर प्रत्येक एकके ऊपर अद्धापल्य रखकर सब अद्धा पल्योंका परस्पर गुणाकार करनेसे जो राशि उत्पन्न हो उसको सूच्यंगुल कहते हैं अर्थात् एक प्रमाणांगुल लंबे और एक प्रदेश चौडे और ऊंचे आकाशमें इतने प्रदेश हैं। सूच्यंगुलके वर्ग को प्रतरांगुल और घन (एक राशि को तीनबार परस्पर गुणाकरने से जो गुणन फल हो उसे घन कहते हैं। जैसे दोका घन आठ और तीन का घन सत्ताइस है) को घनांगुल कहते हैं पल्यके अर्द्धच्छेद राशि के असंख्यातवां भागका विरलनकर प्रत्येक एक एकके ऊपर घनांगुल रख समस्त घनांगुलोंका परस्पर गुणाकार करनेसे जो गुणन फल हो उसको जगच्छ्रेणी कहते हैं जगच्छ्रेणीका सातवां भाग राजू कहा गया है अर्थात् सात राजूकी एक जगच्छ्रेणी होती है। जगच्छ्रेणीके वर्गको जगत्प्रतर और जगच्छ्रेणीके घनको लोक कहते हैं। यही तीनों लोकके आकाश प्रदेशोंकी संख्या है।

इस उपमामानके भेदोंसे द्रव्य क्षेत्र काल और भावका परिमाण किया जाता है भावार्थ जहां द्रव्य का परिमाण कहाजाय वहाँ उतने प्रथक २ पदार्थ जानना जहां क्षेत्रका परिमाण कहा जाय वहां उतने प्रदेश जानने जहां कालका परिमाण कहाजाय वहाँ उतने समय जानने और जहां भाव का परिमाण कहाजाय वहां उतने अविभाग प्रतिच्छेद जानने ॥

चतुर्णां क्षपकाणां सयोगकेवलिनां च सामान्यवत् । अनाहारकेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम् ॥ सासादनसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेण पल्योपमासंख्येयभागः । एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् ॥ असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः उत्कर्षेण मासपृथक्त्वम् । एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् ॥ सयोगकेवलिनां

चतुर्णाम् ।।	=(आहारकों में) चार (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मलोभ-क्षीणकषाय)
क्षपकाणाम् ।। च* सयोगकेवलीनाम् ।।	=क्षपकश्रेणीवाले और सयोगकेवलियोंका (विरहकाल)
सामान्यवत्*	=संक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहाहुआ गुणस्थान) सदृश है अर्थात् अहारकोंमें चार क्षपकश्रेणीवालोंका अन्तरकाल अनेक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छह मास है । एक जीवके लिये अन्तर नहीं है आहारकोंमें सयोग केवलियोंका नानाजीव और एक जीवके प्रति अन्तर नहीं है
अनाहारकेषु ।। मिथ्यादृष्टेः ।। नाना-जीव-अपेक्षया ।।।	=(अनाहारकोंमें) मिथ्यादर्शनवालेका अनेक जीवकी अपेक्षासे
च*एक-जीव-अपेक्षया ।।। न*अस्ति अन्तरम् ।।।	और एक जीवकी विवक्षासे अन्तर (काल) नहीं है
सासादनसम्यग्दृष्टेः ।। नाना जीव-अपेक्षया ।।।	=(अनाहारकोंमें) सासादनसम्यग्दर्शनवालेका अनेक जीवकी अपेक्षासे
जघन्येन ।। एकः । समयः । उत्कर्षेण ।। पल्य	=जघन्यकरि एक समय है । उत्कृष्टकरि पल्यके
उपम-असंख्येयभाग ।। एकजीवं ।। प्रति*	=असंख्यातवां भाग प्रमाण (=उपम) है । एक जीवकी अपेक्षासे
न अस्ति अन्तरम् ।।।। असंयतसम्यग्दृष्टेः ।।	=अन्तर नहीं है ।। (अनाहारकोंमें) असंयमी सम्यग्दृष्टीका (विरहकाल)
नानाजीव-अपेक्षया ।।। जघन्येन ।। एकः ।। समयः ।।	=अनेक जीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि एक समय है
उत्कर्षेण ।। मास-पृथक्त्वं ।।। एकजीवं ।।	उत्कृष्टकरि तीन से ऊपर नौ स नीचे (=पृथक्त्व) मास है एक जीवकी
प्रति*न अस्ति अन्तरम् ।।। सयोगकेवलीनाम् ।।	=अपेक्षासे (=प्रति) अन्तर नहीं है ।।(अनाहारक अवस्थामें) सयोगकेवलियोंका

नानाजीवापेक्षया जघन्येनैक. समय । उत्कर्षेण वर्षपृथक्त्वम् । एकजीव प्रति नास्त्यन्तरम् ॥ अयोग- केवलिना नानाजीवापेक्षया जघन्येनैक समय । उत्कर्षेण षण्मासा । एकजीव प्रति नास्त्यन्तरम् ॥ अन्तरमवगतम् ॥ भावो विभाव्यते ॥ स द्विविध । सामान्येन विशेषेण च ॥ सामान्येन तावत्-मिथ्यादृष्टिरित्यौदयिको भाव । सासादनसम्यग्दृष्टिरिति पारिणामिको भावः ॥ सम्यङ्मिथ्यादृष्टिरिति क्षायोपशमिकोभाव ॥

नानाजीव-अपेक्षया ;॥ जघन्येन ;। एक: ;। समय ;।	=(अन्तर काल) अनेक जीव की अपेक्षासे जघन्यकरि एक समय है
उत्कर्षेण ;। वर्ष पृथक्त्वम् ;॥ एकजीवम् ;।	=उत्कृष्टकरि तीनसे ऊपर नौसे न्यून (=पृथक्त्व) वरस है ॥ एक जीव के
प्रति* न अस्ति अन्तरम् ;॥ अयोगकेवलिनाम् ;।	=लिये विरह काल नहीं है। (अनाहारकों में) अयोगकेवलियों का
नानाजीव अपेक्षया ;॥ जघन्येन ;। एक: ;। समय: ;।	=(अन्तरकाल) अनेक जीव की अपेक्षा से जघन्यकरि एक समय है
उत्कर्षेण ;। षण्मासाः ;। एकजीवम् ;। प्रति अन्तरम्;॥	=उत्कृष्टकरि छह मास है। एक जीवकी अपेक्षा से अन्तर
न* अस्ति T अन्तरम् ;॥ अवगतम् ;॥	=नहीं है ॥ अन्तर (का कथन) जाना अथवा ज्ञात हुआ ॥
भावः;। विभाव्यतेT सः ;। द्विविधः;। सामान्येन ;॥	=भाव (प्ररूपणा) प्रारंभ की जाती है। सो भाव दो प्रकार संक्षेप से
विशेषेण ;। च सामान्येन ;॥ तावत्*	=और (=च) विस्तारकरि है। संक्षेपसे प्रथम (तावत्)
मिथ्यादृष्टिः ;। इति* औदयिकः ;। भावः ;।	=" मिथ्यादृष्टि तो औदयिक भाव है " क्योंकि यहां मिथ्यात्व का उदय है
सासादनसम्यग्दृष्टिः ;। इति* पारिणामिकः ;। भावः ;।	=सासादन सम्यग्दृष्टी पारिणामिक भाव है अर्थात् सासादन दूसरे गुणस्थान में दर्शनमोहका उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम नहीं होती है
सम्यङ्मिथ्यादृष्टिः ;। इति* क्षायोपशमिकः ;। भावः ;।	=सम्यग्मिथ्यादृष्टि यह क्षायोपशमिक भाव है (क्योंकि यहां दर्शनमोहकी सर्वघाती मिथ्यात्व प्रकृति का उदयाभावीक्षय और उपशम तथा सम्यक्त्व मिथ्यात्व का उदय रहता है ॥ देखो जी का गाथा ११ की म प्र सं॰ टीका

(१) मिथ्यात्व गुणस्थान से अविरत सम्यक्त्व गुणस्थान तक दर्शन मोह की अपेक्षा से भावों का कथन जानना चाहिये ॥

(२) द्रव्यक्षेत्र काल भावके निमित्त से कर्म जब अपना रस (फल) देता है वो उदय है क्योंकि उदय से जो आत्माके भाव होते हैं वे औदयिक भाव है

असयतसम्यग्दष्टिरिति औपशमिको वा क्षायिको वा क्षायोपशमिको वा भावः ॥ उक्तं च मिच्छे खलु आदइओ विदिए पुण परिणामिओ भावो। मिस्से खओवसमिओ अविरदसम्मम्मि तिण्णेव ॥१॥

असंयत-सम्यग्दष्टिः ;। इति * औपशमिकः ;। वा * =अविरत सम्यग्दष्टी यह औपशमिकभाव सहित है अर्थात् दर्शनमोहके उपशम होनेसे (=उदयनहोनेसे) आत्माके दर्शन गुणकी विशुद्धता है

क्षायिकः ;। वा* =अथवा क्षायिक भाव सहित है क्योंकि दर्शन मोहका सर्वथा नाश होने से आत्मा के दर्शनगुणकी अत्यन्त विशुद्धि होजाती है

क्षायोपशमिक ;। वा भावः ;। =वा क्षायोपशमिकभाव सहित है अर्थात् मिथ्यात्व सम्यक्त्वमिथ्यात्व और सर्वघाती प्रकृतियोंके उदयाभावी क्षय (=उदयमें आकर-फलनदेकर खिरजाना)और उपशम होने से तथा देशघाति सम्यक्त्व के उदय होन से दर्शन मोह का क्षायोपशम है

उक्तम् ;।। च* =(जैसा कि निम्न लिखित गाथा में) कहा भी है

मिच्छे खलु (=मिच्छे;।।खलु*=मिथ्यात्वे॰।।खलु*) =मिथ्यात्व (प्रथम गुणस्थान) में नियमसे (=खलु) वा " प्रकटपने " (=खलु)

ओदइओ (=ओदइओ ;। =औदायिकः ;।) =औदयिक (=कर्मके उदयसे आत्माके जो परिणाम हों सो भाव) होता है

विदिए पुण (=विदिए,।।पुण*=द्वितीये;।। पुनः*) =और (=पुण) दूसरे (सासादन गुणस्थान) में

पारिणामिओ(=परिणामिओ;। =परिमाणिकः ;।) =पारिणामिक (=जिसमें कर्म के उदय उपशमादिक की कुछ भी अपेक्षा न हो सो। भावो ॥ मिस्से (=भावो;।मिस्से,।।। =भावः;।मिश्रे,।।। =भाव वा परिणाम होता है ॥ मिश्र अथवा सम्यग्मिथ्यात्व (तीसरे गुणस्थान) में

खओवसमिओ (=खओवसमियो,। =क्षायोपशमिकः,) =क्षायोपशमिक (सर्वघाति स्पर्धकों के वर्तमान निषेकों के विना फल दियेही निर्जरा होनेपर और उनही सर्वघाति स्पर्धकों के आगामि निषेकोंके सदवस्था रूप उपशम होनेपर और देश घाति स्पर्धकोंके उदय पर आत्मा का) भाव होता है ॥

अविरद— (=अविरद— =अविरत—) =अविरत अथवा असंयत

सम्मम्मि (=सम्मम्मि,।।। =सम्यक्त्वे;।।।) =सम्यग्दर्शन (चतुर्थ गुणस्थान) में

तिण्णेव (=तिण्ण+एव* =त्रयः ;। एव*) =तीनों (औपशमिक भाव, क्षायिक भाव, क्षायोपशमिक भाव) ही होते हैं

(१) जैसे मलिन जल में निर्मली वा फिटकड़ी डालने से कीचड़ नीचे बैठ जाती है और ऊपर से जल निर्मल हो जाता है उसही प्रकार कर्मोंके उपशम

अमयंत पुनरौदयिकेन भावेन ॥ सँयतासयत प्रमत्तसयतोऽप्रमत्तसयत इति च क्षायोपशमिको भाव ॥ चतुर्णामुपशमकानामित्यौपशमिको भाव ॥ चतुर्षु क्षपकेषु सयोगायोगकेवलिनोश्च क्षायिको भाव ॥ विशेषण (१) गत्यनुवादेननरकगतौ प्रथमाया पृथिव्या नारकाणा मिथ्यादृष्ट्या द्यसयतसम्यग्दृष्ट्यन्तानां

असंयते ॥ पुनः औदयिकेन ॥ भावेन ॥ =और (यहां चौथे गुणस्थानमें) असंयतपना है सो औदयिक भावसे है

संयतासंयत । प्रमत्तसंयत । च अप्रमत्त =देश संयतगुणस्थान प्रमत्तसंयत गुणस्थान और अप्रमत्त-

संयत ॥ इति क्षायोपशमिकः ॥ भाव ॥ =संयत गुणस्थान ' वालोंके क्षायोपशमिक भाव है" चारित्र मोह विशेष का क्षयोपशम (होने से)

चतुर्णाम् ॥ =चार (अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसांपराय उपशांतकषाय)

उपशमकानाम् ॥ इति औपशमिकः ॥ भावः ॥ =उपशम वालोंके औपशमिकभाव है (चारित्रमोहका उपशम होने से)

चतुर्षु ॥ क्षपकेषु ॥ =चार (अपूर्वकरण से क्षीणकषाय तक) क्षपक श्रेणी में (चरित्र मोह क्षयसे)

च सयोग अयोगकेवलिनो ॥ क्षायिकः ॥ भावः ॥ =और (=च) सयोग अयोगकेवलियों में (भी) क्षायिक भाव है

विशेषेण ॥ (१) गति-अनुवादेन ॥ नरकगतौ ॥ =विशेषकरि (१) गतिके कथनानुसार से नरक गति में

प्रथमायाम् ॥ पृथिव्याम् ॥ नारकाणाम् ॥ मिथ्या- =पहिली भूमि (नरक) में नारकियोंके मिथ्या

दृष्टि-आदि असंयतसम्यग्दृष्टि-अन्तानाम् ॥ =दर्शनवाले से असंयमी सम्यग्दर्शन वाले पर्यंतोंका

---

(१) असंयतसम्यग्दृष्टौ सम्यक्त्वा ऽ संयतत्वस्यौदयिकत्वं प्राहुः असंयतत्वस्य चारित्र मोहोदय हेतुत्वात् ॥

असंयत सम्यग्दृष्टौ ॥ असंयतत्वस्य ॥ सम्यक्त्वा ॥ =असंयमी सम्यग्दर्शनवाले में असंयमपना के (सम्यक्त्व) होने से

औदयिकत्वम् ॥ प्राहु ॥ असंयतत्वस्य ॥ =औदयिकभावका (कारण) बतलाते हैं (क्योंकि) असंयम का होना

चारित्र मोह उदय-हेतुत्वात् ॥ =चारित्र मोहनीयकर्मके उदय होने (के हेतु) से है भावार्थ यह है कि चौथे गुणस्थान में औदयिक भावके कारण असंयम होता है क्योंकि यहां चारित्र मोहनीयकर्म अप्रत्याख्याना-वरण का उदय है (२) यहां सम्यक्त्वतः असंयतत्व के अर्थ में है ॥

(२) पांचवां संयत गुणस्थानसे क्षीण कषाय बारहवां गुणस्थान तक चारित्र मोहनीयकर्म की अपेक्षा से यह कथन किया है ॥

सामान्यवत् ॥ द्वितीयादिष्वा सप्तम्या मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टिसम्यङ्मिथ्यादृष्टीनां सामान्यवत् ॥ असंयतसम्यग्दृष्टेरौपशमिको वा क्षायोपशमिको वा भाव । असंयत पुनरौदयिकेन भावेन ॥

सामान्यवत्॥	=संक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहेहुये गुणस्थान) सदृश (भाव) हैं अर्थात् मिथ्यादृष्टि नारकियोंके औदयिक भाव है । सासादनसम्यग्दृष्टि नारकियोंके पारिणामिक भाव है । मिश्रगुणस्थानवर्त्ती नारकियोंके क्षायोपशमिक भाव है और असंयत सम्यग्दृष्टि चतुर्थ गुणस्थानवर्त्ती नारकियोंके औपशमिक वा क्षायिक अथवा क्षायोपशमिक भाव है
द्वितीय आदिषु ।। आ-सप्तम्याः ।। मिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्टीनाम् ।।	दूसरी (भूमि) आदिमें सातवीं(भूमि)तक (=आ) (छैनरकोंमें) मिथ्यादृष्टिवाले =सासादनसम्यग्दर्शनवाले और मिश्रगुणस्थानवर्त्ती (नारकि) निके
सामान्यवत्॥	=संक्षेप (विषयमें पहिले कहेहुये गुणस्थान) सदृश (भाव) हैं अर्थात् दूसरे नरकसेलेकर सातवें नरक तकके मिथ्यादर्शनवाले नारकियोंके औदयिक भाव है उक्त छहों नरकोंमें सासादनसम्यग्दर्शनवाले नारकियोंके पारिणामिक भाव है और इनही छह नरकोंके मिश्रतीसरे गुणस्थानवर्त्ती नारकियोंके क्षायोपशमिक भाव है (देखो पृष्ठ २७८)
असंयतसम्यग्दृष्टे ।।	=(दूसरे नरकसे सातवां नरक तकके) असयमी सम्यग्दृष्टि (नारकी) के
औपशमिकः ।। वा क्षायोपशमिकः ।। वा भाव ।।	=औपशमिक वा क्षायोपशमिक भाव है। (नारकियोंके प्रथमसे चौथेतक गुणस्थान हैं)
पुनः	=और (इन दूसरे नरकसे सातवां नरक तकके असयमी सम्यग्दृष्टी चौथे गुणस्थानवर्त्तीनारकियोंके)
असंयतः ।। औदयिकेन ।। भावेन ।।	=असंयतपना औदयिक भावकरि है ॥

तिर्यग्गतौ तिरश्चां मिथ्यादृष्ट्यादिसंयतासंयतान्तानां सामान्यवत्॥ मनुष्यगतौ मनुष्याणां मिथ्यादृष्ट्याद्ययोगकेवल्यन्तानां सामान्यवत्॥

तिर्यग्गतौ ॥ तिरश्चाम् ॥ मिथ्यादृष्टि-आदि-संयतासंयत-अन्तानाम् ॥ सामान्यवत्॥

=तिर्यंचगतिमें तिर्यंचों के मिथ्यादृष्टी से संयमा
=संयमी तकनिके (भाव) संक्षेप (विषय में पूर्वोक्त गुणस्थान) सदृश है अर्थात् मिथ्यात्व गुणस्थानवाले तिर्यंचों के औदयिक भाव है ॥ सासादन गुणस्थानवर्ती तिर्यंचों के पारिणामिक भाव है। मिश्रगुणस्थानवर्ती तिर्यंचोंके क्षायोपशमिक भाव है। असंयत सम्यग्दृष्टि चतुर्थ गुणस्थानवर्ती तिर्यंचों के औपशमिक वा क्षायिक वा क्षायोपशमिक भाव है। संयमासंयमी तिर्यंचों के क्षायोपशमिक भाव है (देखो पृष्ठ २७८ से २८०) तिर्यंच गतिमें मिथ्यात्व सेसंयतासंयत तक पांच ही गुणस्थान होते हैं

मनुष्यगतौ ॥ मनुष्याणाम् ॥ मिथ्यादृष्टि-आदि अयोगकेवलि-अन्तानाम् ॥ सामान्यवत्॥

=मनुष्यगति में मनुष्यों के (भाव) मिथ्यादृष्टीसे लेकर (=आदि)
=अयोगकेवलितकनिके संक्षेप (विषय में पूर्वोक्त गुणस्थान) सदृश (भाव) हैं अर्थात् मिथ्यादृष्टी मनुष्यों के औदयिक भाव है। सासादन सम्यग्दर्शनवाले मनुष्यों के पारिणामिक भाव है। मिश्र गुणस्थानवर्ती मनुष्यों के क्षायोपशमिक भाव है। असंयमी सम्यग्दृष्टी मनुष्योंके औपशमिक वा क्षायिक वा क्षायोपशमिक भाव है। संयमासंयमी से अप्रमत्त संयमी तक क्षायोपशमिक भाव है। चार उपशम श्रेणी वालों के औपशमिक भाव है। चार क्षपक श्रेणियों के और सयोग और अयोग केवलियों के क्षायिक भाव है (देखो पृष्ठ २७८, २७९, २८०)॥
मनुष्यों के सर्व चौदह गुणस्थान होते हैं॥

देवगतौ देवानां मिथ्यादृष्ट्याद्यसंयतसम्यग्दृष्ट्यन्तानां सामान्यवत् ॥ (२) इन्द्रियानुवादेन-एकेन्द्रियविकलेन्द्रियाणामौदयिको भावः । पञ्चेन्द्रियेषु मिथ्यादृष्ट्याद्ययोगकेवल्यन्तानां सामान्यवत् ॥

देवगतौ ।। देवानाम् ।। मिथ्यादृष्टि-आदि— असंयत-सम्यग्दृष्टि अन्तानाम् ।। सामान्यवत्॥

=देवगतिमें देवोंके मिथ्यादृष्टिसे असंयमी सम्यग्दर्शनवालेतकनिके संक्षेप (विषयमें पूर्वोक्त गुणस्थान) सम (भाव) हैं अर्थात मिथ्यादृष्टि देवोंके औदयिक भाव है । सासादन दूसरे गुणस्थानवर्ती देवोंके पारिणामिक भाव है । मिश्रगुणस्थानवर्ती देवोंके क्षायोपशमिक भाव है । असंयत सम्यग्दृष्टी देवोंके औपशमिक वा क्षायिक वा क्षायोपशमिक भाव है ॥ देवों के प्रथम से चौथे तक चारही गुणस्थान हैं ॥

इन्द्रिय अनुवादेन ।। एकेन्द्रिय विकल-इन्द्रियाणाम्।। औदयिक-भाव ।। पञ्चेन्द्रियेषु ।। मिथ्यादृष्टि-आदि— अयोगकेवलि-अन्तानाम् ।। सामान्य-वत्॥

—(२) इन्द्रियके कथनानुसारकरि एकेन्द्रियवालेजीव और
—विकल (दो-तीन-चार) इन्द्रियधारक जीवोंके औदयिक भाव है
—पांचइन्द्रियवाले जीवोंमें मिथ्यादृष्टिसे अयोगकेवली
—पर्यंतोंका संक्षेप (प्रकरणमें पूर्वोक्त गुणस्थान) सदृश (भाव) हैं अर्थात मिथ्यादृष्टि पंचेंद्रिय जीवोंके औदयिक भाव है ॥ (सासादनसे अयोगीतक के पांचों इन्द्री होती हैं अत इन्द्रिय शब्द लिखनेकी आवश्यकता नहीं है) सासादन सम्यग्दृष्टिके पारिणामिक भाव होताहै । मिश्रगुणस्थानवर्तीके क्षायोपशमिक भावहै । असंयत सम्यग्दृष्टीके औपशमिक वा क्षायिक वा क्षायोपशमिक भावहै । देशसंयतसे अप्रमत्तसंयततक क्षायोपशमिक भावहै । चार उपशमश्रेणीवालोंके औपशमिक भावहै । चार क्षपकश्रेणीवालोंमें और सयोगकेवली- अयोगकेवलियोंके क्षायिक भाव है। (देखो पृष्ठ २७८से २८० तक)

तिर्यग्गतौ तिरश्चां मिथ्यादृष्ट्यादिसंयतासंयतान्तानां सामान्यवत् ॥ मनुष्यगतौ मनुष्याणा मिथ्यादृष्ट्याद्ययोगकेवल्यन्तानां सामान्यवत् ॥

तिर्यग्गतौ ॥ तिरश्चाम् ॥ मिथ्यादृष्टि-आदि-संयता-संयत-अन्तानाम् ॥ सामान्यवत्॥	=तिर्यचगतिमें तिर्यचों के मिथ्यादृष्टी से संयमा =संयमी तकनिके (भाव) संक्षेप (विषय में पूर्वोक्त गुणस्थान) सदृश है अर्थात् मिथ्यात्व गुणस्थानवाले तिर्यचों के औदायिक भाव है ॥ सासादन गुणस्थानवर्ती तियचों के पारिणामिक भाव है। मिश्रगुणस्थानवर्ती तिर्यचोंकिक्षायोपशमिक भाव है। असंयत सम्यग्दृष्टि चतुर्थ गुणस्थानवर्ती तियचों के औपशमिक वा क्षायिक वा क्षायोपशमिक भाव है। संयमासयमी तियचों के क्षायोपशमिक भाव है (देखो पृष्ठ २७८ से २८०) तियच गतिमें मिथ्यात्व सेसंयतासंयत तक पांच ही गुणस्थान होते हैं
मनुष्यगतौ ॥ मनुष्याणाम् ॥ मिथ्यादृष्टि-आदि अयोगकेवलि-अन्तानाम् ॥ सामान्यवत्॥	=मनुष्यगति में मनुष्यों के (भाव) मिथ्यादृष्टीसे लेकर (=आदि) =अयोगकेवलितकनिके संक्षेप (विषय में पूर्वोक्त गुणस्थान) सदृश (भाव) हैं अर्थात् मिथ्यादृष्टी मनुष्यों के औदयिक भाव है। सासादन सम्यग्दर्शनवाले मनुष्यों के पारिणामिक भाव है। मिश्र गुणस्थानवर्ती मनुष्यों के क्षायोपशमिक भाव है। असंयमी सम्यग्दृष्टी मनुष्योंकि औपशमिक वा क्षायिक वा क्षायोपशमिक भाव है। संयमासंयमी से अप्रमत्त संयमी तक क्षायोपशमिक भाव है। चार उपशम श्रेणी वालों के औपशमिक भाव है। चार क्षपक श्रेणियों के और सयोग और अयोग-केवलियों के क्षायिक भाव है (देखो पृष्ठ २७८, २७९, २८०)॥ मनुष्यों के सर्व चौदह गुणस्थान होते हैं ॥

(५) वेदानुवादेन– स्त्रीपुन्नपुंसकवेदाना मववेदानां च सामान्यवत् ॥ (६) कपायानुवादेन–क्रोधमानमाया लोभकषायाणामकषायाणां च सामान्यवत् (७) ज्ञानानुवादेन– मत्यज्ञानिश्रुताज्ञानिविभङ्गज्ञानिनां मतिश्रुतावधिमन पर्ययकेवलज्ञानिनां च सामान्यवत् ॥

(५) वेद-अनुवादेन ;। स्त्री-पुम्-नपुंसक-वेदानाम् ;।	=(५) वेदके कथनानुसारसे स्त्री पुरुष नपुंसक वेद वाले (जीव) निके
च॰अवेदानाम् ;।	=और वेदरहित जीव (सूक्ष्मसांपरायसे अयोगकेवली गुणस्थान वर्ती) निके
सामान्यवत्॰	=संक्षेप (प्रकरणमें कहाहुआ गुणस्थान) सदृश (भाव) है अर्थात् मिथ्यात्वमें औदयिक भावहै। सासादनमें पारिणामिक। मिश्रमें क्षायोपशमिक। असयतमें औपशमिक वा क्षायिक वा क्षायोपशमिक है। संयतासंयतसे अप्रमत्तक क्षायोपशमिक भाव है। चार उपशमक के औपशमिक भाव और चार क्षपकके, सयोगकेवलि-अयोगकेवलियोंकै क्षायिक भाव है। (२७८से२८०)
(६) कषाय-अनुवादेन ;। क्रोध-मान-माया-लोभ-कषायाणाम् ;। च॰अकषायाणाम् ;।	=(६) कषायकी विवक्षा से क्रोध-मान-कपट (=माया) लोभ कषाय वालोंके और (=च) कषायवर्जित (उपशांतकषायसे अयोगकेवली तक) निका
सामान्यवत्॰	=संक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहाहुआ गुणस्थान) सदृशहै (पृष्ठ २७८ से २८०)
[७] ज्ञान अनुवादेन ;। मतिअज्ञानि-श्रुतअज्ञानि विभङ्गज्ञानिनां ;।	=ज्ञानके कथनानुसारकरि कुमतिज्ञान कुश्रुतज्ञान =कुअवधिज्ञान [ये तीन कुज्ञान मिथ्यात्व, सासादन गुणस्थान वाले और तीन कुज्ञान तीन मति-श्रुत-अवधिज्ञान-मिश्रसम्यग्मिथ्यात्व वाले] निके
च॰मति-श्रुत-अवधि	=और [=च] मति-श्रुत-अवधि [असंयतसे क्षीण कषाय वर्ती]
मनःपर्यय-केवलज्ञानिनाम् ;।	=मनः पर्यय [प्रमत्त संयमीसे क्षीणकषाय वाले] और केवल ज्ञानि निके
सामान्य-वत्॰	=संक्षेप [प्रकरणमें पूर्वकथित गुणस्थान] सदृश भाव हैं [देखो २८५ पंक्ति ७से१३]

[३] कायानुवादेन–स्थावरकायिकानामौदयिको भाव । त्रसकायिकाना सामान्यमेव ॥ [४] योगानुवादेन–कायवाङ्मानमयोगिना मिथ्यादृष्ट्यादिसयोगकेवल्यन्तानामयोगकेवलिना च सामान्यमेव ॥

[३[काय अनुवादेन ।। स्थावर कायिकानाम् ॥ औदयिक ॥ भाव ॥ त्रस— कायिकानाम् ॥ सामान्यम् ॥॥ एव॥	–(३) कायके कथनानुसारकरि स्थावर (पृथिवी-अप्-तेजो-वायु-वनस्पति) –कायिकोंके औदयिक भाव है। त्रस (अर्थात् चलने फिरने वाले) –कायधारी (जीव निके संक्षेप (विषय में पूर्वोक्त गुणस्थान) सदृश (–एव) है अर्थात् मिथ्यादृष्टी जीव स्थावर भी हैं और त्रस भी हैं उन दोनोंके औदयिक भाव है। दूसर से चौदहवां गुणस्थान तक त्रस पञ्चेन्द्रिय जीव हैं॥ उन में सासादन सम्यग्दृष्टीके पारिणामिक भाव है। मिश्रगुणस्थानवर्तीके क्षायोपशमिक भाव है। असंयत सम्यग्दृष्टीके औपशमिक क्षायिक वा क्षायोपशमिक भाव है॥ संयतासंयत से अप्रमत्त संयत तक क्षायोपशमिक भाव है। चार उपशमश्रेणी वालोंके औपशमिक भाव है। चार क्षपकश्रेणी वालों के, सयोगकेवलियोंके और अयोगकेवलियों के क्षायिक भाव है (देखो पृष्ठ २७८ से २८० तक)
[४] योग अनुवादेन ॥ काय-वाक् मानस-योगिनाम् ॥ मिथ्यादृष्टि आदि— सयोगकेवलि-अन्तानाम् ॥ च अयोग-केवलिनाम् ॥ सामान्यम् ॥॥ एव॥ —	=योग की अपेक्षा से काय-वचन-मनोयोगीनिके =मिथ्यादर्शन वाले से सयोगकेवली पर्यंतों का और (=च) =अयोगकेवलियोंका संक्षेप (प्रकरण में पूर्वोक्त गुणस्थान) सदृश (एव) है अर्थात् मिथ्यात्वमें औदयिक भाव है। सासादनमें पारिणामिक है। मिश्रमें क्षायोपशमिक है। असंयतमें औपशमिक, वा क्षायिक वा क्षायोपशमिक है॥ देशव्रतीसे अप्रमत्त तक क्षायोपशमिक है। चार उपशमकके औपशमिक है। चार क्षपकोंके, सयोग-अयोग केवलियोंके क्षायिक भाव है (पृष्ठ २७८–२८० तक देखो)

(१०) लेश्यानुवादेन–षट्लेश्यानामलेश्यानां च सामान्यवत् ॥ (११) भव्यानुवादेन–भव्याना मिथ्यादृष्ट्या-द्ययोगकेवल्यन्ताना सामान्यवत् । अभव्यानां पारिणामिको भावः॥

(१०) लेश्या-अनुवादेन ।, षट् = (१०) लेश्याके कथनानुसारकरि छै (कृष्ण-नील-कापोत-पीत-पद्म-शुक्ल)

लेश्यानाम् ।। च अलेश्यानाम्।। = लेश्यावालोंके और लेश्यारहित (अयोगकेवलि)निके (भाव)

सामान्य-वत् = संक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहुये गुणस्थान) समान हैं अर्थात् छओलेश्या मिथ्यात्व-सासादन मिश्र-असंयत गुणस्थानोंमें हैं यहां क्रमसे औदयिक-पारिणामिक-क्षायोपशमिक और औपशमिक-क्षायिक-क्षायोपशमिक भाव हैं । पीत-पद्म शुक्ल लश्यायें देशविरतसे अप्रमत्त तक हैं यहां क्षायोपशमिक भाव है। शुक्ललेश्या चार उपशमक में हैं यहां औपशमिक भावहै। शुक्ललेश्या चार क्षपक के और सयोगकेवली-अयोगकेवलीके हैं यहां क्षायिक भाव है ॥

(११)भव्य अनुवादेन ।। भव्यानाम् ।। मिथ्यादृष्टि-आदि– = (११)भव्य जीवोंकी अपेक्षासे भव्योंके मिथ्यादृष्टिसे

अयोगकेवलि-अन्तानाम् ।। सामान्यवत् = अयोगकेवलीतकनिका संक्षेप (प्रसंगमें पूर्वोक्त गुणस्थान) सम भावहै अर्थात मिथ्यात्व गुणस्थानमें औदयिक भाव है । सासादनमें पारिणामिक है। मिश्र-में क्षायोपशमिक है असंयतमें औपशमिक, वा क्षायिक वा क्षायोपशमिक है संयतासंयतसे अप्रमत्ततक क्षायोपशमिक है चार उपशमकमें औपशमिक है। चार क्षपक के और सयोगकेवली–अयोगकेवलियों के क्षायिक भाव है।

अभव्यानाम् । पारिणामिकः ।। भावः ।। = अभव्योंके पारिणामिक भाव है (जो भाव जिसमें कर्मकी कुछभी अपेक्षा नहीं है) भावार्थ अभव्यत्व धर्मकी मुख्यतासे पारिणामिक है पर मिथ्यात्वकी मुख्यतासे औदयिकही है ॥

(८) संयमानुवादेन—सर्वेषां संयतानां संयतासंयतानामसंयतानां च सामान्यवत् (९) दर्शनानुवादेन—चक्षुर्दर्शनाचक्षुर्दर्शनावधिदर्शनकेवलदर्शनिनां सामान्यवत् ॥

---

[८] संयम-अनुवादेन ॥ सर्वेषाम् ॥ संयतानाम् ॥	=(८) संयमके कथनानुसारकरि सब संयमी (प्रमत्तसे अयोग केवली) निका
संयतासंयतानाम् ॥ च॰ असंयतानाम् ॥	=देशसंयमियोंका और असंयमी (मिथ्यात्वसे अविरत गुणस्थान तक) निका
सामान्यवत्॰	=(भाव) संक्षेप (प्रसंगमें पहिले कहाहुआ गुणस्थान) सदृश है अर्थात् मिथ्यात्व गुणस्थानमें औदयिकभाव है। सासादनमें पारिणामिक भाव है। मिश्रमें क्षायोपशमिक है। असंयतमें औपशमिक वा क्षायिक वा क्षायोपशमिक है। संयतासंयतसे अप्रमत्ततक क्षायोपशमिक, चार उपशमकके औपशमिक, चार क्षपकके, सयोगकेवलि, अयोगकेवलियोंके क्षायिक भाव है ॥
[९] दर्शन अनुवादेन ॥ चक्षुर्दर्शन अचक्षुर्दर्शन-	=(९) दर्शनकी अपेक्षासे चक्षुर्दर्शन और अचक्षुर्दर्शन वालोंके (ये दोनों मिथ्यात्व प्रथम गुणस्थानसे क्षीणकषाय गुणस्थान तक १२ मेंहोते हैं)
अवधिदर्शन	=अवधिदर्शन (असंयतसे क्षीणकषाय गुणस्थान तक) निके (भाव)
केवलदर्शनिनाम् ॥	=केवलदर्शनवाले (सयोगकेवली और अयोगकेवली) निके (भाव)
सामान्य-वत्॰	=संक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहेहुये गुणस्थान) सदृश हैं अर्थात् क्रमशः वही भाव प्रत्येक गुणस्थानमें पढ़लो जो इस पृष्ठकी पंक्ति सातसे दशतक दिया है।

---

(१) सामायिक-छेदोपस्थापना दो संयम प्रमत्त, अप्रमत्त, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण गुणस्थानोंमें होते हैं। परिहार विशुद्धि संयम प्रमत्त, अप्रमत्त गुणस्थानोंमें होता है। सूक्ष्मसाम्पराय संयम सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थानमें होता है। यथाख्यात संयम उपशांतकषाय, क्षीणकषाय, सयोगकेवली, अयोगकेवली गुणस्थानोंमें होता है। संयमासंयम देशविरत गुणस्थानमें होता है और असंयम मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र और असंयत गुणस्थानोंमें होता है ॥

(१०) लेश्यानुवादेन—षड्लेश्यानामलेश्यानां च सामान्यवत् ॥ (११) भव्यानुवादेन—भव्यानां मिथ्यादृष्ट्याद्ययोगकेवल्यन्तानां सामान्यवत् । अभव्यानां पारिणामिको भावः॥

(१०) लेश्या-अनुवादेन १। षड्	=(१०) लेश्याके कथनानुसारकरि छै (कृष्ण-नील-कपोत-पीत-पद्म-शुक्ल)
लेश्यानाम् ६। च० अलेश्यानाम्।	=लेश्यावालोंके और लेश्यारहित (अयोगकेवलि)निके (भाव)
सामान्य-वत्०	=संक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहुये गुणस्थान) समान हैं अर्थात् छहोलेश्या मिथ्यात्व-सासादन मिश्र-असंयत गुणस्थानोंमें हैं यहां क्रमसे औदयिक-पारिणामिक-क्षायोपशमिक और औपशमिक-क्षायिक-क्षायोपशमिक भाव हैं । पीत-पद्म शुक्ल लेश्यायें देशविरतसे अप्रमत्त तक हैं यहां क्षायोपशमिक भाव है । शुक्ललेश्या चार उपशमक में हैं यहां औपशमिक भावहै । शुक्ललेश्या चार क्षपक के और सयोगकेवली-अयोगकेवलीके है यहां क्षायिक भाव है ॥
(११)भव्य-अनुवादेन १। भव्यानाम् ६। मिथ्यादृष्टि आदि-	=(११)भव्य जीवोंकी अपेक्षासे भव्योंके मिथ्यादृष्टिसे
अयोगकेवलि अन्तानाम् ६। सामान्यवत्०	=अयोगकेवलीतकनिका संक्षेप (प्रसंगमें पूर्वोक्त गुणस्थान) सम भावहै अर्थात मिथ्यात्व गुणस्थानमें औदयिक भाव है । सासादनमें पारिणामिक है । मिश्र में क्षायोपशमिक है असंयतमें औपशमिक, वा क्षायिक वा क्षायोपशमिक है संयतासंयतसे अप्रमत्तक क्षायोपशमिक है चार उपशमकके औपशमिक है । चार क्षपक के और सयोगकेवली—अयोगकेवलियों के क्षायिक भाव है ।
अभव्यानाम् ६। पारिणामिकः १। भावः १।	=अभव्योंके पारिणामिक भाव है (जो भाव जिसमें कर्मकी कुछभी अपेक्षा नहीं है) भावार्थ अभव्यत्व धर्मकी मुख्यतासे पारिणामिक है पर मिथ्यात्वकी मुख्यतासे औदयिकही है ॥

(८) संयमानुवादेन—सर्वेषां संयतानां संयतासंयतानामसंयतानां च सामान्यवत् (९) दर्शनानुवादेन—चक्षुर्दर्शनाचक्षुर्दर्शनावधिदर्शनकेवलदर्शनिनां सामान्यवत् ॥

[८] संयम-अनुवादेन ॥ सर्वेषाम् ॥ संयतानाम् ॥ = (८) संयमके कथनानुसारकरि सब संयमी (प्रमत्तसे अयोग केवली) निका

संयतासंयतानाम् ॥ च॥ असंयतानाम् ॥ = देशसंयमियोंका और असंयमी (मिथ्यात्वसे अविरत गुणस्थान तक) निका

सामान्यवत्॥ = (भाव) संक्षेप (प्रसंगमें पहिले कहाहुआ गुणस्थान) सदृश है अर्थात् मिथ्यात्व गुणस्थानमें औदयिकभाव है। सासादनमें पारिणामिक भाव है। मिश्रमें क्षायोपशमिक है। असंयतमें औपशमिक वा क्षायिक वा क्षायोपशमिक है। संयतासंयतसे अप्रमत्ततक क्षायोपशमिक, चार उपशमकके औपशमिक, चार क्षपकके, सयोगकेवलि, अयोगकेवलियोंके क्षायिक भाव है ॥

[९] दर्शन अनुवादेन ॥ चक्षुर्दर्शन अचक्षुर्दर्शन = (९) दर्शनकी अपेक्षासे चक्षुर्दर्शन और अचक्षुर्दर्शन वालोंके (ये दोनों मिथ्यात्व प्रथम गुणस्थानसे क्षीणकषाय गुणस्थान तक १२ मेंहोवे हैं)

अवधिदर्शन = अवधिदर्शन (असंयतसे क्षीणकषाय गुणस्थान तक) निके (भाव)

केवलदर्शनिनाम् ॥ = केवलदर्शनवाले (सयोगकेवली और अयोगकेवली) निके (भाव)

सामान्य-वत्॥ = संक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहेहुये गुणस्थान) सदृश हैं अर्थात् क्रमशः वही भाव प्रत्येक गुणस्थानमें पढ़लो जो इस पृष्ठकी पंक्ति सातसे दशतक दिया है।

(१) सामायिक-छेदोपस्थापना दो संयम प्रमत्त, अप्रमत्त, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण गुणस्थानोंमें होते हैं। परिहार विशुद्धि संयम प्रमत्त, अप्रमत्त गुणस्थानोंमें होता है। सूक्ष्मसाम्पराय संयम सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थानमें होता है। यथाख्यात संयम उपशांतकषाय, क्षीणकषाय, सयोगकेवली, अयोगकेवली गुणस्थानोंमें होता है। संयमासंयम देशविरत गुणस्थानमें होता है और असंयम मिथ्यात्व, सासादन मिश्र और असंयत गुणस्थानोंमें होता है ॥

क्षायोपशमिको भाव । क्षायोपशमिक सम्यक्त्वम् । असयत पुनरौदयिकेन भावेन ॥ सयतासयतप्रमत्ताप्रमत्तसंयताना क्षायोपशमिको भाव. । क्षायोपशमिकं सम्यक्त्वम् ॥ औपशमिकसम्यग्दृष्टिपु असंयतसम्यग्दृष्टेरौपशमिको भाव औपशमिक सम्यक्त्वम् । असयत पुनरौदयिकेन भावेन ॥ सयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तसंयतानां क्षायोपशमिको भाव । औपशमिकं सम्यक्त्वम् ॥

क्षायोपशमिकः । भावः । क्षायोपशमिकम् ॥	=क्षायोपशमिक भाव है (सो तो) क्षायोपशमिक
सम्यक्त्वम् ॥ असंयतः । पुन'*	=सम्यग्दर्शन है। और (=पुन') असंयतपना (=असंयतः=असंयतत्वम्) है
औदयिकेन । भावेन । संयत-असंयत	=(सो) औदयिक भावकरि है। (वेदक सम्यग्दर्शनवालों में) देशसयमी,
प्रमत्त अप्रमत्त-सयतानाम् । क्षायोपशमिकः ।	=प्रमत्त और अप्रमत्त विरतियोंके क्षायोपशमिक
भावः । क्षायोपशमिकम् ॥ सम्यक्त्वम् ॥	=भाव है सो वेदक सम्यग्दर्शन है ॥
औपशमिक-सम्यग्दृष्टिपु ।	=उपशमसम्यग्दर्शनवालों में
असंयत-सम्यग्दृष्टेः । औपशमिकभावः ।	=असंयमी सम्यग्दर्शनवाले के औपशमिक भाव है
औपशमिकम् ॥ सम्यक्त्वम् ॥ पुनः* असंयतः ।	=(सो) उपशम सम्यक्त्व है और असंयमपना है
औदयिकेन । भावेन ।	=(सो) औदयिक भावकरि है ॥ (असंयतः =असंयमपना)
संयत-असंयत प्रमत्त अप्रमत्त-संयतानाम् ।	=(उपशमसम्यग्दर्शनवालों में) देशसंयमी, प्रमत्त-अप्रमत्त संयमियों के
क्षायोपशमिकः । भावः । सम्यक्त्वम् ॥ औपशमिकम् ॥	=क्षायोपशमिक भाव है। सम्यक्त्व औपशमिक है ॥

(१) अत्र औदयिको भाव इत्येकः पाठः । औपशमिको भावः इत्येकः पाठ ॥

अत्र। औदयिकः । भावः । इति-एकः । पाठः ।	=यहाँ औदयिक भाव है ऐसा एक पाठ है अर्थात् किसी किसी पुस्तक के पाठानुसार दे सयमी प्रमत्तसंयमी और अप्रमत्तसंयमीयोंके औदयिक भाव है।
औपशमिकः । भावः । इति-एकः । पाठः ।	=औपशमिक भाव है ऐसा और (=एक-रायचन्द्र द्वारा पृष्ठ ८४) पाठ है अर्थात् इस पाठानुकूल औपशमिक भाव है भावार्थ ऐसा है कि भिन्न भिन्न पाठानुकूल

संयमासंयमियों के, प्रमत्तसंयमियों के अप्रमत्तसंयमियों के औदयिक, औपशमिक और क्षायोपशमिक तीनों ही भाव संभव हैं ॥

(१२) सम्यक्त्वानुवादेन–क्षायिकसम्यग्दृष्टिषु असँयतसम्यग्दृष्टे क्षायिको भाव. । क्षायिकं सम्यक्त्वम् । असंयतत्वमौदयिकेन भावेन ॥ संयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तसंयताना क्षायोपशमिको भावः । क्षायिकं सम्यक्त्वं च ॥ चतुर्णामुपशमकानामौपशमिको भाव । क्षायिकं सम्यक्त्वम् ॥ शेषाणा सामान्यवत् ॥ क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टिषु असंयतसम्यग्दृष्टेः

[१२] सम्यक्त्व अनुवादेन ॥ क्षायिकसम्यग्दृष्टिषु ॥	=(१२) सम्यग्दर्शन के अनुवादकरि क्षायिक सम्यग्दर्शनवालों में
असंयतसम्यग्दृष्टः ॥ क्षायिकः ॥ भाव ॥	=" असंयत सम्यग्दृष्टी के क्षायिक भाव तो
क्षायिकम् ॥ सम्यक्त्वम् ॥ असंयतत्वम् ॥	=क्षायिक सम्यक्त्व है अर असंयतपणा है सो
औदयिकेन ॥ भावेन ॥	=औदयिक भाव करि है " जयचंदजीकृत वचनिका मुद्रित पृष्ठ ११४ ।
संयतासंयत-प्रमत्त अप्रमत्त-	=(क्षायिक सम्यग्दर्शन वालों में) देशसंयमी, प्रमत्तसंयमी, अप्रमत्त
संयतानाम् ॥ क्षायोपशमिकः ॥ भावः ॥ च	=संयमियोंके क्षायोपशमिक भाव है और (=च)
क्षायिकम् ॥ सम्यक्त्वम् ॥	="सम्यक्त्व क्षायिक है (सो क्षायिक भावकरि है" जयचंदजी व चनिका ११४
चतुर्णाम् ॥ उपशमकानाम् ॥	=(क्षायिक सम्यग्दृष्टियोंमें) चार उपशम श्रेणी (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराय उपशांतकषाय) वालोंके
औपशमिकः ॥ भावः ॥ क्षायिकम् ॥ सम्यक्त्वम् ॥	=औपशमिकभाव है । क्षायिक सम्यक्त्व (यहां) है (सो क्षायिक भाव करि है)।
शेषाणाम् ॥	=(क्षायिक सम्यग्दृष्टियोंमें) अवशेष (चार क्षपक श्रेणीवाले-सयोगी-अयोगी)निका
सामान्य-वत्	=सक्षेप (जिसमें पूर्वोक्त गुणस्थान समान भाव) है (इन सबके क्षायिक भाव है)
क्षायोपशमिक-सम्यग्दृष्टिषु ॥ असंयतसम्यग्दृष्टेः ॥	=वेदकसम्यग्दर्शनवालोंमें असंयमी सम्यग्दर्शनवाले (चौथे गुणस्थानवर्ती) के

(१) क्षायिक सम्यक्त्व असंयत चौथे गुणस्थानसे लेकर अयोगकेवली चौदहवें गुणस्थान तक है । क्षायोपशमिक (वेदक) सम्यक्त्व असंयत चौथे गुणस्थान से अप्रमत्त संयत सातवें तक है । उपशमसम्यक्त्व असंयत चौथे गुणस्थान से उपशांतकषाय ग्यारहवां तक है ॥
(२) क्षायिक सम्यक्त्वी जीव भी उपशम श्रेणी चढ सकता है

क्षायोपशमिको भाव । क्षायोपशमिक सम्यक्त्वम् । असंयतः पुनरौदयिकेन भावेन ॥ संयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तसंयताना क्षायोपशमिको भाव । क्षायोपशमिक सम्यक्त्वम् ॥ औपशमिकसम्यग्दृष्टिषु असंयतसम्यग्दृष्टेरौपशमिको भाव औपशमिक सम्यक्त्वम् । असंयतः पुनरौदयिकेन भावेन ॥ संयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तसंयतानां क्षायोपशमिको भाव । औपशमिक सम्यक्त्वम् ॥

क्षायोपशमिकः । भावः । क्षायोपशमिकम् ॥	=क्षायोपशमिक भाव है (सो वो) क्षायोपशमिक
सम्यक्त्वम् ॥ असंयतः । पुनः॰	=सम्यग्दर्शन है । और (=पुनः) असंयतपना (=असंयतः=असंयतत्वम्) है
औदयिकेन । भावेन ॥ संयत असंयत	=(सो) औदयिक भावकरि है । (वेदक सम्यग्दर्शनवालों में) देशसंयमी,
प्रमत्त अप्रमत्त-संयतानाम् ॥ क्षायोपशमिकः ।	=प्रमत्त और अप्रमत्त विरतियोंके क्षायोपशमिक
भावः । क्षायोपशमिकम् ॥ सम्यक्त्वम् ॥	=भाव है सो वेदक सम्यग्दर्शन है ॥
औपशमिक-सम्यग्दृष्टिषु ॥	=उपशमसम्यग्दर्शनवालों में
असंयत-सम्यग्दृष्टेः । औपशमिकभावः ॥	=असंयमी सम्यग्दर्शनवाले के औपशमिक भाव है
औपशमिकम् ॥ सम्यक्त्वम् ॥ पुनः॰ असंयतः ॥	=(सो) उपशम सम्यक्त्व है और असंयमपना है
औदयिकेन ॥ भावेन ॥	=(सो) औदयिक भावकरि है ॥ (असंयतः=असंयमपना)
संयत-असंयत प्रमत्त-अप्रमत्त-संयतानाम् ॥	=(उपशमसम्यग्दर्शनवालों में) देशसंयमी, प्रमत्त-अप्रमत्त संयमियों के
क्षायोपशमिकः । भावः । सम्यक्त्वम् ॥ औपशमिकम् ॥	=क्षायोपशमिक भाव है । सम्यक्त्व औपशमिक है ॥

(१) अत्र औदयिको भाव इत्येकः पाठः । औपशमिको भावः इत्येकः पाठ ॥

अत्र । औदयिकः ॥ भाव ॥ इति एकः ॥ पाठः ॥ — यहां औदयिक भाव है ऐसा एक पाठ है अर्थात् किसी किसी पुस्तक के पाठानुसार वा संयमी प्रमत्तसंयमी, और अप्रमत्तसंयमीनिकें औदयिक भाव है।

औपशमिकः ॥ भावः ॥ इति एकः ॥ पाठः ॥ — औपशमिक भाव है ऐसा और (—एक-'रत्नसम्र् कोश पृष्ठ ८४) पाठ है अर्थात् इस पाठानुकूल औपशमिक भाव है भावार्थ ऐसा है कि भिन्न भिन्न पाठानुकूल संयमासंयमियों के, प्रमत्तसंयमियों के अप्रमत्तसंयमियों के औदयिक, औपशमिक और क्षायोपशमिक तीनों ही भाव संभव हैं ॥

चतुर्णामुपशमकानामौपशमिको भाव औपशमिकं सम्यक्त्वम् ॥ सासादनसम्यग्दृष्टेः पारिणामिको भाव ॥ सम्यङ्मिथ्यादृष्टेः क्षायोपशमिको भावः ॥ मिथ्यादृष्टेरौदयिको भाव । (१३) सञ्ज्ञानुवादेनसञ्ज्ञिनां सामान्यवत् । असंज्ञिनामौदयिको भावः ॥ तदुभयव्यपदेशरहितानां

चतुर्णाम् ॥ उपशमकानाम् ॥	=(उपशम सम्यग्दृष्टियोंमें) चार उपशमश्रेणीवाले (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराय-उपशांतकषाय) निके
औपशमिकः ॥ भावः ॥ औपशमिकम् ॥॥ सम्यक्त्वम् ॥॥	=औपशमिक भाव है । (सो) उपशम सम्यग्दर्शन है ॥
सासादन-सम्यग्दृष्टेः ॥ पारिणामिकः ॥ भावः ॥	=सासादन सम्यग्दर्शनवालेके पारिणामिक भाव है ।
सम्यङ्मिथ्यादृष्टेः ॥ क्षायोपशमिकः ॥ भावः ॥	=मिश्र (तीसरे गुणस्थान) वर्तीके क्षायोपशमिक भाव है ।
मिथ्यादृष्टेः॥ औदयिकः॥ भावः॥ [१३] संज्ञा-अनुवादेन	=मिथ्यादृष्टि (प्रथम) गुणस्थानवर्तीके औदयिक भाव है (१३) सैनीकी अपेक्षासे
संज्ञिनाम् ॥ सामान्य-वत्	=सैनी (=मनसहितजीव) निके संक्षेप (विषयमें पूर्वोक्त गुणस्थान) सम है अर्थात् मिथ्यादृष्टी संज्ञियोंके औदयिक भाव है । सासादनसम्यग्दृष्टी संज्ञियोंके पारिणामिक भाव है । मिश्र गुणस्थनवर्तीसंज्ञियोंके क्षायोपशमिक भाव है । असंयतसम्यग्दृष्टी संज्ञियोंके औपशमिक वा क्षायिक वा क्षायोपशमिक भाव है । संयतासंयतसे अप्रमत्तवर्ती संज्ञियोंके क्षायोपशमिक भाव है । चार उपशमक संज्ञीयोंके औपशमिक भाव है । चार क्षपक श्रेणीवाले संज्ञियोंके क्षायिक भाव है ।
असंज्ञिनाम् ॥ औदयिकः ॥ भावः ॥	=असंज्ञियोंके (जो मिथ्यात्व प्रथम गुणस्थानमें ही हैं) औदयिक भाव है ।
तद् उभय-व्यपदेशरहितानाम् ॥	=उन (सैनी-असैनी) दोनों नामोंसे वर्जित (सयोगकेवली-अयोगकेवली) जिनका

(१) संज्ञीजीव मिथ्यात्व प्रथम गुणस्थानसे क्षीणकषाय बारहवें तक हैं । असंज्ञी मिथ्यात्वमें हैं । संज्ञी असंज्ञीसे रहित सयोग अयोग केवली हैं ॥

सामान्यवत् ॥ (१४) आहारानुवादेन–आहारकाणामनाहारकाणा च सामान्यवत् ॥ भावः परिसमाप्त ॥ अल्पबहुत्वमुपवर्ण्यते ॥

सामान्य-वत्॥ =संक्षेप (प्रसंगमें पूर्वोक्तगुणस्थान) सम है अर्थात् क्षायिक भाव केवलियोंके हैं

(१४) आहार–अनुवादेन ॥ आहारकाणाम् ॥ =(१४) आहारकोंकी विवक्षासे आहारक (जीव) निके(जो मिथ्यात्वसे सयोगी तक हैं)

च॥अन्-आहारकाणाम् ॥ सामान्य-वत्॥ =और अनाहारकोंके (भाव) संक्षेप (प्रसंगमें पूर्वोक्त गुणस्थान) समहै अर्थात् मिथ्यात्व गुणस्थानवर्ती आहारक जीवोंके औदयिक भाव है सासादनसम्यग्दर्शन-वाले आहारक जीवोंके पारिणामिक भाव है । मिश्र गुणस्थान— वाले आहारक जीवोंके क्षायोपशमिक भाव है। असंयत सम्यग्दृष्टि आहारकोंके औपशमिक, वा क्षायिक वा क्षायोपशमिक भावहै। संयतासंयतसे अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती आहारकों के क्षायोपशमिक भाव है ॥
चार उपशमश्रेणी वाले आहारकोंके औपशमिक भाव है। चार क्षपक श्रेणी-वाले आहारकोंके क्षायिक भाव है ॥ अनाहारक जीवोंमें जो पहिले दूसरे, चौथे, चौदवें गुणस्थानमें और सयोगकेवलीजो प्रतर समुद्घात और लोक पूर्णसमुद्घातमें अनाहारक, होते हैं, मिथ्यात्व में औदयिक भाव, सासादन में पारिणामिक, असंयतमें औपशमिक, क्षायिक वा क्षायोपशमिकभाव और सयोगी अयोगी के क्षायिक भाव होते हैं ॥

भावः ॥ परि-समाप्तः ॥ =भाव (प्ररूपणा) परिपूर्ण कीगई अर्थात् भावका निरूपण मोह कर्मकी अपेक्षा से उदाहरणरूप समाप्त कियागया

अल्प-बहुत्वम् ॥॥ उपवर्ण्यते T =एक वस्तुके अन्य की अपेक्षासे थोड़े-बहुतके कथनका वर्णन किया जाताहै ।

चतुर्णामुपशमकानामौपशमिको भाव· औपशमिक सम्यक्त्वम् ॥ सासादनसम्यग्दृष्टेः पारिणामिको भाव ॥ सम्यङ्मिथ्यादृष्टे क्षायोपशमिको भावः ॥ मिथ्यादृष्टेरौदयिको भावः । (१३) संज्ञानुवादेनसंज्ञिनां सामान्यवत् । असंज्ञिनामौदयिको भावः ॥ तदुभयव्यपदेशरहिताना

चतुर्णाम् ॥ उपशमकानाम् ॥	=(उपशम सम्यग्दृष्टियोंमें) चार उपशमश्रेणीवाले (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराय-उपशांतकषाय) निके
औपशमिकः ॥ भावः ॥ औपशमिकम् ॥॥ सम्यक्त्वम् ॥॥	=औपशमिक भाव है । (सो) उपशम सम्यग्दर्शन है ॥
सासादन-सम्यग्दृष्टेः ॥ पारिणामिकः ॥ भावः ॥	=सासादन सम्यग्दर्शनवालेके पारिणामिक भाव है ।
सम्यङ्मिथ्यादृष्टेः ॥ क्षायोपशमिकः ॥ भावः ॥	=मिश्र (तीसरे गुणस्थान) वर्तीके क्षायोपशमिक भाव है ।
मिथ्यादृष्टेः ॥ औदयिकः ॥ भावः ॥ [१३] संज्ञा-अनुवादेन	=मिथ्यादृष्टि (प्रथम) गुणस्थानवर्तीके औदयिक भाव है (१३) सैनीकी अपेक्षासे
संज्ञिनाम् ॥ सामान्य-वत्*	=सैनी (=मनसहितजीव) निके संक्षेप (विषयमें पूर्वोक्त गुणस्थान) सम है अर्थात् मिथ्यादृष्टी संज्ञियोंके औदयिक भाव है । सासादनसम्यग्दृष्टी संज्ञियोंके पारिणामिक भाव है । मिश्र गुणस्थानवर्तीसंज्ञियोंके क्षायोपशमिक भाव है । असंयतसम्यग्दृष्टी संज्ञियोंके औपशमिक वा क्षायिक वा क्षायोपशमिक भाव है । संयतासंयतसे अप्रमत्तवर्ती संज्ञियोंके क्षायोपशमिक भाव है । चार उपशमक संज्ञियोंके औपशमिक भाव है । चार क्षपक श्रेणीवाले संज्ञियोंके क्षायिक भाव है ।
असंज्ञिनाम् ॥ औदयिकः ॥ भावः ॥	=असंज्ञियोंके (जो मिथ्यात्व प्रथम गुणस्थानमें ही हैं) औदयिक भाव है ।
तद् उभय-व्यपदेशरहितानाम् ॥	=उन (सैनी-असैनी) दोनों नामोंसे वर्जित (सयोगकेवली-अयोगकेवली) निका

(१) सैनीजीव मिथ्यात्व प्रथम गुणस्थानसे क्षीणकषाय बारहवें तक हैं । असैनी मिथ्यात्वमें है । सैनी असैनीसे रहित सयोग अयोग केवली हैं ॥

सामान्यवत् ॥ (१४) आहारानुवादेन–आहारकाणामनाहारकाणा च सामान्यवत् ॥ भावः परिसमाप्तः ॥

अल्पबहुत्वमुपवर्ण्यते ॥

सामान्य-वत्*	=संक्षेप (प्रसंगमें पूर्वोक्तगुणस्थान) सम है अर्थात् क्षायिक भाव केवलियोंके हैं
(१४) आहार–अनुवादेन ॥ आहारकाणाम् ॥	=(१४) आहारकोंकी विवक्षासे आहारक (जीव) निके(जो मिथ्यात्वसे सयोगी तकहैं)
च**अन् आहारकाणाम् ॥ सामान्य-वत्*	=और अनाहारकोंके (भाव) संक्षेप (प्रसंगमें पूर्वोक्त गुणस्थान) समहै अर्थात् मिथ्यात्व गुणस्थानवर्ती आहारक जीवोंके औदयिक भाव है सासादनसम्यग्दर्शन वाले आहारक जीवोंके पारिणामिक भाव है । मिश्र गुणस्थान— वाले आहारक जीवोंके क्षायोपशमिक भाव है । असंयत सम्यग्दृष्टि आहारकोंके औपशमिक, वा क्षायिक वा क्षायोपशमिक भावहै । संयतासंयतसे अप्रमत्त-गुणस्थानवर्ती आहारकों के क्षायोपशमिक भाव है ॥ चार उपशमश्रेणी वाले आहारकोंके औपशमिक भाव है । चार क्षपक श्रेणी-वाले आहारकोंके क्षायिक भाव है ॥ अनाहारक जीवोंमें जो पहिले दूसरे, चौथे, चौदवें गुणस्थानमें और सयोगकेवलीजो प्रतर समुद्घात और लोक पूर्णसमुद्घातमें अनाहारक, होते हैं, मिथ्यात्व में औदयिक भाव, सासादन में पारिणामिक, असंयतमें औपशमिक, क्षायिक वा क्षायोपशमिकभाव और सयोगी अयोगी के क्षायिक भाव होते हैं ॥
भावः ॥ परि-समाप्तः ॥	=भाव (प्ररूपणा) परिपूर्ण कीगई अर्थात् भावका निरूपण मोह कर्मकी अपेक्षा से उदाहरणरूप समाप्त कियागया
अल्प-बहुत्वम् ॥॥ उपवर्ण्यते T	=एक वस्तुको अन्य की अपेक्षासे थोड़े-बहुतके कथनका वर्णन किया जाताहै ।

चतुर्णामुपशमकानामौपशमिको भाव औपशमिकं सम्यक्त्वम् ॥ सासादनसम्यग्दृष्टेः पारिणामिको भावः ॥ सम्यङ्मिथ्यादृष्टेः क्षायोपशमिको भाव ॥ मिथ्यादृष्टेरौदयिको भाव । (१२) संज्ञानुवादेनसंज्ञिनां सामान्यवत् । असंज्ञिनामौदयिको भाव ॥ तदुभयव्यपदेशरहितानां

चतुर्णाम् ।। उपशमकानाम् ।।	=(उपशम सम्यग्दृष्टियोंमें) चार उपशमश्रेणीवाले (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराय-उपशांतकषाय) निके
औपशमिकः ।। भावः ।। औपशमिकम् ।।। सम्यक्त्वम् ।।।	=औपशमिक भाव है । (सो) उपशम सम्यग्दर्शन है ॥
सासादन-सम्यग्दृष्टेः ।। पारिणामिकः ।। भावः ।।	=सासादन सम्यग्दर्शनवालेके पारिणामिक भाव है ।
सम्यङ्मिथ्यादृष्टेः ।। क्षायोपशमिकः ।। भावः ।।	=मिश्र (तीसरे गुणस्थान) वर्तीके क्षायोपशमिक भाव है ।
मिथ्यादृष्टेः।। औदयिकः।। भावः।। [१२] संज्ञा-अनुवादेन	=मिथ्यादृष्टि (प्रथम) गुणस्थानवर्तीके औदयिक भाव है (१२) सैनीकी अपेक्षासे
संज्ञिनाम् ।। सामान्य-वत्	=सैनी (=मनसहितजीव) निके संक्षेप (विषयमें पूर्वोक्त गुणस्थान) सम है अर्थात् मिथ्यादृष्टी संज्ञियोंके औदयिक भाव है । सासादनसम्यग्दृष्टी संज्ञियोंके पारिणामिक भाव है । मिश्र गुणस्थानवर्तीसंज्ञियोंके क्षायोपशमिक भाव है । असंयतसम्यग्दृष्टी संज्ञियोंके औपशमिक वा क्षायिक वा क्षायोपशमिक भाव है । संयतासंयतसे अप्रमत्तवर्ती संज्ञियोंके क्षायोपशमिक भाव है । चार उपशमक संज्ञियोंके औपशमिक भाव है । चार क्षपक श्रेणीवाले संज्ञियोंके क्षायिक भाव है ।
असंज्ञिनाम् ।। औदयिकः ।। भावः ।।	=असंज्ञियोंके (जो मिथ्यात्व प्रथम गुणस्थानमें ही हैं) औदयिक भाव है ।
तत् उभय-व्यपदेशरहितानाम् ।।	=उन (सैनी-असैनी) दोनों नामोंसे वर्जित (सयोगकेवली-अयोगकेवली) निका

(१) संज्ञीजीव मिथ्यात्व प्रथम गुणस्थानसे क्षीणकषाय बारहवें तक हैं । असैनी मिथ्यात्वमें है । संज्ञी असंज्ञीसे रहित सयोग अयोग केवली हैं ।

सामान्यवत् ॥ (१४) आहारानुवादेन–आहारकाणामनाहारकाणा च सामान्यवत् ॥ भावः परिसमाप्त ॥ अल्पबहुत्वमुपवर्ण्यते ॥

सामान्य-वत्

=संक्षेप (प्रसंगमें पूर्वोक्तगुणस्थान) सम है अर्थात् क्षायिक भाव केवलियोंके हैं

(१४) आहार–अनुवादेन ॥ आहारकाणाम् ॥

=(१४) आहारकोंकी विवक्षासे आहारक (जीव) निके(जो मिथ्यात्वसे सयोगी तक हैं)

च अन्-आहारकाणाम् ॥ सामान्य-वत्

=और अनाहारकोंके (भाव) संक्षेप (प्रसंगमें पूर्वोक्त गुणस्थान) समहै अर्थात् मिथ्यात्व गुणस्थानवर्ती आहारक जीवोंके औदयिक भाव है सासादनसम्यग्दर्शन-वाले आहारक जीवोंके पारिणामिक भाव है । मिश्र गुणस्थान— वाले आहारक जीवोंके क्षायोपशमिक भाव है। असंयत सम्यग्दृष्टि आहारकोंके औपशमिक, वा क्षायिक वा क्षायोपशमिक भावहै। संयतासंयतसे अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती आहारकों के क्षायोपशमिक भाव है ॥

चार उपशमश्रेणी वाले आहारकोंके औपशमिक भाव है। चार क्षपक श्रेणी वाले आहारकोंके क्षायिक भाव है ॥ अनाहारक जीवोंमें जो पहिले दूसरे, चौथे, चौदवें गुणस्थानमें और सयोगकेवलीओ प्रतर समुद्घात और लोक पूर्णसमुद्घातमें अनाहारक, होते हैं, मिथ्यात्व में औदयिक भाव, सासादन में पारिणामिक, असंयतमें औपशमिक, क्षायिक वा क्षायोपशमिकभाव और सयोगी अयोगी के क्षायिक भाव होते हैं ॥

भावः ॥ परि-समाप्तः ॥

=भाव (प्ररूपणा) परिपूर्ण कीगई अर्थात् भावका निरूपण मोह कर्मकी अपेक्षा से उदाहरणरूप समाप्त कियागया

अल्प-बहुत्वम् ॥॥ उपवर्ण्यते T

=एक वस्तुको अन्य की अपेक्षासे थोड़े-बहुतके कथनका वर्णन किया जाताहै ।

चतुर्णामुपशमकानामौपशमिको भाव औपशमिकं सम्यक्त्वम् ॥ सासादनसम्यग्दृष्टेः पारिणामिको भाव ॥ सम्यङ्मिथ्यादृष्टेः क्षायोपशमिको भाव ॥ मिथ्यादृष्टेरौदयिको भाव । (१२) सञ्ज्ञानुवादेनसंज्ञिनां सामान्यवत् । असञ्ज्ञिनामौदयिको भाव ॥ तदुभयव्यपदेशरहितानां

चतुर्णाम् ॥ उपशमकानाम् ॥	=(उपशम सम्यग्दृष्टियोंमें) चार उपशमश्रेणीवाले (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराय-उपशान्तकषाय) निर्के
औपशमिकः ॥ भाव ॥ औपशमिकम् ॥॥ सम्यक्त्वम् ॥॥	=औपशमिक भाव है । (सो) उपशम सम्यग्दर्शन है ॥
सासादन-सम्यग्दृष्टेः ॥ पारिणामिकः ॥ भावः ॥	=सासादन सम्यग्दर्शनवालेके पारिणामिक भाव है ।
सम्यङ्मिथ्यादृष्टेः ॥ क्षायोपशमिकः ॥ भावः ॥	=मिश्र (तीसरे गुणस्थान) वालेके क्षायोपशमिक भाव है ।
मिथ्यादृष्टेः ॥ औदयिकः ॥ भावः ॥ [१२] सञ्ज्ञा-अनुवादेन	=मिथ्यादृष्टि (प्रथम) गुणस्थानवर्तीके औदयिक भाव है (१२) सैनीकी अपेक्षासे
संज्ञिनाम् ॥ सामान्य-वत्	=सैनी (=मनसहितजीव) निर्के संक्षेप (विषयमें पूर्वोक्त गुणस्थान) सम है अर्थात् मिथ्यादृष्टी संज्ञियोंके औदयिक भाव है । सासादनसम्यग्दृष्टी संज्ञियोंके पारिणामिक भाव है । मिश्र गुणस्थानवर्तीसंज्ञियोंके क्षायोपशमिक भाव है । असंयतसम्यग्दृष्टी संज्ञियोंके औपशमिक वा क्षायिक वा क्षायोपशमिक भाव है । संयतासंयतसे अप्रमत्तवर्ती संज्ञियोंके क्षायोपशमिक भाव है । चार उपशमक संज्ञियोंके औपशमिक भाव है । चार क्षपक श्रेणीवाले संज्ञियोंके क्षायिक भाव है ।
असंज्ञिनाम् ॥ औदयिकः ॥ भावः ॥	=असंज्ञियोंके (जो मिथ्यात्व प्रथम गुणस्थानमें ही हैं) औदयिक भाव है ।
तद् उभय-व्यपदेशरहितानाम् ॥	=उन (सैनी-असैनी) दोनों नामोंसे वर्जित (सयोगकेवली-अयोगकेवली) तिनका

(१) सबीजीव मिथ्यात्व प्रथम गुणस्थानसे क्षीणकषाय बारहवें तक हैं । असंज्ञी मिथ्यात्वमें है । संज्ञी असंज्ञीसे रहित सयोग अयोग केवली हैं ।

सामान्यवत् ॥ (१४) आहारानुवादेन–आहारकाणामनाहारकाणां च सामान्यवत् ॥ भावः परिसमाप्तः ॥ अल्पबहुत्वमुपवर्ण्यते ॥

सामान्य-वत्* =संक्षेप (प्रसंगमें पूर्वोक्त गुणस्थान) सम है अर्थात् क्षायिक भाव केवलियोंके हैं

(१४) आहार–अनुवादेन ॥ आहारकाणाम् ॥ =(१४) आहारकोंकी विवक्षासे आहारक (जीव) निके (जो मिथ्यात्वसे सयोगी तक हैं)

च*अन्-आहारकाणाम् ॥ सामान्य-वत्* =और अनाहारकोंके (भाव) संक्षेप (प्रसंगमें पूर्वोक्त गुणस्थान) सम है अर्थात् मिथ्यात्व गुणस्थानवर्ती आहारक जीवोंके औदयिक भाव है सासादनसम्यग्दर्शन वाले आहारक जीवोंके पारिणामिक भाव है। मिश्र गुणस्थान— वाले आहारक जीवोंके क्षायोपशमिक भाव है। असंयत सम्यग्दृष्टि आहारकोंके औपशमिक, या क्षायिक वा क्षायोपशमिक भाव है। संयतासंयतसे अप्रमत्त-गुणस्थानवर्ती आहारकों के क्षायोपशमिक भाव है ॥

चार उपशमश्रेणी वाले आहारकोंके औपशमिक भाव है। चार क्षपक श्रेणी-वाले आहारकोंके क्षायिक भाव है ॥ अनाहारक जीवोंमें जो पहिले दूसरे, चौथे, चौदवें गुणस्थानमें और सयोगकेवलीजो प्रतर समुद्घात और लोक पूर्णसमुद्घातमें अनाहारक, होते हैं, मिथ्यात्व में औदयिक भाव, सासादन में पारिणामिक, असंयतमें औपशमिक, क्षायिक वा क्षायोपशमिकभाव और सयोगी अयोगी के क्षायिक भाव होते हैं ॥

भावः ॥ परि-समाप्तः ॥ =भाव (प्ररूपणा) परिपूर्ण कीगई अर्थात् भावका निरूपण मोह कर्मकी अपेक्षा से उदाहरणरूप समाप्त कियागया

अल्प-बहुत्वम् ॥॥ उपवर्ण्यते T =एक वस्तुको अन्य की अपेक्षासे थोड़े-बहुतके कथनका वर्णन किया जाता है।

तत् द्विविधं सामान्येन विशेषेण च ॥ सामान्येन तावत्-त्रय उपशमका सर्वत स्तोका. स्वगुणस्थान कालेषु प्रवेशेन तुल्यसंख्या ॥ उपशान्तकषायास्तावन्त एव ॥

तत् ।॥ द्वि-विधम् ।॥ सामान्येन ।॥ विशेषेण ।। च	=वह (अल्प-बहुत्व प्ररूपणा) दो प्रकार संक्षेपकरि और विस्तारकरि है ।
सामान्येन ।॥ तावत् त्रयः ।।	=प्रथम (=तावत्) संक्षेपकरि तीन (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मलोभ)
उपशमका सर्वतः स्तोकाः, स्व	=उपशमश्रेणिवाले सबसे थोड़े हैं । (वे तीन उपशम श्रेणी वाले) अपने २
गुणस्थान कालेषु । प्रवेशेन ।। तुल्यसंख्या ।।	=गुणस्थान कालों में प्रवेशकरि समान वा बराबर संख्यावाले होवे हैं अर्थात् प्रत्येक उक्त तीन गुणस्थान में कोई आचार्य तीनसौ (३००) कहते हैं । कोई तीन सौ चार (३०४) कहते हैं । कोई दो सौ निन्यानवे (२९९) कहते हैं ॥ (देखो गोम्मटसारगाथा ६२६ तिसयं भणंतिकेई इत्यादि)
उपशान्तकषाया ।। तावन्तः ।। एव	=उपशान्तकषाय ग्यारहवां गुणस्थानवर्ती उपशमश्रेणीवाले उतने ही हैं अर्थात् उक्त गाथा के अनुकूल २९९, वा ३०० अथवा ३०४ उत्कृष्ट हैं

(१) अष्टसु समयेषु प्रवेशेन एको वा द्वौ वा त्रयो वा इत्यादि जघन्याः । उत्कृष्टेन १६ । २४ । ३० । ३६ । ४२ । ४८ । ५४ । ५४ । स्वगुणस्थान कालेषु प्रवेशेन तुल्यसंख्याः । संख्याकथनावसरे प्रोक्ता ' तत्र द्रष्टव्यम् । पृष्ठानि ९३, ९४ ९५, अस्यानुवादस्य ॥

अष्टसु ।। समयेषु । प्रवेशेन ।। एकः ।। वा द्वौ ।।	=आठ समय में प्रवेश होकर एक अथवा दो
वा त्रयः । वा इत्यादि जघन्याः ।। उत्कृष्टाः । तु	=अथवा तीन इत्यादि जघन्य (=न्यून से न्यून) संख्या है । और (=तु) उत्कृष्ट (संख्या)
१६ । २४ । ३० । ३६ ।	=(प्रथम समय से आठ समय तक यथा संख्य) सोलह-चौबीस-तीस छत्तीस-
४२ । ४८ । ५४ । ५४ । स्व गुणस्थान-	=बयालीस-अड़तालीस-चौवन-चौवन अपने अपने गुणस्थान
कालेषु । प्रवेशेन ।	=समयों में प्रवेश होकरि (आठ से ग्यारह गुणस्थान उपशमश्रेणी) के
तुल्यसंख्याः ।।	=समान संख्यावाले (प्रत्येक गुणस्थान में) हैं अर्थात् ३०४ गुने प्रत्येक प्रत्येक उपशम श्रेणी वाले गुणस्थान में उत्कृष्टकरि है । (देखो पृष्ठ ९३ ९५)
संख्या-कथन अवसरे ।। प्रोक्ताः ।।	=संख्या (प्ररूपणा) का कथन (जो पहले कर चुके हैं उस के) प्रसंग में कह चुके हैं
तत्र पृष्ठानि ।॥ ९३, ९४ ९५ द्रष्टव्यम् ।॥	=तहाँ पृष्ठ ९३, ९४, ९५ (इस अनुवादके देखना चाहिये)

त्रय क्षपका सङ्ख्येयगुणा ॥ क्षीणकषायवीतरागच्छद्मस्थास्तावन्त एव ॥ सयोगकेवलिनोऽयोगकेवलिनश्च प्रवेशेन तुल्यसंख्या ॥

त्रय ॥ =तीन (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराय)

क्षपकाः ॥ संख्येयगुणाः ॥ =क्षपकश्रेणीवाले (उक्त तीन उपशमश्रेणीवालोंसे) संख्याते गुणे हैं अर्थात् प्रत्येक गुणस्थानवर्ती क्षपकश्रेणी प्रत्येक गुणस्थानवर्ती उपशमश्रेणीवालोंसे दूने हैं (गोम्मटसार जीव कांड गाथा ६२६) ॥ प्रत्येक उपशमश्रेणी गुणस्थानमें कई आचार्योंके मतानुसार २९९ हैं केईके ३०० हैं केईके ३०४ हैं अतः प्रत्येक क्षपकश्रेणी गुणस्थानमें कई आचार्योंके मतानुसार ५९८ हुये, केईके ६०० हुये कईके ६०८ मुनिहुये ॥

क्षीणकषाय-वीतरागच्छद्मस्थाः ॥ तावन्तः ॥ =क्षीणकषाय वीतरागच्छद्मस्थ बारहवांगुणस्थानवर्ती उतने

एव ॥ =ही (=एव) हैं अर्थात् ५९८ हैं अथवा ६०० अथवा ६०८ मुनि हैं

सयोगकेवलिनः ॥ च अयोग-केवलिनः ॥ =सयोगकेवली और (=च) अयोगकेवली (=चौदहवें गुणस्थानवर्ती)

प्रवेशेन ॥ तुल्यसंख्याः ॥ =प्रवेशहो (नेकी अपेक्षा) करि समानगणनावाले हैं अर्थात् सयोगकेवली, अयोग केवली गुणस्थानोंमें जघन्यपनासे जीव प्रवेश करे तो एक समयमें एक वा दो वा तीन इत्यादि जीव (पृथक् पृथक् गुणस्थान) में प्रवेश करें और उत्कर्षकरि एकसो आठ जीव तक एक समयमें प्रवेश होसक्ते हैं(देखो इसके पृष्ठ९४, ९५)। स्मरण रहे कि यह तुल्य संख्या केवल तेरहवें गुणस्थानमें प्रवेश होनेवाले जीवों की, चौदहवें गुणस्थान में प्रवेश होनेवाले जीवोंके तुल्य प्रवेश होनेकी अपेक्षासे ही तुल्य है । तेरहवें गुणस्थानमें रहने वाले जीवोंकी संख्या चौदहवें गुणस्थान में रहने वाले जीवोंकी संख्याके कदापि तुल्य नहीं है क्योंकि

सयोगकेवलिनः स्वकालेन समुदिता संख्येयगुणा ।८९८५०२॥ अप्रमत्तसयता संख्येयगुणा ।२९६९९१०३। प्रमत्तसँयता सख्येयगुणा ।५९३९८२०६॥ सँयतासयता असख्येयगुणां ॥

	तेरहवें गुणस्थानमें ८९८५०२ जीव उत्कृष्टकरि होसकते हैं और चौदहवें गुणस्थानमें उत्कृष्टकरि ५९८ अथवा ६०० या ६०८ जीव हो सकते हैं॥ देखो अवश्य इस अनुवादक पृष्ठ ३०८ की टिप्पणी संख्या (२)
सयोगकेवलिन' ,। स्वकालेन ;। समुदिता ;।	=सयोगकेवली अपनेकालकरि समुच्चय अथवा इकठे हों
संख्येयगुणा ,। ८९८५०२	=(इन अयोगकेवलियोंसे) संख्यातेगुणे हैं। (सयोगकेवली) ८९८५०२ हैं अयोगकेवली ५९८ अथवा ६०० या ६०८ तक भिन्न २ आचार्योंके मतानुसार उत्कृष्टकरि होसकते हैं (इसके पृष्ठ ३०८ की टिप्पणी (२) देखो)
अप्रमत्तसंयता' ,।	=अप्रमत्तसंयमी (सातवें गुणस्थानवर्ती-इन सयोगकेवलियोंसे)
संख्येयगुणा' ;। २९६९९१०३	=संख्यातगुणे हैं। दो करोड़ छियानवैलाख निन्यानवै सहस्र एकसौ तीन हैं
प्रमत्त संयताः ,।	=प्रमत्त संयमी (छठवांगुणस्थानवर्ती-इन अप्रमत्त संयमियोंसे)
संख्येयगुणा' ;। ५९३९८२०६	=संख्यातगुणे हैं। "पांच करोड़ तिरानवै लाख हजार अठानवै दोसौ छ जानो"
संयतासंयताः असंख्येयगुणा' ;।	=संयमासंयमी (प्रमत्तसंयमियोंसे) असंख्यातगुणे हैं " तेरह करोड़ मनुष्य हैं॥ और पल्यके असंख्यातवें भाग तिर्यंच हैं।

(१) संयतासंयताः संख्येयगुणाः। संयतासंयतानां नास्त्यल्पबहुत्वम्। एक गुणस्थानवर्तित्वात्। संयतासंयतानामिवगुणस्थानभेदात् १३०००००००॥

संयतासंयता']। संख्येयगुणाः ,। एकगुणस्थान-	=देशसंयमी या संयमासंयमी संख्यात गुणे हैं। एक गुणस्थान
वर्तित्वात् '।।। संयतासंयतानाम्]। अल्पबहुत्वम्]।।।	=वर्ती होने (के हेतु) से संयमासंयमियों के अल्प बहुत्व (का मिलान या उपमा)
न ● अस्ति T	=नहीं (हो सकती) है क्योंकि जब एक प्रकार की वस्तुवे दो स्थानों में विद्यमान है

सासादनसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणा ॥ सम्यग्मिथ्यादृष्टयः संख्येयगुणा । असंयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणा ॥

सासादनसम्यग्दृष्टयः ॥ असंख्येयगुणाः ॥ =सासादनसम्यग्दृष्टि (देशसंयमियोंसे) असंख्यात गुणेहैं ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टयः ॥ संख्येयगुणाः ॥ = मिश्रगुणस्थानवर्ती (सासादन सम्यग्दृष्टियोंसे) संख्यात गुणेहैं ।

असंयत सम्यग्दृष्टयः ॥ असंख्येयगुणाः ॥ =अविरतसम्यग्दृष्टी (सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे) असंख्यात गुणे हैं ।

तब कहते है कि अमुक प्रकारकी वस्तुयें अमुक जात की वस्तुओंसे थोड़ी वा घनी हैं । संयमासंयमी एक ही गुणस्थानमें होते हैं । इससे अल्प बहुत्व नहीं है ॥ असंयमियोंमें अल्प बहुत्व है क्योंकि वे मिथ्यात्व सासादन मिश्र और असंयत गुणस्थानोंमें हैं ऐसेही संयमियोंमें अल्प बहुत्व है क्योंकि ये छठेसे १४ गुणस्थान तक हैं

संयतासंयतानाम् ॥ गुणस्थान-भेदात् ॥ इव० = संयमासंयमीकी (गणना) गुणस्थानभेदसे बराबर (=इव)

१३००००००० । इति श्रुतसागरः ॥ =तेरह करोड़के है । ऐसे (भी) श्रुतसागरसूरि (श्रुतसागरीटीकामें) कहते हैं

(१) सासादनसम्यग्दृष्टयः ॥ संख्येयगुणाः ॥ = सासादनसम्यग्दर्शनवाले (देशसंयमियोंसे) संख्यातगुणे हैं (अर्थात)

५२००००००० ॥ (२) सम्यग्मिथ्यादृष्टयः ॥ =बावन करोड़ हैं ॥ मिश्रतीसरेगुणस्थानवर्ती (सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे)

संख्येयगुणाः ॥ १०४००००००० = संख्यातगुणे हैं (अर्थात्) एकसौचारकरोड़ हैं ॥ चार

(३) असंयतसम्यग्दृष्टयः ॥ संख्येयगुणा ॥ = अविरतसम्यग्दृष्टि (सम्यग्मिथ्यादृष्टि तीसरे गुणस्थानवालों से) संख्यातगुणे हैं

७००००००००० । इति श्रुतसागरः । = सातअरब हैं ॥ ऐसे श्रुतसागरसूरि (का वचन श्रुतसागरीटीकामें है)

टिप्पणी १ पृष्ठ २९५ और टिप्पणी १ २ पृष्ठ २९५में श्रुतसागर सूरिने चार गुणस्थानोंमें जो गणना लिखी है वह केवल मनुष्योंकी समझना क्योंकि गोम्मटसार जीवकांड गाथा १२३ (छोटासंख्या ६२४) में मिथ्यात्व गुणस्थानसे संयतासंयतकी सर्व संख्या ऐसे लिखी है कि

मिच्छा सावयसासणमिस्साविरदा दुवारणंता य । पल्लासंखेज्जदिममसंखगुणं संखसंखगुणं ॥६२४॥ मिथ्याः श्रावकसासनमिश्राविरता द्विवारानन्ता च । पल्यासंख्येयमसंख्यगुणं संख्यासंख्यगुणम् ॥छाया॥

मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणा ॥ विशेषण (१) गत्यनुवादेन–नरकगतौ सर्वासु पृथिवीषु सर्वतः स्तोकाः सासादनसम्यग्दृष्टय । सम्यग्मिथ्यादृष्टय सस्येयगुणा । असंयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणा । मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयगुणा ॥ तिर्यग्गतौ तिरश्चा सर्वत स्तोकाः संयतासंयता । इतरेषा सामान्यवत् ॥

मिथ्यादृष्टय ॥ अनन्तगुणाः ॥ विशेषेण ॥ गति—	=मिथ्यादृष्टी (असंयत सम्यग्दृष्टियोंसे) अनन्तगुणे हैं ॥ विशेषकरि गतिके
अनुवादेन । नरकगतौ ॥ सर्वासु ॥ पृथ्वीषु ॥	=कथनानुसारकरि नरकगतिमें सब भूमियों (नरकों) में
सर्वत ॥ स्तोकाः ॥ सासादन–सम्यग्दृष्टय ॥	=सबसे थोड़े सासादनसम्यग्दर्शनवाले (दूसरे गुणस्थानवर्ती) हैं
सम्यग्मिथ्यादृष्टय ॥	= (उन सासादनसम्यग्दृष्टी नारकियों से) मिश्रगुणस्थानवर्ती (नारकी)
संख्येयगुणा ॥ असंयतसम्यग्दृष्टय ॥	=संख्यातगुणा है । (मिश्रगुणस्थानवर्ती नारकियोंसे) असंयतसम्यग्दृष्टि(नारकी)
असंख्येयगुणा ॥ मिथ्यादृष्टयः ॥	=असंख्यातगुणे हैं । (असंयमी सम्यग्दृष्टीनारकियोंसे) मिथ्यादृष्टी (नारकी)
असंख्येयगुणाः ॥ तिर्यग्गतौ ॥ तिरश्चाम् ॥ सर्वतः	=असंख्यातगुणे हैं ॥ तिर्यचगतिमें तिर्यचोंमें सबसे
स्तोकाः ॥ संयतासंयताः ॥	=अल्प संयमासंयमी(तिर्यंच)हैं अर्थात् पल्यके असंख्यातवां भागहैं (देखो टिप्पणी)
इतरेषाम् ॥	=अन्य (असंयतसे मिथ्यादृष्टी तक तिर्यंचों) का
सामान्यवत् ॥	=संक्षेप (विषयमें पूर्वोक्त गुणस्थान) सदृश (अल्पबहुत्व) है नीचेकी टिप्पणी देखो

अर्थ—मिथ्यादृष्टि अनन्तानन्त हैं । श्रावक पल्यके असंख्यातमे भाग हैं सासादन गुणस्थानवर्ती श्रावकोंसे असंख्यात गुणे हैं । मिश्रसासादन वालोंसे संख्यातगुणे हैं असंयतसम्यग्दृष्टि मिश्रजीवोंसे असंख्यातगुणे हैं । इनमें संयमासंयमीमें,सासादनगुणस्थानमें,मिश्रमें,असंयतगुणस्थानमें कुछ २ अधिक जानो अर्थात् संयतासंयतगुणस्थान के धारक मनुष्य और तिर्यंच ही गति के जीव होते हैं सो इनमें तेरह करोड़ मनुष्य हैं पल्य के असंख्यातवां भाग तिर्यंच हैं । सासादनगुणस्थानमें चारो गति के जीव होते हैं । इनमें बावन करोड़ मनुष्य हैं और नारकी तिर्यंच और देव संयतासंयतसे असंख्यातगुणे हैं । सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव भी चारों गति में होते हैं सो एकसौचार करोड़ मनुष्य हैं और सासादनवालोंसे असंख्यात गुणे देव तीन नरक तिर्यंच, देवगति के जीव हैं । असंयतगुणस्थानमें भी चारोंगति के जीव हैं उनमें सातसौकरोड़ मनुष्य हैं मिश्रवालोंसे संख्यातगुणे भवतार तीनगतिके जीव हैं ॥

मनुष्यगतौ मनुष्याणामुपशमकादिप्रमत्तसंयतान्ताना सामान्यवत् ॥ तत संख्येयगुणा सयतासँयता ॥ सासादनसम्यग्दृष्टय संख्येयगुणा ॥ सम्यग्मिथ्यादृष्टय संख्येयगुणाः ॥ असँयतसम्यग्दृष्टय सख्येयगुणा ॥ मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयगुणा ॥ देवगतौ देवानां नारकवत ॥

मनुष्यगतौ ॥ मनुष्याणाम् ॥ उपशमक-आदि प्रमत्तसयत-अन्तानाम् ॥ सामान्यवत्॥	मनुष्यगतिमें मनुष्योंका (अल्प-बहुत्व) उपशम श्रेणीवालोंसे =प्रमत्तसंयमीतकनिका संक्षेप (प्रसंगमें पूर्वोक्त गुणस्थान) सदृश है अर्थात् अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसांपराय-उपशांतकषाय इन उपशमश्रेणीवाले गुणस्थानोंमें प्रत्येकमें २९९, केई आचार्योंके मतमें ३०० अथवा केईकके मतमें ३०४ जीव हैं और अप्रमत्त गुणस्थानमें २९६९९१०३ जीव हैं इसलिये प्रत्येक उपशमश्रेणीवालेसे अप्रमत्तमें संख्यातगुणा जीवहुये और प्रमत्तगुणस्थानवर्ती ५९३९८२०६ जीव हैं इसलिये प्रत्येक उपशमश्रेणीवालेसे, और अप्रमत्तगुणस्थानवर्तीसे भी प्रमत्तगुणस्थानमें संख्यातगुणे जीव हैं॥
ततः॥ संख्येयगुणा ॥ सयतासंयता ॥	=तिन (प्रमत्त संयमीयों) से संख्यातगुणे संयमासंयमी (मनुष्य तेरह कोटि) हैं
सासादन-सम्यग्दृष्टय ॥ संख्येयगुणाः ॥	=(उन देशव्रतियोंसे) सासादन सम्यग्दृष्टी (मनुष्य) संख्यातगुणे (बावन) करोड़ हैं
सम्यग्मिथ्यादृष्टयः ॥ संख्येयगुणाः ॥	=(सासादनवालोंसे) मिश्रगुणस्थानवर्ती (नर) संख्यातगुणे (एकसौचार कोटि) हैं
असंयत-सम्यग्दृष्टय ॥ संख्येयगुणाः ॥	=(मिश्रवालोंसे) असंयमी सम्यग्दृष्टी (मनुष्य) संख्यातगुणे (सातसौकरोड) हैं।
मिथ्यादृष्टयः ॥ असंख्येयगुणाः ॥	=(असंयमी सम्यग्दृष्टीयोंसे) मिथ्यादृष्टी (मनुष्य नकि पर्वजीव) असंख्यातगुण हैं
देवगतौ ॥ देवानाम् ॥ नारकवत्॥	=देवगतिमें देवोंका (परस्पर अल्प बहुत्व) नारकियोंकि तुल्य है अर्थात् सासादन सम्यग्दृष्टि देव सबसे थोड़े हैं। उनसे संख्यातगुणे मिश्रगुणस्थानवर्ती देव हैं। इन (मिश्रवालोंसे) असंयमी सम्यग्दृष्टी देव असंख्यातगुणे हैं।

(२) इन्द्रियानुवादेन–एकेन्द्रियविकलेन्द्रियेषु गुणस्थानभेदो नास्तीत्यल्पबहुत्वाभाव ॥ इंद्रिय मत्युच्यते । पंचेंद्रियाद्येकेन्द्रियान्ता उत्तरोत्तर बहव ॥पंचेन्द्रियाणां सामान्यवत् ।

---

(२) इन्द्रिय-अनुवादेन ।। एकेन्द्रिय-विकल-इन्द्रियेषु ।। गुणस्थान-भेदा ।। न अस्ति । इति अल्प बहुत्व अभावः ।। इन्द्रियम् ।। प्रति उच्यते । पंचेन्द्रिय आदि-एकेन्द्रिय-अन्ताः ।। उत्तरोत्तरम् ।।। बहव ।।

पंचेन्द्रियाणाम् ।। सामान्यवत्

(असंयत सम्यग्दृष्टीदेवोंसे) मिथ्यादृष्टी (देव) असंख्यातगुणे हैं ।
=(२) इंद्रियकी अपेक्षासे एकइन्द्रिय (जीव) और विकल (दो-तीन-चार)
=इन्द्रियवाले (जीवों) में गुणस्थान विशेष नहीं है
=(इनके मिथ्यात्व गुणस्थान ही होता है) ऐसे (गुणस्थान प्रति) अल्प बहुत्व नहींहै
=इन्द्रियोंकी अपेक्षासे (=प्रति) (अल्प बहुत्व) कहा जाता है
=पांच इन्द्रियवाले जीवोंसे (=आदि) एक इन्द्रियवाले जीवों तक आगे आगे
=अधिक हैं अर्थात् पांच इन्द्रियवालेजीवोंसे चार इन्द्रियवाले जीव अधिक हैं । चार इन्द्रियवालोंसे तीन इन्द्रियवाले बहुत हैं ॥ तीन इन्द्रियवालोंसे दो इन्द्रियवाले अधिक हैं दो इंद्रियवालोंसे एक इंद्रियवाले जीव अधिक हैं ऐसे आगे आगे बहुलता है ॥
=पांच इंद्रियवालोंका (परस्पर अल्प बहुत्व) संक्षेपमें (कथित गुणस्थान)
=सदृश है । अर्थात् चार अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण सूक्ष्मसाम्पराय-उपशान्तकषाय उपशमश्रेणीवाले प्रत्येक गुणस्थानमें २९९ या (कईक आचार्योंके मतमें) ३०० अथवा (अन्य आचार्योंके मतमें)३०४ मुनि हैं और इन प्रत्येक प्रत्येक गुणस्थानकी संख्या शेष प्रत्येक गुणस्थानोंके जीवोंकी अपेक्षा सबसे अल्प या थोड़ीहै । और चार अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराय क्षीणकषायक्षपकश्रेणीवाले प्रत्येक गुणस्थानमें ५९८ या (कईकके मतमें)

अयं तु विशेषः—मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयगुणाः ॥ (३)

छसौ अथवा (किसी आचार्योंके मतानुसार) ६०८ मुनि हैं इसलिये प्रत्येक उपशमश्रेणीवाले गुणस्थान से प्रत्येक क्षपकश्रेणीवाले गुणस्थानके मुनियोंकी संख्या संख्यातगुणी है। अयोगकेवलीकी संख्या५९८ वा ६०० वा ६०८ है (जी का गाथा ६२६और इस अनुवादके पृष्ठ २०८की टिप्पणी संख्या २ देखो) सो भी प्रत्येक उपशमश्रेणी गुणस्थानवालोंसे एक प्रकारसे संख्यातगुणी हैं और प्रत्येक क्षपकश्रेणीवाले गुणस्थान वर्तियों के बराबर है॥ सयोगकेवलियोंकी संख्या आठ लाख अठानवे सहस्र पांचसौ दो (८९८५०२) है सो प्रत्येक उपशमश्रेणी गुणस्थानवालोंसे संख्यातगुणी है और प्रत्येक क्षपकश्रेणी गुणस्थानवालोंसे भी संख्यातगुणी है। इन सयोगकेवलियोंसे अप्रमत्त संयमी सातवां ग॰ नवर्ती संख्येयगुणे हैं क्योंकि इनकी संख्या २९६९९१०३ है। और इन अप्रमत्तसंयमियों ।. संख्यात गुणे हैं क्योंकि ये ५९३९८२०६ हैं॥ उक्त प्रमत्तसंयमियोंसे संयमासंयमी असंख्या॰ ग हैं क्योंकि मनुष्य और तिर्यंच गतियों में ही यह देशसंयम गुणस्थान होता है इनमें तेरह करोड़ मनुष्य हैं और तिर्यंच पल्यके असंख्यातवें भाग हैं। इन संयमासंयमियोंसे सासादन सम्यग्दृष्टी असंख्यात गुणे हैं क्योंकि यह गुणस्थान चारों गतियों में होता है इन में बावन करोड़ मनुष्य हैं और श्रावकों से असंख्यात गुणे अन्य तीन गतिके जीव हैं। इन सासादन वालोंसे संख्यात गुणे मिश्रगुणस्थानवर्ती हैं क्योंकि इनमें एकसौ चारकरोड़ मनुष्य हैं और संख्यात गुणे अन्य तीन गतिके जीव हैं। और असंयत गुणस्थान भी चारों गतिमें होता है इनमें सातसौ करोड़ मनुष्य हैं और मिश्रवालोंसे असंख्यातगुणे शेष तीन गतिके जीव हैं (गोम्मटसार गाथा ६२४, ६२५, ६२६ और पृष्ठ २९२ से २९५ तक देखो) स्मरण रहे कि पंचेन्द्रिय जीव संज्ञीकेही दूसरेसे बारह गुणस्थान हो सक्ते हैं। असंज्ञी जीवके मिथ्यात्व गुणस्थान ही होता है॥

अयम् ॥ तु ॥ विशेषः ॥ मिथ्या =परन्तु (=तु) यह विशेष है कि पंचेन्द्रिय मिथ्या

दृष्ट ॥ असंख्येयगुणाः ॥ =दृष्टी जीव (अन्य किसी गुणस्थान के पंचेन्द्रिय जीवों से) असंख्यात गुणे हैं॥

(२) इन्द्रियानुवादेन–एकेन्द्रियविकलेन्द्रियेषु गुणस्थानभेदो नास्तीत्यल्पबहुत्वाभाव ॥ इन्द्रियं प्रत्युच्यते । पंचेन्द्रियाद्येकेन्द्रियान्ता उत्तरोत्तर बहव ॥पंचेन्द्रियाणां सामान्यवत् ।

---

(२) इन्द्रिय-अनुवादेन, एकेन्द्रिय-विकल-इन्द्रियेषु ; गुणस्थान-भेद ;। न॰अस्ति T इति॰अल्प बहुत्व-अभाव ;। इन्द्रियम् ;। प्रति॰ उच्यते T पंचेन्द्रिय आदि-एकेन्द्रिय-अन्ता ;। उत्तरोत्तरम् ;। बहव ;।

पंचेन्द्रियाणाम् ;। सामान्य-वत॰

(असंयत सम्यग्दृष्टीदेवोंसे) मिथ्यादृष्टी (देव) असंख्यातगुणे हैं।
=(२) इन्द्रियकी अपेक्षासे एकइन्द्रिय (जीव) और विकल (दो-तीन-चार)
=इन्द्रियवाले (जीवों) में गुणस्थान विशेष नहीं है
=(इनके मिथ्यात्व गुणस्थान ही होता है) ऐसे (गुणस्थान प्रति) अल्प बहुत्व नहीं है
=इन्द्रियोंकी अपेक्षासे (=प्रति) (अल्प बहुत्व) कहा जाता है
=पांच इन्द्रियवाले जीवोंसे (=आदि) एक इन्द्रियवाले जीवों तक आगे आगे
=अधिक हैं अर्थात् पांच इन्द्रियवालेजीवोंसे चार इन्द्रियवाले जीव अधिक हैं। चार इन्द्रियवालोंसे तीन इन्द्रियवाले बहुत हैं॥ तीन इन्द्रियवालोंसे दो इन्द्रियवाले अधिक हैं दो इंद्रियवालोंसे एक इंद्रियवाले जीव अधिक हैं ऐसे आगे आगे बहुलता है॥
=पांच इंद्रियवालोंका (परस्पर अल्प बहुत्व) संक्षेपमें (कथित गुणस्थान)
=समुच्चय है। अर्थात् चार अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण सूक्ष्मसाम्पराय-उपशान्त-कषाय उपशमश्रेणीवाले प्रत्येक गुणस्थानमें २९९ या (कोईक आचार्योंके मतमें) ३०० अथवा (अन्य आचार्योंके मतमें) ३०४ मुनि हैं और इन प्रत्येक प्रत्येक गुणस्थानकी संख्या शेष प्रत्येक गुणस्थानोंके जीवोंकीअपेक्षा सबसे अल्प या थोडीहै। और चार अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराय क्षीणकषायक्षपकश्रेणीवाले प्रत्येक गुणस्थानमें ५९८ या (कोईकके मतमें)

अयं तु विशेषः–मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयगुणाः ॥ (३)

छट्ठी अथवा (केइक आचार्योंके मतानुसार) ६०८ मुनि हैं इसलिये प्रत्येक उपशमश्रेणीवाले गुणस्थान से प्रत्येक क्षपकश्रेणीवाले गुणस्थानके मुनियोंकी संख्या संख्यातगुणी है। अयोगकेवलीकी संख्या५९८ या ६०० या ६०८ है (जी का गाथा ६२६और इस अनुवादके पृष्ठ २०८की टिप्पणी संख्या २ देखो) सो भी प्रत्येक उपशमश्रेणी गुणस्थानवालोंसे एक प्रकारसे संख्यातगुणी हैं और प्रत्येक क्षपकश्रेणीवाले गुणस्थान वर्तियों के बराबर है॥ सयोगकेवलियोंकी संख्या आठ लाख अठानवे सहस्र पांचसौ दो (८९८५०२) है सो प्रत्येक उपशमश्रेणी गुणस्थानवालोंसे संख्यातगुणी है और प्रत्येक क्षपकश्रेणी गुणस्थानवालोंसे भी संख्यातगुणी है। इन सयोगकेवलियोंसे अप्रमत्त संयमी सातवां ... नवर्ती संख्येयगुणे हैं क्योंकि इनकी संख्या २९६९९१०३ है। और इन अप्रमत्तसंयमियों ... संख्यात गुणे हैं क्योंकि वे ५९३९८२०६ हैं॥ उक्त प्रमत्तसंयमियोंसे संयमासंयमी असंख्या... हैं क्योंकि मनुष्य और तिर्यंच गतियों में ही यह देशसंयम गुणस्थान होता है इनमें तेरह करोड़ मनुष्य हैं और तिर्यंच पल्यके असंख्यातवें भाग हैं। इन संयमासंयमियोंसे सासादन सम्यग्दृष्टी असंख्यात गुणे हैं क्योंकि यह गुणस्थान चारों गतियों में होता है इन में बावन करोड़ मनुष्य हैं और भावकों से असंख्यात गुणे अन्य तीन गतिके जीव हैं। इन सासादन वालोंसे संख्यात गुणे मिश्रगुणस्थानवर्ती हैं क्योंकि इनमें एकसौ चारकरोड़ मनुष्य हैं और संख्यात गुणे अन्य तीन गतिके जीव हैं। और असंयत गुणस्थान भी चारों गतिमें होता है इनमें सातसौ करोड़ मनुष्य हैं और मिश्रवालोंसे असंख्यातगुणे शेष तीन गतिके जीव हैं (गोम्मटसार गाथा ६२४, ६२५, ६२६ और पृष्ठ २९२ से २९५ तक देखो) स्मरण रहे कि पंचेन्द्रिय जीव संज्ञीकेही दूसरेसे बारह गुणस्थान हो सक्ते हैं। असंज्ञी जीवके मिथ्यात्व गुणस्थान ही होता है॥

प्रथम ॥ तु॰ विशेषः ॥ मिथ्या =परन्तु (=तु) यह विशेष है कि पंचेन्द्रिय मिथ्या
द्वयः ॥ असंख्येयगुणाः ॥ =दृष्टी जीव (अन्य किसी गुणस्थान के पंचेन्द्रिय जीवों से) असंख्यात गुणे हैं॥

(२) इन्द्रियानुवादेन-एकेन्द्रियविकलेन्द्रियेषु गुणस्थानभेदो नास्तीत्यल्पबहुत्वाभाव ॥ इंद्रियं प्रत्युच्यते। पंचेंद्रियाद्येकेन्द्रियान्ता उत्तरोत्तर बहव ॥पंचेन्द्रियाणां सामान्यवत्।

(असंयत सम्यग्दृष्टीजीवोंसे) मिथ्यादृष्टी (जीव) असंख्यातगुणे हैं।

(२) इन्द्रिय अनुवादेन ।। एकेन्द्रिय-विकल-इन्द्रियेषु ,। गुणस्थान-भेदः ,। न-अस्ति । इति-अल्प बहुत्व-अभाव ।।
इन्द्रियम् ।।। प्रति उच्यते ।
पंचेन्द्रिय आदि-एकेन्द्रिय-अन्ताः ।। उत्तरोत्तरम् ,।।। बहव. ।।

पंचेन्द्रियाणाम् ।। सामान्य-वत्

=(२) इंद्रियकी अपेक्षासे एकइन्द्रिय (जीव) और विकल (दो-तीन-चार)
=इन्द्रियवाले (जीवों) में गुणस्थान विशेष नहीं है
=(इनके मिथ्यात्व गुणस्थान ही होता है) ऐसे (गुणस्थान प्रति) अल्प बहुत्व नहीं है
=इन्द्रियोंकी अपेक्षासे (=प्रति) (अल्प बहुत्व) कहा जाता है
=पांच इन्द्रियवाले जीवोंसे (=आदि) एक इन्द्रियवाले जीवों तक आगे आगे
=अधिक हैं अर्थात् पांच इन्द्रियवालेजीवोंसे चार इन्द्रियवाले जीव अधिक हैं। चार इन्द्रियवालोंसे तीन इन्द्रियवाले बहुत हैं।। तीन इन्द्रियवालोंसे दो इन्द्रियवाले अधिक हैं दो इंद्रियवालोंसे एक इंद्रियवाले जीव अधिक हैं ऐसे आगे आगे बहुलता है।।
=पांच इंद्रियवालोंका (परस्पर अल्प बहुत्व) संक्षेपमें (कथित गुणस्थान)
=सदृश है। अर्थात् चार अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराय-उपशान्त-कषाय उपशमश्रेणीवाले प्रत्येक गुणस्थानमें २९९ वा (कोईक आचार्योंके मतमें) ३०० अथवा (अन्य आचार्योंके मतमें)३०४ मुनि हैं और इन प्रत्येक प्रत्येक गुणस्थानकी संख्या शेष प्रत्येक गुणस्थानोंके जीवोंकी अपेक्षा सबसे अल्प या थोडी है। और चार अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्पराय क्षीणकषायक्षपकश्रेणीवाले प्रत्येक गुणस्थानमें ५९८ वा (कोईकके मतमें)

कायगोगिनां सामान्यवत् ॥ [५] वेदानुवादेन-- स्त्रीपुंवेदाना पञ्चेन्द्रियवत् ।

काय-योगिनाम् ;। सामान्यवत् ❀

=काययोगियोंका (अल्प-बहुत्व) संक्षेप (प्रकरणमें पूर्वोक्त गुणस्थान) वत् है अर्थात् अयोगकेवलियोंको छोड़कर पृष्ठ २९८, २९९ में चार अपूर्व पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टीजीव असंख्यात गुणे हैं (२९९के अन्त तक पढ़लो)

[५] वेद अनुवादेन ; स्त्री-पुम्-वेदानाम् ;। पंचेन्द्रियवत् ❀

=[५] वेद(स्त्री-पुरुष-नपुंसक) की अपेक्षासे स्त्री–पुंवेद वालोंका ¤(अल्प-बहुत्व) पांचइन्द्रियवाले (जीव) निके समान है अर्थात् पृष्ठ २९८ में पंचेन्द्रियों का अल्प बहुत्व गुणस्थानवत् है और "आगमविषै नवमा गुणस्थानका सवेद भाग पर्यंत भावकरि तीन वेद हैं और द्रव्यतैं एक पुरुष वेदही है" गोम्मटसार मुद्रित पृष्ठ ५९३ गाथा २७१ ॥ नवमां गुणस्थानके प्रथम तीनभाग भाववेदसहित हैं । अन्तके तीनभाग (जिनको अपगतभाववेद कहते हैं) भाववेद रहित हैं । इसलिये नवमां गुणस्थानसे मिथ्यात्व प्रथम गुणस्थान के जीवोंमें जो अल्प बहुत्व है वही स्त्री-पुरुष वेदीयोंका अल्पबहुत्व होगा ॥ यह ऐसे है कि अपूर्वकरण

(१) "चारित्र मोहनीयका भेद नोकषाय तीहरूप पुरुषवेद स्त्रीवेद नपुंसकवेद नामा प्रकृति तिनके उदयतैं भाव जो चैतन्य उपयोग तीहि विषै पुरुष स्त्री नपुंसकरूप जीव हो हैं। बहुरि निर्माण नामा नाम कर्म के उदयकरि संयुक्त अंगोपांगका विशेषरूप नाम कर्मकी प्रकृतिके उदयतैं द्रव्य जो पुद्गलीक पर्यायतीहि विषै पुरुष स्त्री नपुंसक हो है। सो ही कहिए है पुरुष वेदके उदयतैं स्त्रीका अभिलाषरूप मैथुन संज्ञाका धारी जीव सो भाव पुरुष हो है। बहुरि स्त्रीवेद के उदयतैं पुरुष का अभिलाषरूप मैथुन संज्ञाका धारक जीव भाव स्त्री हो है बहुरि नपुंसकवेद के उदयतैं पुरुष अर स्त्री दोऊनका युगपत् अभिलाषरूप मैथुन संज्ञाका धारक जीव सो भाव नपुंसक हो है बहुरि निर्माण नाम कर्मका उदय संयुक्त पुरुष वेदरूप आकारका विशेष लिए अंगोपांग नाम नाम कर्मका उदयतैं——— मूंछ डाढी लिंगादिक चिन्ह संयुक्त शरीरका धारक जीव सो पर्यायका प्रथम समयतैं लगाय अंत समय पर्यंत द्रव्य पुरुष हो है ॥

कायानुवादेन— स्थावरकायेषु गुणस्थानभेदाभावात्ल्पबहुत्वाभाव ॥ काय प्रत्युच्यते। सर्वतस्तेजःकायिका अल्पा। ततो बहव पृथिवीकायिका। ततोऽप्कायिका ततो वातकायिका। सर्वतोऽनन्तगुणा वनस्पतय ॥ त्रसकायिकानां पञ्चेन्द्रियवत् ॥ [४] योगानुवादेन — वाङ्मानसयोगिनां पञ्चेन्द्रियवत्।

[३] काय अनुवादेन ॥ स्थावर-कायेषु ॥	=(३) कायके कथनसे स्थावर (पृथिवी अप्-तेजो-वायु-वनस्पति) कायोंमें
गुणस्थानभेद अभावात , अल्प-बहुत्व-अभावः ॥	=गुण स्थानमें भेद न होने (के हेतु) से थोडे बहुतपनेका अभाव है (क्योंकि समस्त स्थावर कायोंकि एक मिथ्यात्व प्रथम गुणस्थान ही होता है) (अत गुणस्थानकी अपेक्षासे कुछभी अल्प बहुत्व नहीं हो सक्ता है)।
कायम् ॥ प्रति॰ उच्यते। सर्वत॰ अल्पा ॥	=कायकी अपेक्षासे (अल्प बहुत्व) कहाजाता है। सबसे थोडे
तेजःकायिका ॥ तत॰ बहव , पृथिवी कायिका ॥	= अनल कायिक हैं। तिन (अनल कायिक)से भूमिकायिक बहुत हैं
तत॰ अप्कायिका ॥ ततः वातकायिका ॥	=उन (भूमिकायिकोंसे) जल कायिक (बहुत) हैं। तिन (जलकायिकसे) पवन कायिक (बहुत) हैं
सर्वत॰ अनन्त-गुणा ॥ वनस्पतयः ॥	=सबसे अनन्तगुणे वनस्पति (कायिक) हैं
त्रसकायिकानाम् ॥ पञ्चेन्द्रियवत्॰	=त्रसकायिकोंका (अल्प-बहुत्व) पञ्चेन्द्रिय समान है अर्थात् पांचइन्द्रियवाले जीवोंसे चार इन्द्रियवाले जीव अधिक हैं। चारइन्द्रियवालेजीवोंसे तीन इन्द्रिय वाले जीव घने हैं। तीन इन्द्रियवाल जीवोंसे दो इन्द्रियवाले बहुत हैं ॥ पांच इन्द्रियवालोंका परस्पर अल्प बहुत्व गुणस्थानवत् है ॥ (देखो-चारअपूर्वकरण इत्यादि लेखसे पृष्ठ २९८में और २९९ के अन्ततक)
[४] योग अनुवादेन ॥ वाङ्मानस-योगिनाम् ॥	=[४] योगके कथनानुसारस वचन मन योगियोंका [अल्प-बहुत्व]
पंचेन्द्रियवत् ॰	=पांच इन्द्रियवाले जीवोंकि अल्प-बहुत्वके सदृश है ॥ अर्थात् पांच इन्द्रियवालोंका अल्प-बहुत्व गुणस्थानवत् [पृष्ठ २९८से२९९ के अन्त तक] है

नपुंसकवेदानामवेदानां च सामान्यवत् ॥ (६) कषायानुवादेन–क्रोधमानमायाकषायाणां पुंवेदवत् । अयं तु विशेष -मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः ॥ लोभकषायाणां द्वयोरुपशमकयोस्तुल्या संख्या । क्षपका

नपुंसकवेदानाम् ॥ अवेदानाम् ॥ च	=नपुंसक वेद वालोंका तथा (=च) वेद (भाववेद) वर्जित (सूक्ष्मसाम्परायसे अयोगकेवली गुणस्थानवर्ति) निका (अल्पबहुत्व)
सामान्यवत्*	=संक्षेप (प्रसंगमें पहिले कथित गुणस्थान) समान है अर्थात् नपुंसक भाववेदी मिथ्यात्व प्रथम गुणस्थानसे अनिवृत्तिकरण नवमें गुणस्थान तक है । और भाववेद रहित दशवां गुणस्थानसे चोदहवां तक है ॥ देखो पृष्ठ २९८ चार अपूर्वकरण मिथ्यवालोंसे असंख्यात गुणे शेष तीन गतिके जीव हैं । मिथ्यादृष्टीजीव नपुंसकलिंगी अनंतगुणे हैं क्योंकि स्त्रीलिंग पुल्लिंगजीव पंचेन्द्रिय होते हैं । और सैनी (मनसहित) होवे हैं (देखो चौबीसस्थाना ग्रंथ) परन्तु नपुंसक लिंगी जीव एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय सैनी असैनी दोनों होते हैं (देखो चौबीसस्थानाग्रन्थ)
कषाय-अनुवादेन-क्रोध-मान-माया-कषायाणाम् ॥	=(६) कषायके कथनानुसारसे क्रोध-मान-कपट कषायवालोंका (अल्प बहुत्व)
पुंवेदवत्*	=पुरुष वेद समान है (और पुरुषवेदका अल्प बहुत्व पंचेन्द्रिय वत् है अतः क्रोध मान-माया-कषाय वालोंका अल्पबहुत्व पंचेन्द्रियवत् है) पंचेन्द्रिय जीवोंके अल्प बहुत्व के लिये " चार अपूर्व २९८ से २९९ पृष्ट के अन्त)
अयम् ॥ तु* विशेषः ॥ मिथ्यादृष्टयः ॥ अनन्तगुणाः	=परन्तु भेद यह है कि मिथ्यादृष्टि (पूर्व ९ गुणस्थानवालोंसे) अनन्त गुणे हैं
लोभकषायाणाम्॥ द्वयोः ॥ उपशमकयोः ॥	=लोभकषायवाले दो (अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण) उपशमश्रेणीवालोंकी
तुल्या ॥ संख्या ॥ क्षपकाः ॥	=समान गणना है । (उन दो उपशमश्रेणीवालों से) क्षपकश्रेणी

और अनिवृत्तिकरण उपशमश्रेणीवाले जीव भाव पुरुषवेदी और भाव स्त्रीवेदी सबसे थोडे हैं २९९ वा ३०० वा ३०४ प्रत्येकगुणस्थानके मेंसे भाव नपुंसकवेदी घटादिये जावें तो भाव पुरुषवेदी और भाव स्त्रीवेदी शेष रह जावेंगे । इनसे संख्यातगुणे प्रत्येक अपूर्वकरण क्षपकश्रेणी और अनिवृत्तिकरण क्षपकश्रेणी होंगे क्योंकि इन प्रत्येक दोनों गुणस्थानोंमें ५९८ वा ६०० वा ६०८ जीव उत्कृष्टकरि तीनों वेदवाले हो सके हैं। अप्रमत्त संयमी इनसे संख्यातगुणे हैं क्योंकि इनकी संख्या तीनों वेदवालोंकी २९६९९१०३ हो सकी है। इनसे अधिक प्रमत्तसंयमी हैं क्योंकि तीनों वेदवालोंकी संख्या ५९३९८२०६ जीव हैं ॥ शेषके लिये देखो उक्त प्रमत्तसे अन्त तक पृष्ठ २९९

बहुरि निमाण नामका उदय संयुक्त स्त्रीवेदरूप आकारका विशेष स्त्रीप अंगोपांगनामा नामकर्मके उदयतें रोमरहित मुख स्तन योनि इत्यादि चिह्नसंयुक्त शरीरका धारक जीव सो पर्यायका प्रथम समयतें लगाइ अंतसमयपर्यंत द्रव्य स्त्री हाइ है बहुरि निर्माण नामका उदयतें संयुक्तनपुंसकवेदरूप आकारका विशेष लिये अंगोपांगनामा नामप्रकृतिके उदयतें मूछ डाढी इत्यादि वा स्तन योनि इत्यादिक दोऊ चिह्न रहित शरीरका धारक जीव सो पर्यायका प्रथम समयतें लगाय् अंतसमयपर्यंत द्रव्य नपुंसक हो है। सो प्रायेण कहिए बहुलताकरि तो समान वेद होई जैसा द्रव्यवेद होइ तैसाही भाववेद होइ बहुरि कहीं समान वेद न हो है द्रव्यवेद अन्य होइ भाव वेद अन्य होइ। तहां देव अर नारकी अर भोगभूमियां तिर्यंच मनुष्य इनिविषैं तो जैसा द्रव्यवेद है तैसा ही भाववेद है बहुरिकर्म भूमियां तिर्यंच अर मनुष्यविषैं काई जीवनिविषैं तो जैसा द्रव्यवेद हो है तैसाही भाव वेद है बहुरि केई जीवनिविषैं द्रव्यवेद अन्य हो है अर भाववेद अन्य हो है द्रव्यतैं पुरुष है अर भावतैं पुरुषका अभिलाषरूप स्त्रीवेदी है वा स्त्री अर पुरुष दोऊनिका अभिलाषरूप नपुंसकवेदी है। ऐसे ही द्रव्यतें स्त्री वेदो है भावतें स्त्रीका अभिलाषरूप पुरुषवेदी है वा दोऊनिका अभिलाषरूप नपुंसक वेदी है। बहुरि द्रव्यतैं नपुंसक वेदी है भावतैं स्त्रीका अभिलाषरूप पुरुषवेदी है वा पुरुषका अभिलाषरूप स्त्रीवेदी है। ऐसा विशेष जानना, जाते आगमविषैं नवमा गुणस्थानका सवेद भाग पर्यंत भावतैं तीन वेद हैं अर द्रव्यतैं एक पुरुषवेद ही है ऐसा कथन करया है गो॰स्मट॰ जीव॰ मुद्रित पृष्ठ ५९२, ५९३ ॥

पुरुषवेदीका परिणाम तृणकी अग्नि समान है। स्त्री वेदीका परिणाम कारीषकी अग्नि समान है नपुंसक वेदीका परिणाम पजावाकी अग्नि समान है ऐसे तीनाही आदिके परिणामनिकी जो पीड़ा तीहिंकरि जे रहित भए है ऐसे भाववेद अपेक्षा अनिवृत्तिकरणका अवगत वेद भागतैं लगाय अयोगी पर्यंत अर द्रव्य भाववेद अपेक्षा गुणस्थानातीत सिद्ध भगवान जानने ॥ गो॰ जीव मुद्रित पृष्ठ २९८

नपुंसकवेदानामवेदानां च सामान्यवत् ॥ (६) कषायानुवादेन–क्रोधमानमायाकषायाणां पुंवेदवत्। अयं तु विशेषः मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः ॥ लोभकषायाणां द्वयोरुपशमकयोस्तुल्या सख्या। क्षपका

नपुंसकवेदानाम् ॥ अवेदानाम् ॥ च	=नपुंसक वेद वालोंका तथा (=च) वेद (भाववेद) वर्जित (सूक्ष्मसाम्परायसे अयोगकेवली गुणस्थानवर्ति) निका (अल्पबहुत्व)
सामान्यवत्॥	=संक्षेप (प्रसंगमें पहिले कथित गुणस्थान) समान है अर्थात् नपुंसक भाववेदी मिथ्यात्व प्रथम गुणस्थानसे अनिवृत्तिकरण नवमें गुणस्थान तक है। और भाववेद रहित दशवां गुणस्थानसे चौदहवां तक है॥ देखो पृष्ठ २९८ चार अपूर्वकरण मिथ्यवालोंसे असंख्यात गुणे शेष तीन गतिके जीव हैं। मिथ्यादृष्टीजीव नपुंसकलिंगी अनंतगुणे हैं क्योंकि स्त्रीलिंग पुल्लिंगजीव पंचेन्द्रिय होते हैं। और सैनी (मनसहित) होते हैं (देखो चौबीसस्थाना ग्रंथ) परन्तु नपुंसकलिंगी जीव एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय सैनी असैनी दोनों होते हैं (देखो चौबीसस्थानाग्रन्थ)
कषाय अनुवादेन-क्रोध-मान-माया-कषायाणाम् ॥	=(६) कषायके कथनानुसारसे क्रोध-मान-कपट कषायवालोंका (अल्प बहुत्व)
पुंवेदवत्॥	=पुरुष वेद समान है (और पुरुषवेदका अल्प बहुत्व पंचेन्द्रिय वत् है अतः क्रोध मान-माया-कषाय वालोंका अल्पबहुत्व पंचेन्द्रियवत् है) पंचेन्द्रिय जीवोंके अल्प बहुत्व के लिये " चार अपूर्व २९८ से २९९ पृष्ट के अन्त)
अयम् ॥ तु॥ विशेषः ॥ मिथ्यादृष्टयः ॥ अनन्तगुणाः	=परन्तु भेद यह है कि मिथ्यादृष्टि (पूर्व ८ गुणस्थानवालोंसे) अनन्त गुणे हैं
लोभकषायाणाम्॥ द्वयोः ॥ उपशमकयोः ॥	=लोभकषायवाले दो (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण) उपशमश्रेणीवालोंकी
तुल्या ॥ सख्या ॥ क्षपकाः ॥	=समान गणना है। (उन दो उपशमश्रेणीवालों से) क्षपकश्रेणी

संख्येयगुणा । सूक्ष्मसाम्पराय शुद्ध्युपशमकसंयता विशेषाधिका । सूक्ष्मसाम्परायक्षपकाः संख्येयगुणा । उपशान्तकषायाणां सामान्यवत ॥

संख्येय-गुणाः ॥	=(अपूर्वकरण आठवां अनिवृत्तिकरण नवमां गुणस्थानवाले) संख्यातगुणे हैं अर्थात् प्रत्येक उपशमश्रेणीके आठवें-नवमें गुणस्थानमें२९९ मुनि हैं वा कईक आचार्यों के मतमें ३०० अथवा अन्य के मतानुसार ३०४ है और प्रत्येक क्षपक श्रेणीके आठवें-नवमें गुणस्थानमें ५९८ मुनि हैं किसीके मत में प्रत्येकमें ६००, अन्यके मतमें प्रत्येक में ६०८ इसलिये प्रत्येक उपशमश्रेणीवाले से प्रत्येक क्षपक में संख्यात गुणे हुए
सूक्ष्मसाम्परायशुद्धि-उपशमक-संयताः ।	=सूक्ष्मसांपराय शुद्धसंयत उपशमश्रेणीवाले दशवां गुणस्थानवर्ती
विशेष अधिकाः ॥	=विशेषकरि अधिक हैं
सूक्ष्मसाम्पराय-क्षपकाः ॥	=(उन सूक्ष्मसांपराय उपशमकसे) सूक्ष्मसांपराय क्षपकश्रेणीवाले
संख्येय गुणाः ॥	संख्यातगुणे हैं क्योंकि उपशमक सूक्ष्मसांपराय २९९ वा ३०० वा ३०४ हैं और सूक्ष्मसांपराय क्षपक ५९८ वा ६०० वा ६०८ हैं
शेषाणाम् ॥	=बाकी रहे (उपशान्तकषाय-क्षीणकषाय-सयोगकेवली-अयोगकेवली गुणस्थानवर्ती) निका (अल्प-बहुत्व परस्पर)
सामान्यवत्	=संक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहा हुआ गुणस्थान) सदृश है अर्थात उपशांतकषाय गुणस्थानमें भिन्न भिन्न मतानुसार २९९ वा ३०० वा ३०४ मुनि हैं। क्षीण कषाय में इन से दूने हैं अतः उपशांतकषाय से क्षीणकषायमें संख्यात गुणे हैं ॥ सयोगकेवली ८९८५०२

काययोगिनां सामान्यवत् ॥ [५] वेदानुवादेन-- स्त्रीपुंवेदानां पञ्चेन्द्रियवत् ।

काय-योगिनाम् ;। सामान्यवत् *

=काययोगियोंका (अल्प-बहुत्व) संक्षेप (प्रकरणमें पूर्वोक्त गुणस्थान) वत् है अर्थात् अयोगकेवलियोंको छोड़कर पृष्ठ २९८, २९९ में चार अपूर्व पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टीजीव असंख्यात गुणे हैं (२९९के अन्त तक पढ़लो)

[५] वेद अनुवादेन ; स्त्री-पुम्-वेदानाम् ।। पंचेन्द्रियवत् *

=[५] वेद(स्त्री-पुरुष-नपुंसक) की अपेक्षासे स्त्री-पुंवेद वालोंका

=(अल्प-बहुत्व) पांचइन्द्रियवाले (जीव) निके समान है अर्थात् पृष्ठ २९८ में पंचेन्द्रियों का अल्प बहुत्व गुणस्थानवत् है और "आगमविषें नवमा गुणस्थानका सवेद भाग पर्यंत भावतें तीन वेद हैं और द्रव्यतें एक पुरुष वेदही है" गोम्मटसार मुद्रित पृष्ठ ५९३ गाथा २७१ ॥ नवमां गुणस्थानके प्रथम तीनभाग भाववेदसहित हैं । अन्तके तीनभाग (जिनको अपगतभाववेद कहते हैं) भाववेद रहित हैं । इसलिये नवमां गुणस्थानसे मिथ्यात्व प्रथम गुणस्थान के जीवोंमें जो अल्प बहुत्व है वही स्त्री-पुरुष वेदीयोंका अल्पबहुत्व होगा ॥ यह ऐसे है कि अपूर्वकरण

(१) "चारित्र मोहनीयका भेद नोकषाय तीहरूप पुरुषवेद स्त्रीवेद नपुंसकवेद नामा प्रकृति तिनके उदयतें भाव जो चैतन्य उपयोग तीहि विषें पुरुष स्त्री नपुंसकरूप जीव हो हैं। बहुरि निर्माण नामा नाम कर्म के उदयकरि संयुक्त अंगोपांगका विशेषरूप नाम कर्मको प्रकृतिके उदयतें द्रव्य सो पुद्गलोंका पर्यायतीहि विषैं पुरुष स्त्री नपुंसक हो हैं। सो ही कहिए है पुरुष वेदके उदयतें स्त्रीका अभिलाषरूप मैथुन संज्ञाका धारी जीव सो भाव पुरुष हो है। बहुरि स्त्रीवेद के उदयतें पुरुष का अभिलाषरूप मैथुन संज्ञाका धारक जीव भाव स्त्री हो है बहुरि नपुंसकवेद के उदयतें पुरुष अर स्त्री दोऊनिका युगपत् अभिलाषरूप मैथुन संज्ञाका धारक जीव सो भाव नपुंसक हो है बहुरि निर्माण नाम कर्मका उदय संयुक्त पुरुष वेदरूप आकारका विशेष लिए अंगोपांग नामे नाम कर्मका उदयतें—— मूंछ डाढ़ी लिंगादिक चिन्ह संयुक्त शरीरका धारक जीव सो पर्यायका प्रथम समयतें लगाय अन्त समय पर्यंत द्रव्य पुरुष हो है ॥

संख्येयगुणा । सूक्ष्मसाम्पराय शुद्ध्युपशमकसंयता विशेषाधिका । सूक्ष्मसाम्परायक्षपकाः संख्येयगुणाः । शेषाणां सामान्यवत् ॥

संख्येय-गुणाः ॥	=(अपूर्वकरण आठवां अनिवृत्तिकरण नवमां गुणस्थानवाले) संख्यातगुणे हैं अर्थात् प्रत्येक उपशमश्रेणीके आठवें-नवमें गुणस्थानमें २९९ मुनि हैं या कोईक आचार्यों के मतमें ३०० अथवा अन्य के मतानुसार ३०४ है और प्रत्येक क्षपक श्रेणीके आठवें-नवमें गुणस्थानमें ५९८ मुनि हैं किसीके मत में प्रत्येकमें ६००, अन्यके मतमें प्रत्येक में ६०८ इसलिये प्रत्येक उपशमश्रेणीवाले से प्रत्येक क्षपक में संख्यात गुणे हुए
सूक्ष्मसाम्परायशुद्धि-उपशमक-संयताः ।	=सूक्ष्मसांपराय शुद्धसंयत उपशमश्रेणीवाले दशवां गुणस्थानवर्ती
विशेष अधिकाः ॥	=विशेषकरि अधिक हैं
सूक्ष्मसाम्पराय-क्षपकाः ॥	=(उन सूक्ष्मसांपराय उपशमकसे) सूक्ष्मसांपराय क्षपकश्रेणीवाले
संख्येय गुणाः ॥	संख्यातगुण हैं क्योंकि उपशमक सूक्ष्मसांपराय २९९ या ३०० या ३०४ हैं और सूक्ष्मसांपराय क्षपक ५९८ या ६०० या ६०८ हैं
शेषाणाम् ॥	=बचे हुये (उपशान्तकषाय-क्षीणकषाय-सयोगकेवली-अयोगकेवली गुणस्थानवर्ती) निका (अल्प-बहुत्व परस्पर)
सामान्यवत्॥	=संक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहा हुआ गुणस्थान) सदृश है अर्थात उपशांतकषाय गुणस्थानमें भिन्न भिन्न मतानुसार २९९ या ३०० या ३०४ मुनि हैं । क्षीणकषाय में इन से दूने हैं अतः उपशांतकषाय से क्षीणकषायमें संख्यात गुणे हैं ॥ सयोगकेवली ८९८५०२

कायर्योगिनां सामान्यवत् ॥ [५] वेदानुवादेन— स्त्रीपुंवेदानां पञ्चेन्द्रियवत् ।

काय-योगिनाम् ॥ सामान्यवत् *	=काययोगियोंका (अल्प-बहुत्व) संक्षेप (प्रकरणमें पूर्वोक्त गुणस्थान) वत् है अर्थात् अयोगकेवलियोंको छोड़कर पृष्ठ २९८, २९९ में चार अपूर्व पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टीजीव असंख्यात गुणे हैं (२९९के अन्त तक पढ़लो)
[५] वेद अनुवादेन ॰ स्त्री-पुम्-वेदानाम् ॥ पंचेन्द्रियवत् *	=[५] वेद(स्त्री-पुरुष-नपुंसक) की अपेक्षासे स्त्री-पुंवेद वालोंका =(अल्प-बहुत्व) पांचइन्द्रियवाले (जीव) निके समान है अर्थात् पृष्ठ २९८ में पंचेन्द्रियों का अल्प बहुत्व गुणस्थानवत् है और "आगमविषें नवमा गुणस्थानका सवेद भाग पर्यंत भावतैं तीन वेद हैं और द्रव्यतैं एक पुरुष वेदही है" गोम्मटसार मुद्रित पृष्ठ ५९३ गाथा २७१ ॥ नवमां गुणस्थानके प्रथम तीनभाग भाववेदसहित हैं। अन्तके तीनभाग (जिनको अपगतभाववेद कहते हैं) भाववेद रहित हैं। इसलिये नवमां गुणस्थानसे मिथ्यात्व प्रथम गुणस्थान के जीवोंमें जो अल्प बहुत्व है वही स्त्री-पुरुष वेदीयोंका अल्पबहुत्व होगा ॥ यह ऐसे है कि अपूर्वकरण

(१) "चारित्र मोहनीयका भेद नोकषाय तीहरूप पुरुषवेद स्त्रीवेद नपुंसकवेद नामा प्रकृति तिनके उदयतैं भाव जो चैतन्य उपयोग तीहि विषे पुरुष स्त्री नपुंसकरूप जीव हो हैं। बहुरि निर्माण नामा नाम कर्म के उदयकरि संयुक्त अंगोपांगका विशेषरूप नाम कर्मको प्रकृतिके उदयतैं द्रव्य जो पुद्गलीक पर्यायतीहि विषैं पुरुष स्त्री नपुंसक हो है। सो ही कहिए है पुरुष वेदके उदयतैं स्त्रीका अभिलाषरूप मैथुन संज्ञाका धारी जीव सो भाव पुरुष हो है। बहुरि स्त्रीवेद के उदयतैं पुरुष का अभिलाषरूप मैथुन संज्ञाका धारक जीव भाव स्त्री हो है बहुरि नपुंसकवेद के उदयतैं पुरुष अरु स्त्री दोउनका युगपत् अभिलाषरूप मैथुन संज्ञाका धारक जीव सो भाव नपुंसक हो है बहुरि निर्माण नाम कर्मका उदय संयुक्त पुरुष वेदरूप आकारका विशेष लिए अंगोपांग नामे नाम कर्मका उदयतैं——— मूंछ डाढ़ी लिंगादिक चिह्न संयुक्त शरीरका धारक जीव सो पर्यायका प्रथम समयतैं लगाय अन्त समय पर्यंत द्रव्य पुरुष हो है ॥

मन्येयगुणा । सूक्ष्मसाम्पराय शुध्दयुपशमकसँयता विशेषाधिका । सूक्ष्मसाम्परायक्षपकाः संख्येयगुणाः । शपाणा सामान्यवत ॥

संख्येय-गुणाः ॥ =(अपूर्वकरण आठवां अनिवृत्तिकरण नवमां गुणस्थानवाले) संख्यातगुणे हैं अर्थात प्रत्येक उपशमश्रेणीके आठवें-नवमें गुणस्थानमें२९९ मुनि हैं या कैइक आचार्यों के मतमें ३०० अथवा अन्य के मतानुसार ३०४ है और प्रत्येक क्षपक श्रेणीके आठवें-नवमें गुणस्थानमें ५९८ मुनि हैं किसीके मत में प्रत्येकमें ६००, अन्यके मतमें प्रत्येक में ६०८ इसलिये प्रत्यक उपशमश्रेणीवाले से प्रत्येक क्षपक में संख्यात गुणे हुए

सूक्ष्मसाम्परायशुद्धि-उपशमक-संयता: । -सूक्ष्मसांपराय शुद्धसंयत उपशमश्रेणीवाले दशवां गुणस्थानवर्ती

विशेष अधिकाः ॥ =विशेषकरि अधिक हैं

सूक्ष्मसाम्पराय-क्षपकाः ॥ =(उन सूक्ष्मसांपराय उपशमकसे) सूक्ष्मसांपराय क्षपकश्रेणीवाले

संख्येय गुणा । संख्यातगुण हैं क्योंकि उपशमक सूक्ष्मसांपराय २९९ या ३०० या ३०४ हैं और सूक्ष्मसांपराय क्षपक ५९८ वा ६०० या ६०८ हैं

शेषाणाम् ॥ =बचे हुये (उपशान्तकषाय-क्षीणकषाय-सयोगकेवली-अयोगकेवली गुणस्थानवर्ती) निका (अल्प-बहुत्व परस्पर)

सामान्यवत् =संक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहा हुआ गुणस्थान) सदृश है अर्थात उपशांतकषाय गुणस्थानमें भिन्न भिन्न मतानुसार २९९ या ३०० या ३०४ मुनि हैं । क्षीण-कषाय में इन से दूने हैं अतः उपशांतकषाय से क्षीणकषायमें संख्यात गुणे हैं ॥ सयोगकेवली ८९८५०२

काययोगिनां सामान्यवत् ॥ [५] वेदानुवादेन— स्त्रीपुवेदाना पञ्चेन्द्रियवत् ।

काय-योगिनाम् ।। सामान्यवत् * =काययोगियोंका (अल्प-बहुत्व) संक्षेप (प्रकरणमें पूर्वोक्त गुणस्थान) वत् है अर्थात् अयोगकेवलियोंको छोड़कर पृष्ठ २९८, २९९ में चार अपूर्व पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टीजीव असंख्यात गुणे हैं (२९९के अन्त तक पढ़लो)

[५] वेद अनुवादेन ; स्त्री-पुम्-वेदानाम् ।। =[५] वेद(स्त्री-पुरुष-नपुंसक) की अपेक्षासे स्त्री-पुंवेद वालोंका

पंचेन्द्रियवत् * =(अल्प-बहुत्व) पांचइन्द्रियवाले (जीव) निके समान है अर्थात् पृष्ठ २९८ में पंचेन्द्रियों का अल्प बहुत्व गुणस्थानवत् है और "आगमविषें नवमा गुणस्थानका सवेद भाग पर्यंत भाववें तीन वेद हैं और द्रव्यतें एक पुरुष वेदही है" गोम्मटसार मुद्रित पृष्ठ ५९३ गाथा २७१ ॥ नवमा गुणस्थानके प्रथम तीनभाग भाववेदसहित हैं । अन्तके तीनभाग (जिनको अपगतभाववेद कहते हैं) भाववेद रहित हैं । इसलिये नवमा गुणस्थानसे मिथ्यात्व प्रथम गुणस्थान के जीवोंमें जो अल्प बहुत्व है वही स्त्री-पुरुष वेदीयोंका अल्पबहुत्व होगा ॥ यह ऐसे है कि अपूर्वकरण

(१) "चारित्र मोहनीयका भेद नोकषाय तीहरूप पुरुषवेद स्त्रीवेद नपुंसकवेद नामा प्रकृति तिनके उदयतैं भाव जो चैतन्य उपयोग तीहि विषें पुरुष स्त्री नपुंसकरूप जीव हो हैं। बहुरि निर्माण नामा नाम कर्म के उदयकरि संयुक्त अंगोपांगका विशेषरूप नाम कर्मकी प्रकृतिके उदयतैं द्रव्य जो पुद्गलीक पर्यायतीहि विषें पुरुष स्त्री नपुंसक हो है। सो ही कहिए है पुरुष वेदके उदयतैं स्त्रीका अभिलाषरूप मैथुन संज्ञाका धारी जीव सो भाव पुरुष हो है। बहुरि स्त्रीवेद के उदयतैं पुरुष का अभिलाषरूप मैथुन संज्ञाका धारक जीव भाव स्त्री हो है बहुरि नपुंसकवेद के उदयतैं पुरुष अर स्त्री दोऊनका युगपत् अभिलाषरूप मैथुन संज्ञाका धारक जीव सो भाव नपुंसक हो है बहुरि निर्माण नाम कर्मका उदय संयुक्त पुरुष वेदरूप आकारका विशेष लिए अंगोपांग नाम नाम कर्मका उदयतैं——— मूंछ दाढी लिंगादिक चिन्ह संयुक्त शरीरका धारक जीव सो पर्यायका प्रथम समयतैं लगाय अन्त समय पर्यंत द्रव्य पुरुष हो है ॥

संख्येयगुणा । सूक्ष्मसाम्पराय शुद्ध्युपशमकसंयता विशेषाधिका । सूक्ष्मसाम्परायक्षपकाः संख्येयगुणाः । शेषाणां सामान्यवत् ॥

संख्येय-गुणाः ।।	=(अपूर्वकरण आठवां अनिवृत्तिकरण नववां गुणस्थानवाले) संख्यातगुणे हैं अर्थात् प्रत्येक उपशमश्रेणीके आठवें-नववें गुणस्थानमें २९९ मुनि हैं या कोई आचार्यों के मतमें ३०० अथवा अन्य के मतानुसार ३०४ है और प्रत्येक क्षपक श्रेणीके आठवें-नववें गुणस्थानमें ५९८ मुनि हैं किसीके मत में प्रत्येकमें ६००, अन्यके मतमें प्रत्येक में ६०८ इसलिये प्रत्येक उपशमश्रेणीवाले से प्रत्येक क्षपक में संख्यात गुणे हुए
सूक्ष्मसाम्परायशुद्धि-उपशमक-संयताः ।	=सूक्ष्मसांपराय शुद्धसंयत उपशमश्रेणीवाले दशवां गुणस्थानवर्ती
विशेष अधिका ।।	=विशेषकरि अधिक हैं
सूक्ष्मसाम्पराय-क्षपकाः ।।	=(उन सूक्ष्मसांपराय उपशमकसे) सूक्ष्मसांपराय क्षपकश्रेणीवाले
संख्येय गुणा ।।	संख्यातगुणे हैं क्योंकि उपशमक सूक्ष्मसांपराय २९९ या ३०० या ३०४ हैं और सूक्ष्मसांपराय क्षपक ५९८ या ६०० या ६०८ हैं
शेषाणाम् ।।	=बचे हुये (उपशान्तकषाय-क्षीणकषाय-सयोगकेवली-अयोगकेवली गुणस्थानवर्ती) निका (अल्प-बहुत्व परस्पर)
सामान्यवत्*	=संक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहा हुआ गुणस्थान) सदृश है अर्थात उपशांतकषाय गुणस्थानमें भिन्न भिन्न मतानुसार २९९ वा ३०० या ३०४ मुनि हैं। क्षीण कषाय में इन से दूने हैं अत: उपशांतकषाय से क्षीणकषायमें संख्यात गुणे हैं ॥ सयोगकेवली ८९८५०२

काययोगिनां सामान्यवत् ॥ [५] वेदानुवादेन-- स्त्रीपुंवेदाना पञ्चेन्द्रियवत् ।

काय-योगिनाम् ॥ सामान्यवत् *

=काययोगियोंका (अल्प-बहुत्व) संक्षेप (प्रकरणमें पूर्वोक्त गुणस्थान) वत् है अर्थात् अयोगकेवलियोंको छोड़कर पृष्ठ २९८, २९९ में चार अपूर्व पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टीजीव असंख्यात गुणे हैं (२९९के अन्त तक पढ़लो)

[५] वेद अनुवादेन ; स्त्री-पुम्-वेदानाम् ॥ पंचेन्द्रियवत् *

=[५] वेद(स्त्री-पुरुष-नपुंसक) की अपेक्षासे स्त्री–पुंवेद वालोंका

= (अल्प-बहुत्व) पांचइन्द्रियवाले (जीव) निके समान है अर्थात् पृष्ठ २९८ में पंचेन्द्रियों का अल्प बहुत्व गुणस्थानवत् है और "आगमविषैं नवमा गुणस्थानका सवेद भाग पर्यंत भावसैं तीन वेद हैं और द्रव्यतैं एक पुरुष वेदही है" गोम्मटसार मुद्रित पृष्ठ ५९३ गाथा २७१ ॥ नवमा गुणस्थानके प्रथम तीनभाग भाववेदसहित हैं। अन्तके तीनभाग (जिनको अपगतभाववेद कहते हैं) भाववेद रहित हैं। इसलिये नवमा गुणस्थानसे मिथ्यात्व प्रथम गुणस्थान के जीवोंमें जो अल्प बहुत्व है वही स्त्री-पुरुष वेदीयोंका अल्पबहुत्व होगा ॥ यह ऐसे है कि अपूर्वकरण

(१) "चारित्र मोहनीयका भेद नोकषाय तीहरूप पुरुषवेद स्त्रीवेद नपुंसकवेद नामा प्रकृति तिनके उदयतैं भाव जो चेतन्य उपयोग तींहि विर्षे पुरुष स्त्री नपुंसकरूप जीव हो हैं। बहुरि निर्माण नामा नाम कर्म के उदयकरि संयुक्त अंगोपांगका विशेषरूप नाम कर्मकी प्रकृतिके उदयतैं द्रव्य सो पुद्गलीक पर्यायतीहि विर्षे पुरुष स्त्री नपुंसक हो है। सो ही कहिए है पुरुष वेदके उदयतैं स्त्रीका अभिलाषरूप मैथुन संज्ञाका धारी जीव सो भाव पुरुष हो है। बहुरि स्त्रीवेद के उदयतैं पुरुष का अभिलाषरूप मैथुन संज्ञाका धारक जीव भाव स्त्री हो है बहुरि नपुंसकवेद के उदयतैं पुरुष अर स्त्री दोऊनका युगपत् अभिलाषरूप मैथुन संज्ञाका धारक जीव सो भाव नपुंसक हो है बहुरि निर्माण नाम कर्मका उदय संयुक्त पुरुष वेदरूप आकारका विशेष लिए अंगोपांग नामे नाम कर्मका उदयतैं——— मूंछ दाढी लिंगादिक चिन्ह संयुक्त शरीरका धारक जीव सो पर्यायका प्रथम समयतैं लगाय अन्त समय पर्यंत द्रव्य पुरुष हो है॥

संख्येयगुणा । सूक्ष्मसाम्पराय शुध्द्युपशमकसंयता विशेषाधिका । सूक्ष्मसाम्परायक्षपकाः संख्येयगुणा । शेषाणां सामान्यवत् ॥

संख्येय-गुणाः ॥	=(अपूर्वकरण आठवां अनिवृत्तिकरण नवमां गुणस्थानवाले) संख्यातगुणे हैं अर्थात् प्रत्येक उपशमश्रेणीके आठवें-नवमें गुणस्थानमें २९९ मुनि हैं वा कैईक आचार्यों के मतमें ३०० अथवा अन्य के मतानुसार ३०४ है और प्रत्येक क्षपक श्रेणीके आठवें-नवमें गुणस्थानमें ५९८ मुनि हैं किसीके मत में प्रत्येकमें ६००, अन्यके मतमें प्रत्येक में ६०८ इसलिये प्रत्यक उपशमश्रेणीवाले से प्रत्येक क्षपक में संख्यात गुणे हुए
सूक्ष्मसाम्परायशुद्धि-उपशमक-संयता ।	=सूक्ष्मसांपराय शुद्धसंयत उपशमश्रेणीवाले दशवां गुणस्थानवर्ती
विशेष अधिका ॥	=विशेषकरि अधिक हैं
सूक्ष्मसाम्पराय-क्षपका ॥	=(उन सूक्ष्मसांपराय उपशमकसे) सूक्ष्मसांपराय क्षपकश्रेणीवाले
संख्येय गुणा ॥	संख्यातगुणे हैं क्योंकि उपशमक सूक्ष्मसांपराय २९९ वा ३०० वा ३०४ हैं और सूक्ष्मसांपराय क्षपक ५९८ वा ६०० वा ६०८ हैं
शेषाणाम् ॥	=बचे हुये (उपशान्तकषाय-क्षीणकषाय-सयोगकेवली-अयोगकेवली गुणस्थानवर्ती) निका (अल्प-बहुत्व परस्पर)
सामान्यवत्०	=संक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहा हुआ गुणस्थान) सदृश है अर्थात उपशांतकषाय गुणस्थानमें भिन्न भिन्न मतानुसार २९९ वा ३०० वा ३०४ मुनि हैं । क्षीण-कषाय में इन से दूने हैं अतः उपशांतकषाय से क्षीणकषायमें संख्यात गुणे हैं ॥ सयोगकेवली ८९८५०२

कायगोगिनां सामान्यवत् ॥ [५] वेदानुवादेन-- स्त्रीपुंवेदानां पञ्चेन्द्रियवत् ।

काय-योगिनाम् ।। सामान्यवत् ॥ =काययोगियोंका (अल्प-बहुत्व) संक्षेप (प्रकरणमें पूर्वोक्त गुणस्थान) वत् है अर्थात् अयोगकेवलियोंको छोड़कर पृष्ठ २९८, २९९ में चार अपूर्व पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टीजीव असंख्यात गुणे हैं (२९९के अन्त तक पढ़लो)

[५] वेद अनुवादेन । स्त्री-पुम्-वेदानाम् ।। पंचेन्द्रियवत् ॥ =[५] वेद(स्त्री पुरुष-नपुंसक) की अपेक्षासे स्त्री–पुंवेद वालोंका =(अल्प-बहुत्व) पांचइन्द्रियवाले (जीव) निके समान है अर्थात् पृष्ठ २९८ में पंचेन्द्रियों का अल्प बहुत्व गुणस्थानवत् है और "आगममिंं नवमा गुणस्थानका सवेद भाग पर्यंत भावतैं तीन वेद हैं और द्रव्यतैं एक पुरुष वेदही है" गोम्मटसार मुद्रित पृष्ठ ५९३ गाथा २७१ ॥ नवमा गुणस्थानके प्रथम तीनभाग भाववेदसहित हैं । अन्तके तीनभाग (जिनको अपगतभाववेद कहते हैं) भाववेद रहित हैं । इसलिये नवमा गुणस्थानसे मिथ्यात्व प्रथम गुणस्थान के जीवोंमें जो अल्प बहुत्व है वही स्त्री-पुरुष वेदीयोंका अल्पबहुत्व होगा ॥ यह ऐसे है कि अपूर्वकरण

(१) "चारित्र मोहनीयका भेद नोकषाय तीहरूप पुरुषवेद स्त्रीवेद नपुंसकवेद नामा प्रकृति तिनके उदयतैं भाव जो चेतनाय उपयोग तीहि विर्षे पुरुष स्त्री नपुंसकरूप जीव हो हैं । बहुरि निर्माण नामा नाम कर्म के उदयकरि संयुक्त अंगोपांगका विशेषरूप नाम कर्मकी प्रकृतिके उदयतैं द्रव्य जो पुद्गलीक पर्यायतीहि विर्षे पुरुष स्त्री नपुंसक हो है । सो ही कहिए है पुरुष वेदके उदयतैं स्त्रीका अभिलाषरूप मैथुन संज्ञाका धारी जीव सो भाव पुरुष हो है । बहुरि स्त्रीवेद के उदयतैं पुरुष का अभिलाषरूप मैथुन संज्ञाका धारक जीव भाव स्त्री हो है बहुरि नपुंसकवेद के उदयतैं पुरुष अर स्त्री दोऊनिका युगपत् अभिलाषरूप मैथुन संज्ञाका धारक जीव सो भाव नपुंसक हो है बहुरि निर्माण नाम कर्मका उदय संयुक्त पुरुष वेदरूप आकारका विशेष लिए अंगोपांग नामा नाम कर्मका उदयतैं——— मूंछ डाढ़ी लिंगादिक चिन्ह संयुक्त शरीरका धारक जीव सो पर्यायका प्रथम समयतैं लगाय अन्त समय पर्यंत द्रव्य पुरुष हो है ॥

मस्येयगुणा । सूक्ष्मसाम्पराय शुध्दयुपशमकसंयता विशेषाधिका । सूक्ष्मसाम्परायक्षपकाः संख्येयगुणाः । शेषाणा सामान्यवत् ॥

संख्येय-गुणाः ॥ =(अपूर्वकरण आठवां अनिवृत्तिकरण नवमो गुणस्थानवाले) संख्यातगुणे हैं अर्थात् प्रत्येक उपशमश्रेणीके आठवें-नवमें गुणस्थानमें २९९ मुनि हैं या कोईक आचार्यों के मतमें ३०० अथवा अन्य के मतानुसार ३०४ हैं और प्रत्येक क्षपक श्रेणीके आठवें-नवमें गुणस्थानमें ५९८ मुनि हैं किसीके मत में प्रत्येकमें ६००, अन्यके मतमें प्रत्येक में ६०८ इसलिये प्रत्येक उपशमश्रेणीवाले से प्रत्येक क्षपक में संख्यात गुणे हुए

सूक्ष्मसाम्परायशुद्धि-उपशमक-संयताः ॥ =सूक्ष्मसांपराय शुद्धसंयत उपशमश्रेणीवाले दसवां गुणस्थानवर्ती

विशेष अधिकाः ॥ –विशेषकरि अधिक हैं

सूक्ष्मसाम्पराय-क्षपकाः ॥ =(उन सूक्ष्मसांपराय उपशमकसे) सूक्ष्मसांपराय क्षपकश्रेणीवाले

संख्येय गुणाः ॥ संख्यातगुणे हैं क्योंकि उपशमक सूक्ष्मसांपराय २९९ या ३०० या ३०४ हैं और सूक्ष्मसांपराय क्षपक ५९८ या ६०० या ६०८ हैं

शेषाणाम् ॥ =बचे हुये (उपशान्तकषाय-क्षीणकषाय-सयोगकेवली अयोगकेवली गुणस्थानवर्ती) निका (अल्प-बहुत्व परस्पर)

सामान्यवत्॥ =संक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहा हुआ गुणस्थान) सदृश है अर्थात उपशांतकषाय गुणस्थानमें भिन्न भिन्न मतानुसार २९९ या ३०० या ३०४ मुनि हैं। क्षीण कषाय में इन से दूने हैं अतः उपशांतकषाय से क्षीणकषायमें संख्यात गुणे हैं ॥ सयोगकेवली ८९८५०२

[७] ज्ञानानुवादेन–मत्यज्ञानिश्रुताज्ञानिषुः सर्वत स्तोका सासादनसम्यग्दृष्टय ।मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः। विभङ्गज्ञानिषु सर्वतः स्तोका सासादनसम्यग्दृष्टय ।मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयगुणा ॥

ये उपशान्तकषायसे और क्षीणकषायसे संख्यात गुणे हैं अयोगकेवली भिन्न भिन्न मतानुसार ५९८ या ६०० वा ६०८ हैं
(देखो अवश्य इस अनुवादके पृष्ठ३०८की टिप्पणी संख्या (२)
ये उपशांतकषायवालोंसे तो संख्यात गुणे हैं॥ क्षीणकषायवालोंके उपर्युक्त अयोगकेवली समान हैं। इनसे सयोगकेवली संख्यात गुणे हैं

ज्ञान अनुवादेन ,। मति अज्ञानि-श्रुतअज्ञानिषु ॥ =(७) ज्ञानके कथनसे कुमति और कुश्रुत ज्ञानियों में
सर्वत * स्तोकाः ;। सासादनसम्यग्दृष्टय ,। =सबसे थोडे (=स्तोक) सासादनसम्यग्दर्शनवाले (दूसरे गुणस्थानवर्ती) हैं
(उन कुमति-कुश्रुत ज्ञानी सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे)
मिथ्यादृष्टय ,। अनन्तगुणा ;। =मिथ्यादृष्टी अनन्त गुणे हैं या "तिनतैं अनंतगुणां मिथ्यादृष्टि है" जय० वच० ११७
विभङ्गज्ञानिषु,।सर्वत* स्तोका सासादनसम्यग् =कुअवधिज्ञानियोंमें सबसे थोडे सासादन सम्यग्
दृष्टयः ;। =दर्शनवाले हैं (तिन कुअवधिज्ञानी सासादन सम्यग्दृष्टियोंसे)
मिथ्यादृष्टय ,। असंख्येयगुणाः ;। =(कु-अवधिज्ञानी) मिथ्यादृष्टी असंख्यात गुणे हैं

* सर्वतः स्तोकाः सासादनसम्यग्दृष्टय । मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः। सर्वतः स्तोकाः विभङ्गज्ञानिषु सासादनसम्यग्दृष्टयः। मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयगुणाः" इस वाक्यके स्थान में संस्कृत सर्वार्थसिद्धि की दोनों आवृत्तियोंकी प्रतियोंमें सर्वतः स्तोका सासादनसम्यग्दृष्टय।। मिथ्यादृष्टयो ऽसंख्येयगुणाः॥ मूलमें छपगया है अर्थात् "मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः। सर्वतः स्तोकाः विभङ्ग ज्ञानिषु सासादनसम्यग्दृष्टयः॥ वाक्य छूट गया है क्योंकि १)जयचन्दजी की वचनिका हस्त लिखित और मुद्रित (पृष्ठ११७ में "सर्वतैं स्तोक सासादनसम्यग्दृष्टि है। तीनितैं अनंत गुणां मिथ्यादृष्टि है। विभंग ज्ञानीनि विषै सर्वतैं थोरा सासादन सम्यग्दृष्टि है। तिनितैं असंख्यातगुणां मिथ्यादृष्टि है" ऐसी भाषा वचनिका है यह अक्षरशः उपर्युक्त संस्कृतके प्रथम वाक्य का अनुवाद है॥ (२) दूसरा हेतु यह है कि संसार में मिथ्यात्व गुणस्थानमें जितने भी जीव हैं सब इन्द्रियवालोंके, सर्वगतिमें, सर्व कायवालोंमें कुमति ज्ञान और कुश्रुत मात्र होते हैं और मिथ्यात्व सासादन दो ही गुणस्थान इस कुमति कुश्रुत ज्ञानियोंके

मस्येयगुणा । सूक्ष्मसाम्पराय शुद्धयुपशमकसंयता विशेषाधिका । सूक्ष्मसाम्परायक्षपकाः संख्येयगुणाः । शेषाणां सामान्यवत् ॥

संख्येय-गुणाः ।।	=(अपूर्वकरण आठवां अनिवृत्तिकरण नवमो गुणस्थानवाले) संख्यातगुणे हैं अर्थात् प्रत्येक उपशमश्रेणीके आठवें-नवमें गुणस्थानमें २९९ मुनि हैं या कईक आचार्यों के मतमें ३०० अथवा अन्य के मतानुसार ३०४ है और प्रत्येक क्षपक श्रेणीके आठवें-नवमें गुणस्थानमें ५९८ मुनि हैं किसीके मत में प्रत्येकमें ६००, अन्यके मतमें प्रत्येक में ६०८ इसलिये प्रत्येक उपशमश्रेणीवाले से प्रत्येक क्षपक में संख्यात गुणे हुए
सूक्ष्मसाम्परायशुद्धि-उपशमक-संयताः ।।	=सूक्ष्मसांपराय शुद्धसंयत उपशमश्रेणीवाले दशवां गुणस्थानवर्ती
विशेष अधिकाः ।।	=विशेषकरि अधिक हैं
सूक्ष्मसाम्पराय-क्षपकाः ।।	=(उन सूक्ष्मसांपराय उपशमकसे) सूक्ष्मसांपराय क्षपकश्रेणीवाले
संख्येय गुणाः ।।	संख्यातगुणे हैं क्योंकि उपशमक सूक्ष्मसांपराय २९९ वा ३०० वा ३०४ हैं और सूक्ष्मसांपराय क्षपक ५९८ वा ६०० वा ६०८ हैं
शेषाणाम् ।।	=बचे हुये (उपशान्तकषाय-क्षीणकषाय-सयोगकेवली-अयोगकेवली गुणस्थानवर्ती) निका (अल्प-बहुत्व परस्पर)
सामान्यवत्#	=संक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहा हुआ गुणस्थान) सदृश है अर्थात उपशांतकषाय गुणस्थानमें भिन्न भिन्न मतानुसार २९९ वा ३०० वा ३०४ मुनि हैं। क्षीणकषाय में इन से दूने हैं अतः उपशांतकषाय से क्षीणकषायमें संख्यात गुणे हैं ॥ सयोगकेवली ८९८५०२

[७] ज्ञानानुवादेन–मत्यज्ञानिश्रुताज्ञानिषु सर्वतः स्तोकाः सासादनसम्यग्दृष्टयः । मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः । विभङ्गज्ञानिषु सर्वतः स्तोकाः सासादनसम्यग्दृष्टयः । मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयगुणाः ॥

	ये उपशान्तकषायसे और क्षीणकषायसे संख्यात गुणे हैं अयोगकेवली भिन्न भिन्न मतानुसार ५९८ वा ६०० वा ६०८ हैं (देखो अवश्य इस अनुवादके पृष्ठ३०८की टिप्पणी संख्या (२) ये उपशांतकषायवालोंसे तो संख्यात गुणे हैं ॥ क्षीणकषायवालोंके उपर्युक्त अयोगकेवली समान हैं । इनसे सयोगकेवली संख्यात गुणे हैं
ज्ञान अनुवादेन । मति अज्ञानि-श्रुतअज्ञानिषु ॥	=(७) ज्ञानके कथनसे कुमति और कुश्रुत ज्ञानियों में
सर्वतः स्तोकाः ॥ सासादनसम्यग्दृष्टयः ॥	=सबसे थोडे (=स्तोक) सासादनसम्यग्दर्शनवाले (दूसरे गुणस्थानवर्ती) हैं (उन कुमति-कुश्रुत ज्ञानी सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे)
मिथ्यादृष्टयः ॥ अनन्तगुणाः ॥	=मिथ्यादृष्टी अनन्त गुणे हैं या "तिनतैं अनंतगुणां मिथ्यादृष्टि है" जय० वच० ११७
विभङ्गज्ञानिषु ॥ सर्वतः स्तोकाः सासादनसम्यग्-	=कुअवधिज्ञानियोंमें सबसे थोडे सासादन सम्यग्
दृष्टयः ॥	=दर्शनवाले हैं (तिन कुअवधिज्ञानी सासादन सम्यग्दृष्टियोंसें)
मिथ्यादृष्टयः ॥ असंख्येयगुणाः ॥	=(कु-अवधिज्ञानी) मिथ्यादृष्टी असंख्यात गुणे हैं

"सर्वतः स्तोकाः सासादनसम्यग्दृष्टयः । मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः । सर्वतः स्तोकाः विभङ्गज्ञानिषु सासादनसम्यग्दृष्टयः । मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयगुणाः" इस वाक्यके स्थान में संस्कृत सर्वार्थसिद्धि की दोनों आवृत्तियोंकी प्रतियोंमें सर्वतः स्तोकाः सासादनसम्यग्दृष्टयः । मिथ्यादृष्टयो ऽ संख्येयगुणाः ॥ भूलसे छपगया है अर्थात् ' मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः । सर्वतः स्तोकाः विभङ्ग ज्ञानिषु सासादनसम्यग्दृष्टयः ॥ वाक्य छूट गया है क्योंकि १) जयचंदजी की वचनिका हस्त लिखित और मुद्रित (पृष्ठ११७ में "सर्वतैं स्तोक सासादनसम्यग्दृष्टि हैं । तीनितैं अनंत गुणा मिथ्यादृष्टि है । विभंग ज्ञानीनि विषै सर्वतैं थोरा सासादन सम्यग्दृष्टि है । तिनितैं असंख्यातगुणां मिथ्यादृष्टि है" ऐसी भाषा वचनिका है वह शब्दशः उपर्युक्त संस्कृतके प्रथम वाक्य का अनुवाद है ॥ (२) दूसरा हेतु यह है कि संसार में मिथ्यात्व गुणस्थानमें जितने भी जीव हैं सब इन्द्रियवालोंकि, सर्वगतिमें, सर्व कायवालोंमें कुमति ज्ञान और कुश्रुत ज्ञान होते हैं और मिथ्यात्व सासादन दो ही गुणस्थान इन कुमति कुश्रुत ज्ञानियोंके

मंख्येयगुणा । सूक्ष्मसाम्पराय शुध्दयुपशमकसंयता विशेषाधिका । सूक्ष्मसाम्परायक्षपकाः संख्येयगुणाः । शेषाणां सामान्यवत् ॥

मंख्येय-गुणाः ।।	=(अपूर्वकरण आठवां अनिवृत्तिकरण नवमां गुणस्थानवाले) संख्यातगुणे हैं अर्थात् प्रत्येक उपशमश्रेणीके आठवें-नवमें गुणस्थानमें२९९ मुनि हैं या कईक आचार्यों के मतमें ३०० अथवा अन्य के मतानुसार ३०४ है और प्रत्येक क्षपक श्रेणीके आठवें-नवमें गुणस्थानमें ५९८ मुनि हैं किसीके मत में प्रत्येकमें ६००, अन्यके मतमें प्रत्येक में ६०८ इसलिये प्रत्येक उपशमश्रेणीवाले से प्रत्येक क्षपक में संख्यात गुणे हुए
सूक्ष्मसाम्परायशुद्धि-उपशमक-संयता ।।	=सूक्ष्मसांपराय शुद्धसंयत उपशमश्रेणीवाले दशवां गुणस्थानवर्ती
विशेष अधिका ।।	=विशेषकरि अधिक हैं
सूक्ष्मसाम्पराय-क्षपका ।।	=(उन सूक्ष्मसांपराय उपशमकसे) सूक्ष्मसांपराय क्षपकश्रेणीवाले
संख्येय गुणा ।।	संख्यातगुण हैं क्योंकि उपशमक सूक्ष्मसांपराय २९९ वा ३०० वा ३०४ हैं और सूक्ष्मसांपराय क्षपक ५९८ वा ६०० वा ६०८ हैं
शेषाणाम् ।।	=बचे हुये (उपशान्तकषाय-क्षीणकषाय-सयोगकेवली-अयोगकेवली गुणस्थानवर्ती) निका (अल्प-बहुत्व परस्पर)
सामान्यवत्	=संक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहा हुआ गुणस्थान) सदृश है अर्थात उपशांतकषाय गुणस्थानमें भिन्न भिन्न मतानुसार २९९ वा ३०० वा ३०४ मुनि हैं । क्षीण-कषाय में इन से दूने हैं अतः उपशांतकषाय से क्षीणकषायमें संख्यात गुणे हैं ॥ सयोगकेवली ८९८५०२

[७] ज्ञानानुवादेन–मत्यज्ञानिश्रुताज्ञानिषुः सर्वतः स्तोका सासादनसम्यग्दृष्टय ।मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः। विभङ्गज्ञानिषु सर्वत स्तोका सासादनसम्यग्दृष्टय । मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयगुणा ॥

ये उपशान्तकषायसे और क्षीणकषायसे संख्यात गुणे हैं अयोगकेवली भिन्न भिन्न मतानुसार ५९८ या ६०० वा ६०८ हैं
(देखो अवश्य इस अनुवादके पृष्ठ२०८की टिप्पणी संख्या (२)
ये उपशांतकषायवालोंसे सो संख्यात गुणे हैं॥ क्षीणकषायवालोंके उपर्युक्त अयोगकेवली समान हैं। इनसे सयोगकेवली संख्यात गुणे हैं

ज्ञान अनुवादेन । मति-अज्ञानि-श्रुतअज्ञानिषु ॥	=(७) ज्ञानके कथनसे कुमति और कुश्रुत ज्ञानियों में
सर्वतः स्तोकाः ॥ सासादनसम्यग्दृष्टयः ॥	=सबसे थोडे (=स्तोक) सासादनसम्यग्दर्शनवाले (दूसरे गुणस्थानवर्ती) हैं (उन कुमति-कुश्रुत ज्ञानी सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे)
मिथ्यादृष्टयः ॥ अनन्तगुणाः ॥	=मिथ्यादृष्टी अनन्त गुणे हैं या "तिनतैं अनंतगुणां मिथ्यादृष्टि है" जय० पत्र० ११७
विभङ्गज्ञानिषु॥सर्वतः स्तोका सासादनसम्यग्	=कुअवधिज्ञानियोंमें सबसे थोडे सासादन सम्यग्
दृष्टयः ॥	=दर्शनवाले हैं (तिन कुअवधिज्ञानी सासादन सम्यग्दृष्टियोंसे)
मिथ्यादृष्टय ॥ असंख्येयगुणाः ॥	=(कु-अवधिज्ञानी) मिथ्यादृष्टी असंख्यात गुणे हैं

---

[1] "सर्वतः स्तोकाः सासादनसम्यग्दृष्टय । मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः । सर्वतः स्तोकाः विभङ्गज्ञानिषु सासादनसम्यग्दृष्टय । मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयगुणा।" इस वाक्यके स्थान में संस्कृत सर्वार्थसिद्धि की दोनों अनुवादियोंकी प्रतियोंमें सर्वतः स्तोका सासादनसम्यग्दृष्टयः। मिथ्यादृष्टयो ऽ संख्येयगुणाः ॥ मूलमें छपगया है अर्थात् "मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः। सर्वतः स्तोकाः विभङ्ग ज्ञानिषु सासादनसम्यग्दृष्टयः ॥ वाक्य छूट गया है क्योंकि १)जयचन्दजी की वचनिका हस्त लिखित और मुद्रित (पृष्ठ११७ में "सर्वतैं स्तोक सासादनसम्यग्दृष्टि हैं। तीनितैं अनंत गुणां मिथ्यादृष्टि है। विभंग ज्ञानीनि विषै सर्वतैं थोरा सासादन सम्यग्दृष्टि है। तिनितैं असंख्यातगुणां मिथ्यादृष्टि है" ऐसी भाषा वचनिका है वह शब्दशः उपर्युक्त संस्कृतके प्रथम वाक्य का अनुवाद है ॥ (२) दूसरा हेतु यह है कि संसार में मिथ्यात्व गुणस्थानमें जितने भी जीव हैं सब इन्द्रियवालोंके, सर्वगतिमें, सर्व कायवालोंमें कुमति ज्ञान और कुश्रुत मात्र होते हैं और मिथ्यात्व सास्वादन दो ही गुणस्थान इन कुमति कुश्रुत ज्ञानियोंके

मस्न्येयगुणा । सूक्ष्मसाम्पराय शुध्द्युपशमकसंयता विशेषाधिकाः । सूक्ष्मसाम्परायक्षपकाः संख्येयगुणाः । शेषाणां सामान्यवत ॥

संख्येय-गुणाः ॥	=(अपूर्वकरण आठवां अनिवृत्तिकरण नवमां गुणस्थानवाले) संख्यातगुणे हैं अर्थात् प्रत्येक उपशमश्रेणीकें आठवें-नवमें गुणस्थानमें२९९ मुनि हैं या कोईक आचार्यों के मतमें ३०० अथवा अन्य के मतानुसार ३०४ है और प्रत्येक क्षपक श्रेणीके आठवें-नवमें गुणस्थानमें ५९८ मुनि हैं किसीके मत में प्रत्येकमें ६००, अन्यके मतमें प्रत्येक में ६०८ इसलिये प्रत्येक उपशमश्रेणीवाले से प्रत्येक क्षपक में संख्यात गुणे हुए
सूक्ष्मसाम्परायशुद्धि-उपशमक-संयताः ॥	=सूक्ष्मसांपराय शुद्धसंयत उपशमश्रेणीवाले दशवां गुणस्थानवर्ती
विशेष अधिकाः ॥	-विशेषकरि अधिक हैं
सूक्ष्मसाम्पराय-क्षपकाः ॥	=(उन सूक्ष्मसांपराय उपशमकसे) सूक्ष्मसांपराय क्षपकश्रेणीवाले
संख्येय गुणाः ॥	संख्यातगुण हैं क्योंकि उपशमक सूक्ष्मसांपराय २९९ या ३०० या ३०४ हैं और सूक्ष्मसांपराय क्षपक ५९८ या ६०० या ६०८ हैं
शेषाणाम् ॥	=बचे हुये (उपशान्तकषाय-क्षीणकषाय-सयोगकेवली-अयोगकेवली गुणस्थानवर्ती) निका (अल्प-बहुत्व परस्पर)
सामान्यवत्	=संक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहा हुआ गुणस्थान) सदृश है अर्थात उपशांतकषाय गुणस्थानमें भिन्न भिन्न मतानुसार २९९ वा ३०० वा ३०४ मुनि हैं। क्षीणकषाय में इन से दूने हैं अतः उपशांतकषाय से क्षीणकषायमें संख्यात गुणे हैं ॥ सयोगकेवली ८९८५०२

सयतासंयता असंख्येयगुणाः । असंयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणा ॥ मन पर्ययज्ञानिषु सर्वतः स्तोका श्चत्वार उपशमका । चत्वार क्षपका संख्येयगुणा । अप्रमत्तसंयता

	संयमी ५९३९८२०६ है । अत प्रमत्तसंयमी संख्यात गुणे हैं ॥
संयता संयताः ॥	=(उन मति-श्रुत अवधिज्ञानवाले प्रमत्त संयमियों से) संयमा संयमी
असंख्येयगुणाः ॥	=असंख्यातगुणे हैं अर्थात् 'मनुष्य और तिर्यच इन दो गतियों में ही देश सयम गुणस्थान होता है । इन में तेरह करोड़ मनुष्य और पल्य के असंख्यातम भाग तिर्यच हैं ॥ गोम्मट० जीव० गाथा० ६२४ ॥' मतिज्ञान-श्रुतज्ञान-अवधिज्ञान चौथसे बारह गुणस्थान तक ९ स्थानों में है ॥ इन में मति श्रुत ज्ञान चार से बारह गुणस्थान तक सब जीवों के होता है ॥ अवधिज्ञान यह आवश्यकता नहीं कि सबके हो किसीके होता है किसीके नहीं ।
असंयत सम्यग्दृष्टयः ॥ असंख्येयगुणाः ॥	=(देशसंयमियोंसे) असंयत सम्यग्दृष्टि असंख्यात गुणे हैं अर्थात् इन में सात सौ करोड़ मनुष्य हैं और मिश्रवालोंसे असंख्यात गुणे शेष तीन गति के जीव हैं
मनः पर्यय-ज्ञानिषु ॥ सर्वतः स्तोकाः ॥ चत्वारः ॥	=मनः पर्यय ज्ञानियोंमें सबसे अल्प अथवा सबसे थोडे चार (अपूर्वकरण-अनिवृत्ति करण-सूक्ष्मसांपराय उपशांतकषाय)
उपशमका ॥ चत्वार ॥	=उपशम श्रेणीवाले होते हैं (मन पर्यय ज्ञानियों में) चार (अपूर्वकरण-अनिवृत्ति-करण-सूक्ष्मसांपराय क्षीणकषाय)
क्षपकाः ॥ संख्येयगुणा ॥	=क्षपक श्रेणी वाले (उक्त चार उपशम श्रेणीवालोंसे) संख्यात गुणे हैं ॥
अप्रमत्त संयताः ॥	=(उक्त चार क्षपक श्रेणीवालों से) अप्रमत्त संयमी (मन पर्यय ज्ञानी)

मतिश्रुतावधिज्ञानिषु सर्वत स्तोकाश्चत्वार उपशमकाश्चत्वार क्षपकाः संख्येयगुणा । अप्रमत्तसयताः सख्येयगुणा । प्रमत्तसयता सख्येयगुणाः ।

मति-श्रुत अवधिज्ञानिषु ॥ सर्वत स्तोका ॥ चत्वारः ॥	=मति श्रुत अवधिज्ञानियोंमें सबसे अल्प चार (आठसे ग्यारह गुणस्थानतक)
उपशमका ॥ चत्वार ॥	=उपशमश्रेणीवाले हैं । (उन चार उपशमश्रेणीवालोंसे) चार (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसांपराय क्षीणकषाय)
क्षपका ॥ संख्येयगुणा ॥	=क्षपक श्रेणीवाले संख्यातगुणे है अर्थात् भिन्न भिन्न मतानुसार चार उपशम श्रेणीवाले ११९६ वा १२०० वा १२१६ है और चार क्षपकश्रेणीवाले इस प्रकार २३९२ वा २४०० वा २४३२ हैं अतः संख्यातगुणे हैं
अप्रमत्तसंयताः ॥	=(मति-श्रुत-और अवधिज्ञानियोंमें क्षपक श्रेणीवालोंसे) अप्रमत्त संयमी
संख्येयगुणा ॥	=संख्याते गुणे है अर्थात् क्षपक श्रेणीवाले २३९२ वा २४०० वा २४३२ है परन्तु अप्र सातवां गुणस्थानवर्ती २९६९९१०३
प्रमत्तसंयता ॥	

संयतासंयताः असंख्येयगुणाः । असंयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणा ॥ मन पर्ययज्ञानिषु सर्वत स्तोका श्चत्वार उपशमका । चत्वार क्षपका सख्येयगुणा. । अप्रमत्तसंयता

	संयमी ५९३९८२०६ है । अत' प्रमत्तसंयमी संख्यात गुणे हैं ॥
संयता संयताः ॥	=(इन मति-श्रुत-अवधिज्ञानवाले प्रमत्त संयमियों से) संयमा संयमी
असंख्येयगुणाः ॥	=असंख्यातगुणे हैं अर्थात 'मनुष्य और तिर्यंच इन दो गतियों में ही देश संयम गुणस्थान होता है । इन में तेरह करोड़ मनुष्य और पल्य के असंख्यातमे भाग तिर्यंच हैं ॥ गोम्मट० जीव० गाथा० ६२४ ॥' मतिज्ञान श्रुतज्ञान-अवधिज्ञान चौथसे बारह गुणस्थान तक ९ स्थानों में है ॥ इन में मति-श्रुत-ज्ञान चार से बारह गुणस्थान तक सब जीवों के होता है ॥ अवधिज्ञान यह आवश्यकता नहीं कि सबके हो किसीके होता है किसीके नहीं ।
असंयत सम्यग्दृष्टयः ॥ असंख्येयगुणाः ॥	=(देशसंयमियोंसे) असंयत सम्यग्दृष्टि असंख्यात गुणे हैं अर्थात् इन में सात सौ करोड़ मनुष्य हैं और मिश्रवालोंसे असंख्यात गुणे शेष तीन गति के जीव हैं
मनः पर्यय-ज्ञानिषु ॥ सर्वतः स्तोकाः ॥ चत्वारः ॥	=मनः पर्यय ज्ञानियोंमें सबसे अल्प अथवा सबसे थोड़े चार (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसांपराय उपशांतकषाय)
उपशमका ॥ चत्वार' ॥	=उपशम श्रेणीवाले होते ६ (मन' पर्यय ज्ञानियों में) चार (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसांपराय क्षीणकषाय)
क्षपकाः ॥ संख्येयगुणा ॥	=क्षपक श्रेणी वाले (उक्त चार उपशम श्रेणीवालोंसे) संख्यात गुणे हैं ॥
अप्रमत्त संयताः ॥	=(उक्त चार क्षपक श्रेणीवालों से) अप्रमत्त संयमी (मन पर्यय ज्ञानी)

मतिश्रुतावधिज्ञानिषु सर्वतः स्तोकाश्चत्वार उपशमकाश्चत्वार क्षपकाः संख्येयगुणा । अप्रमत्तसंयताः संख्येयगुणा । प्रमत्तसंयता संख्येयगुणाः ।

मति-श्रुत अवधिज्ञानिषु ।। सर्वतः स्तोकाः ।। चत्वारः ।।	=मति श्रुत अवधिज्ञानियोंमें सबसे अल्प चार (आठसे ग्यारह गुणस्थानतक)
उपशमकाः ।। चत्वारः ।।	=उपशमश्रेणीवाले हैं । (उन चार उपशमश्रेणीवालोंसे) चार (अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसांपराय क्षीणकषाय)
क्षपकाः ।। संख्येयगुणाः ।।	=क्षपक श्रेणीवाले संख्यातगुणे हैं अर्थात् भिन्न भिन्न मतानुसार चार उपशम श्रेणीवाले ११९६ वा १२०० वा १२१६ हैं और चार क्षपकश्रेणीवाले इस प्रकार २३९२ वा २४०० वा २४३२ हैं अतः संख्यातगुणे हैं
अप्रमत्तसंयताः ।।	=(मति-श्रुत-और अवधिज्ञानियोंमें क्षपक श्रेणीवालोंसे) अप्रमत्त संयमी
संख्येयगुणाः ।।	=संख्याते गुणे हैं अर्थात् क्षपक श्रेणीवाले २३९२ वा २४०० वा २४३२ हैं परन्तु अप्रमत्त सातवां गुणस्थानवर्ती २९६९९१०३
प्रमत्तसंयताः ।।	=(उन मति-श्रुत-अवधिज्ञानि अप्रमत्तसंयमियोंसे) प्रमत्त संयमी
संख्येयगुणाः ।।	=संख्यातगुणे हैं अर्थात् अप्रमत्त संयमी २९६९९१०३ है और प्रमत्त

होते हैं। (देखो चौबीस स्थान चरचा ग्रंथ) मिथ्यात्व गुणस्थान के जीवों की संख्या इसी ८ व सूत्र की संख्या प्ररूपणामें अनंतानंत कही है (देखो पृष्ठ ९१) और गोम्मटसार जीवकांडकी गाथा १२४ "मिथ्या पुवार्यंताय में मिथ्यादृष्टि अनंतानंत हैं। और "इसी गाथामें सासादन गुणस्थान में बावन करोड़ मनुष्य और बाकी से असंख्यातगुणे इतर तीन गतिके जीव हैं ऐसी गणना लिखी है ॥ इससे स्पष्ट है कि कुमति कुश्रुत ज्ञानियों सासादन गुणस्थानवर्तियों से मिथ्यादृष्टि कुमति कुश्रुतज्ञानी अनंत गुणे ही हैं नकि असंख्यात गुणे ॥ (२) तीसरा हेतु यह भी है कि कुअवधि ज्ञानी भी मिथ्यात्व और सासादन दो गुणस्थानोंमें होते हैं (देखो चौबीस स्थान चरचा) और यदि हम संस्कृत सर्वार्थसिद्धि का पाठ शुद्ध मान लें तो मिथ्यात्व और सासादन गुणस्थानवर्तियों का प्रकरण कुअवधिज्ञानियोंकी अपेक्षासे सर्वथा छूट जाता है ॥ अतः हमने जो उपर्युक्त पाठ लिखा है वह शुद्ध है ॥ मिथ्यादृष्टयः अनन्तगुणा अर्थात् असंयत सम्यग्दृष्टियों से मिथ्यादृष्टि अनन्त गुण हैं ॥ (पृष्ठ ३११) भी उपर्युक्त टिप्पणीका समर्थन करता है ॥

संयतासंयताः असंख्येयगुणाः । असंयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणाः ॥ मनःपर्ययज्ञानिषु सर्वतः स्तोकाश्चत्वार उपशमकाः । चत्वारः क्षपकाः संख्येयगुणाः । अप्रमत्तसंयताः

	संयमी ५९३९८२०६ है । अतः प्रमत्तसंयमी संख्यात गुणे हैं ॥
संयता संयताः ॥	=(उन मति-श्रुत-अवधिज्ञानवाले प्रमत्त संयमियों से) संयमासंयमी
असंख्येयगुणाः ॥	=असंख्यातगुणे हैं अर्थात् 'मनुष्य और तिर्यच इन दो गतियों में ही देश संयम गुणस्थान होता है । इन में तेरह करोड़ मनुष्य और पल्य के असंख्यातवे भाग तिर्यंच है ॥ गोम्मट० जीव० गाथा० ६२४ ॥' मतिज्ञान-श्रुतज्ञान-अवधिज्ञान चौथेसे बारह गुणस्थान तक ९ स्थानों में है ॥ इन में मति श्रुत ज्ञान चार से बारह गुणस्थान तक सब जीवों के होता है ॥ अवधिज्ञान यह आवश्यकता नहीं कि सबके हो किसीके होता है किसीके नहीं ।
असंयत सम्यग्दृष्टयः ॥ असंख्येयगुणाः ॥	=(देशसंयमियोंसे) असंयत सम्यग्दृष्टि असंख्यात गुणे हैं अर्थात् इन में सात सौ करोड़ मनुष्य हैं और तिर्यंचोंसे असंख्यात गुणे शेष तीन गति के जीव हैं
मनः पर्यय-ज्ञानिषु ॥ सर्वतः॥ स्तोकाः ॥ चत्वारः ॥	=मनः पर्यय ज्ञानियोंमें सबसे अल्प अथवा सबसे थोड़े चार (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसांपराय उपशांतकषाय)
उपशमकाः ॥ चत्वारः ॥	=उपशम श्रेणीवाले होते हैं (मनः पर्यय ज्ञानियों में) चार (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसांपराय-क्षीणकषाय)
क्षपकाः ॥ संख्येयगुणाः ॥	=क्षपक श्रेणी वाले (उक्त चार उपशम श्रेणीवालोंसे) संख्यात गुणे हैं ॥
अप्रमत्त संयताः ॥	=(उक्त चार क्षपक श्रेणीवालों से) अप्रमत्त संयमी (मनः पर्यय ज्ञानी)

मतिश्रुतावधिज्ञानिषु सर्वतः स्तोकाश्चत्वार उपशमकाश्चत्वार क्षपकाः सख्येयगुणा । अप्रमत्तसंयताः सख्येयगुणा । प्रमत्तसंयता सख्येयगुणा ।

मति-श्रुत अवधिज्ञानिषु ॥ सर्वतःस्तोकाः ॥ चत्वारः ॥	=मति श्रुत अवधिज्ञानियोंमें सबसे अल्प चार (आठसे ग्यारह गुणस्थानतक)
उपशमकाः ॥ चत्वारः ॥	=उपशमश्रेणीवाले हैं। (उन चार उपशमश्रेणीवालोंसे) चार (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसांपराय क्षीणकषाय)
क्षपकाः ॥ संख्येयगुणाः ॥	=क्षपक श्रेणीवाले संख्यातगुणे हैं अर्थात् भिन्न भिन्न मतानुसार चार उपशम श्रेणीवाले ११९६ या १२०० वा १२१६ हैं और चार क्षपकश्रेणीवाले इस प्रकार २३९२ या २४०० या २४३२ हैं अतः संख्यातगुणे हैं
अप्रमत्तसंयताः ॥	=(मति-श्रुत-और अवधिज्ञानियोंमें क्षपक श्रेणीवालोंसे) अप्रमत्त संयमी
संख्येयगुणाः ॥	=संख्याते गुणे हैं अर्थात् क्षपक श्रेणीवाले २३९२ या २४०० या २४३२ हैं परन्तु अप्रमत्त सातवां गुणस्थानवर्ती २९६९९१०३
प्रमत्तसंयताः ॥	=(उन मति-श्रुत-अवधिज्ञानि अप्रमत्तसंयमियोंसे) प्रमत्त संयमी
संख्येयगुणाः ॥	=संख्यातगुणे हैं अर्थात् अप्रमत्त संयमी २९६९९१०३ हैं और प्रमत्त

कहे हैं • (देखो चौबीस स्थान चरचा ग्रंथ) मिथ्यात्व गुणस्थान के जीवों की संख्या इसी • प्रसूत्र की संख्या प्ररूपणामें अनंतानंत कही है (देखो पृष्ठ ९१) और गोम्मटसार जीवकांडकी गाथा १२४ "मिथ्या सुद्धाणंताय" में मिथ्यादृष्टि अनंतानंत हैं। और "इसी गाथामें सासादन गुणस्थान में बावन कराड़ मनुष्य और नारकों से असंख्यातगुणे इतर तीन गतिके जीव हैं ऐसी गणना लिखी है ॥ इससे स्पष्ट है कि कुमति कुश्रुत ज्ञानियों सासादन गुणस्थानवर्तियों से मिथ्यादृष्टि कुमति कुश्रुतज्ञानी अनंत गुणे ही हैं नकि असंख्यात गुणे • (३) तीसरा हेतु यह भी है कि कुमति ज्ञानी भी मिथ्यात्व और सासादन दो गुणस्थानोंमें होते हैं (देखो चौबीस स्थान चरचा) और यदि हम सरहठ सर्वार्थसि० जि का पाठ शुद्ध मान लें तो मिथ्यात्व और सासादन गुणस्थानवर्तियों का प्रकरण कुमतिज्ञानियोंकी अपेक्षामें सर्वथा छूट जाता है • अतः हमने जो उपर्युक्त पाठ लिखा है वह शुद्ध है ॥ मिथ्यादृष्टयः अनन्तगुणाः अर्थात् असंयत सम्यग्दृष्टियों से मिथ्यादृष्टि अनन्त गुणे हैं ॥ (पृष्ठ ३११) भी उपर्युक्त टिप्पणीका समर्थन करता है ॥

(८) सँयमानुवादेन–सामायिकच्छेदोपस्थापनशुद्धिसँयतेषु द्वयोरुपशमकयोस्तुल्यसँख्या। तत सख्येयगुणौ क्षपकौ। अप्रमत्ता संख्येयगुणा। प्रमत्ता सख्येयगुणाः॥ परिहारविशुद्धिसँयतेषु अप्रमत्तेभ्य• प्रमत्ताः सख्येयगुणा'। सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसँयतेषु उपशमकेभ्य•

---

[८] संयम-अनुवादेन ;। सामायिक-च्छेदोपस्थापन-शुद्धिसंयतेषु ;। द्वयोः ;।	=(८) संयमके कथनानुसारकरि सामायिक च्छेदोपस्थापना =शुद्धिसंयमियों में दो (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण)
उपशमकयोः ;। तुल्य-संख्या '॥ ततः	=उपशमश्रेणीवालोंकी समान गणना है। उन (दो उपशमश्रेणीवालों) से
संख्येय-गुणौ ;। क्षपकौ ;।	=संख्यात गुणे दो (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण) क्षपक श्रेणीवाले (सामायिक-च्छेदोपस्थापना शुद्धि संयमी) हैं अर्थात् प्रत्येक उपशमश्रेणी वालों की संख्या २९९ वा ३०० वा ३०४ है और प्रत्येक क्षपकश्रेणीवालोंकी संख्या ५९८ वा ६०० वा ६०८ हैं
अप्रमत्ताः ;।	=अप्रमत्त संयमी (सामायिक और च्छेदोपस्थापन शुद्धि संयमी)
संख्येय-गुणा' ;।	=(उक्त दो क्षपक सामायिक और च्छेदोपस्थापन शुद्धि संयमियोंसे) संख्यातगुणे हैं अर्थात् क्षपक श्रेणी प्रत्येक गुणस्थानवर्ती ५९८ वा ६०० वा ६०८ है और अप्रमत्तसंयमी गणना में २९६९९१०३ है
प्रमत्ताः ;।	=प्रमत्तसंयमी (सामायिक और च्छेदोपस्थापना शुद्धिसंयमी) (उन अप्रमत्तसंयमी सामायिक-च्छेदोपस्थापना शुद्धिसंयमियों से)
संख्येय-गुणा' ;। परिहारविशुद्धि-संयतेषु ;।	=संख्यात गुणे हैं॥ परिहार विशुद्धिसंयमियों में
अप्रमत्तेभ्यः ;। प्रमत्ताः ;। संख्येय-गुणाः ;।	–अप्रमत्तसंयमियोंसे प्रमत्तसंयमी संख्यात गुणे हैं
सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयतेषु ;। उपशमकेभ्यः ;।	–सूक्ष्मसाम्पराय शुद्धिसंयमियों में उपशमश्रेणी वालोंसे

संख्येयगुणा । प्रमत्तसंयता संख्येयगुणा ॥ केवलज्ञानिषु अयोगकेवलिभ्य सयोगकेवलिनः संख्येयगुणाः ॥

संख्येय-गुणाः ।।	=संख्यात गुणे हैं । (अप्रमत्तसंयमी मनः पर्ययज्ञानियोंसे)
प्रमत्तसंयता । संख्येयगुणाः ।।	=प्रमत्तसंयमी (मनः पर्ययज्ञानी) संख्यात गुणे हैं । मनः पर्यय ६ से १२ तक है
केवल ज्ञानिषु ।। अयोगकेवलिभ्यः ।। सयोग	=केवल ज्ञानियोंमें अयोगकेवलियोंसे सयोग
केवलिनः । संख्येयगुणा ।।	=केवली संख्यात गुणे हैं अर्थात् अयोगकेवली भिन्न भिन्न मतमें ५९८ या ६०० या ६०८ हैं और सयोगकेवली ८९८५०२ तक हो सकते हैं

(१) अयोगकेवलिनः एका वा द्वौ वा त्रयो वा उत्कर्षेणाष्टोत्तरशतसंख्या स्वकालेन समुदिताः तेभ्यः संख्येयाः सयोगकेवलिनः ॥ ८९८५०२ । अयोग

केवलिनः ।। एकः ।। द्वौ ।। वा त्रयः ।।	= अयोगकेवली (जघन्यकरि) एक अथवा दो अथवा तीन (प्रवेशापेक्षाकरि)
वा अष्टोत्तरशतसंख्याः ।। स्वकालेन ।।	= वा उत्कृष्टकरि एकसौआठकी संख्यामें (प्रवेशापेक्षाकरि) अपने अपने कालमें
समुदिताः ।। तेभ्यः ।। संख्येयाः ।। सयोगकेवलिनः ।।	= समुदायरूप इन (अयोगकेवलीनि) से संख्याते (गुणे) सयोगकेवली हैं
८९८५०२	= (अर्थात् तेरहमें) आठ लाख हजार अठानवे पांचसौ दोय (बखाने)

(२) उपर्युक्त विषय से यह बात झलकती है कि चौदह गुणस्थानमें उत्कृष्ट संख्या ६० लक्ष अयोगकेवलीकी हो सकती है । क्योंकि इस अनुवादके पृष्ठ ९४ और ९५के वाक्य कि 'चायाः क्षपका अयोगकेवलिनश्च प्रवेशेन एको वा द्वौ वा त्रयो वा । उत्कर्षेणाष्टोत्तरशतसंख्या । स्वकालेन समुदिताः संख्येयाः' से प्रगट है कि क्षपकश्रेणी वालोंके प्रवेश होनेके तुल्य अयोगकेवलियोंका भी प्रवेश होता है और क्षपकश्रेणीवाले जीव (गोम्मटसार जीवकाण्ड गाथा ६२८ बत्तीसं अडदालं इत्यादि के अनुसार) अन्तराय रहित आठ समय पर्यंतोंमें से प्रथम समयमें ३२, दूसरे समयमें ४८ तीसरे समयमें ६०, चतुर्थ समयमें ७२ पांचवे समयमें ८४, छठे समयमें ९६, सातवे समयमें १०८ आठवे समयमें १०८ होते हैं । सर्वयोग ६०८ हुये । किसी किसी आचार्यका मत है कि क्षपक श्रेणीवाले ५९८ प्रत्येक २ गुणस्थानमें उत्कृष्ट समुदाय हो सके हैं कोईकके मतमें ६०० कोईकके मतमें ६०८ होते हैं गोम्मटसार जीव० गाथा ६३१ सत्तादी अट्ठंता इत्यादिमें जो क्षपक श्रेणी प्रत्येक गुणस्थानमें ५९८ माने हैं वे उन आचार्योंके मतानुसार हैं जो हैं क्षपक उपशामक २९९ और प्रत्येक क्षपक ५९८ हो सके हैं इस गाथामें तीन घाटि नौ करोड मुनिकी संख्या का वर्णन है ।

(३) सयोगकेवलिनः तत्त्व पर पृष्ठ ३१०

असंयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणाः । मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः ॥ (९) दर्शनानुवादेन–चक्षुर्दर्शनिनां मनोयोगिवत् ॥ अचक्षुर्दर्शनिनां काययोगिवत् ॥

	अर्थात् मिश्रगुणस्थान भी चारों गतियोंमें होता है इसमें एकसौ चार करोड़ मनुष्य और सासादनवालोंसे संख्यात गुणे शेष तीन गतिके जीव हैं (गोम्मट० जीव० गाथा ६२४) संस्कृत सर्वार्थसिद्धि मुद्रित की दोनों आवृत्तियोंमें संख्येयके स्थानमें असंख्येय अशुद्ध छपगया है ॥
असंयत-सम्यग्दृष्टयः ॥ असंख्येय-गुणाः ॥	=(उन मिश्रगुणस्थानवर्तियोंसे) असंयमी सम्यग्दर्शनवाले असंख्यात =गुणे हैं अर्थात् चतुर्थ गुणस्थान चारों गतियोंमें होता है । इनमें सातसौ करोड़ मनुष्य हैं और मिश्रवालोंसे असंख्यातगुणे शेष तीन गतिके जीव हैं (गोम्मट०जीव० गाथा ६२४ देखो)
मिथ्यादृष्टयः ॥ अनन्तगुणाः ॥	=मिथ्यादर्शनवाले (इन असंयमी सम्यग्दर्शनवालोंसे) अनन्तगुणे हैं ॥
(९) दर्शन-अनुवादेन ॥ चक्षुस्-दर्शनिनाम् ॥	=(९) दर्शनकी विवक्षासे चक्षुर्दर्शनवालोंका (अल्प-बहुत्व)
मनस्-योगिन्-वत्॥	=मनयोगीवालोंके सदृश है अर्थात् पञ्चेन्द्रियवत् है क्योंकि पृष्ठ ३०० के अनुकूल मनयोगियोंका पञ्चेन्द्रियवत् है जिसके कथन के लिये पृष्ठ २९८ चार अपूर्वकरण पञ्चेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीव (अन्य किसी गुणस्थानके ? पञ्चेन्द्रिय जीवोंसे) असंख्यात गुणे हैं पृष्ठ २९९ के अन्ततक क्रमशः पढ़लो
अचक्षुर्दर्शनिनाम् ॥ काययोगिवत्॥	=अचक्षुर्दर्शनवालोंका (अल्प-बहुत्व) काययोगियोंके सदृश है और काय योगियों का गुणस्थान तुल्य है (सयोगी अयोगीको छोड़कर पृष्ठ) २९८मपूर्ण-२९९तक)

(१) यथार्थमें यह शब्द चक्षुस्दर्शन है इसका स् का परिवर्तन र् में होकर चक्षुर्दर्शन होगया । स और विसर्ग ( ) का परिवर्तन र् में होनेके लिये पृष्ठ १३ की टिप्पणी [१] देखो ॥

क्षपका सख्येयगुणा ॥ यथाख्यातविहारशुद्धिसँयतेषु उपशान्तकपायेभ्य क्षीणकषाया सख्येयगुणा ॥ अयोगकेवलिनस्तावन्त एव । सयोगकेवलिन सख्येयगुणा ॥ सँयतासँयतानां नास्त्यल्पबहुत्वम् । असँयतेषु सर्वत स्तोका सासादनसम्यग्दृष्टय । सम्यङ्मिथ्यादृष्टय सख्येयगुणा ।

क्षपका ॥ सख्येयगुणा ॥	=क्षपक श्रेणीवाले (सूक्ष्मसाम्पराय शुद्धिसंयमी) संख्यातगुणे हैं
यथाख्यात विहार शुद्धि-संयतेषु ॥ उपशांत	=यथाख्यात विहार शुद्धिसंयमियोंमें उपशांत
कषायेभ्य ॥ क्षीणकषाया ॥	=कषाय ग्यारहवां गुणस्थानवालोंसे क्षीणकषाय (यथाख्यात संयमी)
संख्येय-गुणा ॥	=संख्यातगुणे हैं अर्थात् ग्यारहवेंमें २९९ वा ३०० वा ३०४ मुनि हैं और क्षीणकषाय बारहवें गुणस्थानमें ५९८ वा ६०० वा ६०८ हैं
अयोगकेवलिन ॥ तावन्त ॥ एव ॥	= अयोगकेवली (जितने क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती हैं) उतने ही हैं अर्थात् ५९८ वा ६०० अथवा ६०८ हैं
सयोगकेवलिन ॥ संख्येय-गुणा ॥	= सयोगकेवली (अयोगकेवलियोंसे) संख्यातगुणे हैं (८९८५०२ सयोगी हैं)
संयतासंयतानाम् ॥ न अस्ति अल्प-बहुत्वम् ॥	= संयमासंयमी वा देशसंयमियोंका अल्पबहुत्व नहीं है क्योंकि गुणस्थान तीन भागोंमें विभक्त हैं असंयत (प्रथमसे चार गुणस्थान तक), संयत छठेसे चौदह गुणस्थानतक और संयतासयत एक ही है इससे अल्पबहुत्व नहीं है (देखो टिप्पणी (१) पृष्ठ २९४ २९५)
असंयतेषु ॥	= असंयमियोंमें अर्थात् प्रथमगुणस्थान वालोंसे चौथा गुणस्थानवालोंमें
सर्वत स्तोका ॥ सासादन-सम्यग्दृष्टय ॥	= सबसे थोड़े सासादन सम्यग्दृष्टी हैं । अर्थात् सासादनगुणस्थान चारों गतियोंमें होता है । इनमें बावन करोड़ मनुष्य और बाकीके असंख्यातगुणे इतरतीनिगति के जीव हैं ॥ गोमट्ट०जीव०गाथा ६२४
सम्यङ्मिथ्यादृष्टय ॥ संख्येय-गुणा ॥	= (उन सासादन सम्यग्दृष्टियोंसे) मिश्रगुणस्थानवर्ती संख्यातगुण हैं

तेज पद्मलेश्यानां सर्वत स्तोका अप्रमत्ताः । प्रमत्ता सख्येयगुणा । एवमितरेषां पञ्चेन्द्रियवत् ॥

तेजः पद्म-लेश्यानाम् ॥ सर्वतः स्तोकाः ॥ अप्रमत्ताः ॥ =पीत-पद्म लेश्यावालोंमें सबसे थोड़े अप्रमत्त संयमी हैं — अर्थात् अप्रमत्त विरत २९६९९१०३ मुनि हैं (पट्टी सप्तमी अर्थ में है)

प्रमत्ताः ॥ संख्येय-गुणाः ॥ =(इन अप्रमत्त संयमियों से) प्रमत्त संयमी संख्यात गुणे हैं अर्थात् इने (५९३९८२०६) मुनि हैं

एवम् इतरेषाम् ॥ पञ्चेन्द्रियवत् ॥ =ऐसे अन्य (मिथ्यात्व गुणस्थान से संयतासंयत पीत-पद्म लेश्यावालों) का =पंचेन्द्रिय जीवों के सदृश (अल्प-बहुत्व) है क्योंकि पीत-पद्मलेश्यावाले पंचेन्द्रिय ही होते हैं और मिथ्यात्वसे अप्रमत्त गुणस्थान तक हैं अर्थात् मनुष्य और तिर्यंच गतियों में ही देशसंयम गुणस्थान होता है इन में तेरह करोड़ मनुष्य और पल्यके असंख्यातवां भाग तिर्यंच हैं इस संख्यामें से शुक्ललेश्यावाले संयमासंयमीको घटादेनेसे शेष पीत-पद्मलेश्यावाले रहजाते हैं सासादन गुणस्थानमें बावन करोड़ मनुष्य और श्रावकोंसे असंख्यातगुणे अन्य तीन गतिके जीव हैं इनमेंसे कृष्ण-नील-कापोत और शुक्ललेश्यावालोंको घटादेनेपर शेष जीव पीत-पद्मलेश्यावाले रहजावेंगे । मिश्रगुणस्थानमें एक सौ चार करोड़ मनुष्य और सासादनवालोंसे संख्यातगुणे तीन गतिके जीव हैं । इनमें से कृष्णनील-कापोत और शुक्ललेश्या वालोंको घटाने से शेष पीतपद्मलेश्या वाले जीव रहजाते हैं । असंत सम्यग्दृष्टीयोंमें सातसौ करोड़ मनुष्य हैं और-मिश्रवालों से असंख्यातगुणे शेष तीन गतिके जीव हैं इनमें

अवधिदर्शनिनामवधिज्ञानिवत् ॥ केवलदर्शनिना केवलज्ञानिवत् ॥ (१०) - लेश्यानुवादेन- कृष्णनील-कापोतलेश्याना असंयतवत् ॥

क्योंकि चक्षुर्दर्शन, अचक्षुर्दर्शनवाले मिथ्यात्वसे क्षीणकषाय तक होते हैं ॥

अवधिदर्शनिनाम् ॥ अवधिज्ञानिवत्०

=अवधि दर्शनवालों का (अल्प-बहुत्व) अवधि ज्ञानियों के सदृश है अर्थात पृष्ठ ३०६ अवधि ज्ञानियोंमें असंयत सम्यग्दृष्टि असंख्यात गुण हैं । पृष्ठ ३०७ में देखो ॥ अवधिज्ञान चौथेसे बारहवें गुणस्थानतक है ॥

केवलदर्शनिनाम ॥ केवलज्ञानिवत्०

केवल दर्शन (तेरहवें चौदहवें गुणस्थान) वालों का केवल ज्ञानियोंवत् है । अर्थात् केवल ज्ञानियोंमें सयोग केवली अयोग केवलियों से संख्यात गुणे हैं अयोग केवली ५९८ केशक के मत में ६९० अथवा केशक के मतानुसार ६०८ हैं और सयोग केवली ८९८५०२ हो सके हैं ॥

(१०) लेश्या-अनुवादेन-कृष्ण-नील-कापोतलेश्यानाम् ॥ असंयतवत्०

=लेश्या के कथनानुसार स कृष्ण-नील-कापोत लेश्यावालों का (अल्प-बहुत्व) =असंयमी (मिथ्यात्व-सासादन मिश्र-अविरत गुणस्थानवर्ती) नि सम है ॥ अर्थात् ये तीन अशुभ लेश्यायें उक्त चार गुणस्थान तक ही हैं। भावार्थ सासादन गुणस्थान चारों गतियों में होता है । इनमें बावन करोड मनुष्य और बाकीसे असंख्यात गुणे इतर तीन गतिके जीव हैं । ये इन चारों गुणस्थानोंमें सबसे थोड़े हैं । मिश्रगुणस्थानमें १०४ करोड़ मनुष्य हैं । और सासादनवालोंसे संख्यातगुणे शेष तीन गतियोंके जीव हैं। अविरत गुणस्थान भी चारों गतियोंमें होता है इनमें सातसौ करोड़ मनुष्य हैं । और मिश्रवालोंसे असंख्यातगुणे शेष तीन गतिके जीव हैं ॥ मिथ्यादृष्टि इन असंयत सम्यग्दृष्टियोंसे अनंतगुणे हैं (पृष्ठ ३११) वैसे अनंतानंत हैं ॥ (गाथा ६२४)

तेजःपद्मलेश्यानां सर्वतः स्तोका अप्रमत्ताः । प्रमत्ताः संख्येयगुणाः । एवमितरेषां पञ्चेन्द्रियवत् ॥

तेजः पद्म-लेश्यानाम् ॥ सर्वतः स्तोकाः ॥ अप्रमत्ताः ॥	=पीत-पद्म लेश्यावालोंमें सबसे थोड़े अप्रमत्त संयमी हैं अर्थात् अप्रमत्त विरत २९६९९१०३ मुनि हैं (षष्ठी सप्तमी अर्थ में है)
प्रमत्ताः ॥ संख्येय-गुणाः ॥	=(इन अप्रमत्त संयमियों से) प्रमत्त संयमी संख्यात गुणे हैं अर्थात् इने (५९३९८२०६) मुनि हैं
एवम् ॥ इतरेषाम् ॥ पञ्चेन्द्रियवत् ॥	=ऐसे अन्य (मिथ्यात्व गुणस्थान से संयतासंयत पीत-पद्म लेश्यावालों) का =पंचेन्द्रिय जीवों के सदृश (अल्प-बहुत्व) है क्योंकि पीत-पद्मलेश्यावाले पंचेन्द्रिय ही होते हैं और मिथ्यात्वसे अप्रमत्त गुणस्थान तक हैं। अर्थात् मनुष्य और तिर्यंच गतियों में ही देशसंयम गुणस्थान होता है इन में तेरह करोड़ मनुष्य और पल्यके असंख्यातवां भाग तिर्यंच हैं इस संख्यामें से शुक्लेश्यावाले संयमासंयमीको घटावेनेसे शेष पीत-पद्मलेश्यावाले रहजाते हैं सासादन गुणस्थानमें बावन करोड़ मनुष्य और श्रावकोंसे असंख्यातगुणे अन्य तीन गतिके जीव हैं इनमेंसे कृष्ण-नील-कापोत और शुक्लेश्यावालोंको घटावेनेपर शेष जीव पीत-पद्मलेश्यावाले रहजावेंगे। मिश्रगुणस्थानमें एक सौ चार करोड़ मनुष्य और सासादनवालोंसे संख्यातगुणे तीन गतिके जीव हैं। इनमें से कृष्णनील-कापोत और शुक्लेश्या वालोंको घटाने से शेष पीतपद्मलेश्या वाले जीव रहजाते हैं। असंयत सम्यग्दृष्टीयोंमें सातसौ करोड़ मनुष्य हैं और मिश्रवालों से असंख्यातगुणे शेष तीन गतिके जीव हैं इनमें से कृष्ण-नील

शुक्लेश्यानां सर्वतः स्तोका उपशमकाः। क्षपकाः संख्येयगुणाः। सयोगकेवलिनः संख्येयगुणाः। अप्रमत्तसंयताः संख्येयगुणाः। प्रमत्तसंयताः संख्येयगुणाः। संयतासंयताः असंख्येयगुणाः। सासादनसम्यग्दृष्टयः असंख्येयगुणाः। सम्यग्मिथ्यादृष्टयः संख्येयगुणाः। मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयगुणाः। असंयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणाः। (११) भव्यानुवादेन –

	कापोत–शुक्ललेश्यावालों को अतुल से क्षेपक पीत–पद्म लेश्यावाले रह जाते हैं
शुक्लेश्यानाम् ॥ सर्वतः स्तोकाः ॥ उपशमकाः ॥	=शुक्ललेश्यावालों में सबसे अल्प (चार) उपशम श्रेणीवाले हैं
क्षपकाः ॥ संख्येय–गुणाः ॥	=(चार उपशम श्रेणीवालोंसे) (चार) क्षपक श्रेणीवाले संख्यात गुणे हैं अर्थात् प्रत्येक उपशम श्रेणीवाले गुणस्थान में २९९ वा ३०४ वा ३४८ हैं और प्रत्येक क्षपक श्रेणीवाले गुणस्थान में ५९८ वा ६०८ वा ६०८ जीव हैं
सयोगकेवलिनः ॥ संख्येयगुणाः ॥	=(उन चार क्षपक श्रेणीवालोंसे) सयोगकेवली संख्यात गुणे हैं। ८९८५०२ हैं॥
अप्रमत्तसंयताः ॥ संख्येयगुणाः ॥	=(सयोगकेवलियों से) अप्रमत्त संयमी संख्यात गुणे हैं। २९६९९१०३ हैं॥
प्रमत्तसंयताः ॥ संख्येयगुणाः ॥	=(अप्रमत्त संयमियों से) प्रमत्तसंयमी संख्यात गुणे हैं। ५९३९८२०६ हैं॥
संयता संयताः ॥ असंख्येय–	=(प्रमत्त संयमी शुक्ललेश्यावालों से) संयमासंयमी (शुक्ललेश्यावाले) असंख्यात
गुणाः ॥ सासादन–सम्यग्दृष्टयः ॥	=गुणे हैं॥ (देशसंयमी शुक्ललेश्यावालोंसे) सासादनसम्यग्दृष्टि (शुक्ललेश्या) वाले
असंख्येयगुणाः ॥	=असंख्यात गुणे हैं॥ (सासादन सम्यग्दृष्टि शुक्ललेश्यावालों से)
सम्यग्मिथ्यादृष्टयः ॥ संख्येयगुणाः ॥	=मिश्रगुणस्थानवर्ती (शुक्ललेश्यावाले) संख्यात गुणे हैं॥
मिथ्यादृष्टयः ॥	=(मिश्रगुणस्थानवर्ती शुक्ललेश्यावालों से) मिथ्या दृष्टि (शुक्ललेश्यावाले)
असंख्येयगुणाः ॥ असंयत–सम्यग्दृष्टयः ॥	=असंख्यात गुणे हैं। मिथ्या दृष्टि शुक्लले[श्या]वालों से) असंयत सम्यग्दृष्टि
असंख्येयगुणाः ॥ [११२] भव्य अनुवादेन ॥	(शुक्ललेश्यावाले) असंख्यात गुणे हैं। भव्य (जीवों) के कथन करि ॥

…नाम, पद में षष्ठी विभक्ति अष्टाध्यायी २, ३, ४१, सूत्रसे सप्तमी विभक्ति के अर्थ में है। पृष्ठ १३८ में यह टिप्पणी पूर्ण रूप से है॥

शुक्ललेश्याना सर्वत स्तोका उपशमका । क्षपका संख्येयगुणा । सयोगकेवलिन संख्येयगुणा । अप्रमत्तसंयता संख्येयगुणा । प्रमत्तसंयता संख्येयगुणा । संयतासंयता-असंख्येयगुणा । सासादनसम्यग्दृष्टयः असंख्येयगुणा । सम्यग्मिथ्यादृष्टय संख्येयगुणा । मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयगुणा । असंयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणा । (११) भव्यानुवादेन –

	कापोत–शुक्ललेश्यावालों को, अठारह से क्षेपक मीव–पद लेश्यावाले रह जाते हैं–
शुक्लेश्यानाम् ॥ सर्वत स्तोका ॥ उपशमका ॥	=शुक्ललेश्यावालों में सबसे अल्प (चार) उपशम-श्रेणीवाले हैं
क्षपका ॥ संख्येय–गुणा ॥	=(चार उपशम श्रेणीवालों से) (चार) क्षपक श्रेणीवाले संख्यात गुणे हैं अर्थात् प्रत्येक उपशम श्रेणीवाले गुणस्थान में २९९ या ३०४ या ३४८ हैं और प्रत्येक क्षपक श्रेणीवाले गुणस्थान में ५९८ या ६०८ या ६९८ जीव हैं
सयोगकेवलिन ॥ संख्येयगुणा ॥	=(उन चार क्षपक श्रेणीवालों से) सयोगकेवली संख्यात गुणे हैं [illegible] हैं ॥
अप्रमत्तसंयता ॥ संख्येयगुणा ॥	=(सयोगकेवलियों से) अप्रमत्त संयमी संख्यात गुणे [illegible] हैं ॥
प्रमत्तसंयता ॥ संख्येयगुणा ॥	=(अप्रमत्त संयमियों से) प्रमत्त संयमी संख्यात गुणे हैं ५९३९८२०६ हैं ॥
संयता संयता ॥ असंख्येय–	=(प्रमत्त संयमी शुक्ललेश्यावालों से) संयमासंयमी (शुक्ललेश्यावाले) असंख्यात
गुणा । सासादन–सम्यग्दृष्टय ॥	=गुणे हैं ॥ (देशसंयमी शुक्ललेश्यावालों से) सासादनसम्यग्दृष्टि (शुक्ललेश्या) वाले
असंख्येयगुणा ॥	=असंख्यात गुणे हैं ॥ (सासादन सम्यग्दृष्टि शुक्ललेश्यावालों से)
सम्यग्मिथ्यादृष्टय ॥ संख्येयगुणा ॥	=मिश्रगुणस्थानवर्ती (शुक्ललेश्यावाले) संख्यात गुणे हैं
मिथ्यादृष्टय ॥	=(मिश्रगुणस्थानवर्ती शुक्ललेश्यावालों से) मिथ्यादृष्टि (शुक्ललेश्यावाले)
असंख्येयगुणा ॥ असंयत–सम्यग्दृष्टय ॥	=असंख्यात गुणे हैं । मिथ्या दृष्टि शुक्ललेश्यावालों से) असंयत सम्यग्दृष्टि
असंख्येयगुणा ॥ [११२] भव्य अनुवादेन ॥	(शुक्ललेश्यावाले) असंख्यात गुणे हैं । भव्य (जीवों) के कथन करि ॥

शुक्ललेश्यानाम शब्द में छठी विभक्ति महाध्यायी २, ३, ४१, सूत्र से सप्तमी विभक्ति के अर्थ में है । पृष्ठ ११८ में यह टिप्पणी पूर्ण रूप से है ॥

असँदतसम्यग्दृष्ट्योऽसंख्येयगुणा । शेषाणां नास्त्यल्पबहुत्वम् । विपक्षे एकैकगुणस्थानग्रहणात् ॥ (१३) सञ्ज्ञानुवादेन-सञ्ज्ञिनां चक्षुर्दर्शनिवत् ।

असंयत	–[विसंयमी उपशम सम्यग्दर्शनवालोंसे] असंयमी [उपशम]
सम्यग्दृष्टय' ॥ असंख्येयगुणा' ॥ विपक्षे ॥	–सम्यग्दर्शनवाले असंख्यात गुणे है । पक्षान्तरमें या अन्य ओर में
एक-एक-गुणस्थान-ग्रहणात् ॥ ॥	–एक एक गुणस्थान का (भिन्न भिन्न) मान लनेसे या विवक्षित एक एक गुणस्थान होने से
शेषाणाम् ॥	–बचे हुये (मिथ्यात्व-सासादन-मिश्र-असंयत सम्यग्दृष्टिवालोंके-
अल्प-बहुत्वम् ॥ न अस्ति ।	–थोड़ा और अधिकपना नहीं है (क्योंकि जब एक प्रकार की वस्तुयें कई स्थानों में हों तब कहते हैं कि अमुक स्थानकी वस्तुयें इतर स्थान की वस्तुओं से अल्प बहुत्व है । मिथ्यादृष्टि एक प्रथम गुणस्थान में ही है ॥ सासादन सम्यग्दृष्टि दूसरे में ही हैं सम्यग्मिथ्यादृष्टी मिश्र तीसरे गुणस्थान में ही हैं और असंयमी सम्यग्दृष्टी एक अविरत गुणस्थान में ही हैं इसलिये इन चारों गुणस्थानों में सम्यक्त्वकी अपेक्षा से अल्प बहुत्व नहीं है परन्तु असंयमकी अपेक्षा से प्रथम गुणस्थान से चतुर्थ तक (असंयम होने से) है और यह असंयमकी अपेक्षा से अल्प बहुत्व इस प्रकार है कि असंयमियोंमें सबसे थोड़े सासादन सम्यग्दृष्टी हैं । इनसे मिश्रगुणस्थानवर्ती संख्यात गुणे हैं । इनसे अविरत सम्यग्दर्शन वाले असंख्यात गुणे हैं । इनसे मिथ्यादर्शनवाले अनंत गुणे हैं । (विशेष जानने के लिए पृष्ठ ३१० ३११ देखो ।
(१३) संज्ञा अनुवादेन ॥ संज्ञिनाम् ॥ चक्षुदर्शनिवत्	–(१३) संज्ञा की अपेक्षासे सैनीनिका (अल्प बहुत्व) चक्षुदर्शनवालों के सम है और चक्षुदर्शनवालों का अल्प बहुत्व मन योगी के समान है और मनयोगियों का

ततः संयतासंयताः संख्येयगुणाः । असंयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणाः ॥ क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टिषु सर्वतः स्तोका अप्रमत्ताः । प्रमत्ताः संख्येयगुणाः । संयतासंयताः असंख्येयगुणाः । असंयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणाः ॥ औपशमिकसम्यग्दृष्टीनां सर्वतः स्तोकाश्चत्वारः उपशमकाः । अप्रमत्ताः संख्येयगुणाः । प्रमत्ताः संख्येयगुणाः । संयतासंयताः संख्येयगुणाः ॥

ततः संयता संयताः ॥	=उन (प्रमत्त संयमियों) से देश संयमी [क्षायिक सम्यग्दृष्टी]
संख्येय-गुणाः ॥ असंयत-सम्यग्दृष्टयः ॥	=संख्यात गुणे हैं। [उन संयमासंयमियोंसे] असंयमी सम्यग्दृष्टी,
असंख्येयगुणाः ॥ क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टिषु ॥	=असंख्यातगुणे हैं। वेदक सम्यग्दर्शनवालोंमें
सर्वतः* स्तोकाः ॥ अप्रमत्ताः ॥	=सबसे थोड़े अप्रमत्त संयमी [सातवांगुणस्थानवर्ती] हैं [उनसे]
प्रमत्ताः ॥ संख्येयगुणाः ॥	=प्रमत्त संयमी [वेदक सम्यग्दर्शनवाले] संख्यातगुणे हैं
संयतासंयताः ॥	=[उन प्रमत्त संयमी वेदकसम्यग्दर्शनवालोंसे] संयमा संयमी
असंख्येयगुणाः ॥	=[वेदकसम्यग्दृष्टि] असंख्यातगुणे हैं। [देश संयमी वेदक सम्यग्दृष्टियोंसे]
असंयत-सम्यग्दृष्टयः ॥ असंख्येयगुणाः ॥	=असंयत सम्यग्दृष्टी असंख्यात गुणे हैं।
औपशमिक-सम्यग्दृष्टीनाम् ॥ सर्वतः स्तोकाः ॥	=उपशम सम्यग्दर्शन [१] वालों में सब से थोड़े
चत्वारः ॥	=चार [अपूर्व करण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्म सांपराय-उपशांतकषाय।
उपशमकाः ॥ अप्रमत्ताः ॥	=उपशम श्रेणी वाले हैं। (चार उपशम श्रेणी वालों से] अप्रमत्त संयमी
संख्येयगुणाः ॥	=संख्यात गुणे हैं। [अप्रमत्त संयमी उपशम सम्यग्दृष्टियों से]
प्रमत्ताः ॥ संख्येयगुणाः ॥	=प्रमत्त संयमी [उपशम सम्यग्दर्शन वाले] संख्यात गुणे हैं
संयतासंयताः ॥ असंख्येयगुणाः ॥	=[प्रमत्त संयमी उपशम सम्यग्दर्शन वालों से] संयम संयमी असंख्यात गुणे हैं

* यहां षष्ठी विभक्ति सप्तमी विभक्ती के अर्थमें आई है अतः हिंदी अनुवाद "वालोंके" स्थानमें "वालोंमें" किया है (देखो टिप्पणी पृष्ठ १२८॥

असँयतसम्यग्दृष्टयो-सङ्ख्येयगुणा । शेषाणां नास्त्यल्पबहुत्वम् । विपक्षे एकैकगुणस्थानग्रहणात् ॥ (१३) सञ्ज्ञानुवादेन-सञ्ज्ञिनां चक्षुर्दर्शनिवत् ।

असंयत –[देशसंयमी उपशम सम्यग्दर्शनवालोंसे] असंयमी [उपशम]

सम्यग्दृष्टयः ॥ असंख्येयगुणाः ॥ विपक्षे ॥ –सम्यग्दर्शनवाले असंख्यात गुणे हैं । पक्षान्तरमें वा अन्य ओर में

एक-एक-गुणस्थान-ग्रहणात् ॥ ॥ –एक एक गुणस्थान का (भिन्न भिन्न) मान लेनेसे वा विवक्षित एक एक गुणस्थान होने से

शेषाणाम् ॥ –बचे हुए (मिथ्यात्व-सासादन मिश्र-असंयत सम्यग्दृष्टिवालेनिके-

अल्प-बहुत्वम् ॥ न अस्ति –थोडा और अधिकपना नहीं है (क्योंकि जब एक प्रकार की वस्तुयें कई स्थानों में हों तब कहते हैं कि अमुक स्थानकी वस्तुयें इतर स्थान की वस्तुओं से अल्प बहुत्व है । मिथ्यादृष्टि एक प्रथम गुणस्थान में ही है ॥ सासादन सम्यग्दृष्टि दूसरे में ही हैं सम्यग्मिथ्यादृष्टी मिश्र तीसरे गुणस्थान में ही हैं और असंयमी सम्यग्दृष्टी एक अविरत गुणस्थान में ही हैं इसलिये इन चारों गुणस्थानों में सम्यक्त्वकी अपेक्षा से अल्प बहुत्व नहीं है परन्तु असंयमकी अपेक्षा से प्रथम गुणस्थान से चतुर्थ तक (असंयम होने से) है और वह असंयमकी अपेक्षा से अल्प बहुत्व इस प्रकार है कि असंयमियोंमें सबसे थोडे सासादन सम्यग्दृष्टी हैं । इनसे मिश्रगुणस्थानवर्ती संख्यात गुणे हैं । इनसे अविरत सम्यग्दर्शन वाले असंख्यात गुणे हैं । इनसे मिथ्यादर्शनवाले अनंत गुणे हैं । (विशेष जानने के लिये पृष्ठ ३१० ३११ देखो ।

(१३) संज्ञा अनुवादेन ॥ संज्ञिनाम् ॥ चक्षुदर्शनिवत् –(१३) संज्ञा की अपेक्षासे सैनीनिका (अल्प बहुत्व) चक्षुदर्शनवालों के सम है और चक्षुदर्शनवालों का अल्प बहुत्व मन योगी के समान है और मनयोगियों का

ततः संयतासंयताः संख्येयगुणाः । असंयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणाः ॥ क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टिषु सर्वतः स्तोका अप्रमत्ताः । प्रमत्ताः संख्येयगुणाः । संयतासंयताः असंख्येयगुणाः । असंयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणाः ॥ औपशमिकसम्यग्दृष्टीनां सर्वतः स्तोकाश्चत्वारः उपशमकाः । अप्रमत्ताः संख्येयगुणाः । प्रमत्ताः संख्येयगुणाः ॥ संयतासंयताः संख्येयगुणाः ॥

ततः संयता संयताः ॥	=उन (प्रमत्त संयमियों] से देश संयमी [क्षायिक सम्यग्दृष्टी]
संख्येय–गुणाः ॥ असंयत–सम्यग्दृष्टय ॥	=संख्यात गुणे हैं। [उन संयमासंयमियोंसे] असंयमी सम्यग्दृष्टी,
असंख्येयगुणाः ॥ क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टिषु ॥	=असंख्यातगुणे हैं। वेदक सम्यग्दर्शनवालोंमें
सर्वतः स्तोकाः ॥ अप्रमत्ताः ॥	=सबसे थोड़े अप्रमत्त संयमी [सातवांगुणस्थानवर्ती] हैं [उनसे]
प्रमत्ताः ॥ संख्येयगुणाः ॥	=प्रमत्त संयमी [वेदक सम्यग्दर्शनवाले] संख्यातगुणे हैं
संयतासंयताः ॥	=[उन प्रमत्त संयमी वेदकसम्यग्दर्शनवालोंसे] संयमा संयमी
असंख्येयगुणाः ॥	=[वेदकसम्यग्दृष्टि] असंख्यातगुणे हैं। [देश संयमी वेदक सम्यग्दृष्टियोंसे]
असंयत–सम्यग्दृष्टय ॥ असंख्येयगुणाः ॥	=असंयत सम्यग्दृष्टी असंख्यात गुणे हैं।
औपशमिक–सम्यग्दृष्टीनाम् ॥ सर्वतः स्तोकाः ॥	=उपशम सम्यग्दर्शन [●] वालों में सब से थोड़े
चत्वारः ॥	=चार [अपूर्व करण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्म सांपराय-उपशांतकषाय।
उपशमकाः ॥ अप्रमत्ताः ॥	=उपशम श्रेणी वाले हैं। (चार उपशम श्रेणी वालों से] अप्रमत्त संयमी
संख्येयगुणाः ॥	=संख्यात गुणे हैं। [अप्रमत्त संयमी उपशम सम्यग्दृष्टियों से]
प्रमत्ताः ॥ संख्येयगुणाः ॥	=प्रमत्त संयमी [उपशम सम्यग्दर्शन वाले] संख्यात गुणे हैं
संयतासंयताः ॥ असंख्येयगुणाः ॥	=[प्रमत्त संयमी उपशम सम्यग्दर्शन वालों से] संयम संयमी असंख्यात गुणे हैं

● यहां षष्ठी विभक्ति सप्तमी विभक्ती के अर्थमें आई है अतः हिन्दी अनुवाद "वालोंके" स्थानमें "वालोंमें" किया है (देखो टिप्पणी पृष्ठ १३८)

अनाहारकाणां सर्वत स्तोका सयोगकेवलिन । अयोगकेवलिन संख्येयगुणा । सासादनसम्यग्दृष्टयो ऽसंख्येयगुणा । असंयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणा मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणा ॥ एवं मिथ्यादृष्ट्यादीनाम गत्यादिषु मार्गणा कृता सामान्येन ॥ तत्र सूक्ष्मभेद आगमाविरोधेनानुस्मर्तव्य ॥

अनाहारकाणाम् ॥ सर्वतः * स्तोका ॥ सयोग-केवलिन ॥	=अनाहारकों में सब से थोड़े सयोग-केवली हैं (अर्थात् यद्यपि सयोग केवलियों की संख्या ८९८५०२ तक उत्कर्षकरि होसक्ती है और अयोग केवलियों की संख्या ५९८ वा ६०० ६०८ तक हो सक्ती है परंतु सयोगकेवलियों की अनाहारक अवस्था प्रतरसमुद्घात और लोकपूर्ण समुद्घात में ही होती है दंड समुद्घात और कपाटसमुद्घात में आहारक ही अवस्था होवी है इस अपेक्षा से सयोग केवली अनाहारकों की संख्या सर्व से अल्प है ॥ जीवों की अनाहारक अवस्था मिथ्यात्व-सासादन-असंयत और अयोग केवली गुणस्थानों में ही होती है । सयोग केवली उक्त समुद् घातों में ही अनाहारक होवे हैं ।
अयोगकेवलिनः ॥ संख्येयगुणाः ॥	=(सयोग केवलि अनाहारकों से) अयोग केवली संख्यात गुण हैं
सासादन-सम्यग्दृष्टयः ॥ असंख्येयगुणा ॥	=(अनाहारक अयोगकेवलियों से) सासादन सम्यग्दृष्टी असंख्यात गुण हैं
असंयत-सम्यग्दृष्टयः ॥ असंख्येय गुणा ॥	=(सासादन सम्यग्दृष्टियों से) असंयमी सम्यग्दृष्टि असंख्यात गुण हैं
मिथ्यादृष्टय ॥ अनन्त-गुणा ॥	=(असंयमी सम्यग्दर्शन वालों से) मिथ्यादृष्टी अनन्तगुण हैं
एवम् * मिथ्यादृष्टि-आदीनाम् ॥ गति-आदिषु ॥	=ऐसे मिथ्यादर्शन वाले आदिकनिकें गति आदिकों में
सामान्येन ॥॥ मार्गणा ॥ कृता तत्र * सूक्ष्म भेदः ॥	=संक्षेप कथन करि मार्गणा (निर्देश की गई । तहां (इनके) सूक्ष्मभेद
आगम-अविरोधेन ॥ अनुस्मर्तव्यः ॥	=शास्त्र के अनुसार करि अंगीकारकरना वा अनुस्मरण करना योग्य है

अरी न। नास्त्यल्पबहुत्वम् । तदुभयव्यपदेशरहितानां केवलिनाम् ॥ (१४) आहारानुवादेन आहारकाणां काययोगिवत् ।

अल्पबहुत्व पंचन्द्रियवत् है (पृष्ठ ३११ और पृष्ठ ३०१ ३०२ को क्रम से देखो) इसलिये संज्ञियों का अल्प बहुत्व पंचेन्द्रियों के सदृश हुआ (संज्ञी मिथ्यात्व प्रथम गुणस्थान से क्षीणकषाय बारहवां गुणस्थान तक होते है) पंचन्द्रियों का अल्पबहुत्व गुणस्थानसदृश है इसलिये अंतमें संज्ञियोंका अल्पबहुत्व मिथ्यात्व गुणस्थान से क्षीण कषाय गुणस्थानवर्ती जीवो के अल्प बहुत्व के सदृश हुआ ॥ चार अपूर्व करण पृष्ठ २९८ से २९९ कोअंत तक ॥

संज्ञिनाम् ;। अल्प-बहुत्वम् न ० अस्ति T — मन रहित जीवों के अल्प-बहुत्व नहीं है (क्योंकि ये सब मिथ्यादृष्टी है)

तत् उभय-व्यपदेश-रहितानाम् ;। केवलिनाम् ० — उन (संज्ञी असंज्ञी) दोनों नामों से वर्जित (जीव) जिनके केवल ज्ञानियों के

— समान (अल्प-बहुत्व) है अर्थात अयोगकेवलियों से सयोगकेवली संख्यातगुणे है अयोग केवली उत्कृष्टकरि ५९८ वा ६०० वा ६०८ है और सयोग केवली उत्कृष्ट करि आठलाख अठानवेहजार पाचसो दो है

(१४) आहारक-अनुवादेन ।। आहारकाणाम् ;। — (१४) आहारक की अपेक्षा से आहारकों का (अल्प-बहुत्व)

काय योगिवत् ० — काय योगियों के सदृश है (और काययोगियों का अल्प-बहुत्व गुणस्थानवत्) है अत' आहारकों का अल्पबहुत्व गुण स्थान सदृश हुआ। काययोगी प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थान से सयोग केवली तरहवां गुणस्थान तक है अत' अयोग केवलियों को छोड़ कर पृष्ठ २९८ में चार अपूर्व करण से २९९ पृष्ठ के अंत तक सम्बन्धी पहलो वो यही आहारकों का अल्पबहुत्व होयेगा ।

॥ मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि ज्ञानम् ॥ ९ ॥

मति-श्रुत-अवधि मनः पर्यय-केवलानि;।।। ज्ञानम्;।।। – मति-श्रुत-अवधि-मनः पर्यय और केवल ऐसे ज्ञान (पांच प्रकार) है अर्थात् (१) जो पांच इन्द्रियों से और मनसे पदार्थ को जाने सो मति ज्ञान है,

(२) मति ज्ञानके द्वारा जाने हुये पदार्थ की सहायतासे उसी पदार्थ के भेदोंको या अन्य पदार्थों को जाने सो श्रुतज्ञान है। इसका लक्षण अन्य प्रकारसे भी है ॥

(३) क्षेत्रकाल भाव तथा द्रव्यकी मर्यादालिये रूपी पदार्थ को प्रत्यक्ष रूपसे जाने सो अवधि ज्ञान है (४) अन्यके मनमें तिष्ठे हुए रूपी पदार्थोंको प्रत्यक्ष जाने सो मनःपर्यय ज्ञान है (५) समस्त द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावको प्रत्यक्ष रूप से जाने अर्थात् भूत-भविष्यत वर्तमानमें होने वाली पदार्थोंकी समस्त पर्यायोंको एकही समयमें जाने सो केवल ज्ञान है ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस सूत्र पर सर्वार्थ सिद्धि वृत्तिका शब्दश हिंदी अनुवाद ।

(१) दिगंबर आम्नायमें किसी किसी पुस्तकमें "मनःपर्य्यय" पाठ है और किसी किसीमें "मनःपर्यय" है। श्वेताम्बर आम्नायके तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें "मनःपर्याय" मनःपर्यय अथवा मनः पर्य्ययके स्थानमें है। शेष पाठ इस सूत्रका दोनों सम्प्रदायोंमें एक है। अर्थ भी दिगम्बर आम्नाय और श्वेताम्बर आम्नाय में एकसा है। मनः पर्याय और मनः पर्यय दोनोंका एक अर्थ है। मनः पर्यय और मनः पर्य्यय दोनों ठीक है क्योंकि किसी शब्दमें र् अथवा ह् से प्रथम कोई स्वर आवे और (र् या ह् के) पश्चात् ह् को छोड़कर कोई व्यंजन आवे तो वह व्यंजन विकल्पकरि अर्थात् लेखक की इच्छानुसार अष्टाध्यायी अध्याय ८ पाद ४ सूत्र ४६ (अचो रहाभ्यां द्वे – अचो रहाभ्यां द्वे वा) से द्वित्व होजाता है– चाहे उस व्यंजन को दुहरा करदो चाहे न दुहराओ। जैसे अर्क या अर्क्क मर्क या मर्क्क-धर्म या धर्म्म-कर्म या कर्म्म ब्रह्मा या ब्रह्म्मा-अपह्नुते या अपह्न्नुते। ऐसेही सूर्य या सूर्य्य-मनः पर्यय या मनः पर्य्यय दोनों ही ठीक और शुद्ध है ॥ (२) यहां ज्ञान शब्द के साथ सम्यक् शब्दकी अनुवृत्ति है (पृष्ठ ३४२)

एवं सम्यग्दर्शनस्यादावुद्दिष्टस्य लक्षणोत्पत्तिस्वामिविषयन्यासाधिगमोपाया निर्दिष्टाः । तत्सम्बन्धेन च जीवादीनां सञ्ज्ञापरिणामादि निर्दिष्टम् । तदनन्तरं सम्यग्ज्ञानं विचारार्हमित्याह

प्रथम० भागे ॥ उद्दिष्टस्य ॥ सम्यग्दर्शनस्य ॥	=इसप्रकार प्रथममें उपदेश किया गया सम्यग्दर्शनका
लक्षण	-लक्षण (देखो सूत्र २ पृ० ३१)
उत्पत्ति	=(उस सम्यग्दर्शनकी) उत्पत्तिका निमित्त (देखो सूत्र ३ पृष्ठ ३६)
स्वामि विषय	=(सम्यग्दर्शनका) अधिपति (जीव); (सम्यग्दर्शनका) विषय (सूत्र ४ पृष्ठ ४०)
न्यास	=(सम्यग्दर्शनका) नाम वा निक्षेप या लोकव्यवहार (सूत्र ५ पृष्ठ ४४ देखो)
अधिगम उपाया ॥	=(सम्यग्दर्शनका) ज्ञान या स्वरूप (जानने) के उपाय
	(सूत्र ६ पृष्ठ [illegible], सूत्र ७ पृष्ठ ५८, सूत्र ८ पृष्ठ ८१ को देखो)
निर्दिष्टा ॥ [illegible] ॥ और [illegible] ॥	=कहे गये हैं । और (च) उस (सम्यग्दर्शन) के सम्बन्धकरि जीवादिक (तत्त्वों) के
सञ्ज्ञा-परिणाम-आदि ॥	=नाम (देखो सूत्र ४) परिणामात्मिक अथवा भावादिक (देखो सूत्र ६, ७, ८)
निर्दिष्टम् ॥	=कहे गये हैं
तत् ॥ अनन्तरम् ॥ सम्यग्ज्ञानम् ॥ विचार	=तिस (सम्यग्दर्शन) के निकट वा समीप सम्यग्ज्ञान (है सो) विचारने
अर्हम् ॥ इति० आह ॥	=योग्य है । सो (आचार्य) इसप्रकार कहते हैं कि

(३) व्यतिकीर्ण[illegible] हेतुर्मताम्	
व्यतिकीर्ण वस्तु	=परस्पर वा आपसमें मिलीहुई (व्यतिकीर्ण) वस्तुओंमें
व्यावृत्ति-हेतुः ॥ लक्षणम् ॥	-जो इनके मध्य फरकमें (व्यावृत्त) हेतु है सो लक्षण है

॥ मतिश्रुतावधिमन पर्ययकेवलानि ज्ञानम् ॥ ९ ॥

मति श्रुत-अवधि मनः पर्यय-केवलानि॥।॥ ज्ञानम्॥।॥ — मति-श्रुत-अवधि-मनः पर्यय और केवल ऐसे ज्ञान (पांच प्रकार) है अर्थात् (१) जो पांच इन्द्रियों से और मनसे पदार्थ को जाने सो मति ज्ञान है,

(२) मति ज्ञानके द्वारा जाने हुये पदार्थ की सहायतासे उसी पदार्थ के भेदोंको या अन्य पदार्थों को जाने सो श्रुतज्ञान है। इसका लक्षण अन्य प्रकारसे भी है ॥

(३) क्षेत्रकाल भाव तथा द्रव्यकी मर्यादालिये रूपी पदार्थ को प्रत्यक्ष रूपसे जाने सो अवधि ज्ञान है (४) अन्यके मनमें तिष्ठे हुए रूपी पदार्थोंको प्रत्यक्ष जाने सो मनःपर्यय ज्ञान है (५) समस्त द्रव्य-क्षेत्र-काल भावको प्रत्यक्ष रूप से जाने अर्थात् भूत-भविष्यत वर्तमानमें होनेवाली पदार्थोंकी समस्त पर्यायोंको एकही समयमें जाने सो केवल ज्ञान है ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस सूत्र पर सर्वार्थ सिद्धि वृत्तिका शब्दश हिंदी अनुवाद।

(१) दिगंबर आम्नायमें किसी किसी पुस्तकमें "मनःपर्य्यय" पाठ है और किसी किसीमें "मनःपर्यय" है। श्वेताम्बर आम्नायके समाप्ततत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें "मनःपर्याय" मनःपर्यय अथवा मनः पर्य्ययके स्थानमें है। शेष पाठ इस सूत्रका दोनों सम्प्रदायोंमें एक है। अर्थ भी दिगम्बर आम्नाय और श्वेताम्बर आम्नाय में एकसा है। मनः पर्याय और मनः पर्यय दोनोंका एक अर्थ है। मनः पर्यय और मनः पर्य्यय दोनों ठीक है क्योंकि किसी शब्दमें र् अथवा ह् से प्रथम कोई स्वर आवै और (र् वा ह् के) पश्चात् ह् को छोड़कर कोई व्यंजन आवे तो वह व्यंजन विकल्पकरि अर्थात् लेखक की इच्छानुसार अष्टाध्यायी अध्याय ८ पाद ४ सूत्र ४६ (अचो रहाभ्यां द्वे — अचः रहोभ्यां द्वे वा) से द्वित्व होसकता है — चाहे उस व्यंजन को दुहरा करदो चाहे न दुहराओ। जैसे अर्क वा अर्क्क अर्क वा मर्य-धर्म वा धर्म्म-कर्म वा कर्म्म ब्रह्मा वा ब्रह्म्मा-अपह्नुते वा अपह्न्नुते। ऐसेही सूर्य वा सूर्य्य-मनः पर्यय वा मनः पर्य्यय दोनों ही ठीक और शुद्ध है ॥ (२) यहां ज्ञान शब्द के साथ सम्यक् शब्दकी अनुवृत्ति है (पृष्ठ १४२)

ज्ञानशब्द प्रत्येकं परिसमाप्यते । मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञानं मन पर्ययज्ञान केवलज्ञानमिति ॥ इन्द्रियैर्मनसा च यथास्वमर्थान्मन्यते अनया मनुते मननमात्रं वा मति ॥

ज्ञानशब्द ,। प्रत्येकम् ,।॥	=ज्ञानशब्द प्रत्येक (मति श्रुत-अवधि-मन पर्यय-केवल) को
परिसमाप्यते T मतिज्ञानम् ,।॥ श्रुतज्ञानम् ;।॥	=लगाया गया है। (तब) मतिज्ञान-श्रुतज्ञान
अवधिज्ञानम् ।॥ मन पर्ययज्ञानम् ,।॥	=अवधिज्ञान-मन पर्ययज्ञान
केवलज्ञानम् ,।॥ इति०इन्द्रियै ;।॥ मनसा ;।॥ च	=केवल ज्ञान ऐसे हैं। पांच इन्द्रियाकरि और (च) मनकरि
यथास्वम्०अर्थान् ,। मन्यते T	=अपनी (शक्ति) के अनुकूल (=यथास्वम्) पदार्थोंको जानता है अर्थात् पांच इन्द्रियोंकरि और मनकरि अपने योग्य देश में स्थित वर्तमान पदार्थ को जो पहचानता है या जानता है सो मतिज्ञान है
अनया ;। मनुते T	=(अथवा) जिसकरि जानता (है=मनुते)
वा०मननमात्रम् ;।॥ मति ,।॥	=(सो मतिज्ञान है) या जानने मात्र मतिज्ञान है ॥

(१) परिसमाप्यते यह शब्द आप् (=प्राप्त होना) इत्यादि पांचवें गणके परस्मैपद धातुमें परि और सम् उपसर्ग लगाने से और 'य'कर्मणि प्रधान प्रत्यय और त अन्य पुरुष, वर्तमानकाल, आत्मनेपद एकवचनके प्रत्ययका आदकर ऐसे बना लेते हैं कि परि+सम्+आप्+य+ते = परिसमाप्यते

(२) मन्यते मन = जानना, दिवादि चतुर्थगणके आत्मनेपदी सकर्मक, अनिट् धातुमें य चतुर्थगणका विकरण जोड़कर मन्य बना लिया पश्चात् ते वर्तमानकालका एकवचन अन्य पुरुष, आत्मनेपदी प्रत्यय जोड़नेसे (मन्य+ते) मन्यते (=जानता है) बनगया ॥

(३) मनुते-मन्= जानना, (वर्तनेर) तनादि आठवें गणका आत्मनेपदी, सकर्मक सेट् धातुमें उ आठवें गणका विकरण जोड़नेसे (मन्+उ)=मनु बनगया पीछे ते वर्तमान कालका एकवचन, अन्यपुरुष आत्मनेपदी प्रत्यय, जोड़ने से मनुते (=जानता है) बनगया ॥ मानयते-मन्= अहंकार करना चुरादि दशवें गणका आत्मनेपदी अकर्मक सेट् धातु है। इस गणके अय विकरण धातुमें लगाने से पहिले मन्के स्वर और उपान्त्य अ की वृद्धि संज्ञा हो जाती है अत मान्+अय् प्राप्त हुआ ते उक्त आत्मनेपदी वर्तमानकालकरि मानयते हुआ ॥ मनति मन इत्यादि प्रथमगणका धातु पूजा करने के अर्थ में सकर्मक परस्मैपद है। और अहंकार करने के अर्थ में अकर्मक भ्वादिगण परस्मैपद है ॥

तदावरणक्षयोपशमे मति निरूप्यमाण श्रुयते अनेनेति तत् श्रृणोति श्रवणमात्रं वा श्रुतम् ॥ अनयोः प्रत्यासन्ननिर्देश कृत कार्यकारणभावात् । तथा च वक्ष्यते "श्रुत मतिपूर्वमिति" ॥

तत् आवरण क्षयोपशम ,। मति ,।	=उस (श्रुत ज्ञान) आवरणीयकर्मके क्षयोपशम होने पर (=सति)
निरूप्यमाणम् ,॥ अनन ॥ श्रुयत T इति●	=कथित वस्तु का नाम (=निरूप्यमाणं) जिससे सुनकरि जाना जाता है ऐसा (श्रुतज्ञान) है ।
तत ॥ श्रृणोति T	=वा उस (निरूप्यमाण वस्तु) को (=तत) सुनकरि जानता है (वो श्रुतज्ञान है)
वा● श्रवणमात्रं ,॥ श्रुतम् ,॥	=अथवा (=वा) जो सुनकरि जानन मात्र (सो) श्रुतज्ञान है ॥
कार्य-कारण भावात् ¹।	=(दोनों मतिज्ञान और श्रुतज्ञान का आपस में) कार्य-कारणभाव होने से
अनयो ॥ प्रत्यासन्न निर्देश ,। कृत ¹।	=इन दोनों(मतिज्ञान और श्रुतज्ञान।)का अति निकट उपदेश किया गया है॥ अर्थात् मतिज्ञान कारणरूप है और श्रुतज्ञान कार्यरूप है ।
तथा च० वक्ष्यत T	=जैसा कि (=तथा च आगे इसी अध्याय के बीसवों सूत्र में) कहेंगे (टिप्पणी पृष्ठ ४१)
श्रुत ,॥ मतिपूर्वम् ,॥ इति●	=श्रुतज्ञान मतिज्ञान पूर्वक होता है श्रुतज्ञान मतिज्ञान के पश्चात् होता है । अर्थात् श्रुत ज्ञान के उत्पन्न होने को मतिज्ञान कारण है । और श्रुतज्ञान कार्य है

(१) मति—यथार्थमें सत् शब्द त्रिलिंगी है। यहाँ पर सतो नाम सप्तमी विभक्ति एक वचन पुल्लिंगमें है अतः मति शब्द भी सप्तमी एकवचन पुल्लिंगमें ही है। यहाँ पर विद्यमानता अर्थमें है। सदाचारी, पूज्य बहुत उत्तम, यथार्थ (ठीक) सत्य इन अर्थोंमें भी आता है (देखो टि० च पृष्ठ म) प्रश्न (१०) पदमञ्जरी पृष्ठ ४७९ ओम आदिम् सत्कृत् =प्रणव मय (ओम्) वह (=तत्) ब्रह्म (=सत्)

(२) श्रु—श्रादि प्रथम गणका परस्मैपदी जाना या हिलना अर्थ में आता है। इस गणके धातु का अंतिम स्वर और धातु का उपान्त्य ह्रस्व स्वरमात्र के विकरण के पहिले पहिले गुण संज्ञा का प्राप्त हो जाता है। अतः श्रु = श्रो श्रो = श्रव्+अ (विकरण आकर टिप्पणी पृष्ठ १३ द्वारा) = श्रवति, अन्य पुरुष एक वचन परस्मैपद वर्तमानकाल का ति प्रत्यय आकर श्रव+ति = श्रवति (जाता है) बन गया ॥ यदि श्नु = नु विकरण स्वादि पांचवां गण का श्रु धातु में आवे। जाव तो यह धातु पांचवा स्वादि गणका हो जाता है और श्र का श्रृ हो जाता है। श्रृ+णु (=नु) देखो टिप्पणी पृष्ठ ५४॥ श्रृणु - श्रृणो (पृष्ठ ५६) उपरान्त ति आया = श्रृणोति = सुनकरि जानता है। अष्टाध्याय ३ १-७४ यह सूत्र ६३ व ६८ व ७३ सूत्रों से अनुवर्तियां द्वारा श्रुवः श्रृ च (सार्वधातुके कर्तरि श्नः) श्रु के स्थान में श्रृ हो और उसके पश्चात् श्नु विकरण हो यदि कर्ता में सार्व धातुक

ज्ञानशब्द प्रत्येकं परिसमाप्यते । मतिज्ञानं श्रुतज्ञानं अवधिज्ञानं मनःपर्ययज्ञानं केवलज्ञानमिति ॥

इन्द्रियैर्मनसा च यथास्वमर्थान्मन्यते अनया मनुते मननमात्रं वा मतिः ॥

ज्ञानशब्द ,। प्रत्येकम् ,॥	=ज्ञानशब्द प्रत्येक (मति श्रुत-अवधि-मनःपर्यय केवल) को
परिसमाप्यते ;॥ मतिज्ञानम् ;॥ श्रुतज्ञानम् ;॥	=लगाया गया है। (तब) मतिज्ञान-श्रुतज्ञान
अवधिज्ञानं ॥ मनःपर्ययज्ञानम् ,॥	=अवधिज्ञान-मनःपर्ययज्ञान
केवलज्ञानम् ,॥ इति०इन्द्रियैः ;॥ मनसा ;॥ च	=केवल ज्ञान ऐसे हैं। पांच इन्द्रियाकरि और (=च) मनकरि
यथास्व०अर्थान् ,। मन्यते	=अपनी (शक्ति) के अनुकूल (=यथास्वम्) पदार्थोंको जानता है अर्थात् पांच इन्द्रियोंकरि और मनकरि अपने योग्य देश में स्थित वर्तमान पदार्थ को जो पहचानता है वा जानता है सो मतिज्ञान है
अनया ,॥ मनुते	=(अथवा) जिसकरि जानता (है=मनुते)
वा०मननमात्रम् ,॥ मतिः ,॥	=(सो मतिज्ञान है) वा जानने मात्र मतिज्ञान है ॥

(१) परिसमाप्यते यह शब्द आप् (=प्राप्त होना) स्वादि पांचवें गणके परस्मैपद धातुमें परि और सम् उपसर्ग लगाने से और 'य'कर्मणि प्रयोग प्रत्यय और ते अन्य पुरुष, वर्तमानकाल, आत्मनेपद एकवचनके प्रत्ययका आकर ऐसे बना लेते हैं कि परि+सम्+आप्+य+ते = परिसमाप्यते

(२) मन्यते मन_जानना, दिवादि चतुर्थगणके आत्मनेपदी सकर्मक, अनिट् धातुमें य चतुर्थगणका विकरण आकर मन्य बना लिया पश्चात् मे वर्तमानकालका एकवचन अन्य पुरुष, आत्मनेपदी प्रत्यय ओड़नेसे (मन्य+ते) मन्यते (=जानता है) बनगया ॥

(३) मनुते मन्=जानना, (वर्तपर) तनादि आठवें गणका आत्मनेपदी, सकर्मक सेट् धातुमें उ आठवें गणका विकरण ओड़नेसे (मन्+उ)=मनु बनगया पीछे ते वर्तमान कालका एकवचन, अन्यपुरुष आत्मनेपदी प्रत्यय, आडने से मनुते (=जानता है) बनगया ॥ मानयते-मन्=अहंकार करना चुरादि दशवें गणका आत्मनेपदी अकर्मक सेट् धातु है। इस गणके अय विकरण धातुमें लगाने से पहिले मन्के स्वर और उपान्त अ की वृद्धि संज्ञा होजाती है मत मान्+अय् प्राप्त हुआ ते का आत्मनेपदी वर्तमानकालकरि मानयते हुआ ॥ मनति मन्=शादि प्रथमगणका धातुपूजा करने के अर्थ में सकर्मक परस्मैपद है। और अहंकार करने के अर्थ में अकर्मक भ्वादिगण परस्मैपद है ॥

परकीयमनोगतोऽर्थो, मन इत्युच्यते साहचर्यात्तस्य पर्ययणं परिगमनं मन पर्ययः । मतिज्ञानप्रसंग इति चन्न । अपेक्षामात्रत्वात् । क्षयोपशमशक्तिमात्रविजृम्भितं तत्केवल

परकीय-मनस्-गतः ।।	=परसम्बंधी (=परकीय) या अन्यके (=परकीय) मनमें प्राप्त या तिष्ठे हुये
अर्थः ,। साहचर्यात् ।।।	=रूपी पदार्थ (=अर्थ) की साहचर्यासे-अनुरूपतासे-समवायसे या समागमसे
मनः ,।। इति उच्यते T तस्य ६।	= मन ऐसा (नाम) कहा गया है अर्थात् तिस (अन्यके मनमें चितमन किये हुये) पदार्थका
पर्ययणम् ,।।। परिगमनम् ।।। मनः पर्ययः ।।	=ज्ञान या जानना (= पर्ययणम् = परिगमनम्) सो मनः पर्यय है अर्थात् जो मनः पर्यय ज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमसे परके मनमें तिष्ठे हुये रूपी पदार्थको जाने सो मनः पर्यय ज्ञान है ।।
मतिज्ञान-प्रसंगः ,। इति * चेत् *	=(मनः पर्यय ज्ञानके) मतिज्ञानका संयोग या मेल होता है ऐसा संदेहपर (= चेत्)
न* अपेक्षा-मात्रत्वात् ।।।	=(उत्तर है कि) नहीं क्योंकि (मनः पर्यय ज्ञानमें मन) अपेक्षामात्र है कार्य कारण भाव नहीं है अर्थात् मनः पर्यय ज्ञानकी उत्पत्ति का कारण मन नहीं है जैसाकि मतिज्ञान के उत्पन्न होने का कारण मन है ।
क्षयोपशम-शक्ति-मात्र-	=(मनः पर्यय ज्ञानावरणीय कर्मके) क्षयोपशमकी शक्ति मात्रसे
विजृम्भितम् ।।। । तत् ।।। केवलम् ।।।	=विकसित या प्रकाशित (=विजृम्भितम्) हुआ है ।। वह (मनः पर्यय ज्ञान) केवल

पश्यन्ति T उपरि* स्तोकम् ।। पश्यन्ति T	=देखते हैं । ऊपर अल्प या थोड़ा देखते हैं ।
निजविमान-ध्वज दण्ड पर्यन्तम् ।।। इति* अर्थः ।।	=अपना विमान ध्वजा दंड पर्यंत (देखते हैं) ऐसा अभिप्राय है।
अवच्छिन्न-विषयत्वात् ।।। अवधिः ।। का ।। अर्थः ।।	=अवच्छिन्न विषयत्व सहित अवधि ज्ञान है (इस वाक्यका) क्या अर्थ है ।
रूपित-लक्षण विषयत्वात् ।।। अवधिः ।।	=रूपी लक्षणवाला (पदार्थ) है विषय जिसका सो अवधि ज्ञान है ।

(१) विजृम्भित, (त्रि०) वि+जृभि+क्त । विकसित । खिला हुआ । माधेय ।। प्रकाश । चमक । पपचम्भ कोश पृष्ठ ३५१२ देखो ।।

अवाग्धानादवच्छिन्नविषयाद्वा अवधि: ॥

	(अवधिज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमसे द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावकी मर्यादासे)
अवाग् धानात् ।। वा० अवच्छिन्न	=पुद्गलको (प्रत्यक्षपने करि) जाननसे अथवा रूपी पदार्थ (=अवच्छिन्न)
विषयात् • अवधि: ।।	=(जिसका) विषय होन (के हेतु) से अवधि (ज्ञान कहाता) है । अर्थात् मर्यादा लिये हुये रूपी पदार्थ को जो प्रत्यक्षपनेसे जाने सो अवधिज्ञान है ॥

(१ अवाग्-शब्दमें शब्द शब्द है। अ आङ्नेम अ+वाच् (=अवाक्=अवाग् देखो टिप्पणी १४, १५) वचन या बोल रहित अर्थात् जड़ पदार्थ या पुद्गल है अवाग्धानमवाग्धीयन्ते वा: पुद्गला: । तान् दधाति जानातीत्यवधि: अवाग्धानमपुद्गल परिज्ञानादित्यर्थ: ॥

अवाग्धीयन्ते T अवाग्ति T इति अवागा: ।। पुद्गला: ।।	=नहीं बोलते है (या नहीं) हिलते चलते है ऐसे वचन वर्जित जड़ वस्तु है ॥
तान् ।। दधाति T जानाति T इति अवधि: ,।	=तिन (पुद्गलों) को ग्रहण करता है जानता है ऐसा अवधि (ज्ञान) है ॥
अवाग्धानात् ''। पुद्गल-परिज्ञानात् ''।।। इति अर्थ ,।	=अवाग्धानात् (वाक्य)मे जड़ पदार्थका विशेषरूप ज्ञानसे अभिप्राय है ॥

(२) द्रव्य क्षेत्र काल भावै नियतत्वेनावधीयते नियम्यते प्रमीयते परिच्छिद्यत् (से) इत्यर्थ: ॥

द्रव्य क्षेत्र कालभावै: ।। नियत त्वेन ।।। अवधीयते T	=द्रव्य-क्षेत्र काल भावमे मर्यादाकरि सीमाकिया गया है
नियम्यते T प्रमीयते T परिच्छिद्यते T	=नियम किया गया है परिमित किया गया है विशेष रूप से सीमा किया गया है ॥
इति• अर्थ:	=इस प्रकार अभिप्राय है

(३) अवधाने अवधि: । काऽर्थ: । अधस्ताद्बहुतर विषय ग्रहणादवधिरुच्यते । देवा: खलु अवधिज्ञानेन सप्तम नरक पर्यन्तं पश्यन्ति । उपरिष्टाद् अल्पं पश्यन्ति । निजविमानध्वजदण्डपर्यन्तमित्यर्थ ॥ अवच्छिन्न विषयत्वादवधि: । काऽर्थ: रूपित लक्षणविषयत्वादवधि अवधानम् '।।

	अवधान अर्थात् प्राय नीचले या पाताल का (=अध)(विषयोंका)ग्रहण(=ज्ञान)है ।
अवधि: । क: ।। अर्थ: ।। अधस्तात् बहुतर	सो अवधि है । (इस वाक्य से) क्या अभिप्राय है । नीचले या पाताल के अधिकतर
विषय ग्रहणात् '।। अवधि ।। उच्यते T देवा: ।।	=विषय ग्रहण करनेसे अवधि कहा गया है । देव
खलु• अवधिज्ञानेन ।।। सप्तम नरक-पर्यन्तम् ,।	=निश्चयकरि (=खलु) अवधिज्ञान से सातवां नरक तक

परकीयमनोगतोऽर्थो मन इत्युच्यते साहचर्यात्तस्य पर्ययण परिगमन मनःपर्यय । मतिज्ञानप्रसग इति चेन्न । अपेक्षामात्रत्वात् । क्षयोपशमशक्तिमात्रविजृम्भित तत्केवलं

परकीय-मनस्-गत ॥	=परसम्बन्धी (=परकीय) वा अन्यके (=परकीय) मनमें प्राप्त वा तिष्ठे हुये
अर्थः ॥ साहचर्यात् ॥॥	=रूपी पदार्थ (=अर्थ) की साहचर्यासे अनुरूपतासे-समवायसे वा समागमसे
मनः ॥ इति उच्यते T तस्य ॥	=मन ऐसा (नाम) कहा गया है अर्थात् तिस (अन्यके मनमें चितमन किये हुये) पदार्थका
पर्ययणम् ॥॥ परिगमनम् ॥॥ मनः पर्यय ॥	=ज्ञान वा जानना (=पर्ययणम् =परिगमनम्) सो मन: पर्यय है अर्थात् जो मनः पर्यय ज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमसे परके मनमें तिष्ठे हुये रूपी पदार्थको जाने सो मन: पर्यय ज्ञान है ॥
मतिज्ञान-प्रसंग ॥ इति * चेत् *	=(मनः पर्यय ज्ञानके) मतिज्ञानका संयोग वा मेल होता है ऐसे संदेहपर (=चेत्)
न* अपेक्षा-मात्रत्वात् ॥॥	=(उत्तर है कि) नहीं क्योंकि (मन: पर्यय ज्ञानमें मन) अपेक्षामात्र है कार्य कारण भाव नहीं है अर्थात् मनः पर्यय ज्ञानकी उत्पत्ति का कारण मन नहीं है जैसाकि मतिज्ञान के उत्पन्न होने का कारण मन है ।
क्षयोपशम-शक्ति-मात्र-	=(मन: पर्यय ज्ञानावरणीय कर्मके) क्षयोपशमकी शक्ति मात्रसे
विजृम्भितम् ॥। तत ॥॥ केवलम् ॥॥	=विकसित वा प्रकाशित (=विजृम्भितम्) हुआ है ॥ वह (मनः पर्यय ज्ञान) केवल

पश्यन्ति T उपरि* स्तोकम् ॥ पश्यन्ति T	=देखते हैं । ऊपर अल्प या थोड़ा देखते हैं ।
निजविमान-ध्वज दण्ड पर्यन्तम् ॥॥ इति* अर्थः ॥	=अपना विमान ध्वजा दंड पर्यंत (देखते हैं) ऐसा अभिप्राय है।
अवच्छिन्न विषयत्वात् ॥॥ अवधिः ॥ का ॥ अर्थः ॥	=अवच्छिन्न विषयत्व सहित अवधि ज्ञान है (इस वाक्यका) क्या अर्थ है ।
रूपित-लक्षण विषयत्वात् ॥॥ अवधिः ॥	=रूपी लक्षणवाला (पदार्थ) है विषय जिसका सो अवधि ज्ञान है ।

(१) विजृम्भित, (त्रि॰) वि+जृम्भि+क्त । विकसित । खिला हुआ । प्रकाश । प्रकट । चमक । वाचस्पत्य कोश पृष्ठ ३५१८ देखो ॥

अवाग्धानादवच्छिन्नविषयाद्वा अवधिः ॥

	(अवधिज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमसे द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावकी मर्यादासे)
अवाग् धानात् ¹। वा० अवच्छिन्न-	=पुद्गलको (प्रत्यक्षपने करि) जाननेसे अथवा रूपी पदार्थ (=अवच्छिन्न)
विषयात् अवधिः ॥	=(जिसका) विषय होन (के हेतु) से अवधि (ज्ञान कहाता) है। अर्थात मर्यादा लिये हुये रूपी पदार्थ को जो प्रत्यक्षपनेसे जाने सो अवधिज्ञान है ॥

(१) मरकृ-गत्यर्थमें धातु नाम है। म आदिमें अ+धातु (=अवाक्=अवाग् देखो टिप्पणी १४, १५) चलन या बोल रहित अर्थात् जड़ पदार्थ या पुद्गल है

नतार्थमि मर्यादितगतयः पुद्गलाः। तान् दधाति जानातीत्यवधिः अवाग्धानात्पुद्गल परिज्ञानादित्यर्थः॥

न तार्थमि T मर्यादि T इति अवाचः ॥ पुद्गलाः ॥	=नहीं बोलते हैं (वा नहीं) हिलते चलते हैं ऐसे बचन वर्जित जड़ वस्तु है ॥
तान् ॥ दधाति T जानाति T इति अवधिः ॥	= तिन (पुद्गलों) को ग्रहण करता है जानता है ऐसा अवधि (ज्ञान) है ॥
अवाग्धानात् ¹। पुद्गल-परिज्ञानात् ¹॥ इति अर्थः ॥	=अवाग्धानात् (वाक्य)मे जड़ पदार्थका विशेषरूप जानने अभिप्राय है ॥

(२) द्रव्य क्षेत्र काल भावै नियतत्वेन अवधीयते नियम्यते प्रमीयते परिच्छिद्यते (ते) इत्यर्थः ॥

द्रव्य क्षेत्र कालभावैः ॥ नियतत्वेन ॥॥ अवधीयते T	=द्रव्य-क्षेत्र काल भावसे मर्यादाकरि सीमाकिया गया है
नियम्यते T प्रमीयते T परिच्छिद्यते T	= नियम किया गया है परिमित किया गया है विशेष रूप स सीमा किया गया है ॥
इत्यर्थः	= इस प्रकार अभिप्राय है

(३) अवधानं अवधिः। कोऽर्थः। अधस्तादबहुतर विषय ग्रहणादवधिरुच्यते। देवाः खलु अवधिज्ञानेन सप्तम नरक पर्यन्तं पश्यन्ति। उपरिस्तात् स्वविमानस्य ध्वजदण्डपर्यन्तमित्यर्थः ॥ अवच्छिन्न विषयत्वादवधिः। कोऽर्थः रूपित लक्षणविषयत्वादवधि

अवधानं ¹॥	= अवधान अर्थात नीचले या पाताल का (= अध)(विषयोंका)ग्रहण(= ज्ञान)है।
अवधिः । कः ॥ अर्थः ॥ अधस्तात् बहुतर	सा अवधि है। (इस वाक्य मे) क्या अभिप्राय है। नीचले वा पाताल के अधिकतर
विषय ग्रहणात् ॥ अवधि ॥ उच्यते T देवाः ॥	=विषय ग्रहण करनेसे अवधि कहा गया है। देव
खलु अवधिज्ञानेन ॥ सप्तम नरक-पर्यन्तम् ॥	= निश्चयकरि (=खलु) अवधिज्ञान से सातवां नरक तक

स्वपरमनोभिर्व्यपदिश्यते । यथा अभ्रे चन्द्रमसं पश्येति ॥ बाह्येनाभ्यन्तरेण च तपसा यदर्थमर्थिनो मार्गं केवन्ते सेवन्ते तत्केवलम् । असहायमिति वा ॥

स्व-पर मनोभिः ॥ व्यपदिश्यते । =अपने और परके मनों (की अपेक्षा) करि निर्देश किया गया है । अर्थात् इसकी मन पर्यायज्ञान संज्ञा इस हेतुसे रक्खी है कि इसमें अपने और परके मनकी अपेक्षा मात्र है नकि मतिज्ञानकी भांति इसमें (इन्द्रिय और) मनके द्वारा रूपीपदार्थका ज्ञान होता है ॥

यथा अभ्रे । चन्द्रमसम् । पश्यति । इति॥ =जैसे बादलमें चंद्रमाको देख अर्थात् जैसे इस वाक्यमें बादल शब्द केवल अपेक्षामात्र लाये हैं चंद्रमा बादलसे उत्पन्न नहीं हुआ है तैसे मनः पर्यय वाक्यमें मन शब्द अपेक्षामात्र है मन पर्ययज्ञान मनद्वारा उत्पन्न नहीं हुआ है ॥

बाह्येन ॥ अभ्यन्तरेण ॥ च॥ तपसा ॥ यद् अर्थम् ॥ =बाह्य और (=च) अंतरंग तपकरि जिस वस्तुको (=यद् अर्थम्)

मार्गम् ॥ अर्थिनः ॥ केवन्ते । सेवन्ते । =जिस पथको तपस्वी उपासना करते हैं (केवन्ते=सेवन्ते) सेवन करते हैं

तत् ॥ केवलम् ॥ वा॥ असहायम् ॥ इति॥ =सो (तत्) केवल (ज्ञान) है अथवा (यह केवल ज्ञान) असहाय ऐसा है याने किसीका सहाय नहीं चाहता है अर्थात् जैसे मतिज्ञान और श्रुतज्ञान इन्द्रियों और प्रकाशादिककी सहायतासे पदार्थको जानते हैं तैसे यह ज्ञान नहीं है तथा अवधि ज्ञान और मनः पर्यय ज्ञान अपनी अपनी उत्पत्तिमें यथासंख्य अवधिज्ञानावरण और मनः पर्यय ज्ञानावरण कर्मकी अपेक्षा रखते हैं तैसे भी केवल ज्ञान नहीं है यह ज्ञान एकमात्र आत्मासे ही प्रवर्तता है इसीसे इसको केवल (ज्ञान) कहते हैं ॥

केवन्ते—यह शब्द सिद्ध करनेके लिए उभयपदी परस्मैपद और आत्मनेपद सकर्मक अनिट् धातु सि और अप उपसर्गोंके जोडनेसे वि+अप+सिञ् कर तथा यन् प्रत्यय जोडकर और ते अन्यपुरुष, बहुवचन, वर्तमानकाल, आत्मनेपदी प्रत्ययका आगमसे व्यपदिश्यते बनाकिया । केवृ धातु जिसका अर्थ सेवा करना है "केवल" शब्द निकला है ॥

तदन्ते प्राप्यते इति अन्ते क्रियते । तस्य प्रत्यासन्नत्वात्तत्समीपे मन पर्ययग्रहणम् । कुत प्रत्यासत्तिः ? । संयमैकाधिकरणत्वात । तस्य अवधिर्विप्रकृष्टः । कुतः । विप्रकृष्टतरत्वात ॥

तत् ;।। अन्ते ;। प्राप्यते इति अन्ते ;। क्रियते	=जो (केवलज्ञान) अन्तमें प्राप्त किया जाता है सो इस (सूत्रके) अन्तमें लाया गया है
तस्य ;।। प्रत्यासन्नत्वात् ;।। तत्-समीपे ;	=तिस (केवलज्ञान) के निकट उत्पन्न होनेसे उस (केवलज्ञान) के पास में
मनः पर्यय-ग्रहणम् ;।। कुतः	=मनः पर्यय (ज्ञान) का ग्रहण है । (प्रश्न) कहांसे (= कुतः) वा क्योंकर (कुतः)
प्रत्यासत्ति ,।। एक	=(मनः पर्यय ज्ञान केवल ज्ञानके) अति निकट है । केवल (= एक)
संयम-अधिकरणत्वात् ;।।।	=संयमके आश्रयपना से (मन पर्ययज्ञान केवल ज्ञानके अति निकट) है अर्थात् मनः पर्ययज्ञान और केवलज्ञान ये दोनों संयमी मुनिके होते हैं अत मनः पर्ययज्ञानको संयमकी अपेक्षा से केवल ज्ञानकी निकटता प्राप्त है
तस्य ;।।। अवधिः ।। विप्रकृष्टः ।।	=तिस (केवलज्ञान) के अवधिज्ञान दूर है (अतः इसको मनः पर्ययज्ञानके समीप कहा)
कुतः	=(प्रश्न केवलज्ञान से अवधिज्ञान) क्योंकर (=कुतः) (दूर है – उत्तर)
विप्रकृष्टतरत्वात् ;।।।	=क्योंकि (केवलज्ञानकी अपेक्षासे) दूरवर्ती (तीनज्ञानों)मेंसे (यह अवधिज्ञान) एक है

(१) केवलज्ञानापेक्षया विप्रकृष्टेषु मतिश्रुतावधिष्वन्यतमत्वात् ।

केवलज्ञान-अपेक्षया ;। विप्रकृष्टेषु ; मति श्रुत-	= क्योंकि केवलज्ञानकी अपेक्षा से दूरवर्ती मतिज्ञान श्रुतज्ञान
अवधिषु । अन्यतमत्वात् ;।।	= अवधिज्ञानों में से (यह अवधिज्ञान एक है)

(२) 'तस्य' = 'केवलज्ञानस्य' के लिये आया है क्योंकि यदि मन पर्ययज्ञानके लिये आता तो सूत्रिकर्ता प्रत्यासत्ति वा इसी अर्थ का कोई शब्द देते

(३) " समीपे " त्रिलिंगी शब्द है यहाँ पर इसको सप्तमी एक वचन पुल्लिंग में वा सप्तमी एकवचन नपुंसक लिंग में मान सकते हैं ।

स्वपरमनोभिर्व्यपदिश्यते । यथा अभ्रे चन्द्रमस पश्येति ॥ वाह्येनाभ्यन्तरेण च तपसा यदर्थमर्थिनो मार्गं केवन्ते सेवन्ते तत्केवलम् । असहायमिति वा ॥

स्व-पर मनोभि' ;॥ व्यपदिश्यते T =अपने और परके मनों (की अपेक्षा) करि निर्देश किया गया है । अर्थात इसकी मनःपर्यायज्ञान संज्ञा इस हेतुसे रक्खी है कि इसमें अपने और परके मनकी अपेक्षा मात्र है नकि मतिज्ञानकी भांति इसमें (इन्द्रिय और) मनके द्वारा रूपीपदार्थका ज्ञान होता है ॥

यथा॰ अभ्र ;। चन्द्रमसम् ,। पश्यति T इति॰ =जैसे बादलमें चंद्रमाको देख अर्थात् जैसे इस वाक्यमें बादल शब्द केवल अपेक्षामात्र लाये हैं चंद्रमा बादलसे उत्पन्न नहीं हुआ है तैसे मन' पर्यय वाक्यमें मन शब्द अपेक्षामात्र है मनः पर्ययज्ञान मनद्वारा उत्पन्न नहीं हुआ है ॥

बाह्येन ;॥ अभ्यन्तरेण ;॥ च॰ तपसा ॰॥ यद्-अर्थम् ;। =बाह्य और (=च) अंतरंग तपकरि जिस वस्तुको (=यद् अर्थम्)

मार्गम् ;। अर्थिन' ;। केवन्ते T सेवन्ते T =जिस पथको तपस्वी उपासना करते हैं (केवन्ते=सेवन्ते) सेवन करते हैं

तत् ;॥ केवलम् ;॥ वा॰ असहायम् ,॥ इति॰ =सो (तत्) केवल (ज्ञान) है अथवा (यह केवल ज्ञान) असहाय ऐसा है याकि किसीका सहाय नहीं चाहता है अर्थात् जैसे मतिज्ञान और श्रुतज्ञान इन्द्रियों और प्रकाशादिककी सहायतासे पदार्थको जानते हैं वस यह ज्ञान नहीं है तथा अवधि ज्ञान और मनः पर्यय ज्ञान अपनी अपनी उत्पत्तिमें यथासंख्य अवधिज्ञानावरण और मनः पर्यय ज्ञानावरण कर्मकी अपेक्षा रखते हैं वैसे भी केवल ज्ञान नहीं है यह ज्ञान एकमात्र आत्मासे ही प्रवर्तता है इसीसे इसको केवल (ज्ञान) कहते हैं ॥

व्यपदिश्यते—यह शब्द दिश् तुदादि छठेगणके उभय परस्मैपद और आत्मनेपद सकर्मक अनिट् धातुसे वि और अप उपसर्गोंके जोड़नेसे वि+अप+दिश् रूप बना यह कर्मणि प्रत्यय जोड़कर और ते अन्यपुरुष, एकवचन, वर्तमानकाल, आत्मनेपदी प्रत्ययको जोड़नेसे व्यपदिश्यते बनाकिया । केवृ धातु जिसका अर्थ सेवा करना है "केवल" शब्द निकला है ।

तदन्ते प्राप्यते इति अन्ते क्रियते । तस्य प्रत्यासन्नत्वात्तत्समीपे मन पर्ययग्रहणम् । कुत प्रत्यासत्तिः ? । संयमैकाधिकरणत्वात । तस्य अवधिर्विप्रकृष्ट । कुतः । विप्रकृष्टतरत्वात ॥

तत् ॥ अन्ते ॥ प्राप्यते ॥ इति अन्ते ॥ क्रियते	=वो (केवलज्ञान) अन्तमें प्राप्त किया जाता है सो इस (सूत्रके) अन्तमें लाया गया है
तस्य ॥ प्रत्यासन्नत्वात् ॥ तत्-समीपे ॥	=तिस (केवलज्ञान) के निकट उत्पन्न होनेसे उस (केवलज्ञान) के पास में
मनः पर्यय-ग्रहणम् ॥ कुतः	=मनः पर्यय (ज्ञान) का ग्रहण है । (प्रश्न) कहांसे (=कुतः) या क्योंकर (कुतः)
प्रत्यासत्ति ॥ एक	=(मनः पर्यय ज्ञान केवल ज्ञानके) अति निकट है । केवल (=एक)
संयम-अधिकरणत्वात् ॥	=संयमके आश्रयपना से (मन पर्ययज्ञान केवल ज्ञानके अति निकट) है अर्थात् मनः पर्ययज्ञान और केवलज्ञान ये दोनों संयमी मुनिके होते हैं अतः मनः पर्ययज्ञानको संयमकी अपेक्षा से केवल ज्ञानकी निकटता प्राप्त है
तस्य ॥ अवधिः ॥ विप्रकृष्टः ॥	=तिस (केवलज्ञान) के अवधिज्ञान दूर है (अतः इसको मनः पर्ययज्ञानके समीप कहा)
कुतः	=(प्रश्न केवलज्ञान से अवधिज्ञान) क्योंकर (=कुतः) (दूर है – उत्तर)
विप्रकृष्टतरत्वात् ॥	=क्योंकि (केवलज्ञानकी अपेक्षासे) दूरवर्ती (तीनज्ञानों)मेंसे (यह अवधिज्ञान) एक है

(१) केवलज्ञानापेक्षया विप्रकृष्टेषु मतिश्रुतावधिष्वन्यतमत्वात् ।

केवलज्ञान-अपेक्षया ॥ विप्रकृष्टेषु ॥ मति श्रुत-	=क्योंकि केवलज्ञानकी अपेक्षा से दूरवर्ती मतिज्ञान श्रुतज्ञान
अवधिषु । अन्यतमत्वात् ॥	=अवधिज्ञानों में से (यह अवधिज्ञान एक है)

(२) 'तस्य' = 'केवलज्ञानस्य' के लिये आया है क्योंकि यदि मन पर्ययज्ञानके लिये आता तो वृत्तिकर्ता प्रत्यासत्ति या इसी अर्थ का कोई शब्द देते

(२) " समीपे " त्रिलिंगी शब्द है यहां पर इसका सप्तमी एक वचन पुल्लिंग में या सप्तमी एकवचन नपुंसक लिंग में मान सकते हैं ।

प्रत्ययात्परोक्ष पूर्वमुक्तं सुगमत्वात्। श्रुतपरिचितानुभूता हि मतिश्रुतपद्धति· सर्वेण प्राणिगणेन प्राय प्राप्यते यत ॥ एवमेतत्पञ्चविध ज्ञानम् ॥ तद्भेदादयश्च पुरस्ताद्वक्ष्यन्ते ॥ प्रमाणनयैरधिगम इत्युक्तम्। प्रमाण च केषाञ्चित् ज्ञानमभिमतम्। केषाञ्चित् सन्निकर्ष ।

प्रत्ययात् ।५। परोक्षम् ।१।	=प्रत्यक्ष (अवधि-मन पर्यय-केवलज्ञानों)से परोक्ष (मति-श्रुतज्ञान)
सुगमत्वात् ।५। पूर्वम् ।१। उक्तम् ।१।	=स्पष्ट वा सुगमहोने (के हेतु) से (इस नवमें सूत्रमें) प्रथम कहेगये हैं
यत श्रुत-परिचिता अनुभूता ।१। हि॰	=क्योंकि (-यत) श्रुतकरि जानागया (=परिचिता) और अनुभवकियागया ही।
मति श्रुतपद्धति· ।१। सर्वेण ।३। प्राणि-गणेन ।३। प्रायस्॰	=मतिज्ञान और श्रुतज्ञानका मार्ग (=पद्धति) सबजीवोंके समूहद्वारा बहुधा
प्राप्यते T	=प्राप्त किया जाता है। भावार्थ मति-श्रुतज्ञान परिचय किये जाते हैं, अनुभवमें आते हैं इसकी पद्धति सुनी जाती है समस्त प्राणियोंकि बाहुल्यपनेकरि वा बहुतायतकरि पायेजाते हैं और (मतिज्ञान-श्रुतज्ञान) सुगम है अतः ये दोनों परोक्षज्ञान तीन प्रत्यक्ष ज्ञानोंसे पहिले कहे हैं
एवम् एतत् ।१। पञ्च-विधम् ।१। ज्ञानम् ।१। च तद्	=इस प्रकार यह पांच भांति ज्ञान है। और उस (=तद्-ज्ञान) के
भेद आदय· ।१। पुरस्तात्॰वक्ष्यन्ते T	=भेद आदिक आगे कहे जायंगे ॥
प्रमाण-नयै· ।३।	=(सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र और जीव-अजीवादि सात तत्वों का) प्रमाण-नयोंसे
अधिगम· ।१। इति॰उक्तम् ।१।	=ज्ञान होताहै ऐसा (सूत्र ६ में) कहागया है
प्रमाणम् ।१। च॰केषाञ्चित्॰ज्ञानम् ।१। अभिमतम् ।१।	=और(=च) कितककरि प्रमाण ज्ञान माना गया है (अभिमतम्)
केषाञ्चित्॰सन्निकर्ष· ।१।	=कितेकके (प्रमाण) सन्निकर्ष (मानागया है) अर्थात् कितेक मताचार्य विषय और इन्द्रियका सम्बन्ध या व्यापार को प्रमाण मानते हैं

(१) श्रुतपरिचितानुभूता = श्रुतेन परिचिता सा चानुभूता च = श्रुतेन परिचिता सा च अनुभूता च
श्रुतम् ।३। परिचिता ।१। सा ।१। च॰अनुभूता ।१। च॰ =जो श्रुतकरि जानाजाता है और अनुभव कियाजाता है सो श्रुतपरिचितानुभूत है

केषांञ्चिदिन्द्रियमिति । अतोऽधिकृतानामेव मत्यादीनां प्रमाणत्वख्यापनार्थमाह–

॥ तत्प्रमाणे ॥१०॥

तद्वचन किमर्थं ? प्रमाणान्तरपरिकल्पनानिवृत्त्यर्थम् । सन्निकर्षे प्रमाणमिन्द्रियं प्रमाणमिति केचित्कल्पयान्ति

केषांञ्चित्॰ इन्द्रियम् ॥ इति॰	=केवेकके इन्द्रिय ऐसे (प्रमाण माना गया) है—इस सबका भावार्थ है कि सुगत (बुद्धदेव) के माननेवाले ज्ञानको प्रमाण मानते हैं और यौग मत वाले इन्द्रिय और पदार्थका जोड़रूप संनिकर्षको प्रमाण मानते हैं और सांख्य मत वाले इन्द्रियोंको प्रमाण मानते हैं । इत्यादि ज्ञानके संबन्धमें भिन्न भिन्न मतावलम्बियोंकी भिन्न भिन्न अनेक कल्पनायें हैं
अतः॰ अधिकृतानाम् ॥	=इस हेतुसे (=अतः) अधिकार कियेगये या प्रकरणमें लायेगये
मति-आदीनाम् ॰ एव॰	=मति-श्रुत अवधि-मनः पर्यय-केवलज्ञानोंके ही (=एव)
प्रमाणत्व-ख्यापन अर्थम् ॥ आह T	=प्रमाणताकीप्रसिद्धिके लिये कहते हैं कि

॥ तत्प्रमाणे ॥१०॥

तत्	=वे (मतिज्ञान श्रुतज्ञान-अवधिज्ञान मनः पर्ययज्ञान और केवलज्ञान)
प्रमाणे ॰	=दो (परोक्ष और प्रत्यक्ष) प्रमाण हैं । उन ज्ञानोंकी ही प्रमाण संज्ञा है । अर्थात् उपर्युक्त पांच ज्ञान ही दो प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रमाण हैं । अन्य प्रकार नहीं है ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित इस सूत्रपर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद ॥

तत्-वचनम् ॰ किमर्थम् ॰	=तत् पद (इस दशमें सूत्रमें) किस लिये है ? ॥
प्रमाणान्तर-परिकल्पना-निवृत्ति-अर्थम् ॥	=(इस सूत्रमें तत् पद) दूसरे दूसरे प्रमाणोंकी अनेक कल्पनाओंके निषेध करनेके लिये है
सन्निकर्षः ॰ प्रमाणम् ॥ इन्द्रियम् ॥ प्रमाणम् ॥	=सन्निकर्ष प्रमाण (अर्थात् इन्द्रिय और पदार्थोंका संयोग) और इन्द्रिय प्रमाण
इति॰ केचित्॰ कल्पयन्ति T	=ऐसे कितेक (मतधारी) कल्पना करते हैं

प्रत्यक्षात्परोक्षं पूर्वमुक्तं सुगमत्वात्। श्रुतपरिचितानुभूता हि मतिश्रुतपद्धतिः सर्वेण प्राणिगणेन प्राय प्राप्यते यत ॥ एवमेतत्पञ्चविधं ज्ञानम् ॥ तद्भेदादयश्च पुरस्ताद्वक्ष्यन्ते ॥ प्रमाणनयैरधिगम इत्युक्तम्। प्रमाणं च केषाञ्चित् ज्ञानमभिमतम्। केषाञ्चित् सन्निकर्ष ।

प्रत्यक्षात् ॥ परोक्षम् ॥	=प्रत्यक्ष (अवधि मनःपर्यय-केवलज्ञानों)से परोक्ष (मति-श्रुतज्ञान)
सुगमत्वात् ॥ पूर्वम् ॥ उक्तम् ॥	=स्पष्ट वा सुगमहोने (के हेतु) से (इस नवमें सूत्रमें) प्रथम कहेगये हैं
यत श्रुत-परिचिता-अनुभूता ॥ हि०	=क्योंकि (यत) श्रुतकरि जानागया (=परिचिता) और अनुभवकियागया ही।
मति-श्रुतपद्धति ॥ सर्वेण ॥ प्राणि-गणेन ॥ प्रायस० प्राप्यते ॥	=मतिज्ञान और श्रुतज्ञानका मार्ग (=पद्धति) सबजीवोंकि समूहद्वारा बहुधा =प्राप्त किया जाता है। भावार्थ मति-श्रुतज्ञान परिचय किये जाते हैं, अनुभवमें आते हैं इसकी पद्धति सुनी जाती है समस्त प्राणियोंकि बाहुल्यपनेकरि या बहुतायतकरि पायेजाते हैं और (मतिज्ञान-श्रुतज्ञान) सुगम है अतः ये दोनों परोक्षज्ञान तीन प्रत्यक्ष ज्ञानोंसे पहिले कहे हैं
एवम् एतत् ॥ पञ्च विधम् ॥ ज्ञानम् ॥ च तद्	=इस प्रकार यह पांच भांति ज्ञान है। और उस (=तद्-ज्ञान) के
भेद आदय ॥ पुरस्तात्०वक्ष्यन्ते ॥	=भेद आदिक आगे कहे जायंगे ॥
प्रमाण-नयैः ॥	=(सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र और जीव अजीवादि सात तत्वों का) प्रमाण-नयोंसे
अधिगम ॥ इति०उक्तम् ॥	=ज्ञान होता है ऐसा (सूत्र ६ में) कहागया है
प्रमाणम् ॥ च०केषाञ्चित्०ज्ञानम् ॥ अभिमतम् ॥	=और(=च) कितेककरि प्रमाण ज्ञान माना गया है (अभिमतम्)
केषाञ्चित्०सन्निकर्ष ॥	=कितकके (प्रमाण) सन्निकर्ष (मानागया है) अर्थात् कितेक मताचार्य विषय और इन्द्रियका सम्बन्ध या व्यापार को प्रमाण मानते हैं

(१) श्रुतपरिचितानुभूता =श्रुतेन परिचिता सा चानुभूता च = श्रुतेन परिचिता सा च अनुभूता च
श्रुतम् ॥ परिचिता ॥ सा ॥ चअनुभूता ॥ च =जो श्रुतकरि जानाजाता है और अनुभव कियाजाता है सो श्रुतपरिचितानुभूत है
(२) सौगतानाम् =सुगत बुद्धदेवके मानने वालोंके (२) सौगतानाम्=सौगतमतावलंबीके

केषांञ्चिदिन्द्रियमिति । अतोऽधिकृतानामेव मत्यादीना प्रमाणत्वस्थापनार्थमाह–

॥ तत्प्रमाणे ॥१०॥

तद्वचनं किमर्थं ? प्रमाणान्तरपरिकल्पनानिवृत्त्यर्थम् । सन्निकर्षः प्रमाणमिन्द्रियं प्रमाणमिति केचित्कल्पयन्ति

केषांञ्चित्# इन्द्रियम् ;॥ इति#	=केवेकके इन्द्रिय ऐसे (प्रमाण माना गया) है—इस सबका भावार्थ है कि सुगत (बुद्धदेव) के माननेवाले ज्ञानको प्रमाण मानते हैं और योग मत वाले इन्द्रिय और पदार्थका योगरूप सन्निकर्षको प्रमाण मानते हैं और सांख्य मत वाले इन्द्रियोंको प्रमाण मानते हैं । इत्यादि ज्ञानके संबन्धमें भिन्न भिन्न मतावलम्बियोंकी भिन्न भिन्न अनेक कल्पनायें हैं
अत# अधिकृतानाम् ;।	=इस हेतुसे (=अतः) अधिकार कियेगये वा प्रकरणमें लायेगये
मति-आदीनाम् ;। एव#	=मति-श्रुत अवधि-मनः पर्यय-केवलज्ञानोंके ही (=एव)
प्रमाणत्व-स्थापन अर्थम् ;॥ आह T	=प्रमाणताकीप्रसिद्धिके लिये कहते हैं कि

॥ तत्प्रमाणे ॥१०॥

तत्	=वे (मतिज्ञान श्रुतज्ञान-अवधिज्ञान मन पर्ययज्ञान और केवलज्ञान)
प्रमाणे ,।	=दो (परोक्ष और प्रत्यक्ष) प्रमाण हैं । उन ज्ञानोंको ही प्रमाण संज्ञा है । अर्थात् उपर्युक्त पाच ज्ञान ही दो प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रमाण हैं । अन्य प्रकार नहीं है ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित इस सूत्रपर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दश हिंदी अनुवाद ॥

तत्-वचनम् ,। किमर्थम् ।	=तत् पद (इस दशमें सूत्रमें) किस लिये है ? ॥
प्रमाणान्तर-परिकल्पना-निवृत्ति-अर्थम् ,॥	=(इस सूत्रमें तत् पद) दूसर दूसरे प्रमाणोंकी अनक कल्पनाओंके निषेध करनेके लिये है
सन्निकर्षः ,। प्रमाणम् ,॥ इन्द्रियम् ,॥ प्रमाणम् ;॥	=सन्निकर्ष प्रमाण (अर्थात् इन्द्रिय और पदार्थोंका संबन्ध) और इन्द्रिय प्रमाण
इति# केचित# कल्पयन्ति T	=ऐसे कितेक (मतधारी) कल्पना करत हैं

तन्निवृत्त्यर्थं तदित्युच्यते। तदेव मत्यादि प्रमाणं नान्यदिति॥ अथ सन्निकर्षप्रमाणे सति इन्द्रिये वा को दोषः? यदि सन्निकर्षः प्रमाणं, सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टानामर्थानामग्रहणप्रसंगः। नहि ते इन्द्रियैः सन्निकृष्यन्ते। अतः सर्वज्ञत्वाभावः स्यात्॥ इन्द्रियमपि यदि प्रमाणं, स एव दोषः। अल्पविषयत्वात् चक्षुरादीनां। ज्ञेयस्य चापरिमाणत्वात्। सर्वेन्द्रियसन्निकर्षाभावश्च चक्षुर्मनसोः प्राप्यकारित्वाभावात्।

तत् निवृत्ति अर्थम् ॥ तत् इति = उन (सन्निकर्ष प्रमाण और इन्द्रिय प्रमाणादि) के निषेध के लिये तत् ऐसा शब्द
उच्यते ॥ तत् ॥ एव मति आदि ॥ प्रमाणम् ॥ = कहागया है। वोही (= एव) मतिज्ञान आदिक ज्ञान प्रमाण है।
न अन्यत् इति अथ सन्निकर्ष-प्रमाणे ॥ सति ॥ = दूसरा कोई प्रमाण नहीं है। अथ (= अब) सन्निकर्ष के प्रमाण होने पर
वा इन्द्रिये ॥ कः ॥ दोषः ॥ यदि सन्निकर्षः ॥ = अथवा इन्द्रिय (प्रमाण) मानने में क्या दूषण है? जो (= यदि) सन्निकर्ष
प्रमाणम् ॥ सूक्ष्म- = प्रमाण हो तो सूक्ष्मपदार्थ (परमाणु आदिक) निका
व्यवहित- = अन्तरित वा पहिले (= व्यवहित) पदार्थ (राम-रावणादिकों का)
विप्रकृष्टानाम् ॥ अर्थानाम् ॥ = दूरवर्ती पदार्थ (मेरु-पर्वतादिक) निके (सन्निकर्षको प्रमाण माननेमें)
अग्रहण-प्रसंगः ॥ = ग्रहण का अवसर नहीं आता है। क्योंकि
न ॥ इन्द्रियैः ॥ नहि = वे (सूक्ष्म पदार्थ अन्तरितपदार्थ-दूरवर्ती पदार्थ) इन्द्रियों द्वारा नहीं
सन्निकृष्यन्ते अतः सर्वज्ञत्व-अभावः ॥ स्यात् = सन्निकर्ष वा स्पर्श किये जासकते हैं॥ इसलिये सर्वज्ञपना का अभाव होगा (क्योंकि सन्निकर्ष जब प्रमाण होगा, वही प्रमाण सर्वज्ञके मानना पडेगा, सन्निकर्ष सूक्ष्म अन्तरित-दूरीवर्ती पदार्थों को जानता नहीं अतः सर्वज्ञभी न जान सकेगा अतः असर्वज्ञत्व हुआ)
इन्द्रियम् ॥ अपि प्रमाणम् ॥ = इन्द्रिय प्रमाण होतो भी (वही असर्वज्ञताका दूषण आता है)
चक्षुर् आदीनां ॥ अल्प-विषयत्वात् ॥ च ज्ञेयस्य ॥ = क्योंकि नेत्र आदिका थोडा विषय होने (क हेतु)से व ज्ञानके ग्रहण करने योग्य पदार्थोंका
अपरिमाणत्वात् ॥ स ॥ एव दोषः ॥ = अपरिमित होनेसे (वा अनन्त होनेसे) वो (= स) एव (= ही) दोष (असर्वज्ञत्वका) आता है (असर्वज्ञताका दोष होनेके अतिरिक्त यह बात भी कि)
चक्षुष् मनसो ॥ प्राप्यकारित्व अभावात् ॥ = नेत्र मनके पदार्थोंको प्राप्त होनेके अभावसे (= वस्तुओंके साथ मिलन न होनेपरभी ग्रहण)
सर्व-इन्द्रिय-सन्निकर्ष-अभावः ॥ च = समस्त (ही) इन्द्रियों के पदार्थोंसे सर्वथा [illegible] सन्निकर्ष भी ([illegible]) नहीं है।

अप्राप्यकारित्व च उत्तरत्र वक्ष्यते ।। यदि ज्ञानं प्रमाणं, फलाभाव । अधिगमो हि फलमिष्टं न भावान्तरम् । स चेत्प्रमाणं, न तस्यान्यत्फल भवितुमर्हति । फलवता च प्रमाणेन भवितव्यम् ।।

सारांश—इन्द्रियको प्रमाण मानें तो (१) इंद्रियोंका विषय अल्प और परिमित है । शेष पदार्थ अनंत और अपरमित हैं अतः असर्वज्ञता दोष आता है (२) सन्निकर्षको प्रमाण मानें तो अंतरित-सूक्ष्म-दूरवर्ती पदार्थोंका इन्द्रियद्वारा सन्निकर्ष न होनेसे असर्वज्ञता दोष आता है (३) नेत्र और मन (पदार्थके साथ) भिड़न न होने से नेत्र और मनके साथ सन्निकर्ष नहीं बनता ।।

अप्राप्यकारित्वं ।।। च॰	=और(नेत्र तथा मनको) अप्राप्यकारित्व (वस्तुओंके साथ भिड़न न होनेमें भी ग्रहण)
उत्तरत्र॰ वक्ष्यते T	=आगे (उन्नीसवां सूत्र " न चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम्" में) कहा जायगा
यदि॰ ज्ञानं ।।। प्रमाणं ।।। फल-अभावः ।। हि॰	=(प्रश्न) जो ज्ञान प्रमाण होगा तो फलका अस्तित्व नहीं होगा क्योंकि =हि)
अधिगमः ।। फलम् ।।। इष्टं ।।। न॰	=ज्ञान या अधिगम ही प्रमाणका फल है नकि
भावान्तरम् ।।। सः ।। चेत्॰ प्रमाणं ।।।	=अन्यवस्तु भावान्तर (वांछित फल) है यदि (=चेत्) अधिगम (=सः) प्रमाण हो तो
तस्य ।। अन्यत्॰ फलम् ।।। भवितुम्-न अर्हति T	=तिस (अधिगम) का दूसरा फल होनेको (=भवितुम्) समर्थ नहीं है
फलवता ।।। च॰ प्रमाणेन ।।। भवितव्यम् ।।।	=(अधिगमका अन्यफल नहीं हो सक्ता है) और प्रमाण फलसहित होना चाहिये

---

(१) न चक्षुर निन्द्रियाभ्यामिति सूत्र व्याख्यानावसरे ।	—(व्यञ्जनस्य अवग्रहः) न चक्षुर् अनिन्द्रियाभ्याम् इति सूत्र-व्याख्यान-अवसरे
(व्यञ्जनस्य ।। अवग्रहः ।।) चक्षुस्—	—(अप्रगटरूप शब्दादिक पदार्थोंका अवग्रहरूप ज्ञान) नेत्र और
अनिन्द्रियाभ्याम् ।। न॰	—मनसे नहीं होता है । इसलिये उनका ईहा आवाय धारणारूप ज्ञान भी नहीं हो सक्ता है क्योंकि जिस पदार्थका अवग्रह नहीं होता है उसके ईहादि भी नहीं होते हैं

अन्य (चार स्पर्शन रसन घ्राण श्रोत्र) इन्द्रियोंसे व्यंजन (अप्रगटरूप वस्तुओं) का केवल मात्र अवग्रहरूप ज्ञान ही होता है । ईहा आवाय धारणा नहीं होता है ।

इति॰ सूत्र-व्याख्यान-अवसरे ।।	=इस प्रकार (उपर्युक्त) सूत्रके अवसर पर " अप्राप्यकारित्वे " कहा है ।

तन्निवृत्त्यर्थं तदित्युच्यते । तदेव मत्यादि प्रमाणं नान्यदिति ॥ अथ सन्निकर्षप्रमाणे सति इन्द्रिये वा को दोषः ? यदि सन्निकर्षः प्रमाणं, सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टानामर्थानामग्रहणप्रसंगः । नहि ते इन्द्रियैः सन्निकृष्यन्ते । अतः सर्वज्ञत्वाभावः स्यात् ॥ इन्द्रियमपि यदि प्रमाणं, स एव दोषः । अल्पविषयत्वात् चक्षुरादीनां । ज्ञेयस्य चापरिमाणत्वात् । सर्वेन्द्रियसन्निकर्षाभावश्च चक्षुर्मनसोः प्राप्यकारित्वाभावात् ।

तत् निवृत्ति-अर्थम् ।॥ तत्-इति॰	=उन (सन्निकर्ष प्रमाण और इन्द्रिय प्रमाणादि) के निषेध के लिये तत् ऐसा शब्द
उच्यते ।॥ तत् ।॥ एव मति आदि ।॥ प्रमाणम् ।॥	=कहागया है । वोही (=एव) मतिज्ञान आदिक ज्ञान प्रमाण है ।
न॰अन्यत्॰इति अथ॰सन्निकर्ष-प्रमाणे ।॥ सति ।॥	=दूसरा कोई प्रमाण नहीं है । अथ (=अथ) सन्निकर्ष के प्रमाण होने पर
वा॰इन्द्रिये ।॥ कः ।। दोषः ।। ? यदि॰सन्निकर्षः ।।	=अथवा इन्द्रिय (प्रमाण) मानने में क्या दूषण है ? जो (=यदि) सन्निकर्ष
प्रमाणम् ।॥ सूक्ष्म-	=प्रमाण हो तो सूक्ष्मपदार्थ (परमाणु आदिक) निका
व्यवहित-	=अन्तरित वा पहिले (=व्यवहित) पदार्थ (राम-रावणादिकों का)
विप्रकृष्टानाम् ।। अर्थानाम् ।।	=दूरवर्ती पदार्थ (मेरु-पर्वतादिक) निके (सन्निकर्षको प्रमाण माननेमें)
अग्रहण-प्रसंगः ।।	=ग्रहण का अवसर नहीं आता है । क्योंकि
ते ।। इन्द्रियैः ।॥ न॰हि॰	=वे (सूक्ष्म पदार्थ-अन्तरितपदार्थ-दूरवर्ती पदार्थ) इन्द्रियों द्वारा नहीं
सन्निकृष्यन्ते । अतः सर्वज्ञत्व अभावः ।। स्यात् ।	=सन्निकर्ष वा स्पर्श किये जासकते हैं ॥ इसलिये सर्वज्ञपना का अभाव होगा (क्योंकि सन्निकर्ष जब प्रमाण होगा, यही प्रमाण सर्वज्ञके मानना पडेगा, सन्निकर्ष सूक्ष्म अन्तरित-दूरवर्ती पदार्थों को जानता नहीं अतः सर्वज्ञभी न जान सकेगा अतः असर्वज्ञत्व हुआ)
इन्द्रियम् ।॥ अपि॰ प्रमाणम् ।॥	=इन्द्रिय प्रमाण होतो भी (यही असर्वज्ञताका दूषण आता है)
चक्षुर्-आदीनां ।। अल्प-विषयत्वात् ।।॰ च ज्ञेयस्य ।॥	=क्योंकि नेत्र आदिका थोड़ा विषय होने (कारण)से व ज्ञानके ग्रहण करने योग्य पदार्थोंका
अपरिमाणत्वात् ।।॰ सः ।। एव॰दोषः ।।	=अपरिमित होनेसे (वा अनन्त होनेसे) वो (=सः) एव (=ही) दोष (असर्वज्ञताका) आता है (असर्वज्ञताका दोष होनेके अतिरिक्त यह बात भी कि)
चक्षुर् मनसोः ।॥ प्राप्यकारित्व अभावात् ।।	=नेत्र मनके पदार्थोंको प्राप्त होनेके अभावसे(=वस्तुओंके साथ मिलन न होनपरभी ग्रहण)
सर्व इन्द्रिय-सन्निकर्ष-अभावः ।। च॰	=समस्त (ही) इन्द्रियों के पदार्थसे स्पर्शन वा सन्निकर्ष भी (=च) नहीं है ।

आत्मनश्चेतनत्वात्तत्रैव समवाय इति चेन्न । ज्ञस्वभावाभावे सर्वेषामचेतनत्वात् । ज्ञस्वभावाभ्युपगमे वा आत्मन । स्वमतविरोधः स्यात् ॥

	(ऊपर यह सिद्धकिया है कि सन्निकर्षको प्रमाण माननेमें अन्य अचेतन पदार्थ के भी अर्थ का ज्ञान आता है इसके प्रत्युत्तरमें अन्यवादी कहता है कि)
आत्मनः ॥ चेतनत्वात् ॥ तत्र॰ एव॰ समवायः ॥	=आत्माको चेतन होनेसे वहां (आत्मामें) ही (ज्ञानका) नित्यसंम्बन्ध (=समवाय) है (अन्य जड़ पदार्थ के वस्तुका ज्ञान नहीं होता है)
इति॰ चेत्॰ न॰	=ऐसी युक्ति देने पर (=चेत्) (उत्तरमें कहते हैं कि यह तुम्हारी युक्ति ठीक) नहीं
ज्ञ-स्वभाव-अभावे ॥ सर्वेषाम् ॥	=क्योंकि (आत्माके) ज्ञानस्वरूपताका अभाव होनेमें सब (आत्मा और अन्य पदार्थो) को
अचेतनत्वात् ॥॥ वा॰ आत्मनः ॥ ज्ञस्वभाव-	=जड़ता (समानरूपसे आजावी) है । और (=वा) आत्माके ज्ञानस्वरूपत्व
अभ्युपगमे ॥ स्व	=मानने पर आप के (अर्थात् नैयायिकोंके)
मतविरधः ॥ स्यात् ॥	=सिद्धान्तका (कि गुण गुणीसे भिन्न है) विरोध हो जावैगा ॥

---

(१) नैयायिक लोग कहते हैं कि आत्मा चेतन होनेसे उसमें ज्ञानका नित्य संबंध वा समवाय रहता है इसलिये आत्माके अतिरिक्त जड़ पदार्थके ज्ञानका प्रसंग नहीं आसक्ता परंतु यह कथन उनका ठीक नहीं है क्योंकि उनके सिद्धान्त (मत)में किसी पदार्थको स्वयं ज्ञानरूपता नहीं मानी है ऐसी अवस्थामें सर्व पदार्थ अचेतन ही ठहरते हैं तब आत्मामेंही ज्ञानका समवाय किस प्रकार कहा जा सक्ता है । यदि नैयायिक लोग आत्माको ज्ञानस्वरूप मानेंगे तो स्वयं उनके सिद्धान्त का (कि गुण सदैव गुणीसे भिन्न रहते हैं) व्याघात (नाश) हो जावेगा । क्योंकि आत्माको यहांपर उन्होंने स्वयं ज्ञान गुणसे अभिन्न अङ्गीकार कर लिया है ॥ योग—सांख्य अर्थात् सांख्यमतवाले ॥ यौग—नैयायिक (मतवाले) ॥

सन्निकर्षे इन्द्रिये वा प्रमाणे सति, अधिगम' फलमर्थान्तरभूत युज्यते इति तदयुक्तम् ॥ यदि सन्निकर्ष प्रमाण, अर्थाधिगम फले, तस्य द्विष्ठत्वात्तत्फलेनाधिगमेनापि द्विष्ठेन भवितव्यमिति अर्थादीनामप्यधिगम प्राप्नोति ।

भावार्थ यदि ज्ञानको प्रमाण मानोगे तो उस प्रमाणका कुछ फल नहीं होगा क्योंकि यदि अधिगम फल कहोगे तो ज्ञान प्रमाण-अधिगम सब एकार्थवाची होनेसे कुछ फल या लाभ नहीं है और प्रमाणका फल अवश्य होना ही चाहिये

सन्निकर्षे ;। इन्द्रिये ;।। वा प्रमाणे ,।। सति ;।।। अधिगमः ,। =सन्निकर्ष या इन्द्रिय के प्रमाण होते संते अर्थका ज्ञान-वस्तु का ज्ञान

फलम् ;।। अर्थान्तर =(=अधिगम) (उस प्रमाण का फल है । जो (फल) पदार्थ या द्रव्यसे भिन्नरूप (=अर्थान्तर)

भूतम् ,।।। युज्यत T इति तद् ,।।। अयुक्तम् ;।।। =हुआ (=सूतम्) ऐसा युक्त उचित या ठीक है । वो युक्त नहीं है ॥

यदि० सन्निकर्षः ,। प्रमाणम् ,।। अर्थ-अधिगमः ', =क्योंकि जो सन्निकर्ष प्रमाण हो (और) पदार्थ का ज्ञान (=अधिगम)-

फलम् ;।।। तस्य ;। =(उस सन्निकर्ष का या ऐसे प्रमाण का) फल हो तो उस (सन्निकर्ष) के

द्विष्ठत्वात् '।। =द्विष्ठपना से अर्थात् इन्द्रिय और स्पर्श हुये पदार्थ दोनों में तिष्ठने से

तत्-फलेन ,।।। अधिगमेन ;। अपि● =उस (सन्निकर्ष) का फल पदार्थ का ज्ञान भी

द्विष्ठेन ;। भवितव्यम् ;।। =प्रमाता और प्रमेय (पदार्थ) दोनों को होना चाहिये (अर्थात् सन्निकर्ष द्विष्ठ होने के कारण प्रमेय को भी पदार्थ का ज्ञान होना चाहिये)

इति० अर्थादीनाम् ;। अपि● अधिगमः ;। =ऐसे पदार्थ आदिकों को भी (जो अचेतन हैं) अधिगम या वस्तु का ज्ञान

प्राप्नोति T =प्राप्त होता है । भावार्थ यह है कि सन्निकर्ष से पदार्थ का ज्ञान होता है और सन्निकर्ष इन्द्रिय और पदार्थ के जोड़ रूप है । तब उकतपदार्थ का ज्ञान इस इन्द्रिय और पदार्थके जोड़रूपसे हुआ, इस प्रकार सन्निकर्ष वाले पदार्थ को भी अन्य पदार्थ का ज्ञान होना, यह दोषरूप है ॥ क्योंकि जड़ रूप पदार्थ को दूसरे पदार्थ का ज्ञान मानना दोषरूप है अतः सन्निकर्ष प्रमाण नहीं हो सक्ता ।

आत्मनश्चेतनत्वात्तत्रैव समवाय इति चेन्न । ज्ञस्वभावाभावे सर्वेषामचेतनत्वात् । ज्ञस्वभावाभ्युपगमे वा आत्मन । स्वमतविरोधः स्यात् ॥

	(ऊपर यह सिद्धकिया है कि सन्निकर्षको प्रमाण माननेमें अन्य अचेतन पदार्थ के भी अर्थ का ज्ञान आता है इसके प्रत्युत्तरमें अन्यवादी कहता है कि)
आत्मनः ।। चेतनत्वात् ।। तत्र॰ एव॰ समवायः ।।	=आत्माको चेतन होनेसे वहां (आत्मामें) ही (ज्ञानका) नित्यसंम्बन्ध (=समवाय) है (अन्य जड़ पदार्थ के वस्तुका ज्ञान नहीं होता है)
इति॰ चेत्॰ न॰	=ऐसी युक्ति देने पर (=चेत्) (उत्तरमें कहते हैं कि यह तुम्हारी युक्ति ठीक) नहीं
ज्ञ-स्वभाव-अभावे ।। सर्वेषाम् ।।	=क्योंकि (आत्माके) ज्ञानस्वरूपताका अभाव होनेमें सब (आत्मा और अन्य पदार्थों) को
अचेतनत्वात् ।।। वा॰ आत्मनः ।। ज्ञस्वभाव-	=जड़ता (समानरूपसे आजाती) है । और (=वा) आत्माके ज्ञानस्वरूपत्व
अभ्युपगमे । स्व-	=मानने पर आप के (अर्थात् नैयायिकोंके)
मतविरोधः ।। स्यात् ।।	=सिद्धान्तका (कि गुण गुणीसे भिन्न है) विरोध हो जावेगा ॥

(१) नैयायिक लोग कहते हैं कि आत्मा चेतन होनेसे उसमें ज्ञानका नित्य संबंध वा समवाय रहता है इसलिये आत्माके अतिरिक्त जड़ पदार्थके ज्ञानका प्रसंग नहीं आसक्ता परंतु यह कथन उनका ठीक नहीं है क्योंकि उनके सिद्धान्त (मत)में किसी पदार्थको स्वयं ज्ञानरूपता नहीं मानी है ऐसी अवस्थामें सर्व पदार्थ अचेतन ही ठहरते हैं तब आत्मामेंही ज्ञानका समवाय किस प्रकार कहा जा सक्ता है । यदि नैयायिक लोग आत्माको ज्ञानस्वरूप मानेंगे तो स्वयं उनके सिद्धान्त का (कि गुण सदैव गुणीसे भिन्न रहते हैं) व्याघात (नाश) हो जावेगा । क्योंकि आत्माको यहांपर उन्होंने स्वयं ज्ञान गुणसे अभिन्न अङ्गीकार कर लिया है ॥ योग—सांख्य अर्थात् सांख्यमतवाले ॥ यौग—नैयायिक (मतवाले) ॥

ननु, चोक्त, ज्ञाने प्रमाणे सति फलाभाव इति । नैष दोष. । अर्थाधिगमे प्रीतिदर्शनात् । ज्ञस्वभावस्यात्मनः कर्ममलीमसस्य करणालम्बनादार्थनिश्चये प्रीतिरुपजायते । सा फलमित्युच्यते । उपेक्षा अज्ञाननाशो वा फलम् ॥ रागद्वेषयोरप्रणिधानमुपेक्षा । अन्धकारकल्पाज्ञानाभाव अज्ञाननाशो वा फलमित्युच्यते ॥ प्रमिणोति प्रमीयतेऽनेन

ननु॰च॰उक्तम् ।॥ =पुनः प्रश्न कहा जाचुका है कि (अर्थात् शंकाकार कहता है कि मैं कहचुका हूंकि)

ज्ञान ॥ प्रमाण ॥ सति ॥ फल-अभावः ॥ इति॰ =ज्ञानको प्रमाण होने पर फलका अभाव होगा अर्थात् शंकाकार कहता है कि मैं पहले कह चुका हूं कि ज्ञान को प्रमाण मानने में उसका कुछ भी फल न होगा (उत्तर)

एष ॥ दोष ॥ न॰अर्थ-अधिगम ॥ प्रीति-दर्शनात् ॥ =यह दूषण नहीं है क्योंकि पदार्थ के ज्ञानमें प्रीति उपजती है । (अर्थात्) पदार्थ का यथार्थ ज्ञान होने पर आनन्द(=प्रीति)और सन्तोष(=प्रीति)होता है यह आनन्द, संतोषही फल है ।

ज्ञ-स्वभावस्य ॥ कर्ममलीमसस्य ॥ आत्मनः ॥ करण- =ज्ञान स्वभाववाले कर्मकरि मलीन चेतनके इन्द्रियों के

आलम्बनात् ॥ अर्थनिश्चये ॥ प्रीति ॥ उपजायते =अवलम्बन या आश्रयसे वस्तुके ज्ञानमें प्रीति उपजती है ॥

सा ॥ फलम् ॥ इति॰उच्यते । उपेक्षा ॥ =सो (यह प्रीति उस प्रमाणका) फल है ऐसा कहा गया है । मध्यस्थ भाव (=उपेक्षा)

अज्ञान-नाश ॥ वा ॰ =और (=वा) अज्ञानका लोप, अज्ञान का नाश (उस प्रमाणका क्रमसे दूसरा तीसरा)

फलम् ॥ =फल वा परिणाम है । (उपेक्षा और अज्ञाननाशका विवरण नीचेकी पंक्तियों में ऐसेहै)

राग-द्वेषयो ॥ अप्रणिधानम् ॥ उपेक्षा ॥ =रागद्वेष में प्रयत्न रहित मध्यस्थ स्वभावका या उदासीन होना सो उपेक्षा है ।

अन्धकार-कल्पा ॥ =अन्धकार की प्रलय (=कल्पा अर्थात् अज्ञानका मिलाना) अज्ञानका न होना

अज्ञान-अभाव ॥ अज्ञान नाशः ॥ वा॰ =अज्ञानका ध्वंस, अज्ञानका मिटजाना या अज्ञानकी शून्यता

फलम् ॥ इति॰उच्यते =(प्रमाण का तीसरा) फल ऐसे कहागया है ।

सारांश इस सबका यह है किप्रीति-उपेक्षा-अज्ञानका नाश ये तीन प्रमाण के फल हैं ।

प्रमिणोति प्रमाणम् ॥ =(पदार्थ का) सच्चा ज्ञान करता है सो प्रमाण है (कर्तरि प्रयोग या कर्तृ साधन है)

प्रमीयते अनेन ॥ प्रमाण ॥ =जिससे सच्चाज्ञान (वस्तुओं का) किया जाता है सो प्रमाण है ।

(यहां पर कर्मणि प्रयोग या करण साधन हुआ)

प्रमितिमात्रं वा प्रमाणम् ॥ किमनेन प्रमीयते ? जीवादिरर्थः ॥ यदि जीवादेरधिगमे प्रमाणं, प्रमाणाधिगमे अन्यत्प्रमाणं परिकल्पयितव्यम्। तथा सत्यनवस्था। नानवस्था। प्रदीपवत् ॥ यथा घटादीनां प्रकाशने प्रदीपो हेतु, तत्स्वरूपप्रकाशनेऽपि स एव, न प्रकाशान्तरमस्य मृग्यं, तथा प्रमाणमपीति अवश्यं चैतदभ्युपगन्तव्यम् ॥ प्रमेयवत्प्रमाणस्य प्रमाणान्तरपरिकल्पनायां स्वाधिगमाभावात् स्मृत्यभावः।

वा॰ प्रमितिमात्रम् ॥ प्रमाणम् ॥	=अथवा (पदार्थका) सभी ज्ञान मात्र ही प्रमाण है (यहां भावेप्रयोग वा भावसाधन वा क्रिया साधन हुआ)
किम् ॥ अनेन ॥ प्रमीयते ? जीव-आदिः ॥ अर्थः ॥	=इस (प्रमाण) करि क्या ज्ञान कराया जाता है। (उत्तर) जीवादि पदार्थ (जाने जाते हैं)
यदि॰ जीव-आदेः। अधिगमः प्रमाणम् ॥ प्रमाण-	=यदि जीवादिक (पदार्थ) के ज्ञान (कराने) में प्रमाण (हेतु) है तो प्रमाणके
अधिगमः। अन्यत् ॥ प्रमाणम् ॥ परिकल्पयितव्यम् ॥	=ज्ञान (कराने) में भिन्न प्रमाण कल्पना करना चाहिये
तथा॰ सति। अनवस्था ॥	=तिस प्रकार (=तथा) होने पर अवस्थाका अभाव होगा (अर्थात् अनवस्था दोष आवेगा)
न॰ अनवस्था ॥	=(अथवा पूर्वोक्त तर्कका अन्त न होगा) (उत्तर) अनवस्था (दोष) न होगा
प्रदीपवत्॰ यथा॰ घट आदीनाम् ॥	=(क्योंकि) दीपक (के प्रकाश) के समान (अवस्था) है (अर्थात्) जैसे घटादिकके
प्रकाशने ॥ प्रदीपः ॥ हेतुः ॥ तत्-स्वरूप-प्रकाशने ॥	=प्रकाश करने में दीपक (=प्रदीप) कारण है उस (दीपक) के रूप प्रकाशने में
अपि॰ सः ॥ एव॰ अस्य ॥	=भी वह (दीपक) ही (कारण) है। इस (दीपक) के (=अस्य) (प्रकाशके लिये)
प्रकाशान्तरम् ॥ न॰ मृग्यम् ॥	=अन्य प्रकाश (=प्रकाशान्तर) नहीं अन्वेषण किया जाता है (=न मृग्यम्)
च॰ तथा॰ एतत् ॥ प्रमाणम् ॥ अपि अवश्यम् ॥	=और (=च) वैसेही (=तथा) यह (=एतत्) प्रमाण भी अवश्य
अभ्युपगन्तव्यम् ॥ इति प्रमेय	=(स्व परस्वरूपका प्रकाशक) मानना योग्य है। यदि प्रमेय(=सामान्य विशेषात्मकवस्तु)
वत॰ प्रमाणस्य ॥ प्रमाणान्तर-परिकल्पनायाम्॰ ॥	=सदृश प्रमाण को अन्य प्रमाणकी (=प्रमाणान्तर) कल्पना करने पर
स्व अधिगम अभावात् ॥ स्मृति-अभावः ॥	=(प्रमाणके) अपना (स्वरूपके) जाननेके अभावसे स्मरणका अभाव होजावेगा ॥२३५

तदभावाद्व्यवहारलोप स्यात् ॥ वक्ष्यमाणभेदापेक्षया द्विवचननिर्देश । वक्ष्यते हि "आद्यपरोक्षं प्रत्यक्षमन्य
दिति" स च द्विवचननिर्देश प्रमाणान्तरसंख्यानिवृत्त्यर्थः ॥

तद् अभावात् ॥ व्यवहारलोप ॥
स्यात् ।
वक्ष्यमाण-भेद अपेक्षया ॥ द्वि-वचन
निर्देशः ॥ हि वक्ष्यते ।
आद्य ॥ परोक्षम् ॥ अन्यत् ॥ इति
प्रत्यक्षम् ॥
स ॥ च द्वि-वचन
निर्देशः ॥ प्रमाणान्तर
संख्या-
निवृत्ति-अर्थः ॥

=उस (स्मृति) की शून्यतासे व्यवहार वा लोक की प्रवृत्ति वा लोकाचार का अभाव
=होगा (अतः प्रमाणको अपना प्रकाशक और अन्यका प्रकाशक मानना योग्य है)
=आगे कहेजाने वाले (प्रमाणके) भेदोंकी विवक्षासे ("प्रमाणे" ऐसा) दो वचनक
=उच्चारण वा उपदेश है । क्योंकि (=हि) (अग्रिमसूत्र दशवें ग्यारहवेंमें) कहेंगे
=कि पहिले दो =आद्ये-(मतिज्ञान श्रुतज्ञान) परोक्ष (प्रमाण) है । अन्य वा पचेहुये
=प्रत्यक्ष प्रमाण (तीन अवधिज्ञान-मनः पर्ययज्ञान-केवलज्ञान) है ॥
=और (=च) वो (प्रमाणे शब्दका नवमें सूत्रमें प्रथमा विभक्ति) दो वचनमें
=उपदेश वा उच्चारण ज्ञानकी भिन्न (भिन्न) (=प्रमाणान्तर)
=गणना (एक-दो तीन-चार-छह आदि अन्य मतावलम्बियों स्वीकृत प्रमाणोंकि)
=निषेधके लिये भी है अर्थात् इस नवमें सूत्रमें "प्रमाणे" शब्द दोवचनमें
(१) दशवांसूत्र आद्ये परोक्षम्के आद्ये (शब्द जो दो वचनमें है उस)के लिये है
(२)अन्यवादियोंकि कल्पेहुये वा मानेहुये एक दो तीन, चार, छह इत्यादिक प्रमाणों
की संख्याके निराकरणके लिये है

(१) "चार्वाक तो एक प्रत्यक्ष प्रमाण ही माने है । बहुरि बौद्ध और वैशेषिक प्रत्यक्ष अनुमान ये दोय प्रमाण माने है सांख्य प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम तीन मानने है बहुरि नैयायिक प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, उपमान ऐसैं च्यारि प्रमाण माने है । बहुरि मीमांसक च्यारि तौ ए अर अर्थापत्ति अभाव, ऐसैं छह प्रमाण माने है । सो प्रत्यक्ष परोक्ष ए दोय संख्या कहने तैं ए सर्व प्रमाण इनिमैं गर्भित होय है पं० जयचंदजी वचनिका मुद्रित पृष्ठ १९८

उपमानार्थापत्यादीनामत्रैवान्तर्भावादुक्तस्य पञ्चविधस्य ज्ञानस्य प्रमाणद्वयान्तःपातित्वे प्रतिपादिते प्रत्यक्षानुमानादिप्रमाणद्वयकल्पनानिवृत्त्यर्थमाह—

उपमान-अर्थापत्ति— =क्योंकि उपमान (=सादृश्यज्ञान) अर्थापत्ति अर्थात् न कहे गये अर्थको समझना (जैसे देवदत्त जीता है पर घरमें नहीं, तो समझ सक्ते हैं बाहर अवश्य है)

आदीनाम् ।। अत्र ॥ एव ॥ अन्तरभावात् ।। =आदिका यहां (अर्थात् स्वप्रमाणे-आपेपरोक्षं प्रत्यक्षमन्यत्में) ही गर्भित है

उक्तस्य ।। पञ्च विधस्य ।।। ज्ञानस्य ।।। प्रमाणद्वय =कहे हुए पांच प्रकारके ज्ञानका दो प्रमाणमें

अन्तःपातित्वे ।।। प्रतिपादिते ।।। प्रत्यक्ष-अनुमानादि =गर्भित (=अन्तःपातित्वे) करनेमें (=प्रतिपादिते) प्रत्यक्ष और अनुमानादि

प्रमाणद्वय-कल्पना-निवृत्ति अर्थम् ।।। =(अन्य प्रकारके) दो प्रमाणोंकी कल्पनाके निषेधके लिये

प्रत्यक्षं चानुमानं च शाब्दं चोपमया सह । अर्थापत्तिरभावश्च षट् प्रमाणानि जैमिनेः ॥ जैमिनेः षट् प्रमाणानि चत्वारि न्यायवादिनः । सांख्यस्य त्रीणि वाच्यानि द्वे वैशेषिक-बौद्धयोः ॥ २ ॥ इत्यधिकः पाठः ताडपत्रपुस्तके वर्तते ॥ (=च

प्रत्यक्षम् ।।। च अनुमानम् ।।। च शाब्दम् ।।। च =प्रत्यक्षप्रमाण और (=च) अनुमानप्रमाण और (=च)आगम या शाब्दप्रमाण और

उपमया ।।। सह ।।। अर्थापत्तिः ।।। =उपमान प्रमाण सहित, (और) अर्थापत्ति प्रमाण (=न कहे गये अर्थका समझने वाला)

च ॥ अभावः ।। षट् ।।। प्रमाणानि ।।। जैमिने ।। =और (=च) अभाव प्रमाण छह प्रमाण जैमिनी मुनि (पूर्वमीमांसा के रचक) के हैं

जैमिनेः ।। षट् ।।। =जैमिनीमुनि के छह (प्रत्यक्ष अनुमान-आगम-उपमान-अर्थापत्ति-अभाव)

प्रमाणानि ।।। चत्वारि ।।। =प्रमाण हैं। चार (प्रत्यक्ष अनुमान आगम-उपमान) प्रमाण

न्यायवादिनः ।। सांख्यस्य ।। =न्यायवादी (गौतममुनि के न्याय शास्त्रके मानने वाले) के हैं। सांख्य अर्थात्

त्रीणि ।।। –(कपिलमुनि के दर्शनशास्त्रके मानने वालेके) तीन (प्रत्यक्ष-अनुमान-आगम)

वाच्यानि ।।। द्वे ।।। कहे हैं। दो (प्रत्यक्ष और अनुमान) दो (प्रत्यक्ष और अनुमान)

वैशेषिक-बौद्धयोः ।। =वैशेषिक (कणादमुनि के बनाये हुये शास्त्रके मानने वाले) के और बौद्ध के हैं ॥

इति॰ अधि॰ अधिकः ।। पाठ ।। ताडपत्रपुस्तके ।। वर्तते = ऐसा भी अधिक पाठ ताड वृक्ष के पत्तों की (से बनी हुई) पुस्तक में वर्तता है ॥

॥ आद्ये परोक्षम् ॥ ११ ॥

आदिशब्द प्राथम्य (प्रथम) वचन । आदौ भवमाद्यम् ॥ कथं द्वयो प्रथमत्वं ।

(अर्थात् बौद्ध और वैशेषिक प्रत्यक्ष तथा अनुमान ऐसे दो प्रमाण मानते हैं उनके निषेधार्थ तथा अपने माने हुये दो प्रमाण समर्थन करने के लिये)

आह T =कहते हैं कि

आद्ये परोक्षम् ॥ ११ ॥

आद्यम् च आद्यम् च आद्ये मतिश्रुते ज्ञाने परोक्षम् प्रमाणम् भवतः

आद्यम् ।॥ च॰ आद्यम् ।॥ च॰ =(पांच ज्ञानों में) आदि में जो हो तथा प्रारम्भ में जो हों वे

आद्ये ।॥ मति-श्रुते ।॥ ज्ञाने ।॥ =दो आदि वाले (=आद्ये) अथवा पहिले दो (=आद्य) मतिज्ञान श्रुतज्ञान

परोक्षम् ।॥ प्रमाणम् ।॥ भवतः T =परोक्ष (इन्द्रिय मन तथा परका उपदेश प्रकाशआदि अन्य) प्रमाण हैं अर्थात् वह मतिज्ञान नेत्र आदि इन्द्रिय और अनिन्द्रिय मन इनसे उत्पन्न होता है। यह आत्मा से भिन्न निमित्त की अपेक्षा रखता है अतः परोक्ष है और मति पूर्वक होनेसे तथा परोपदेश जन्य होनेसे श्रुतज्ञान भी परोक्ष ही है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस सूत्र पर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दश हिंदी अनुवाद

आदिशब्द ।॥ प्राथम्य-वचनः ।॥ आदौ । =(इस सूत्र में) आदिशब्द पहिलेका (=प्राथम्य) वाचक है। आरम्भ में (=आदौ)

भवम्,॥ आद्यम् ॥ कथम्॰ द्वयोः ।॥ प्रथमत्वम् =हुआ है सो आद्य है। दोके आदिपना (=प्रथमत्व) कैसे है अर्थात् आदि प्रथम या पहिला ये शब्द आरम्भ को प्रगट करते हैं और एकही वस्तु को (बहुतों में से) प्रथम या पहिली कह सके हैं यहां आद्ये दो वचन में लाये हैं तो दो वस्तुओं के प्रथमपना कैसे आसक्ता है। सारांश—पांच ज्ञान सबमें सबमें कहे हैं आद्य वचन में [illegible] न भी कैसे आगया ॥

मुख्योपचारपरिकल्पनया । मतिज्ञानं तावन्मुख्यकल्पनया प्रथमम् । श्रुतमपि तस्य प्रत्यासत्त्या प्रथममित्युपचर्यते । द्विवचननिर्देशसामर्थ्याद्गौणस्यापि ग्रहणम् । आद्यं च आद्य च आद्ये मतिश्रुते इत्यर्थः । तदुभयमपि परोक्षं प्रमाणमित्यभिसम्बध्यते ॥ कुतोऽस्य परोक्षत्वं ? परायत्तत्वात् ॥

मुख्य-उपचार-परिकल्पनया ।॥	=मुख्य उपचार या व्यवहारके मानलेनेसे (दोनों के आदिपना कहा है क्योंकि)
मतिज्ञानम् ।॥ तावत्॰मुख्य-कल्पनया ।॥ प्रथमम् ।॥	=मतिज्ञान तो (=तावत्) प्रधान माने जानेसे आदिमें व प्रथम है
श्रुतम् ।॥ अपि॰तस्य ।॥ प्रत्यासत्त्या ।॥ प्रथमम् इति	=श्रुतज्ञान भी उस (मति ज्ञान) के अतिनिकट होनेसे प्रथम ऐसा
उपचर्यते T	=मानलियागया है । उपचार कियागया है अर्थात् उपचारसे प्रथम कहा है
द्वि-वचन-निर्देश-सामार्थ्यात् ।॥ गौणस्य ।॥ अपि	=दो वचनके निरूपण या उचारणकी शक्तिसे अप्रधान (श्रुतज्ञान) का भी
ग्रहणम् ।॥	=ग्रहण है । (सूत्रमें आद्ये वाक्यका समास यह है कि)
आद्यम् ।॥ च॰ आद्यम् ।॥ च॰ आद्ये ।॥	=आदि में जो हो और (=च) आरम्भ में जो हो सो दो आदिमें आनेवाले (= आद्ये)
मति-श्रुत ।॥ इति॰ अर्थः ।।	=मतिज्ञान-श्रुतज्ञान हैं ऐसा अभिप्राय है । (आद्यं च आद्य च वाक्यमें पहिला च संस्कृतकी बोलचाल के लिये आया है । अतः इस च का अनुवाद नहीं हो सक्ता)
तद्-उभयम् ।॥ अपि॰परोक्षम् ।॥ प्रमाणम् ।॥	=वे (मति-श्रुत) दोनों ही परोक्ष प्रमाण हैं
इति अभिसम्बध्यते T	=ऐसा सम्बन्ध कियागया है (तब सूत्र मतिज्ञानं परोक्ष श्रुतज्ञानं परोक्ष च है)
कुतः॰अस्य ।॥ परोक्षत्वम् ।॥	=(प्रश्न) इस मतिज्ञान या श्रुतज्ञान) के परोक्षपना क्योंकर (=कुतः) है
पर आयत्तत्वात् ।॥	=अन्यके आधीनपना या वशीभूतपना से (मति श्रुतज्ञानों के परोक्षपना है)

(१) कैयट का मत है कि उभय का द्विवचन नहीं होता है किन्तु पं॰ हरदत्त और पूज्यपाद स्वामी के मत में दो वचन होता है ।

(२) पर-अपेक्षत्वात् ।॥ इति॰अपि॰पाठ अन्यत्र ।॥ =पर अपेक्षत्वात् (=अन्यकी आवश्यक्ता से) ऐसा भी अन्य वा भिन्न पाठ हैं

आद्द

॥ आद्ये परोक्षम् ॥ ११ ॥

आदिशब्द प्राथम्य (प्रथम) वचन । आदौ भवमाद्यम् ॥ कथं द्वयो प्रथमत्वं ?

(अर्थात् बौद्ध और वैशेषिक प्रत्यक्ष तथा अनुमान ऐसे दो प्रमाण मानते हैं उनके निषेधार्थ तथा अपने माने हुये दो प्रमाण समर्थन करने के लिये)

आह T =कहते हैं कि

आद्ये परोक्षम् ॥ ११ ॥

आद्यम् च आद्यम् च आद्ये मतिश्रुते ज्ञाने परोक्षम् प्रमाणम् भवतः

आद्यम् ।॥ च, आद्यम् ।॥ च =(पांच ज्ञानों में) आदि में जो हो तथा प्रारम्भ में जो हों वे

आद्ये ।॥ मति-श्रुत ।॥ ज्ञाने ।॥ =दो आदि वाले (=आद्ये) अथवा पहिले दो (=आद्य) मतिज्ञान श्रुतज्ञान

परोक्षम् ।॥ प्रमाणम् ।॥ भवतः T =परोक्ष (इन्द्रिय मन तथा परका उपदेश प्रकाशआदि जन्य) प्रमाण हैं अर्थात् यह मतिज्ञान नेत्र आदि इन्द्रिय और अनिन्द्रिय मन इनसे उत्पन्न होता है। यह आत्मा से भिन्न निमित्त की अपेक्षा रखता है अतः परोक्ष है और मति पूर्वक होनेसे तथा परोपदेश जन्य होनेसे श्रुतज्ञान भी परोक्ष ही है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस सूत्र पर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दश हिंदी अनुवाद

आदिशब्दः ।। प्राथम्य-वचनः ।। आदौ ।। =(इस सूत्र में) आदिशब्द पहिलेका (=प्राथम्य) वाचक है। आरम्भ में (=आदौ)

भवम् ।॥ आद्यम् ।॥ कथम् द्वयोः ।॥ प्रथमत्वम् =हुआ है सो आद्य है। दोके आदिपना (=प्रथमत्व) कैसे है अर्थात् आदि प्रथम या पहिला ये शब्द आरम्भ को प्रगट करते हैं और एकही वस्तु को (बहुतों में से) प्रथम या पहिली कह सके हैं यहां आद्ये दो वचन में लाये हैं तो दो वस्तुओं के प्रथमपना कैसे आसकता है। सारांश—पांच ज्ञान जबमें पहले कहे हैं आद्य वचन में मतिज्ञान आसकता है श्रुतज्ञान भी कैसे आसकता ॥

अभिहितलक्षणात्परोक्षादितरस्य सर्वस्य प्रत्यक्षत्वप्रतिपादनार्थमाह–

॥ प्रत्यक्षमन्यत् ॥ १२ ॥

अक्ष्णोति व्याप्नोति जानातीत्यक्ष आत्मा। तमेव प्राप्तक्षयोपशमं प्रक्षीणावरणं वा प्रतिनियतं प्रत्यक्षम् ॥

अभिहित-लक्षणात् ॥ परोक्षात् ॥ इतरस्य ॥ =कथित या कहे हुये (=अभिहित) लक्षण सहित परोक्ष (ज्ञान) से अन्य

सर्वस्य ॥ प्रत्यक्षत्व-प्रतिपादन-अर्थम् ॥ आह ॥ =सब (ज्ञान) के प्रत्यक्षपना के कहने के लिये (आचार्य) कहते हैं कि

प्रत्यक्षमन्यत् ॥१२॥

पदच्छेद और सूत्रार्थः-अन्यत् ॥ =(मतिज्ञान और श्रुतज्ञान से) भिन्न अथवा अवशेष (=अन्यत्)

प्रत्यक्षम् ॥ =(अवधिज्ञान मनः पर्ययज्ञान और केवलज्ञान) प्रत्यक्ष प्रमाण है अर्थात् आत्मा के ही आश्रय से बिन (=बिना) मन और किसी इन्द्रिय की सहायता से उत्पन्न होते हैं। अतः ये तीनों ज्ञान अतीन्द्रिय हैं। उक्त तीनों ज्ञानोंमें से अवधिज्ञान और मनः पर्ययज्ञान तो परिमित वस्तु विषय करने से विकल (=सीमाबद्ध) प्रत्यक्ष है और केवलज्ञान समस्त द्रव्य व पर्यायको ग्रहण करने से सकल (सम्पूर्ण) प्रत्यक्ष प्रमाण है॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस सूत्र पर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद ॥

अक्ष्णोति ॥ व्याप्नोति ॥ जानाति ॥ =पहचानता है या बोध करता है (अक्ष्णोति) व्याप्त होता है जानता है।

इति-अक्षः ॥ आत्मा ॥ प्राप्त-क्षयोपशमम् ॥ वा =ऐसा अक्ष (अर्थात्) आत्मा है या चेतन है। कर्मोंका क्षयोपशम प्राप्त अथवा

प्रक्षीण-आवरणम् ॥ तम् ॥ एव ॥ =कर्मोंके आवरण के नाश प्राप्त जिस (आत्मा) के ही (=एव)

प्रतिनियतम् ॥ प्रत्यक्षम् ॥ =आश्रय से (बिना किसी अन्य की सहायता लिये हुये) उत्पन्न हो सो प्रत्यक्ष है अर्थात् कर्मके क्षयोपशम और क्षय के अनुसार बिना किसी इन्द्रिय, मन, प्रकाश, पर उपदेशादिक की सहायता लिये हुये आत्मा के आश्रय से ही उत्पन्न हो और विशेष रूप से पदार्थों को जाने वे प्रत्यक्ष (अवधि-मनः पर्यय-केवलज्ञान) हैं। उनमें

मतिज्ञानमिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तमिति वक्ष्यते श्रुतमनिन्द्रियस्येति च । अतः पराणीन्द्रियाणि मनश्च प्रकाशोपदेशादि च बाह्यनिमित्त प्रतीत्य तदावरणकर्मक्षयोपशमापेक्षस्यात्मन उत्पद्यमानं मतिश्रुत परोक्ष मित्याख्यायते । अत उपमानागमादीनामत्रैवान्तर्भाव ॥

मतिज्ञानम् ॥ इन्द्रिय अनिन्द्रिय-निमित्तम् ॥	= मतिज्ञान (बाहमें पांच) इन्द्रिय (और) मन जन्य, निमित्तक या कारणक है अर्थात मतिज्ञान पांच इन्द्रिय और अंत करण छह बाह्य निमित्तोंसे उत्पन्न होता है
इति वक्ष्यते ॥ च श्रुतम् ॥	= ऐसा (तदिन्द्रियानिन्द्रिय निमित्तम् । चौदहवां सूत्रमें) कहेंगे । और श्रुतज्ञान
अनिन्द्रियस्य ॥ (अर्थः)	= मनका विषय वा अर्थ है अर्थात श्रुतज्ञान मनसे उत्पन्न होता है
इति	= ऐसा (दूसरे अध्यायके इक्कीसवां सूत्र "श्रुतमनिन्द्रियस्य" में कहेंगे)
अतः पराणि ॥ इन्द्रियाणि ॥ च मनस् ॥	= इस हेतुसे (=अत) पर जे पांचों) इन्द्रियें और (=च) मन (=अंतःकरण)
च प्रकाश-उपदेशादि ॥ बाह्यनिमित्तम् ॥	= और (=च) प्रकाश उपदेशादिक बाहिरके कारणको
प्रतीत्य ॥ तत् आवरण-कर्म-	= सहाय लेकर (=प्रतीत्य) उन (मतिज्ञान और श्रुतज्ञान) के ढकने वाले कर्मके
क्षयोपशम अपेक्षस्य ॥ आत्मनः ॥ उत्पद्यमानम् ॥	= क्षयोपशम संयुक्त (=अपेक्षस्य) जीवके उत्पन्न हुये
मतिश्रुतम् ॥ परोक्षम् ॥ इति आख्यायते ॥	= मतिश्रुतज्ञान परोक्ष हैं ऐसा कहा गया है अर्थात् जीवके मतिज्ञान और श्रुतज्ञान उत्पन्न होनेकेलिये बहिरंग कारण इन्द्रियें-मन-प्रकाश और पर उपदेशादिक हैं इससे इन दोनों ज्ञानोंको परोक्ष कहते हैं और अंतरंग कारण इनदोनों ज्ञानोंके उत्पन्न होनेका आत्माके मतिज्ञानावरणीय और श्रुतज्ञाना वरणीय कर्मोंका क्षयोपशम ही है ॥ (प्रतीत्य=सम्बन्ध सूचक भूतकृदन्त है) ।
अतः उपमान-आगम आदीनाम् ॥ अन्तर्भावः ॥	= इसलिये उपमानप्रमाण, आगम (=शास्त्र) प्रमाण आदिका गर्भित होना
अत्र एव	= इस(परोक्षज्ञान) में ही (=एव) है (अन्योंके मानेहुये प्रमाण इनमें गर्भित हैं) ॥

अभिहितलक्षणात्परोक्षादितरस्य सर्वस्य प्रत्यक्षत्वप्रतिपादनार्थमाह-

॥ प्रत्यक्षमन्यत् ॥ १२ ॥

अक्ष्णोति व्याप्नोति जानातीत्यक्ष आत्मा । तमेव प्राप्तक्षयोपशम प्रक्षीणावरण वा प्रतिनियतं प्रत्यक्षम् ॥

अभिहित-लक्षणात् ।॥ परोक्षात् ।॥ इतरस्य ।॥	=कथित वा कहे हुये (=अभिहित) लक्षण सहित परोक्ष (ज्ञान) से अन्य
सर्वस्य ।॥ प्रत्यक्षत्व-प्रतिपादन-अर्थम् ।॥ आह T	=सब (ज्ञान) के प्रत्यक्षपना के कहने के लिये (आचार्य) कहते हैं कि

प्रत्यक्षमन्यत् ॥१२॥

पदच्छेद और सूत्रार्थः-अन्यत् ।॥	=(मतिज्ञान और श्रुतज्ञान से) भिन्न अथवा अवशेष (=अन्यत्)
प्रत्यक्षम् ।॥	=(अवधिज्ञान मनः पर्ययज्ञान और केवलज्ञान) प्रत्यक्ष प्रमाण है अर्थात्

आत्मा के ही आश्रय से बिन (=बिना) मन और किसी इन्द्रिय की सहायता से उत्पन्न होते हैं । अतः ये तीनों ज्ञान अतीन्द्रिय हैं । उक्त तीनों ज्ञानोंमें से अवधिज्ञान और मन पर्ययज्ञान तो परिमित वस्तु विषय करने से विकल (=सीमाबद्ध) प्रत्यक्ष है और केवलज्ञान समस्त द्रव्य व पर्यायको ग्रहण करने से सकल (सम्पूर्ण) प्रत्यक्ष प्रमाण है ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस सूत्र पर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद ॥

अक्ष्णोति T व्याप्नोति T जानाति T	=पहचानता है वा बोध करता है (अक्ष्णोति) व्याप्त होता है जानता है ।
इति अक्षः ।। आत्मा ।। प्राप्त-क्षयोपशमम् ।। वा	=ऐसा अक्ष (अर्थात्) आत्मा है वा चेतन है । कर्मका क्षयोपशम प्राप्त अथवा
प्रक्षीण-आवरणम् ।। तम् ।। एव	=कर्मके आवरण के नाश प्राप्त जिस (आत्मा) के ही (=एव)
प्रतिनियतम् ।। प्रत्यक्षम् ।॥	=आश्रय से (बिना किसी अन्य की सहायता लिये हुये) उत्पन्न हो सो प्रत्यक्ष है अर्थात् कर्मके क्षयोपशम और क्षय के अनुसार बिना किसी इन्द्रिय, मन, प्रकाश, पर उपदेशादिक की सहायता लिये हुये आत्मा के आश्रय से ही उत्पन्न हो और विशेष रूप से पदार्थों को जाने वे प्रत्यक्ष (अवधि-मनः पर्यय-केवलज्ञान) हैं । उनमें

अवधिदर्शन केवलदर्शनमपि अक्षमेव प्रतिनियतमतस्तस्यापि ग्रहण प्राप्नोति । नैष दोष । ज्ञानमित्यनुवर्तते, तेन दर्शनस्य व्युदासः । एवमपि विभङ्गज्ञानमपि प्रतिनियतमतोऽस्यापि ग्रहण प्राप्नोति । सम्यगित्यधिकारात् । ततस्तन्निवृत्ति ॥ सम्यगित्यनुवर्तते, तेन ज्ञानं विशिष्यते,

---

	अवधिज्ञान और मनः पर्यय ज्ञान तो विकल (=अधूरा-अपूरा) प्रत्यक्ष हैं और केवल ज्ञान सकल (सम्पूर्ण) प्रत्यक्ष है ॥
अवधिदर्शनम् ॥ केवलदर्शनम् ॥ अपि अक्षम् ॥	=(प्रश्न) अवधिदर्शन (और) केवलदर्शन भी (=अपि) आत्मा (=अक्षम्)
एव प्रतिनियतम् ॥ अतः	=ही जनित या आश्रित (=प्रतिनियत) या व्यवस्थित (=प्रतिनियत) है इसलिये
तस्य ॥ अपि ग्रहणम् ॥ प्राप्नोति ।	=तिस (अवधिदर्शन-केवलदर्शन) का भी ग्रहण प्राप्त होता है (अर्थात् अवधिदर्शन और केवलदर्शन भी प्रमाण ठहरेंगे ऐसा प्रश्न है)
न । एषः । दोषः ॥ ज्ञानम् ॥ इति अनुवर्तते ।	=(उत्तर) यह दोष नहीं है । (क्योंकि इस सूत्र में) ज्ञान ऐसा अधिकार-प्रकरण है
तेन ॥ दर्शनस्य ॥ व्युदासः ॥	=तिस (ज्ञानके अनुवर्तनसे) दर्शन का निराकरण वा निवारण है अर्थात् यहां ज्ञान का प्रकरण होनेके हेतुसे ज्ञानका ग्रहण किया है दर्शन का निषेध है
एवम् अपि विभङ्ग ज्ञानम् ॥ अपि प्रतिनियतम् ॥	=(प्रश्न) ऐसाही (=अपि) कुअवधिज्ञान भी (=अपि) व्यवस्थित या (आत्माके) आश्रित है
अतः अस्य ॥ अपि ग्रहणम् ॥ प्राप्नोति ।	=इस लिये इस (कुअवधिज्ञान) का भी प्रसंग वा ग्रहण प्राप्त होता है अर्थात् प्रश्न का आशय यह है कि यदि ज्ञान का प्रकरण है तो सो कुअवधिज्ञानको भी यहां ग्रहण करके प्रत्यक्ष प्रमाण कहना चाहिये क्योंकि कुअवधिज्ञान भी आत्मासे विना किसी इन्द्रिय-मन-प्रकाश और पर उपदेशादिक द्वारा उत्पन्न होता है
सम्यक् ॥ इति अधिकारात् ॥ ततः तत्	=(उत्तर) सम्यक् (प्रशस्त) ऐसा प्रकरण होनेसे यहां (=ततः) उस (विभंगज्ञान) का
निवृत्तिः ॥ । सम्यक् ॥ इति अनुवर्तते ।	=निषेध है ॥ सम्यक् ऐसा (पद) अनुवर्तता है उपस्थित है
तेन ॥ ज्ञानम् ॥ विशिष्यते ।	=तिस (सम्यक् पदकी अनुवृत्ति) से ज्ञान विशेषित किया गया है

ततो विभङ्गज्ञानस्य निवृत्तिः कृता। तद्धि मिथ्यादर्शनोदयाद्विपरीतार्थविषयमिति न सम्यक् ॥ स्यान्मत मिन्द्रियव्यापारजनित ज्ञान प्रत्यक्ष, व्यतीतोन्द्रियोविषयव्यापार परोक्षमित्यतदविसंवादिलक्षणमभ्युपगन्तव्य मिति। तदयुक्तम्। आप्तस्य प्रत्यक्षज्ञानाभावप्रसङ्गात् ॥ यदिहीन्द्रियनिमित्तमेव ज्ञान प्रत्यक्षमिष्यते, एव प्रसक्त्या आप्तस्य प्रत्यक्षज्ञान न स्यात्। नहि तस्येन्द्रियपूर्वोऽर्थाधिगम ॥ अथ तस्यापि करणपूर्वकएवज्ञान कल्पते तस्या सर्वज्ञत्वंस्यात् ॥ तस्य मानस प्रत्यक्षमिति चेत् मन प्रणिधान पूर्वकत्वात्

ततः विभङ्ग-ज्ञानस्य निवृत्तिः कृता	= तिससे कुअवधिज्ञानका (प्रत्यक्ष ज्ञानमें ग्रहण करनेका) निषेध किया गया।
तद् हि मिथ्यादर्शन उदयात् विपरीत	= क्योंकि (= हि) यह (= तद्) मिथ्यादर्शनके उदयसे प्रतिकूल
अर्थ-विषयम् इति न सम्यक्	= पदार्थका ग्रहण करता है। ऐसे (कुअवधिज्ञान) प्रशस्त (= ज्ञान) नहीं है
स्यात् मतम् इन्द्रिय-व्यापार	= (वैशेषिकके मतानुसार-प्रश्न) मत है (= स्यात्) कि इन्द्रियोंके व्यवसायसे-उद्योगसे
जनितम् ज्ञानम् प्रत्यक्षम्	= उत्पन्न हुआ ज्ञान प्रत्यक्ष है
व्यतीत-इन्द्रिय विषय-व्यापारम् परोक्षम् इति	= इन्द्रियोंके विषयके उद्योग (=व्यापार) वर्जित (ज्ञान) परोक्ष है ऐसा
एतत् अविसंवादि-लक्षणं अभ्युपगन्तव्यं इति	= यह बाधारहित स्वरूप मानना योग्य है
आप्तस्य प्रत्यक्ष-ज्ञान अभाव-प्रसङ्गात्	= (उत्तर) आप्तके प्रत्यक्ष ज्ञानके लोपका प्रसंग आने (के हेतु) से
तद् अयुक्तं। यदि इन्द्रिय-निमित्तम् एव	= यह (=इन्द्रियजनित ज्ञानको प्रत्यक्ष मानना) ठीक नहीं है। जो इन्द्रिय जनित ही
ज्ञानं प्रत्यक्षम् इष्यते एवं प्रसक्त्या	= ज्ञान प्रत्यक्ष (प्रमाण) माना जाय तो ऐसे प्रसंगसे
आप्तस्य प्रत्यक्ष ज्ञानं न स्यात्	= आप्तके प्रत्यक्षज्ञान नहीं होता (=होगा)।
नहि तस्य इन्द्रिय-पूर्वः अर्थ अधिगमः	= क्योंकि नहीं है तिस (आप्त) के इन्द्रिय पूर्वक या इंद्रिय जनित वस्तुका ज्ञान
अथ तस्य अपि करण-पूर्वकम् एव	= यदि (=अथ) तिस (आप्त)के भी इन्द्रिय पूर्वक या इन्द्रिय निमित्तक ही
ज्ञानं कल्प्यते तस्य असर्वज्ञत्वम् स्यात्	= ज्ञान माना जाय तो तिस (आप्त)के असर्वज्ञता होगी ॥
तस्य मानसम् प्रत्यक्षम्	= तिस (आप्त) के मानसिक या मनसा (=मानसम्) ज्ञान प्रत्यक्ष माना जाय 'कल्प्यते'
इति चेत् मनस् प्रणिधान-पूर्वकत्वात्	= ऐसी शंका होनेपर (उत्तर है कि) मनके चिंतवन या उद्योग जनित होनेसे

अवधिदर्शन केवलदर्शनमपि अक्षमेव प्रतिनियतमतस्तस्यापि ग्रहण प्राप्नोति । नैष दोष । ज्ञानमित्यनुवर्तते, तेन दर्शनस्य व्युदा । एवमपि विभगज्ञानमपि प्रतिनियतमतोऽस्यापि ग्रहण प्राप्नोति । सम्यगित्यधिकारात्। ततस्तान्निवृत्ति ॥ सम्यगित्यनुवर्तते, तेन ज्ञान विशिष्यते,

अवधिज्ञान और मनः पर्यय ज्ञान तो विकल (=अधूरा-अपूरा) प्रत्यक्ष हैं और केवल ज्ञान सकल (सम्पूर्ण) प्रत्यक्ष है ॥

अवधिदर्शनम् ॥ केवलदर्शनम् ॥ अपि अक्षम् ॥	=(प्रश्न) अवधिदर्शन (और) केवलदर्शन भी (=अपि) आत्मा (=अक्षम्)
एव॰ प्रतिनियतम् ॥ अतः ॰	=ही अनित्र या आश्रित (=प्रतिनियत) या व्यवस्थित (=प्रतिनियत) है इसलिये
तस्य ॥ अपि॰ ग्रहणम् ॥ प्राप्नोति ।	=तिस (अवधिदर्शन-केवलदर्शन) का भी ग्रहण प्राप्त होता है (अर्थात् अवधिदर्शन और केवलदर्शन भी प्रमाण ठहरेंगे ऐसा प्रश्न है)
न॰ । दोष ॥ ज्ञानम् ॥ इति अनुवर्तते ।	=(उत्तर) यह दोष नहीं है । (क्योंकि इस सूत्र में) ज्ञान ऐसा अधिकार-प्रकरण है
तेन ॥ दर्शनस्य ॥ व्युदासः ॥	=तिस (ज्ञानके अनुवर्तनसे) दर्शन का निराकरण वा निवारण है अर्थात् यहां ज्ञान का प्रकरण होनेके हेतुसे ज्ञानका ग्रहण किया है दर्शन का निषेध है
एवम्॰ अपि विभग ज्ञानम् ॥ अपि प्रतिनियतम् ॥	=(प्रश्न) ऐसाही (=अपि) कुअवधिज्ञान भी (=अपि) व्यवस्थित या (आत्माके) आश्रित है
अतः॰ अस्य ॥ अपि॰ ग्रहणम् ॥ प्राप्नोति ।	=इस लिये इस (कुअवधिज्ञान) का भी ग्रहण —

आगमतस्तत्सिद्धिरिति चेन्न। तस्य आगमस्य प्रत्यक्षज्ञानपूर्वकत्वात्॥ योगिप्रत्यक्षमन्यज्ज्ञानं दिव्यमप्यस्तीति चेत्,न तस्य प्रत्यक्षत्वं इन्द्रियनिमित्ताभावात्। अक्षमक्षं प्रति यद्वर्तते तत्प्रत्यक्षमित्यभ्युपगमात्॥

आगमत: तत्सिद्धि: ॥ इति चेत् न	=शास्त्रसे उस (सर्वज्ञपना) की सिद्धि है ऐसी शंका (=चेत्) है। (उत्तर) यह ठीक नहीं है।
तस्य आगमस्य प्रत्यक्षज्ञानपूर्वकत्वात् ॥	=क्योंकि उस शास्त्र को प्रत्यक्ष ज्ञान निमित्त वा कारण है अर्थात् वही आगम माना जाता है जो प्रत्यक्षप्रमाण जन्य है भावार्थ यह है कि प्रत्यक्ष ज्ञानी ही प्रमाणभूत आगम कह सकता है परंतु इन्द्रिय जनित प्रत्यक्ष ज्ञान सब पदार्थोंको ग्रहण नहीं करसक्ता, नहीं जानसक्ता तब उससे बनाहुआ आगम भी सर्व पदार्थों का ज्ञान कैसे करा सक्ता है जिस (आगम) से आप्तके ज्ञानको सर्वज्ञता मानीजाय॥
योगिन् प्रत्यक्षम् ॥ अन्यत् ॥ ज्ञानम् ॥	=(बौद्धमतवाले) योगियोंका प्रत्यक्ष एक जुदा ज्ञान (=अन्यत् ज्ञान)
दिव्यम् ॥ अपि अस्ति इति चेत्	=अलौकिक (=दिव्य) ही (=अपि) है यदि (=चेत्) ऐसा है?
तस्य ॥ प्रत्यक्षत्वम् ॥ न	(उत्तर) =(तो) तिस (अलौकिक) ज्ञान को साक्षातपना नहीं हो सकैगा
इन्द्रिय-निमित्त अभावात् ॥ अक्षम् ॥ अक्षम् ॥	=क्योंकि वह इन्द्रियोंके निमित्तसे नहीं होता है। (और आपने) इन्द्रिय इन्द्रिय
प्रति यत् ॥ वर्तते तत् ॥ प्रत्यक्षम् ॥	=प्रति जो प्रवर्तता है सो (ही) प्रत्यक्ष अथवा साक्षात् है
इति अभ्युपगमात् ॥	=ऐसा माना है (अतः) अलौकिक ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं हो सकता) भावार्थ अलौकिक ज्ञान वही है जिसका इन्द्रियों से कुछ किसी प्रकारका संबंध नहीं है और प्रत्यक्ष प्रमाण वही माना गया है जो इन्द्रिय जन्य है अतः दिव्यज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं है॥

अब एक साथ सर्व पदार्थों का ग्रहण नहीं कर सक्ता है और क्रमकरि सर्व पदार्थोंका ज्ञान बनता नहीं। क्योंकि पदार्थ अनन्त है युगपत् जबतक अनन्त पदार्थों को न जाने तबतक सर्वज्ञ नहीं इसलिये मनद्वारा युगपत् सर्व पदार्थों के जाननेवाला प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं हो सक्ता इसलिये सर्वज्ञता का अभावही हुआ

(१) तस्य और आगमस्य शब्दों के पुल्लिङ्ग और नपुंसक लिंग दोनों हो सक्ते हैं॥

ज्ञानस्य सर्वज्ञत्वाभावप्र

ज्ञानस्य । सर्वज्ञत्व-अभावः । एव ● =ज्ञानके सर्वज्ञपनाका लोप ही [=एव] आता है अर्थात् यदि मनजन्य ज्ञान प्रत्यक्ष माना जाय तो भी सर्वज्ञपना नहीं बनता है
[निम्नटिप्पणीमें विशेष है]

(१) युगपत् ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गमिति परैरभ्युपगमात्सर्ववस्तुषु युगपन्मनः प्रणिधानं न घटते । ततः सर्वज्ञत्वाभावः । एकं ज्ञानमनेकार्थं न जानातीति । प्रतिज्ञासद्भावात् क्रमेण सर्ववस्तुज्ञानं च न घटते । वस्तूनामानन्त्यादेकवस्तु परिज्ञानप्रसरे अन्यवस्तुपरिज्ञानाभावात् सर्वज्ञत्वाभावः सुघटः ॥

युगपत् ● ज्ञान-अनुत्पत्तिः । =एक बार ही व एक साथ (=युगपत्) ज्ञानका सम्बन्ध या उत्पत्ति न होना
मनसः । लिङ्गम् । इति परैः । अभि-उपगमात् । =मनका लक्षण ऐसा है। दूसरों करि मानने से
सर्व वस्तुषु । युगपत् ● मनस्-प्रणिधानम् । =समस्त पदार्थों में एक साथ मनका चिंतवन या उपयोग या व्यापार
न घटते । =नहीं बनता है अर्थात् अन्यमतके सिद्धान्त अनुसार भी मन सर्व पदार्थों को एक साथ ग्रहण नहीं कर सकता है।
ततः सर्वज्ञत्व अभावः । एकम् । ज्ञानम् । अनेक- =जिससे सर्वज्ञपने का अभाव है। (और) एक ज्ञान अनेक का जाना
अर्थम् । न जानाति । इति प्रतिज्ञा सद्भावात् । =पदार्थों को नहीं जानता है। ऐसी प्रतिज्ञा की विद्यमानता से अर्थात्
क्रमेण सर्ववस्तुज्ञानम् । च न● घटते । =अनुक्रमसे सब पदार्थों का ज्ञान होना भी नहीं बनता है
वस्तूनाम् । आनन्त्यात् एक वस्तु-परिज्ञान प्रसरे । =पदार्थों के अनन्त होने (के हेतु) से एक पदार्थ के ज्ञानके प्रसंग में
न● अन्य वस्तु परिज्ञान-अभावात् । =और भिन्न पदार्थ के परिज्ञान की शून्यतासे सर्वज्ञता का अभाव
सर्वज्ञत्व अभावः । सुघटः । =भले प्रकार घटता है या बनता है भावार्थ यह है कि

अनेकार्थग्रहणं क्रमेणेति युगपदेवेति ॥ चेत्, योऽस्यजन्मक्षणः स आत्मलाभार्थ एव । लब्धात्मलाभे हि किञ्चित्स्वकार्यं प्रति व्याप्रियते,

अनेक-अर्थ-ग्रहणम् ,॥ क्रमेण ॥ इति॰	=(और) बहुत-पदार्थोंका ग्रहण अनुक्रमसे होता है भावार्थ बौद्धोंका सिद्धान्त है कि पदार्थको पहिले क्षणमें उत्पत्ति होती है उसी पदार्थका दूसरे क्षणमें नाश होजाता है और यह भी कहते हैं कि एक विज्ञान एकबार एकही पदार्थको जानता है तो अनेक पदार्थोंका ज्ञान क्रमसे हो सकनेके कारण एक विज्ञानको अनेक क्षणवर्ती होनेसे सब संस्कारोंके एक क्षणवर्ती होनेमें दूषण आगया ।
युगपत्॰ एव॰	=एकसाथ या एककालमें (अनेक पदार्थोंका ग्रहण एक क्षणवर्ती विज्ञानके ही है
इति॰ चेत्॰ यः ,। अस्य ॥ जन्म-क्षणः ,।	=ऐसा यदि (चेत्) हो तो ? (उत्तर) जो (=यः) इस (ज्ञान)के उत्पन्न होनेका क्षण है
सः ॥ आत्म-लाभार्थः ॥ एव॰	=वह क्षण (उस ज्ञानके) स्वरूपके उपार्जनके लिये (=अर्थ) ही है
लब्ध-आत्म-लाभम् ,। हि॰	=क्योंकि (=हि) स्वरूपके लाभको प्राप्तकरि अर्थात् स्वरूपको प्राप्त करनके पीछे
किञ्चित्॰ स्वकार्यम् ॥ व्याप्रियते।	=कुछ अपने कार्य (=पदार्थोंके ग्रहण) की ओर प्रवृत्त होता है वा व्यापार करता है अर्थात् यदि बौद्ध कहैं कि नाना पदार्थोंका ग्रहण एक क्षणवर्ती विज्ञानके एक साथ होता है सो असम्भव है क्योंकि जिस क्षणमें विज्ञान उत्पन्न हुआ है वह क्षण उस विज्ञानके होनेमें लगगई । उसके पीछे वह विज्ञान पदार्थके ज्ञान या ग्रहण करनेमें लगेगा।

(१) व्याप्रियते—यहांपर पृ तुदादि छठवां गणका आत्मनेपदी-अकर्मक अनिट् धातु व्यापार करना या काम करनेके अर्थमें है । छठवां गणके धातुओं की ऋत की ह्रस्व ऋ में रिङ् आदेश होता है पश्चात् रि को रिय् कर देते हैं और श छठवां गण के विकरणको जोड़कर और वि आङ् उपसर्ग प्रथम लाकर वि+आङ्+प्रिय् =व्याप्रिय बना, पश्चात् ते, एक वचन, आत्मने पदी, अन्यपुरुष वर्तमान कालका प्रत्यय लगानेसे 'व्याप्रियते' बनगया ॥

किञ्च सर्वज्ञत्वाभाव प्रतिज्ञाहानिर्वा । तस्य योगिनो यज्ज्ञान तत्प्रत्यर्थवशवर्ति स्यात ? अनेकार्थग्राहि वा ? यदि प्रत्यर्थवशवर्ति, सर्वज्ञत्वमस्य नास्ति योगिन, ज्ञेयस्यानन्त्यात् ॥ अथानेकार्थग्राहि, या प्रतिज्ञा "विजानाति न विज्ञानमेकमर्थद्वयम् यथा । एकमर्थं विजानाति न विज्ञानद्वय तथा" इति सा हीयते ॥ अथवा क्षणिका' सर्वसंस्कारा इति प्रतिज्ञा हीयते । अनेकक्षणवर्त्येकविज्ञानाभ्युपगमात ॥

सर्वज्ञत्व अभाव ,। किञ्च॰
वा॰ प्रतिज्ञाहानि' ,॥ तस्य ;। योगिन' ;। यत ,॥।
ज्ञानम् ,॥। तत् ,॥। प्रति-अर्थ- वशवर्ति ;॥। स्यात् T

वा॰अनेक-अर्थग्राहि ;। यदि॰
प्रति अर्थ-वशवर्ति ;। सर्वज्ञत्वम् ,॥। अस्य ;।
योगिनः ;। न अस्ति T ज्ञेयस्य ',
अनन्त्यात् ॥।
अथ॰अनेक-अर्थ-ग्राहि ,।
या ,॥ प्रतिज्ञा ,।
विजानाति T न॰ विज्ञानमेकमर्थद्वयम् ;॥। यथा॰
एकमर्थम् ;॥। विजानाति T न विज्ञानद्वय ;॥। तथा॰
इति॰ सा ,॥ हीयते T अथवा॰सर्वसंस्काराः ;।
क्षणिकाः ,। इति॰प्रतिज्ञा ;॥। हीयते T अनेक-
क्षणवर्ति एक-विज्ञान अभ्युपगमात् ;।

=(अलौकिक ज्ञानको प्रत्यक्ष स्वीकार करनेमें) सर्वज्ञताका अभाव, भी(=किञ्च) है
=अथवा प्रतिज्ञा भंग या प्रणकी क्षति हो जावेगी क्योंकि तिस योगीके जो (=यत्)
=ज्ञान है सो एक पदार्थ के (=प्रत्यर्थ) वशीभूत है। अर्थात् योगीश्वर का यह ज्ञान एक एक पदार्थ अथवा एक एक वस्तुको क्रमानुसार ग्रहण करेगा
=अथवा बहुत पदार्थोंका ग्रहण करने वाला होगा। जो (योगीश्वर का ज्ञान)
=एक वस्तु का ग्रहण करने वाला हो तो सर्वज्ञपना इस
=योगीके नहीं (होसक्ता) है। क्योंकि ज्ञानमें ग्रहण होने योग्य पदार्थके (=ज्ञेयस्य)
=अनंतता है (और सर्वज्ञ तबहीं हो जब सब पदार्थों को एक कालमें जान सके)
=जो (=अथ)(इस योगीश्वरका ज्ञान)अनेक पदार्थका जाननेवाला हो या ग्राहीहो तो
=(निम्नलिखित श्लोकमें) जो (=या) प्रण अथवा नियम है कि
—जैसे (=यथा) एक विज्ञान दो पदार्थोंको नहीं जानता है (=विजानाति)
—तैसे (=तथा) दो विज्ञान एक अर्थ या वस्तुको नहीं जनाते हैं
—ऐसी प्रतिज्ञा (=सा) क्षति को प्राप्त है। अथवा सब संस्कार (=ज्ञानरूप)
—एक समयवर्ती हैं ऐसा प्रण या नियम क्षता जाय है क्योंकि अनेक
—क्षणवर्ती एक विज्ञान मानागया है या स्वीकार कियागया है ।

अभिहितोभयप्रकारस्य प्रमाणस्य आदिप्रकारविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

निर्विकल्प (=निश्चयरहित तथा भेद विवक्षारहित) मानते हैं । अतः उसके द्वारा किसी भी पदार्थका निश्चय नहीं होसक्ता तब स्वयम् उसयोगीके ज्ञानका भी निश्चय न होनेसे उस (विज्ञानकी) शून्यताका प्रसंग आता है । क्योंकि किसी भी पदार्थका अस्तित्व निश्चय आत्मक ज्ञानके विना सिद्ध नहीं हो सक्ता है ॥

अभिहित-उभय-प्रकारस्य ॥ प्रमाणस्य ॥ =प्राप्ति या कहे हुये दोनों (परोक्ष तथा प्रत्यक्ष) प्रकारके प्रमाणके

आदि प्रकार विशेष-प्रतिपत्ति अर्थम् ॥ आह ॥ =प्रथम (परोक्ष ज्ञान) के भेदों के विशेष ज्ञानके लिये कहते हैं कि

दूसर विकल्पों (=मिथ्यात्मक ज्ञानों) से नहीं जाना जा सक्ता है तब उसका अस्तित्व कैसे माना जा सक्ता है अतः

विज्ञानाद्वैतवादी योगाचार बौद्धोंका मत शून्य ही है ॥ उपर्युक्त श्लोकका अनुवाद —

तत् ॥ विशुद्धं ॥ मालते ॥ विकल्पैः ॥ (अतीतम् ॥)=(यह विज्ञान) तत्व संपूर्ण कल्पनाओं (भेदों)से रहित (=अतीतम्) विशुद्ध या निर्मल है अर्थात् विज्ञानमें ग्राह्य ग्राहक, वाच्य वाचक, वेद्य वेदक और ज्ञेय ज्ञायक कल्पनायें नहीं होनेसे यह विशुद्ध वा निर्मल है ।

विश्व अभिलाषा-आस्पदताम् ॥ अतीतम् ॥ =सब (=विश्व) (वचनआदिक वचनेकी) इच्छाकी (=अभिलाषा) योग्यतासे (=आस्पदताम) रहित है अर्थात् विज्ञान तत्व संसार में अनिर्वचनीय है या अवक्तव्य है

न स्वस्य ॥ वेद्यम् ॥ =(यह विज्ञान तत्व) अपने का नहीं जानता है (=वेद्यम्) अर्थात् अपना भी वेद्य नहीं है।

न च तत् ॥ निगाद्यम् ॥ =और (=च) वह (=तत्=विज्ञानतत्व) (किसी शब्दद्वारा) कहे जाने योग्य (भी) नहीं है

सुषुप्ति-अवस्थं ॥ =शयन (=सुषुप्ति) का अवस्थावाला है (=अवस्थम्) अर्थात् स्वप्नदशामें रहनेवाले चैतन्य के सदृश है

भवदुःख-बाह्यम् ॥ =संसारके दुःख (और विकल्पोंसे) रहित है (=बाह्यम्) ॥१॥ समस्त श्लोकका भावार्थ यह है कि यह विज्ञानतत्व संपूर्ण कल्पनाओंसे रहित होनेसे विशद है तथा विश्वका कोई भी वचन कथन करने का सामर्थ्य नहीं है (=अनिर्वचनीय है) अपनेका नहीं जानता है अर्थात् स्वरूपमें ज्ञान वेद्य भाव रहित है और यह कथन किसीसे गम्य है। स्वप्नदशामें रहनेवाले चैतन्यके सदृश है। संसारसंबंधी सर्व दुःखोंसे रहित है या वर्जित है

इति वचनात् ॥ =इस (वचन)से विज्ञाना द्वैतवादी योगाचार बौद्धोंका विज्ञानतत्व शून्य ही सिद्ध हुआ

विकल्पातीत प्रदीपवदिति चेन्न । तस्याप्यनेकक्षणविपयताया सत्यामेव प्रकाश्यप्रकाशनाभ्युपगमात् ॥ विकल्पातीतत्वात्तस्य शून्यताप्रसङ्गश्च ॥

प्रदीपवत् ० =दीपक (के प्रकाश) सदृश (विज्ञान) है अर्थात् बौद्ध कहते हैं कि विज्ञानकी दीपकके समान उत्पत्ति तथा परपदार्थका प्रकाश वा बोध करा देना दोनों बातें युगपत् एकही समयमें बन जायेगी

इति ० चेत् ० न ० =ऐसी (इति) शंका (होने) पर (=चेत्) ; (उत्तर है कि उक्तशंका ठीक) नहीं है

तस्य ।। अपि अनेकक्षण-विपयतायां ।।। सत्यां ।।। एव=क्योंकि उस (दीपक) का भी अनेकक्षणवर्ती होने पर (=सत्याम्) ही (=एव)

प्रकाश्य प्रकाशन अभ्युपगमात् । =प्रकाश किये जाने योग्य (पदार्थ) का प्रकाशन कर देना माना जाता है ॥ प्रश्नोत्तर का सारांश, दीपकके समान ज्ञानकी एक ही समयमें उत्पत्ति और विषय ग्राहकता मानना ठीक नहीं है दीपक भी स्वयम् अनेक समयवर्ती होकर पदार्थों का प्रकाश करता है अतः पूर्वोक्त नियममें (कि सब संस्कार क्षणिक हैं) भंग (दोष) बना रहता है

च ० तस्य ।।। विकल्प अतीतत्वात् ।।। =और (=च) तिस (विज्ञान) के निर्विकल्पता होनेके हेतुसे (=अनिश्चय आत्मक होनेसे)

शून्यता-प्रसङ्गः ॥ =अभावका प्रसंग (भी) आता है अर्थात् बौद्ध प्रत्यक्ष ज्ञानको

---

(१) स्वस्मिन्नपि सकलविकल्पाभावात् सकलविकल्पाविषयत्वाच्च योगिप्रत्यक्षस्य शून्यताप्रसंगः ॥ तत्र विशुद्धं सकलैर्विकल्पैः । व्यवहाराभिलापास्पदतामतीतम् ॥ न स्वस्य वेद्यं न च तन्निगाद्यं । सुषुप्त्यवस्थं भवतु स्वभावम् ॥ १ ॥ इति वचनात् ॥

स्वस्मिन् ।।। सकल विकल्प-अभावात् ।। =(क्योंकि बौद्धों के अनुसार-विज्ञान) अपने स्वरूप में संपूर्ण विकल्पों या भेदों से रहित है

च सकलविकल्प अविषयत्वात् ।।। =और (=च) (दूसरे) संपूर्ण विकल्पों द्वारा (वह विज्ञान) विषय या ग्रहण किये जाने योग्य नहीं है अर्थात् और विकल्प याभेद उसका ग्रहण और निश्चय नहीं कर सके

योगिप्रत्यक्षस्य ।।। शून्यता-प्रसङ्गः ।। =(अतएव) योगीके प्रत्यक्ष ज्ञानको शून्यता या अविद्यमानता का प्रसंग आता है तात्पर्य यह है कि जब योगी का ज्ञान स्वयं अपने स्वरूप में निश्चय रहित है तथा

अभिहितोभयप्रकारस्य प्रमाणस्य आदिप्रकारविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

निर्विकल्प (=निश्चयरहित तथा भद विवक्षारहित) मानते हैं । अतः उसके द्वारा किसी भी पदार्थका निश्चय नहीं होसक्ता तब स्वयम् उसयोगीके ज्ञानका भी निश्चय न होनेसे उस (विज्ञानकी) शून्यताका प्रसंग आता है । क्योंकि किसी भी पदार्थका अस्तित्व निश्चय आत्मक ज्ञानके विना सिद्ध नहीं हो सक्ता है ॥

अभिहित उभय-प्रकारस्य ॥ प्रमाणस्य ॥	=भाषित या कहे हुये दोनों (परोक्ष तथा प्रत्यक्ष) प्रकारके प्रमाणके
आदि प्रकार विशेष-प्रतिपत्ति अर्थम् ॥ आह T	=प्रथम (परोक्ष ज्ञान) के भेदों के विशेष ज्ञानके लिये कहते हैं कि

दूसरे विकल्पों (=निश्चयात्मक ज्ञानों) से नहीं जाना जा सक्ता है तब उसका अस्तित्व कैसे माना जा सक्ता है अतः

विज्ञानाद्वैतवादी योगाचार बौद्धोंका मत शून्य ही है ॥ उपर्युक्त श्लोकका अनुवाद —

तत्वं ॥ विशुद्धं ॥ सकल' ॥ विकल्पैः ॥ (अतीतम् ॥)=	(वह विज्ञान) तत्व संपूर्ण कल्पनाओं (भेदों)से रहित (=अतीतम्) विशुद्ध या विशद है अर्थात् विज्ञानमें ग्राह्य ग्राहक, वाच्य वाचक, वेद्य वेदक और ज्ञेय ज्ञायक कल्पनायें नहीं होनेसे वह विशुद्ध है निर्मल है ।
विषय-अभिलाषा-आस्पद ॥ अतीतम् ॥	=सब (=विषय) (पञ्चभक्ति वाल्यभेदी) इच्छाकी (=अभिलाषा) योग्यतासे (=आस्पदताम) रहित है अर्थात् विज्ञान तत्व संसार में अनिर्वचनीय है या अवक्तव्य है
नच स्वस्य ॥ वेद्यम् ॥	=(यह विज्ञान तत्व) अपने का नहीं जानता है (=वेद्यम) अर्थात् अपना भी वेद्य नहीं है ।
नच यत् ॥ निगाद्यम् ॥	=और (=च) यह (=तत् = विज्ञानतत्व) (किसी शब्दद्वारा) कहे जाने योग्य (भी) नहीं है
सुषुप्ति अवस्थे ॥	=शयन (=सुषुप्ति) अवस्थावाला है (=अवस्थम्) अर्थात् स्वप्नदशामें रहनेवाले चैतन्य के सदृश है
भवदुःख-बाह्यम् ॥	=संसारके दुःख (और विकल्पोंसे) रहित है (=बाह्यम्) ॥१॥ समस्त श्लोकका भावार्थ यह है कि यह विज्ञानतत्व संपूर्ण कल्पनाओंसे रहित होनेसे विशद है तथा विषयका कोई भी

पदार्थ कथन करने को समर्थ नहीं है (=अनिर्वचनीय है) अपनेको नहीं जानता है अर्थात् स्वरूपमें ज्ञान ज्ञेय भाव रहित है और यह कथन किसीसे योग्य है । स्वप्नदशामें रहनेवाले चैतन्यके सदृश है । संसारसंबंधी सर्व क्लेशोंसे रहित है या वर्जित है

इति वचनात् ॥	=ऐसे (कथन)से विज्ञाना द्वैतवादी योगाचार बौद्धोंका विज्ञानतत्व शून्य ही सिद्ध हुआ

प्रदीपवदिति चेन्न। तस्याप्यनेकक्षणविषयतायां सत्यामेव प्रकाश्यप्रकाशनाभ्युपगमात् ॥ विकल्पातीतत्वात्तस्य शून्यताप्रसङ्गश्च ॥

प्रदीपवत्	=दीपक (के प्रकाश) सदृश (विज्ञान) है अर्थात् बौद्ध कहते हैं कि विज्ञानकी दीपकके समान उत्पत्ति तथा परपदार्थका प्रकाश या बोध करा देना दोनों बातें युगपत् एकही समयमें बन जायेगी
इति चेत् न	=ऐसी (इति) शंका (होने) पर (=चेत्), (उत्तर है कि उक्तशंका ठीक) नहीं है
तस्य अपि अनेकक्षण-विषयतायां सत्यां एव	=क्योंकि उस (दीपक) का भी अनेकक्षणवर्ती होने पर (=सत्याम्) ही (=एव)
प्रकाश्य प्रकाशन अभ्युपगमात्	=प्रकाश किये जाने योग्य (पदार्थ) का प्रकाशन कर देना माना जाता है ॥ प्रश्नोत्तर का सारांश, दीपकके समान ज्ञानकी एक ही समयमें उत्पत्ति और विषय ग्राहकता मानना ठीक नहीं है दीपक भी स्वयम् अनेक समयवर्ती होकर पदार्थों का प्रकाश करता है अतः पूर्वोक्त नियममें (कि सब संस्कार क्षणिक हैं) भंग (दोष) बना रहता है
च तस्य विकल्प अतीतत्वात्	=और (=च) तिस (विज्ञान) के निर्विकल्पता होनेके हेतुसे (=अनिश्चय आत्मक होनेसे)
शून्यता-प्रसङ्गः	=अभावका प्रसंग (भी) आता है अर्थात् बौद्ध प्रत्यक्ष ज्ञानको

(१) [illegible] ॥ [illegible] । [illegible] ॥ [illegible] ॥ १ ॥ इति [illegible] ॥

[illegible] विकल्प-अभावात्	=(क्योंकि बौद्धों के अनुसार-विज्ञान) अपने स्वरूप में संपूर्ण विकल्पों या भेदों से रहित है
च सकलविकल्प अविषयत्वात्	=और (=च) (दूसरे) संपूर्ण विकल्पों द्वारा (यह विज्ञान) विषय या ग्रहण किये जाने योग्य नहीं है अर्थात् और विकल्प वालेद उसका ग्रहण और निश्चय नहीं कर सके
[illegible] शून्यता-प्रसङ्गः	=(अतएव) [illegible] प्रत्यक्ष ज्ञानको शून्यता या अविद्यमानता का प्रसंग आता है तात्पर्य यह है कि अब [illegible] का ज्ञान स्वयं अपने स्वरूप में निश्चय रहित है तथा

अभिहितोभयप्रकारस्य प्रमाणस्य आदिप्रकारविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

निर्विकल्प (=निश्चयरहित तथा भेद विवक्षारहित) मानते हैं। अतः उसके द्वारा किसी भी पदार्थका निश्चय नहीं होसका तब स्वयम् उसयोगीके ज्ञानका भी निश्चय न होनेसे उस (विज्ञानकी) शून्यताका प्रसंग आता है। क्योंकि किसी भी पदार्थका अस्तित्व निश्चय आत्मक ज्ञानके विना सिद्ध नहीं हो सका है॥

अभिहित-उभय-प्रकारस्य ॥ प्रमाणस्य ॥	=भाषित या कहे हुये दोनों (परोक्ष तथा प्रत्यक्ष) प्रकारके प्रमाणके
आदि प्रकार विशेष प्रतिपत्ति-अर्थम् ॥ आह	=प्रथम (परोक्ष ज्ञान) के भेदों के विशेष ज्ञानके लिये कहते हैं कि

दूसरे विकल्पों (=निश्चयात्मक ज्ञानों) से नहीं जाना जा सक्ता है तब उसका अस्तित्व कैसे माना जा सक्ता है अतः

विज्ञानाद्वैतवादी योगाचार बौद्धोंका मत शून्य ही है ॥ उपर्युक्त श्लोकका अनुवाद —

तत् ॥ विशुद्धं ॥ सकलैः ॥ विकल्पैः ॥ (अतीतम् ॥)=	(यह विज्ञान) तत्व संपूर्ण कल्पनाओं (भेदों)से रहित (=अतीतम्) विशुद्ध या विशद है अर्थात् विज्ञानमें ग्राह्य ग्राहक, वाच्य वाचक, वेद्य वेदक और ज्ञेय ज्ञायक कल्पनायें नहीं होनेसे यह विशुद्ध है निर्मल है।
[illegible] अभिलाषा-आस्पदताम् ॥ अतीतम् ॥	=सब (=विश्व) (वचनात्मक शब्दोंकी) इच्छाकी (=अभिलाषा) योग्यतासे (=आस्पदताम्) रहित है अर्थात् विज्ञान तत्व संसार में अनिर्वचनीय है या अवक्तव्य है
न [illegible] स्वस्य ॥ वेद्यम् ॥	=(यह विज्ञान तत्व) अपने को नहीं जानता है (=वेद्यम्) अर्थात् अपना भी वेद्य नहीं है।
न च [illegible] ॥ निगाद्यम् ॥	=और (=च) यह (=तत् =विज्ञानतत्व) (किसी शब्दद्वारा) कहे जाने योग्य (भी) नहीं है
सुषुप्ति-अवस्थ्यं ॥	=शयन (=सुषुप्ति) अवस्थावाला है (=अवस्थ्यम्) अर्थात् स्वप्नदशामें रहनेवाले चैतन्य के सदृश है
[illegible] ॥	*संसारके दुःख (और विकल्पोंसे) रहित है (=बाधम)॥१॥ समस्त श्लोकका भावार्थ यह है कि यह विज्ञानतत्व संपूर्ण कल्पनाओंसे रहित होनेसे विशद है तथा विश्वका कोई भी पदार्थ कथन करने का समर्थ नहीं है (=अनिर्वचनीय है) अपनेको नहीं जानता है अर्थात् स्वरूपमें ज्ञान ज्ञेय भाव रहित है और यह कथन कियेजाने योग्य है। स्वप्नदशामें रहनेवाले चैतन्यके सदृश है। संसारसंबंधी सर्व क्लेशोंसे रहित है या वर्जित है
[illegible] पदार्थ ॥	=पद (वचन)से विज्ञाना द्वैतवादी योगाचार बौद्धोंका विज्ञानतत्व शून्य ही सिद्ध हुआ

प्रदीपवदिति चेन्न । तस्याप्यनेकक्षणविषयतायां सत्यामेव प्रकाश्यप्रकाशनाभ्युपगमात् ॥ विकल्पातीतत्वात्तस्य शून्यताप्रसङ्गश्च ॥

प्रदीपवत् ० =दीपक (के प्रकाश) सदृश (विज्ञान) है अर्थात बौद्ध कहते हैं कि विज्ञानकी दीपकके समान उत्पत्ति तथा परपदार्थका प्रकाश या बोध करा देना दोनों बातें युगपत् एकही समयमें बन जावेगी

इति ० चेत् ० न ० =ऐसी (इति) शंका (होने) पर (=चेत) ; (उत्तर है कि उक्तशंका ठीक) नहीं है

तस्य ६। अपि अनेकक्षण-विषयतायां ७। सत्यां ७। एव=क्योंकि उस (दीपक) का भी अनेकक्षणवर्ती होने पर (=सत्याम्) ही (=एव)

प्रकाश्य प्रकाशन-अभ्युपगमात् ५। =प्रकाश किये जाने योग्य (पदार्थ) का प्रकाशन कर देना माना जाता है ॥ प्रश्नोत्तर का सारांश, दीपकके समान ज्ञानकी एक ही समयमें उत्पत्ति और विषय ग्राहकता मानना ठीक नहीं है दीपक भी स्वयम् अनेक समयवर्ती होकर पदार्थों का प्रकाश करता है अतः पूर्वोक्त नियममें (कि सब संस्कार क्षणिक हैं) भंग (दोष) बना रहता है

च ० तस्य ६।१। विकल्प अतीतत्वात् ५।१। =और (=च) तिस (विज्ञान) के निर्विकल्पता होनेके हेतुसे (=अनिश्चय आत्मक होनेसे)

शून्यता-प्रसङ्गः १। =अभावका प्रसंग (भी) आता है अर्थात् बौद्ध प्रत्यक्ष ज्ञानको

---

(१) स्वस्मिन्सकलविकल्पाभावात्सकलविकल्पाविषयत्वाच्च योगिप्रत्यक्षस्य शून्यताप्रसंगः ॥ तत्त्वं विशुद्धं सकलैर्विकल्पैः । विश्वाभिलापास्पदतामतीतम् ॥ न स्वस्य वेद्यं न च तन्निगद्यं । सुषुप्त्यवस्थं भवदु[illegible] ॥ १ ॥ इति वचनात् ॥

स्वस्मिन् ७।१। सकल विकल्प-अभावात् ५।१। =(क्योंकि बौद्धों के अनुसार-विज्ञान) अपने स्वरूप में संपूर्ण विकल्पों भा से) से रहित है

न सकलविकल्प अविषयत्वात् ५।१। =और (=च) (दूसरे) संपूर्ण विकल्पों द्वारा (वह विज्ञान) विषय या ग्रहण किये जाने योग्य नहीं है अर्थात् और विकल्प वा भेद उसका ग्रहण और निश्चय नहीं कर सके

योगिप्रत्यक्षस्य ६।१। शून्यता-प्रसङ्गः १। =(अतएव) योगीके प्रत्यक्ष ज्ञानको शून्यता वा अविषयभागता का प्रसंग आता है तात्पर्य यह है कि जब योगी का ज्ञान स्वयं अपने स्वरूप में निश्चय रहित है तथा

तर्क कहते हैं, और अविनाभाव सम्बन्ध को व्याप्ति कहते हैं ॥ जहां जहां साधन (=हेतु) होय, वहां वहां साध्य (=सिद्ध करने की इच्छा किया गया वा साधने योग्य वस्तु,) का होना, और जहां जहां साध्य नहीं होय, वहां वहां साधन के भी न होने को अविनाभाव सम्बन्ध कहते हैं । जैसे जहां जहां धूम है, वहां वहां अग्नि है और जहां जहां अग्नि नहीं है वहां वहां धूम भी नहीं है ॥ अथवा "व्याप्तिज्ञान को तर्क कहिए है । जहां अन्वय व्यतिरेककरि नियम होय सो व्याप्तिज्ञान है । यह याकूं होते संते होई यो तो अन्वय अर नहीं होतें संत नहीं होय ऐसा व्यतिरेक ऐसें दोऊनितें व्याप्तिज्ञान होय है ॥ जैसें अग्नि कें होतें संतें ही धूम होय अर अग्नि का अभाव होतें धूम नाहीं होय इत्यादि निश्चय करने का नाम तर्क है सो प्रमाण है" ॥ अर्थ प्रकाशिका में इसी सूत्र को देखो

अभिनिबोधः ¹।

=आभिनिबोधिकज्ञान वा "स्वार्थानुमान" (ज्ञान) जय० वचनिका पान १४० वा "अनुमान" (ज्ञान-अर्थप्रकाशिका) अर्थात् सन्मुख लिंगादि (=चिन्हादिक) देखकर उस लिंगी वा चिन्हवाले आदिका निश्चय करना सो अभिनिबोध है ॥ जैसे धूम को देखकर अग्नि का निश्चय करना कांचली देखकर सर्पका बोध करना साधन कहिये लिंग चिन्ह तातें साध्य कहिये जानन योग्य वस्तु लिंगी-चिन्हवान् ताका निश्चय करना सो स्वार्थानुमान है । तहां साधन ताकूं कहिये, जाकी जहां साध्य वस्तु न हो तहां प्राप्ति न होय "जैसे जहां साध्य वस्तु (अग्नि न हो) तहां धूम (अग्निके साधनकी प्राप्ति न होगी "तथा जहां साधन होय तहां साध्य होयही होय" जैसे जहां जहां धूम (अग्निका साधन) होगा वहां २ अग्नि (धूमका साध्य) अवश्य ही होगा ॥ देखो सर्वार्थसिद्धि वचनिका पृष्ठ १४२ १४३ ॥

(१) अभिनिबोधिक—'संज्ञामें प्रत्यय मिलाकर अर्थ बदल देते हैं उसीको तद्धित कहते हैं) यहां सम्बन्धके अर्थमें अभिनिबोधमें ठक् (=अक्) प्रत्यय लाकर और उसे (इक) से बदलकर आदि में वृद्धि कर देते हैं जैसे अभिनिबोध शब्द = अभिनिबोध+ठक् शब्द+ठक् = अभिनिबोध+इक शब्द+इक, वृद्धि करने से आभिनिबोधिक और शाब्दिक रूप बनाये ।

मति स्मृति सञ्ज्ञा चिन्ताऽभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम् ॥१३॥

मति स्मृति संज्ञा चिन्ताऽभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम् ॥१३॥

=मति १॥ स्मृतिः १॥ संज्ञा १॥ चिन्ता १॥ अभिनिबोध १। इति-अन्-अर्थ-अन्तरम् १॥ ॥१३॥

सूत्रार्थ— मति =मति अर्थात् मन और इन्द्रियोंसे वर्तमानकालवर्ती पदार्थको अवग्रहादि रूप साक्षात् जानना सो मति (ज्ञान) है ॥

स्मृति ,॥ =स्मृतिज्ञान अर्थात् अनुभवित पदार्थोंका कालान्तरमें वा और समयमें स्मरण होना या सुधि आना सो स्मृति (ज्ञान) है ॥

संज्ञा ॥ =संज्ञा ज्ञान अर्थात् वर्तमानमें किसी पदार्थको देखकर यह वही है जो पहिले देखा था इस प्रकार जोड़ रूपका ज्ञान होना सो संज्ञा–ज्ञान है या प्रत्यभिज्ञान है उसके अनेक भेद हैं उनमेंसे मुख्य चार हैं। अर्थात् (१) एकत्व प्रत्यभिज्ञान (२) सादृश्य प्रत्यभिज्ञान (३) तद्विलक्षण प्रत्यभिज्ञान (४) तत्प्रतियोगी प्रत्यभिज्ञान ॥ एकत्व प्रत्यभिज्ञान स्मृति और प्रत्यक्षके विषयभूत पदार्थमें एकता दिखाते हुये जोड़रूप ज्ञान जैसे किसी पुरुषको देखकर जानले कि यह प्रथम देखा था सो ही पुरुष है ॥ सादृश्य प्रत्यभिज्ञान स्मृति और प्रत्यक्षके विषयभूत पदार्थों में सादृश्य दिखाते हुये जोड़रूपज्ञान जैसे किसीने वनमें गवयनामा तिर्यंच, नीलगाव, रोझ, देखकर जाना सो यह गौको देखा था तैसा है। तद्विलक्षण प्रत्यभिज्ञान-स्मृति और प्रत्यक्षके विषय भूत पदार्थों में विलक्षणता दिखाते हुए जोड़रूपज्ञान— जैसे किसी भैंसेको देखकर जानना कि प्रथम जो बैल देखा था उससे विलक्षण ये भैंसा है ॥ तत्प्रतियोगि प्रत्यभिज्ञान किसी वस्तुको निकट देखकर अन्य किसी वस्तुको ऐसा जानना जो यह इससे दूर है ॥

चिन्ता ,॥ =चिन्तवन ज्ञान अर्थात् किसी चिन्हको देखकर "यहांपर इस चिन्ह वाला अवश्य होगा" ऐसा विचार सो चिंतन ज्ञान है। इसको ऊह, ऊहा, तर्क या व्याप्ति ज्ञान भी कहते हैं ॥ व्याप्तिके ज्ञानको—

(१) दिगम्बर जैन सम्प्रदाय तथा श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय दोनोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है ॥

(२) ऽचिह्न शब्दके बीच ऽ ऐसा चिन्ह मात्र उस शब्दके अन्तमेंसे एक अकार की जाती है। जैसे ऊपर चिन्ता शब्दमें एक अकार की जावेगी ऽऽऐसा दो चिन्ह हों तो पद विग्रहमें पहिले शब्दके अन्तसे दो अकार की जावेंगे ॥ जैसे शब्दरूपसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छाया ऽऽतपो द्योतवन्तश्च ॥ अध्याय ५ सूत्र २४ यहां आतप शब्द छायाके पश्चात् है ॥

अनुमान – "साधनसे साध्यके ज्ञानको अनुमान कहते हैं" जैन सिद्धान्त प्रवेशिका पृष्ठ ८॥ "साधन कहिए हेतु तातें साध्य कहिए साधने योग्य वस्तु ताका विज्ञान सो अनुमान प्रमाण है" साध्यके तीन विशेषण हैं (१) अबाधित या शक्य—"तहां प्रमाणकरि अन्य पत्र पणाकरि साधिवेकू शक्य होय सोही साध्य होय है जामें साधने की योग्यता नहीं सो साध्य नाहीं। जैसे आकाशका फूल साधनेकू शक्य नाहीं ॥" अग्नि का ठंडापन प्रत्यक्ष प्रमाण से बाधित है इस कारण यह ठंडापन साध्य नहीं हो सक्ता है॥ (२) अभिप्रेत या इष्ट—वादी जिसको सिद्ध करना चाहै अथवा जिसको साधनेवाला पुरुष अभिप्रायमें ले, सो ही साध्य है तिस अभिप्रेत विना जगतमें अनेक वस्तु हैं वे साध्य नहीं हैं॥ (३) असिद्ध—जो प्रतिवादीको दूसरे प्रमाणसे सिद्ध न हो अथवा जिसका निश्चय न हो अर्थात् जो पहिले सिद्ध नहीं हुवा है सो साध्य है जो प्रथमही सिद्ध होचुका है उसको क्या साधेगा? सिद्ध हुए को साधन निष्फल है तिसमें कुछ संदेहादिक हो सो असिद्ध है सो ही साधने योग्य है। इस प्रकार के विशेषण युक्त साध्य के सन्मुख जो पूर्वोक्त साधनकरि नियमरूप ज्ञान होय तातें याहू अभिनिबोध कहिये॥ साधनके संक्षेपसे दो भेद हैं (१) उपलब्धि (२) अनुपलब्धि॥ अभावके ग्रहणको अनुपलब्धि कहते हैं॥ इन्द्रियमनकरि वस्तुके सद्भावका ग्रहण हो सो उपलब्धि है उसके तीन प्रभेद हैं कार्योपलब्धि जैसे इस पर्वतमें अग्नि है क्योंकि अग्निका कार्य धूम दीखै है। (२) "कारणोपलब्धि जैसे वर्षा होगी जातें याका कारण बादल सघन दीसे है" ॥ (३) स्वभावोपलब्धि जैसे वस्तु उत्पाद-व्यय ध्रौव्य स्वरूप सहित है॥ (अर्थात् वस्तु उत्पत्ति-विनाश अस्तित्व वा विद्यमानता स्वभाववाली है अध्याय ५ सूत्र ३०) क्योंकि सत्त्वस्वरूप है। सत्का स्वभाव ऐसाही है। इत्यादिक साधनके अनेक भेद श्लोकवार्तिक में कहे हैं॥

इति अन् अर्थान्तरम् ॥ =इस प्रकार (इस मतिज्ञानके) अनर्थान्तर वा नामान्तर (मति स्मृतिः संज्ञा-चिंता-अभिनिबोध) हैं अर्थात मति, स्मृति, संज्ञा, चिंता, अभिनिबोध, इनके शब्दभेद (के हेतु)से वा नामभेदसे अर्थभेद होवे संते भी रूढिप्रसिद्धके बलसे मतिके नामान्तर ही हैं। भावार्थ जैसे इन्द्र (ऐश्वर्य क्रियावाला शचीपति) शक्र (शक्तिरूप क्रियावाला शचीपति) पुरन्दर (पुरका फाडनेहारा शचीपति) ऐसे इन तीन शब्दोंमें ऐश्वर्य-शक्ति-फाडनेवाले क्रियावोंके भेद होने पर भी एक शचीभर्ताका नाम समभिरूढनय (=नाना अर्थको छोडकर एकही अर्थमें स्थापित करने वाली नीति वा रीति) की अपेक्षा (इन्द्र) ही है तैसे मति, स्मृति, संज्ञा, चिंता, अभिनिबोध, शब्दोंका भिन्न भिन्न अर्थ होने पर भी एक मतिज्ञानके नामान्तर ही माने गये हैं क्योंकि ये सर्व एक मतिज्ञानावर्णकर्मके क्षयोपशम से उत्पन्न होवे हैं तिससे ये मतिज्ञानही हैं अन्य (पदार्थ) नहीं है ॥ सारांश यह है कि जैसे इन्द्र शक्र पुरन्दर न्यारी न्यारी क्रियावोंके करनेवाले को प्रकट करने परभी एक शचीपति काही नाम है तैसेही मति-स्मृति-संज्ञा चिंता अभिनिबोध अन्य अन्य अर्थबोधक होने परभी एक मतिज्ञान केही नाम हैं क्योंकि सब मतिज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमसे उत्पन्न होवे हैं ॥

(१) "सूत्र विषें इति शब्द प्रकारवाची है, सो मुख्य तो मतिका प्रकार जानना । जाते पदार्थके ग्रहणके शक्ति स्वरूपकूं बुद्धि कहिये है । बहुरि मेधा स्मृतिका प्रकार है । जातें शब्दके स्मरणकी शक्ति कूं मेधा कहिये है । बहुरि प्रज्ञा चिंताका प्रकार है । जातें चिंतवनका विशेष स्वरूप है । बहुरि प्रतिभा उपमा ये संज्ञाका प्रकार है । जातें सामान्य पदार्थ को सादृश्य दिखावने रूप है । बहुरि संभव अर्थापत्ति अभाव ए स्वार्थानुमानके प्रकार है जातें ये सर्व लिंगही तें जानिये है । जय० वचनिका मुद्रित पृष्ठ १४१ ॥

(२) कईएक मतावलम्बियोंके अनुसार "ज्ञान दोमप्रकारका है वस्तुमात्रको प्रकाश करनेहारा निर्विकल्पक, संज्ञा (नाम) आदिको प्रकाश करनेहारा सविकल्पक है। यह (सविकल्पक) सकल्प, संशय भ्रांति, सदृश सादृश, निश्चय और अनुमय आदि भेदसे कई प्रकारका है" प्र० काण्ड पृष्ठ १६१

आदौ यदुद्दिष्टं ज्ञानं तस्य पर्यायशब्दा एते वेदितव्याः । मतिज्ञानावरणक्षयोपशमान्तरङ्गनिमित्तजनितोपयोगविषयत्वात् । एतेषां श्रुतादिष्वप्रवृत्तेश्च ॥ मननं मतिः । स्मरणं स्मृतिः । सञ्ज्ञानं सञ्ज्ञा । चिन्तनं चिन्ता ।

"ऐसें स्मृति आदिक च्यार कहे ते सर्व मतिज्ञान है सो परोक्ष प्रमाण है" बहुरि आगमनामा परोक्ष प्रमाण है सो श्रुतज्ञानरूप है॥ "बहुरि इहां अन्यवादी अर्थापत्त्यादिक प्रमाण न्यारा मानें हैं ते सर्व इस मतिज्ञानमें अन्तर्भूत होय हैं" ॥ सर्वार्थप्रकाशिका मुद्रित पृष्ठ ४२ ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित इस (तेरहवें) सूत्रपर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः हिन्दीअनुवाद ॥

आदौ ,। यत् ,।। उद्दिष्टम् ,।। ज्ञानम् १।।	=पहिले जो (इस तेरहवां सूत्र में) उपदेशक्रियागयाज्ञान (अर्थात् मतिज्ञान)
तस्य ६।। पर्यायशब्दाः १।।	=तिस (मतिज्ञान) के पर्यायशब्द-नामान्तर-अनर्थान्तर-वा अभिधेयार्थवाची
एते १।। वेदितव्याः १।। मतिज्ञान-	= ये (स्मृति-संज्ञा-चिंता-अभिनिबोध) जानने चाहिये । मतिज्ञान
आवरण-	=आवरणीय कर्मका
क्षयोपशम अन्तरंगनिमित्त-	= क्षयोपशम अन्तरंग कारणसे
जनित उपयोग-विषयत्वात् ५।।	= जन्य वा उत्पन्न हुआ जो उपयोग तिस सम्बन्धी (ये मति-स्मृति-संज्ञा-चिंता-अभिनिबोध) हैं
च एतेषां ६। अप्रवृत्तेः ५ ॥ श्रुत-	= और (=च) क्योंकि इन (मति-स्मृति-संज्ञा-चिंता अभिनिबोध) की अप्रवृत्ति श्रुतज्ञान
आदिषु ७।। मननम् १।।	= आदिकज्ञानोंमें है ॥ मानना (=मननं) अर्थात् मन, और इन्द्रियोंसे वर्तमानकालवर्ती पदार्थ के अवग्रहादिरूप साक्षात् जानना सो)
मतिः १।। स्मरणम् १।। स्मृतिः १।।	=मतिज्ञान है। सुध (=स्मरण) (अर्थात् अनुभवित पदार्थोंका कालान्तरमें स्मरण होना) सो स्मृति है
सञ्ज्ञानम् १।।	= जोड़रूपज्ञान वा प्रत्यभिज्ञान (स्मृति और प्रत्यक्षके विषयभूत पदार्थोंमें जोड़रूप ज्ञान) (अर्थात् वर्तमानमें किसी पदार्थको देखकर यह वही है जो पहिले देखा था ऐसाजोड़रूप ज्ञान)
सञ्ज्ञा १।। चिन्तनम् १।।	=सो सञ्ज्ञाज्ञान है॥ चिंतवन (=किसी चिन्हको देखके यहां इस चिन्हवाला अवश्य होगा ऐसा विचार)
चिन्ता १।।	=सो चिंता वा तर्क वा व्याप्तिज्ञान वा ऊहा वा ऊह नाम है ॥

अभिनिबोधनमभिनिबोधः । इति यथासम्भवं विग्रहान्तरं विज्ञेयम् ॥ सत्यपि प्रकृतिभेदे रूढिबललाभात पर्यायशब्दत्वम् । यथा–इंद्रः शक्रः पुरन्दर इति, इन्दनादिक्रियाभेदेऽपि शचीपतेरेकस्यैव संज्ञा । समभिरूढनयापेक्षया तेषामर्थान्तरकल्पनायां

अभिनिबोधनम् १।।	=साधन (–लिंग या चिन्ह या हेतु)से साध्य (सिद्ध करने योग्य वस्तु)का ज्ञान (अर्थात् सन्मुख चिन्हादिक देखकर उस चिन्हवालेका निश्चय करलेना सो)
अभिनिबोधः १।	=अभिनिबोधज्ञान या स्वार्थानुमान ज्ञान या अनुमान ज्ञान है (यहां मति-स्मृति-संज्ञा-चिंता अभिनिबोध शब्दोंका भाव साधनमें अर्थ किया है)
इति० यथासम्भवम् १।।। विग्रह-अन्तरम् १।।।	=ऐसे योग्यता पूर्वक या योग्यतानुसार (–यथासम्भव) अन्य विग्रह (समासके अर्थको बनानेवाले अन्यवाक्य जैसे इनके करण साधन कर्तृ साधन)
विज्ञेयम् १।।। प्रकृतिभेदे ।	=जानना योग्य है। (मति-स्मृति-संज्ञा चिंता-अभिनिबोधके) अर्थ (–प्रकृति) भेद
सति ७ अपि० रूढि-बल-लाभात् ५।	=होनेपर (–सति) भी (–अपि) रूढि (–प्रसिद्ध) की सामर्थ्य प्राप्तिसे
पर्याय-शब्दत्वम् १।।। यथा० इन्द्रः १।	=(मतिके) पर्यायशब्द या नामान्तर है। जैसे इन्द्र (–ऐश्वर्य क्रियावाला शचीपति)
शक्रः १। पुरन्दरः १।	=शक्र (शक्तिरूप क्रियावाला शचीपति) पुरन्दर (–पुरके फाड़नेवाला शचीपति)
इति इन्दन-	=ऐसे (इन तीन इन्द्र-शक्र-पुरन्दर शब्दोंमें) ऐश्वर्य होनेरूप
आदि क्रिया-भेदे ७। अपि०	=शक्ति होनेरूप, फाड़ने (यथासंख्य) क्रियायोंके भेद होनेपर भी
एकस्य ६। शची-पतेः ६। एव संज्ञा १।। समभिरूढनय	=एक शची भर्ताके ही नाम समभिरूढनय (नाना अर्थको छोड़कर एक ही अर्थमें स्थापित करनेवाली नीति या रीति)की
अपेक्षया ३। तेषाम् ६। अर्थ-अन्तर-कल्पनायाम् ७।	=अपेक्षा । तिन (इन्द्र शक्र-पुरन्दर)के भिन्न भिन्न अर्थ माननेमें

आदौ यदुद्दिष्ट ज्ञानं तस्य पर्यायशब्दा एते वेदितव्याः । मतिज्ञानावरणक्षयोपशमान्तरङ्गनिमित्तजनितोपयोगविषयत्वात् । एतेषां श्रुतादिष्वप्रवृत्तेश्च ॥ मननं मतिः । स्मरणं स्मृतिः । सञ्ज्ञानं सञ्ज्ञा । चिन्तनं चिन्ता ।

"ऐसें स्मृति आदिक च्यार कहे ते सर्व मतिज्ञान है सो परोक्ष प्रमाण है" बहुरि आगमनामा परोक्ष प्रमाण है सो श्रुतज्ञानरूप है॥ "बहुरि इहां अन्यवादी अर्थापत्त्यादिक प्रमाण न्यारा माने हैं ते सर्व इस मतिज्ञानमें अन्तर्भूत होय हैं" ॥ अर्थप्रकाशिका मुद्रित पृष्ठ ४३ ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित इस (तेरहवें) सूत्रपर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः हिन्दीअनुवाद ॥

आदौ ।। यत् ।।। उद्दिष्टम् ।।। ज्ञानम् ।।।	=पहिले जो (इस तेरहवां सूत्र में) उपदेशकियागयाज्ञान (अर्थात् मतिज्ञान)
तस्य ।।। पर्यायशब्दा ।।	=तिस (मतिज्ञान) के पर्यायशब्द-नामान्तर-अनर्थान्तर-वा अभिधेयार्थवाची
एते ।। वेदितव्याः ।। । मतिज्ञान-	= ये (स्मृति-संज्ञा-चिंता-अभिनिबोध) जानने चाहिये । मतिज्ञान
आवरण-	=आवरणीय कर्मका
क्षयोपशम अन्तरंगनिमित्त-	= क्षयोपशम अन्तरंग कारणसे
जनित उपयोग-विषयत्वात् ।।।	= जन्य था उत्पन्न हुआ जो उपयोग तिस सम्बन्धी (ये मति-स्मृति-संज्ञा-चिंता अभिनिबोध) हैं
च एतेषां ।। अप्रवृत्त ।।। श्रुत-	= और (=च) क्योंकि इन (मति-स्मृति-संज्ञा चिंता अभिनिबोध) की अप्रवृत्ति श्रुतज्ञान
आदिषु ।।। मननम् ।।।	= आदिकज्ञानोंमें है ॥ मानना (=मननं) अर्थात् मन, और इन्द्रियोंसे वर्तमानकालवर्ती पदार्थ के अवग्रहादिरूप साक्षात् जानना सो)
मतिः ।। स्मरणम् ।।। स्मृतिः ।।।	=मतिज्ञान है। सुध (=स्मरण) (अर्थात् अनुभवित पदार्थोंका कालान्तरमें स्मरण होना) सो स्मृति है
संज्ञानम् ।।।	= जोड़रूपज्ञान वा प्रत्यभिज्ञान (स्मृति और प्रत्यक्षके विषयभूत पदार्थोंमें जोड़रूप ज्ञान) (अर्थात् वर्तमानमें किसी पदार्थको देखकर यह वही है जो पहिले देखा था ऐसाजोड़रूप ज्ञान)
संज्ञा ।।। चिन्तनम् ।।।	=सो संज्ञाज्ञान है॥ चिंतवन(=किसी चिन्हको देखके यहां इस चिन्हवाला अवश्य होगा ऐसा विचार)
चिंता ।।।	=सो चिंता वा तर्क वा व्याप्तिज्ञान वा ऊहा वा ऊह ज्ञान है ॥

मत्यादिष्वपि म क्रमो विद्यत एव। किंतु मतिज्ञानावरणक्षयोपशमनिमित्तोपयोगं नातिवर्तत इति अयमत्रार्थो विवक्षित। इतिशब्द प्रकारार्थं। एवंप्रकारा अस्य पर्यायशब्दा इति। अभिधेयार्थो वा। मति स्मृति सज्ञा चिन्ता अभिनिबोध इत्येतैर्योऽभिधीयते स एक एव इति ॥

ति आदिषु ,। अपि म: ,। क्रम' ;। विद्यत T	=मति आदिकमें भी यह नियम रीति-मानय (=क्रम) विद्यमान
र किन्तु मति-ज्ञान आवरण—	=ही है क्योंकि (=किंतु) (मति-स्मृति संज्ञा-चिंता अभिनिबोध) मतिज्ञानावरणकर्मके
योपशमनिमित्त-उपयोगम् ;। न अति वर्तत T	=क्षयोपशम जनित उपयोगको उलघकरि नहीं वर्तते हैं या नहीं छोड़ते हैं अर्थात् इन पांचोंके अर्थ तो भिन्न हैं परंतु मतिज्ञानावरणकर्मके क्षयोपशमसे ये सब उपजते हैं। अत: सब मतिज्ञान के ही पर्याय वाची शब्द या नामान्तर माने जाते हैं ॥ सारांश—जैसे इन्द्र-शक्र-पुरंदर न्यारी न्यारी क्रियाके करनेवालेको प्रगट करने पर भी समभिरूढनयकी अपेक्षा से शचीपति के ही नाम हैं तैसेही मति स्मृति संज्ञा चिंता अभिनिबोध अन्य अन्य अर्थोंके बोधक होनेपरभी एक मतिज्ञानकेही नाम उक्तनयसे हैं क्योंकि पांचों मतिज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमसे उत्पन्न होवे हैं ॥
ति अत्र अयम् ,। अर्थ' ,। विवक्षित	=ऐसे यहां यह अर्थ अपेक्षा से किया गया है (विवक्षित:)
तिशब्द' ,। प्रकार अर्थ' ,।	=(इस सूत्रमें) इति शब्द प्रकारके निमित्त (=अर्थ) है अर्थात् भेदोंका वाचक है
एवम् अस्य ,। प्रकारा: ;। पर्याय-शब्दा ,। इति	=ऐसे (=एवम्) इस (मतिज्ञान) के (=अस्य) भेद हैं (=प्रकारा:) नामान्तर हैं
वा अभिधेय अर्थ: ;।	=अथवा (=वा) (इति शब्द सूत्रमें) अभिधेय अर्थवाची है अर्थात्
ति: ;। स्मृति ,। संज्ञा ;। चिन्ता ;। अभिनिबोध: ,।	=मति स्मृति संज्ञा चिंता अभिनिबोध
एतै: ;। य: ;। अर्थ ;। अभिधीयत T	=इस प्रकार इन (शब्दों) करि जो अर्थ कहा गया है (अभिधीयते)। सो (अर्थ)
;। एक: ,। एव इति	=एक ही है अर्थात् मतिज्ञानकेही पर्याय शब्द या नामान्तर हैं ॥

अथास्यात्मलाभे किं निमित्तमित्याह ॥

तदिन्द्रियाऽनिन्द्रियनिमित्तम् ॥ १४ ॥ तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम् ॥ १४ ॥

इन्दतीति इन्द्र आत्मा तस्य स्वभावस्य तदावरणक्षयोपशमे सति स्वयमर्थान् गृहीतुमसमर्थस्य यदर्थोपलब्धि निमित्त लिङ्गं तदिन्द्रस्य लिंगमिन्द्रियमित्युच्यते ॥

अथ॰ अस्य ६॥ आत्म-लाभे ७। किम् १॥ निमित्तम् १॥	=अब (=अथ) इस (मतिज्ञान) के स्वरूपके (=आत्म) उपार्जन में क्या हेतु है
इति॰ आह T	=ऐसा (प्रश्न होने पर) कहते हैं कि

तदिन्द्रियाऽनिन्द्रियनिमित्तम् ॥ १४ ॥ तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम् ॥ १४ ॥

तद्	=यह (पूर्वोक्त मति-स्मृति-संज्ञा चिन्ता-अभिनिबोध इत्यादि शब्दरूप मतिज्ञान)
इन्द्रिय-अनिन्द्रिय-निमित्तम् १॥	=(बहिरंग में) पांच इन्द्रिय और मननिमित्तक, या मनजनित या मनजन्य है अर्थात् उस मतिज्ञानके उत्पन्न होनेके लिये स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुः श्रोत्र मन ये छै बाह्य कारण हैं पर अंतरंग मतिज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम है ॥ मनः, अंतः करण, अनिन्द्रिय (=किंचित् या ईषद् इन्द्रिय, न कि इन्द्रिय रहित) है ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस (चौदहवें) सूत्रपर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद ॥

इन्दति T इति इन्द्रः १। आत्मा १।	=परम ऐश्वर्यरूप प्रवर्तता है (=इन्दति) ऐसा इन्द्र है या (अर्थसे) चेतना है आत्मा है ॥
तस्य ६। स्वभावस्य ६। तद् आवरण-क्षयोपशमे ७।	=तिस (आत्मा) के (ज्ञान) स्वभाव को उस ज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशम
सति ७। स्वयम्॰ अर्थान् २। गृहीतुम्॰	=होनेपर आपही आप (=स्वयम्) पदार्थों को ग्रहण (करने) के लिये
असमर्थस्य ६। यद् अर्थ-उपलब्धि निमित्तम् १॥	=असमर्थ (आत्मा) को जो पदार्थ को जनावने का कारण है
लिङ्गम् १॥ तद्-इन्द्रस्य ६। लिङ्गम् १॥ इन्द्रियम् १॥	=सो लिंग या चिन्ह है। वह आत्मा का चिन्ह इन्द्रिय
इति॰ उच्यते T	=कहा जाता है ॥ भावार्थ यह है कि चेतनके अंतरंग मतिज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशम से पदार्थों के जाननेकी अंतरंग शक्ति तो

अथवा लीनमर्थं गमयतीति लिङ्गम् । आत्मनः सूक्ष्मस्यास्तित्वाधिगमे लिङ्गमिन्द्रियम् । यथा इह धूमो ग्ने ॥ एवमिदं स्पर्शनादिकरणं नासति कर्तर्यात्मनि भवितुमर्हतीति ज्ञातुरस्तित्वं गम्यते ॥ अथवा इन्द्र इति नामकर्मोच्यते । तेन सृष्टमिन्द्रियमिति । तत्स्पर्शनादि उत्तरत्र वक्ष्यते ॥ अनिन्द्रियं मनःअन्तःकरणमित्यनर्थान्तरम् ॥

अथवा॰ लीनम् ,। अर्थम् ,। गमयति T इति॰
लिङ्गम् ;॥ आत्मन' ;। सूक्ष्मस्य ,। अस्तित्व-अधिगमे ;।
लिङ्गम् ;॥ इन्द्रियम् ,॥ यथा॰ इह॰ धूमः ;। अग्नेः ,।
एवं॰ इदम् ,॥ स्पर्शन-आदि-करणम् ,॥ आत्मनि ;।
असति ;। कर्तरि ;। भवितुम्-अर्हति T न॰
इति॰ ज्ञातु';। अस्तित्वम् ;॥ गम्यते T

अथवा॰ इन्द्रः ,। इति॰ नामकर्म ,॥ उच्यते T
तेन ;। सृष्टम् ,॥ इन्द्रियम् '॥ इति॰ तत्
स्पर्शन आदि ,॥ उत्तरत्र • वक्ष्यते T
अनिन्द्रियम् ,॥ मनस् ;॥ अंतःकरणम् ;॥ इति •
अन् अर्थ-अन्तरम् ,॥

आत्मामें प्रगट हुई परन्तु यही आत्मा बाह्य उपकरण विना जाननेको समर्थ नहीं हो सक्ता है अतः पदार्थोंके जनावनेके लिये बाह्य कारणको इन्द्रिय कहते हैं ॥
=अथवा गूढ वस्तुको जनाता है (—गमयति-बोधयति) ऐसा
=लिंग या चिन्ह है । चेतनकी गूढ या अदृष्ट विद्यमानता जाननेमें
=चिन्ह या लिंग है सो इन्द्रिय है । जैसे यहां (=इह) अनलका धूम (लिंग) है
=ऐसे यह स्पर्शन आदिक (पांच इन्द्रिय) करण या साधन हैं सो चेतन
=कर्ताके न होने पर अस्तित्व या होनेको (=भवितुम्) समर्थ नहीं है (न-अर्हति)
=ऐसे ज्ञाता (जो आत्मा तिस) की विद्यमानता इन्द्रियों करि जानी जाती है अर्थात् स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुः श्रोत्र इन पांचों इन्द्रियोंका अस्तित्व यदि आत्मा न हो तो असम्भव है क्योंकि आत्मा कर्ता है और पांचों इन्द्रियें करण हैं कर्ता विना करण नहीं हो सक्ता है ॥ इस प्रकार ये पांचों इन्द्रियें ज्ञाता जो आत्मा है तिसका अस्तित्व प्रकट करती हैं
=अथवा इन्द्र ऐसा नामकर्म कहा गया है
= तिस (नामकर्म) करि रचीगई है सो इन्द्रिय इसप्रकार है ॥ सो स्पर्शन
=रसन-घ्राण-चक्षुः-श्रोत्र यहांसे आगे (अध्याय २ सूत्र १९में) कहेंगे
=अनिन्द्रिय-मन, अंतःकरण ये
=अन्य पदार्थ नहीं हैं (पर्यायवाची शब्द हैं, एकार्थ वाची शब्द हैं, समानार्थक हैं)

कथं पुनरिन्द्रियप्रतिषेधेन इन्द्रलिङ्गे एव मनसि अनिन्द्रियशब्दस्य प्रवृत्ति ?। ईषदर्थस्य नञः प्रयोगात्। ईषदिन्द्रियमनिन्द्रियमिति । यथा अनुदरा कन्या इति ॥ कथमीषदर्थं ?। इमानीन्द्रियाणि प्रतिनियतदेश विषयाणि कालान्तरावस्थायीनि च । न तथा मनः इन्द्रस्य लिङ्गमपिसत्प्रतिनियत

पुनः * इन्द्रिय-प्रतिषेधेन ।। अनिन्द्रिय-शब्दस्य ।।	=(प्रश्न) और (=पुनः) इन्द्रियका निषेध करनेसे अनिन्द्रियशब्दकी
प्रवृत्तिः ।।। इन्द्र लिङ्गे ७।। एव* मनसि ७।। कथम् *	=प्रवृत्ति आत्माका चिन्ह मन (अर्थ) में ही कैसे है अर्थात् जो इन्द्रिय न हो सो अनिन्द्रिय है तो मन अनिन्द्रिय कैसे है ।
ईषत् *	=(उत्तर) (इन्द्रिय रहित या वर्जित अनिन्द्रिय नहीं है किन्तु) अल्प या किञ्चित्
अर्थस्य ६। नञःप्रयोगात् ।।	=अर्थमें (इन्द्रिय शब्दके) नञ् (=अन्) समासके प्रयोग से
ईषत् * इन्द्रियम् ।।। अनिन्द्रियम् ।।। इति* यथा *	=ईषत् इन्द्रिय सो अनिन्द्रिय है । जैसे
अन् उदरा ।।। कन्या ।।। इति *	=अन्-पेट वाली कुमारी ऐसे (यहांपर अन्-नञ्समास निषेध अर्थमें नहीं है किन्तु ईषद् या किञ्चित् अर्थमें है अनुदरा उस कन्या को नहीं कहते हैं जिसके पेट न हो परन्तु उस कन्या को कहते हैं जिसका पेट पतलाहो, क्षीणहो, कृशहो और जो गर्भधारणमें असमर्थ हो)
कथम् * ईषत् * अर्थः ।। इमानि ।।। इन्द्रियाणि ।।।	=(प्रश्न) किञ्चित् अर्थ कैसे है (उत्तर) ये (=इमानि) (पांचों) इन्द्रियें
प्रति-नियत-देश विषयाणि ।।। च*	=नियमित स्थान वाली (वस्तु को) विषय करतीं हैं और (=च)
कालान्तर-अवस्थायीनि ।।।	=कालान्तरमें (=अन्य २ कालमें) ठहरनेवाली हैं अर्थात् स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षु श्रोत्र पांचो इन्द्रियोंके एक दूसरे से भिन्न भिन्न स्थान हैं और भिन्न भिन्न विषय हैं और जिसकालमें अपने अपने विषयों से उपयुक्त न हों उसकालमें भी अवस्थित रहती हैं
तथा * मनस् ।।। इन्द्रस्य ।।। लिङ्गम् ।। प्रतिनियत-	=वैसे मन आत्मा का (=इन्द्रस्य) लिङ्ग होने पर भी (सत्-अपि) प्रतिनियत

अथवा लीनमर्थं गमयतीति लिङ्गम् । आत्मनः सूक्ष्मस्यास्तित्वाधिगमे लिङ्गमिन्द्रियम् । यथा इह धूमो ग्ने ॥ एवमिद स्पर्शनादिकरणं नासति कर्तर्यात्मानि भवितुमर्हतीति ज्ञातुरस्तित्व गम्यते ॥ अथवा इन्द्र इति नामकर्मोच्यते । तेन सृष्टमिन्द्रियमिति । तत्स्पर्शनादि उत्तरत्र वक्ष्यते ॥ अनिन्द्रिय मनःअतःकरणमि त्यनर्थान्तरम् ॥

	आत्मामें प्रगट हुई परन्तु वही आत्मा बाह्य उपकरण बिना जाननेको समर्थ नहीं हो सक्ता है अतः पदार्थोंके जनावनेके लिये बाह्य कारणको इन्द्रिय कहते हैं ॥
अथवा॰ लीनम् ,। अर्थम् ,। गमयति T इति॰	=अथवा गूढ वस्तुको जताता है (–गमयति-बोधयति) ऐसा
लिङ्गम् ।॥ आत्मन' ।। सूक्ष्मस्य ,। अस्तित्व-अधिगमे ३।	=लिंग वा चिन्ह है । चेतनकी गूढ वा अदृष्ट विद्यमानता जाननेमें
लिङ्गम् ,।॥ इन्द्रियम् ,।॥ यथा॰ इह॰ धूम' ।। अग्ने' ०।	=चिन्ह वा लिंग है सो इन्द्रिय है । जैसे यहां (=इह) अनलका धूम (लिंग) है
एवं॰ इदम् ,।॥ स्पर्शन-आदि-करणम् ,।॥ आत्मनि ३।	=ऐसे यह स्पर्शन आदिक (पांच इन्द्रिय) करण वा साधन हैं सो चेतन
असति ३। कर्तरि ३। भवितुम्-अर्हति T न॰	=कर्ताके न होने पर अस्तित्व वा होनेको (=भवितुम्) समर्थ नहीं है (न-अर्हति)
इति॰ ज्ञातु'।। अस्तित्वम् ।॥ गम्यते T	=ऐसे ज्ञाता (जो आत्मा तिस) की विद्यमानता इन्द्रियों करि जानी जाती है
	अर्थात् स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुः श्रोत्र इन पांचों इन्द्रियोंका अस्तित्व यदि आत्मा न हो तो असम्भव है क्योंकि आत्मा कर्ता है और पांचों इन्द्रियें करण हैं कर्ता बिना करण नहीं हो सक्ता है ॥ इस प्रकार ये पांचों इन्द्रियें ज्ञाता जो आत्मा है तिसका अस्तित्व प्रकट करती हैं
अथवा॰ इन्द्रः ।। इति॰ नामकर्म ,।॥ उच्यते T	=अथवा इन्द्र ऐसा नामकर्म कहा गया है
तेन ।। सृष्टम् ,।॥ इन्द्रिम् ,।॥ इति॰ तत्	= तिस (नामकर्म) करि रचीगई है सो इन्द्रिय इसप्रकार है ॥ सो स्पर्शन
स्पर्शन आदि ,।॥ उत्तरत्र ॰ वक्ष्यते T	=रसन-घ्राण-चक्षु-श्रोत्र यहांसे आगे (अध्याय २ सूत्र १९में) कहेंगे
अनिन्द्रियम् ,।॥ मनस् ,।॥ अंतःकरणम् ,।॥ इति ॰	=अनिन्द्रिय-मन, अंतःकरण ये
अन् अर्थ-अन्तरम् ,।॥	=अन्य पदार्थ नहीं है (पर्यायवाची शब्द हैं, एकार्थ वाची शब्द हैं, समानार्थक हैं)

कथं पुनरिन्द्रियप्रतिषेधेन इन्द्रलिङ्गे एव मनसि अनिन्द्रियशब्दस्य प्रवृत्तिः ?। ईषदर्थस्य नञः प्रयोगात्। ईषदिन्द्रियमनिन्द्रियमिति । यथा अनुदरा कन्या इति ॥ कथमीषदर्थः ?। इमानीन्द्रियाणि प्रतिनियतदेश-विषयाणि कालान्तरावस्थायीनि च । न तथा मनः इन्द्रस्य लिङ्गमपि सत्प्रतिनियत

पुनः * इन्द्रिय प्रतिषेधेन ।। अनिन्द्रिय-शब्दस्य ।।	=(प्रश्न) और (=पुनः) इन्द्रियका निषेध करनेसे अनिन्द्रियशब्दकी
प्रवृत्तिः ।।। इन्द्र-लिङ्गे ।।। एव* मनसि ।।। कथम् *	=प्रवृत्ति आत्माका चिन्ह मन (अर्थ) में ही कैसे है अर्थात् जो इन्द्रिय न हो सो अनिन्द्रिय है तो मन अनिन्द्रिय कैसे हैं ।
ईषत् *	=(उत्तर) (इन्द्रिय रहित या वर्जित अनिन्द्रिय नहीं है किन्तु) अल्प या किञ्चित्
अर्थस्य ।। नञ्प्रयोगात् ।।	=अर्थमें (इन्द्रिय शब्दके) नञ् (=अन्) समासके प्रयोग से
ईषत् * इन्द्रियम् ।।। अनिन्द्रियम् ।।। इति* यथा *	=ईषत् इन्द्रिय सो अनिन्द्रिय है । जैसे
अन् उदरा ।।। कन्या ।।। इति *	=अन्-पेट वाली कुमारी ऐसे
	(यहांपर अन्-नञ्समास निषेध अर्थमें नहीं है किन्तु ईषद् या किञ्चित् अर्थमें है अनुदरा उस कन्या को नहीं कहते हैं जिसके पेट न हो परन्तु उस कन्या को कहते हैं जिसका पेट पतलाहो, क्षीणहो, कृशहो और जो गर्भधारणमें असमर्थ हो)
कथम् * ईषत् * अर्थः ।। इमानि ।।। इन्द्रियाणि ।।।	=(प्रश्न) किञ्चित् अर्थ कैसे है (उत्तर) ये (=इमानि) (पांचों) इन्द्रियें
प्रति नियत-देश-विषयाणि ।।। च*	=नियमित स्थान वाली (वस्तु को) विषय करतीं हैं और (=च)
कालान्तर-अवस्थायीनि ।।।	=कालान्तरमें (=अन्य २ कालमें) ठहरनेवाली हैं अर्थात् स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुः श्रोत्र पांचो इन्द्रियोंके एक दूसरे से भिन्न भिन्न स्थान हैं और भिन्न भिन्न विषय हैं और जिसकालमें अपने अपने विषयों से उपयुक्त न हों उसकालमें भी अवस्थित रहती हैं
तथा * मनस् ।।। इन्द्रस्य ।।। लिङ्गम् ।। प्रतिनियत-	=वैसे मन आत्मा का (=इन्द्रस्य) लिङ्ग होने पर भी (सत्-मपि) प्रतिनियत

अथवा लीनमर्थं गमयतीति लिङ्गम् । आत्मन सूक्ष्मस्यास्तित्वाधिगमे लिङ्गमिन्द्रियम् । यथा इह धूमो ग्ने ॥ एवमिद स्पर्शनादिकरण नासति कर्तर्यात्मनि भवितुमर्हतीति ज्ञातुरस्तित्व गम्यते ॥ अथवा इन्द्र इति नामकर्मोच्यते । तेन सृष्टमीन्द्रियमिति । तत्स्पर्शनादि उत्तरत्र वक्ष्यते ॥ अनिन्द्रियं मनःअतःकरणमि त्यनर्थान्तरम् ॥

	आत्मामें प्रगट हुई परन्तु यही आत्मा बाह्य उपकरण बिना जाननेको समर्थ नहीं हो सका है अतः पदार्थोंके जनावनेके लिये बाह्य कारणको इन्द्रिय कहते हैं ॥
अथवा॰ लीनम् ,। अर्थम् ,। गमयति T इति॰	=अथवा गूढ वस्तुको जनाता है (–गमयति-बोधयति) ऐसा
लिङ्गम् ।॥ आत्मन' ।। सूक्ष्मस्य ,। अस्तित्व-अधिगमे ।।	=लिंग वा चिन्ह है । चेतनकी गूढ वा ग्दृष्ट विद्यमानता जाननेमें
लिङ्गम् ।॥ इन्द्रियम् ,॥ यथा॰ इह॰ धूम' ।। अग्नेः ॰।	=चिन्ह वा लिंग है सो इन्द्रिय है । जैसे यहां (=इह) अनलका धूम (लिंग) है
एवं॰ इदम् ,॥ स्पर्शन आदि-करणम् ,॥ आत्मनि ।।	=ऐसे यह स्पर्शन आदिक (पांच इन्द्रिय) करण वा साधन हैं सो चेतन
असति ,। कर्तरि ।। भवितुम्+अर्हति T न॰	=कर्ताके न होने पर अस्तित्व वा होनेको (=भवितुम्) समर्थ नहीं है (न-अर्हति)
इति॰ ज्ञातुः।। अस्तित्वम् ।॥ गम्यते T	=ऐसे ज्ञाता (जो आत्मा तिस) की विद्यमानता इन्द्रियों करि जानी जाती है अर्थात् स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुः श्रोत्र इन पांचों इन्द्रियोंका अस्तित्व यदि आत्मा न हो तो असम्भव है क्योंकि आत्मा कर्ता है और पांचों इन्द्रियें करण हैं कर्ता बिना करण नहीं हो सक्ता है ॥ इस प्रकार ये पांचों इन्द्रियें ज्ञाता जो आत्मा हैं तिसका अस्तित्व प्रकट करती हैं
अथवा॰ इन्द्र' ।। इति॰ नामकर्म ,॥ उच्यते T	=अथवा इन्द्र ऐसा नामकर्म कहा गया है
तेन ।। सृष्टम् ।॥ इन्द्रियम् ,॥ इति॰ तत्	= तिस (नामकर्म) करि रचीगई है सो इन्द्रिय इसप्रकार है ॥ सो स्पर्शन
स्पर्शन आदि ।॥ उत्तरत्र ॰ वक्ष्यते T	=रसन-घ्राण-चक्षुः-श्रोत्र यहांसे आगे (अध्याय २ सूत्र १९में) कहेंगे
अनिन्द्रियम् ।॥ मनस् ,॥ अंतःकरणम् ,॥ इति ॰	=अनिन्द्रिय-मन, अंतःकरण ये
अन् अर्थ-अन्तरम् ,॥	=अन्य पदार्थ नहीं हैं (पर्यायवाची शब्द हैं, एकार्थ वाची शब्द हैं, समानार्थक हैं)

इहार्थमुत्तरार्थं च तदित्युच्यते ॥ यन्मत्यादिपयायश

वायधारणा इति । इतरथा हि प्रथम मत्यादिशव्दवाच्यं ज्ञानमित्युक्त्वा इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्त श्रुतम् ।

तदेवावग्रहेहावायधारणा इत्यनिष्टमभिसम्बध्येत ॥

इह ॰ अर्थम ,॥ च ॰ उत्तर
अर्थम् ,॥ तद् ;॥ इति॰
उच्यते T यद् ॥ मति आदि पर्याय शब्द
वाच्यम् ,॥ ज्ञानम् ,॥ तद् ,॥ इन्द्रिय
अनिन्द्रिय निमित्तम '॥ तद् ,॥
एव ॰ अवग्रह-ईहा-आवाय-धारणा' ,॥ इति॰
इतरथा ॰ हि ॰ प्रथमं ,॥ मति-आदि
शब्द-वाच्यम् ,॥ ज्ञानम् ;॥ इति॰ उक्त्वा-
इन्द्रिय-अनिन्द्रिय-निमित्तम् ,॥ श्रुतम् ;॥
तद्-एव॰ अवग्रह-ईहा आवाय-धारणाः ,॥ इति॰
अनिष्टम् ॥ अभिसम्बध्येत T

=(उत्तर) यहांकि लिये अर्थात् इस सूत्रके लिये और (=च) पश्चात् वा पिछले
=(सूत्र) के लिये (अर्थात कहे जाने वाले मंद्रहवां सूत्र के लिये) तद् (शब्द) है॥ ऐसे
=कहा गया है (कि) जो मति स्मृति संज्ञा चिंता अभिनिबोध समानार्थक शब्दोंकरि
=वाच्य (कहे जाने वाला) ज्ञान है सो (ज्ञान) इन्द्रिय
=तथा अन्त' करण जनित है (और) सो (मतिज्ञान)
=ही अवग्रह-ईहा-आवाय धारणा रूप (देखो सूत्र १५) है क्योंकि (= हि)
=अन्यथा (तत शब्द न लाया जाय तो) पहिले मति स्मृति-संज्ञा-चिंता अभिनिबोध
=शब्दोंकरि वाच्य (=कहेजानेवाला) मतिज्ञान है ऐसा कहकर वा कथन करि
=इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तं (=इन्द्रिय और मन जनित) श्रुत ज्ञान है ऐसा संबंध होजाता
=तावद (श्रुतज्ञान) ही अवग्रह-ईहा-आवाय धारणा (सूत्र १५) रूप है ऐसा
=विरुद्ध वा प्रतिकूल सम्बन्ध वा प्रसंग हो जाता यदि इस सूत्रमें तद् शब्द न लाते)

सारांश—"इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तं" ऐसा सूत्र होता तो तद् शब्द का लाभ होजाता (उत्तर) आदिके दो मतिज्ञान और श्रुतज्ञान परोक्ष है (देखो सूत्र ११) मति-स्मृति-संज्ञा चिंता अभिनिबोध ये मतिके पर्यायशब्द हैं (सूत्र १३) अब यदि तत शब्द न लाते तो (यथा संख्य के नियम से) इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तं का संबंध श्रुतज्ञान (सो१ ?वां सूत्रमें है) उससे होकर यह अर्थ होजाता कि इन्द्रिय और अनिन्द्रिय जन्य श्रुतज्ञान है पश्चात्

देशविषयं कालान्तरावस्थायि च। तदन्त करणमिति चोच्यते। गुणदोषविचारस्मरणादिव्यापारेषु इन्द्रियानपेक्षत्वाच्चक्षुरादिवद् बहिरनुपलब्धेश्च अन्तर्गत करणमित्युच्यते॥ तदिति किमर्थम्?। मतिज्ञान निर्देशार्थम्॥ ननु च तदनन्तर अनन्तरस्य विधिर्वा भवति प्रतिषेधो वेति, तस्यैव ग्रहण भवति।

देशविषयं ॥ च कालान्तर	=स्थानवाला (और प्रतिनियत) विषयवाला और कालान्तरमें वा अन्य अन्य कालमें
अवस्थायि ॥ न तद् ॥	=अवस्थित रहनेवाला नहीं है अर्थात् मन चंचल है। यह (=तद्=अनिंद्रिय=मन)
अन्तःकरणम् ॥ इति च उच्यते	=अन्तःकरण वा अभ्यन्तर इन्द्रिय ऐसा भी (नाम) है।
गुण-दोष विचार-स्मरण-आदि-व्यापारेषु ॥ इन्द्रिय-	=गुण-दोषके विचारण और स्मृति आदि व्यवसाय वा उद्योगमें इन्द्रियोंकी
अन् अपेक्षत्वात् ॥ च चक्षुरादि-वत्	=अपेक्षा न होनेसे तथा (=च) नेत्रादिकके सदृश (मन अन्य मनुष्यों द्वारा)
बहिः अन् उपलब्धेः ॥ अन्तर्गतम् ॥ करणम् ॥	=बाहरसे न देखे जानेसे (=अनुपलब्धेः) वा न जानेजानेसे अन्तर्गत इन्द्रिय
अन्तःकरणम् ॥ इति उच्यते	=(वा) अंतःकरण वा मन ऐसा कहा गया है (ऐसे ईषत् अर्थ अनमें सम्भव है)
तद् ॥ इति किमर्थम् ॥ मतिज्ञान निर्देश	=(इस सूत्रमें) तद् ऐसा शब्द किस लिये है। (तत् शब्द) मतिज्ञानके कथनके
अर्थम् ॥ ननु च तद् अनन्तरम् ॥	=लिये है। और (=च) प्रश्न (=ननु)। यह (मतिज्ञान शब्द इस सूत्रके) लगता ही है (अर्थात् इस सूत्रके अत्यन्त समीप लगता ही मतिस्मृतिसंज्ञाचिन्ताभिनिबोध' इत्यादि सूत्र कह चुके हैं तिस सूत्रका मति शब्द इस सूत्रके लगता ही है जब एक सूत्र के पीछे दूसरा सूत्र आवे तो दूसरे सूत्रसे पहिले सूत्रकी)
अनन्तरस्य ॥ विधिः ॥ वा भवति प्रतिषेधः ॥	=अत्यन्तसमीपवर्ती (वस्तु) का विधान होता है वा निषेध ऐसा (परिभाषा सूत्र) है
तस्य ॥ एव ग्रहणम् ॥	=(अतः इस सूत्रमें बिना तत् शब्द लाये हुये) तिस (मतिज्ञान) का ही आदान
भवति	=होता है (इसलिये इस सूत्रमें तत् शब्द निरर्थक ही है)

इहार्थमुत्तरार्थं च तदित्युच्यते ॥ यन्मत्यादिपर्यायशब्दवाच्य ज्ञानं तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तं तदेवावग्रहेहा वायधारणा इति । इतरथा हि प्रथम मत्यादिशब्दवाच्य ज्ञानमित्युक्त्वा इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्त श्रुतम् । तदेवावग्रहेहावायधारणा इत्यनिष्टमभिसम्बध्येत ॥

इह ॥ अर्थम् ,॥ च ॥ उत्तर	=(उत्तर) यहांके लिये अर्थात् इस सूत्रके लिये और (=च) पश्चात् वा पिछले
अर्थम् ,॥ तद् ;॥ इति॥	=(सूत्र) के लिये (अर्थात कहे जाने वाले पंद्रहवां सूत्र के लिये) तद् (शब्द) है॥ ऐसे
उच्यते ॥ यद् ॥ मति आदि-पर्याय शब्द	=कहा गया है (कि) जो मति स्मृति संज्ञा चिंता अभिनिबोध समानार्थक शब्दोंकरि
वाच्यम् ,॥ ज्ञानम् ,॥ तद् ,॥ इन्द्रिय	=वाच्य (कहे जाने वाला) ज्ञान है सो (ज्ञान) इन्द्रिय
अनिन्द्रिय निमित्तम् ॥ तद् ,॥	=तथा अन्तःकरण जनित है (और) सो (मतिज्ञान)
एव ॥ अवग्रह-ईहा-आवाय-धारणा ,॥ इति॥	=ही अवग्रह-ईहा-आवाय धारणा रूप (देखो सूत्र १५) है क्योंकि (=हि)
इतरथा ॥ हि ॥ प्रथमं ,॥ मति-आदि	=अन्यथा (तद् शब्द न लाया जाय तो) पहिले मति स्मृति-संज्ञा-चिंता अभिनिबोध
शब्द वाच्यम् ,॥ ज्ञानम् ;॥ इति॥ उक्त्वा—	=शब्दोंकरि वाच्य (=कहेजानेवाला) मतिज्ञान है ऐसा कहकर वा कथन करि
इन्द्रिय-अनिन्द्रिय-निमित्तम् ,॥ श्रुतम् ;॥	=इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्त (=इन्द्रिय और मन जनित) श्रुत ज्ञान है ऐसा संबंध होजाता
तद्-एव॥ अवग्रह-ईहा आवाय-धारणाः ,॥ इति॥	=सोवह (श्रुतज्ञान) ही अवग्रह-ईहा-आवाय धारणा (सूत्र १५) रूप है ऐसा
अनिष्टम् ॥ अभिसम्बध्येत ॥	=विरुद्ध वा प्रतिकूल सम्बन्ध वा प्रसंग हो जाता यदि इस सूत्रमें तद् शब्द न लाते)

सारांश—"इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तं" ऐसा सूत्र होता तो वह शब्द का लाभ होजाता (उत्तर) आदिके दो मतिज्ञान और श्रुतज्ञान परोक्ष हैं (देखो सूत्र ११) मति-स्मृति संज्ञा चिंता अभिनिबोध ये मतिके पर्यायशब्द हैं (सूत्र १३) अब यदि तद् शब्द न लाते तो (यथा संख्य के नियम से) इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्त का संबंध श्रुतज्ञान सो १२वां सूत्रमें है) उससे होकर यह अर्थ होसकता कि इन्द्रिय और अनिन्द्रिय जन्य श्रुतज्ञान है पश्चात्

देशविषयं कालान्तरावस्थायि च। तदन्तःकरणमिति चोच्यते। गुणदोषविचारस्मरणादिव्यापारेषु इन्द्रियानपेक्षत्वाच्चक्षुरादिवद् बहिरनुपलब्धेश्च अन्तर्गतं करणमित्युच्यते॥ तदिति किमर्थम्? मतिज्ञाननिर्देशार्थम्॥ ननु च तदनन्तरम् अनन्तरस्य विधिर्वा भवति प्रतिषेधो वेति, तस्यैव ग्रहणं भवति।

देशविषय ,॥ न कालान्तर	=स्थानवाला (और प्रतिनियत) विषयवाला और कालान्तरमें या अन्य अन्य कालमें
अवस्थायि ,। न० तद् ॥	=अवस्थित रहनेवाला नहीं है अर्थात् मन चंचल है। वह (=तद्=अनिंद्रिय=मन)
अन्तःकरणम् ,॥ इति० च० उच्यते।	=अन्तःकरण या अभ्यन्तर इन्द्रिय ऐसा भी (नाम) है।
गुण-दोष विचार-स्मरण-आदि-व्यापारेषु ,। इन्द्रिय-	=गुण-दोषके विचारण और स्मृति आदि व्यवसाय या उद्योगमें इन्द्रियोंकी
अन् अपेक्षत्वात् ,॥ च० चक्षुरादि-वत्०	=अपेक्षा न होनेसे तथा (=च) नेत्रादिकके सदृश (मन अन्य मनुष्यों द्वारा)
बहिः० अन् उपलब्धेः, अन्तर्गतम्,॥ करणम् ;०	=बाहरसे न देखे जानेसे (=अनुपलब्धेः) या न जानेजानेसे अन्तर्गत इन्द्रिय
अन्तःकरणम् ,॥ इति उच्यते।	=(वा) अंतःकरण या मन ऐसा कहा गया है (ऐसे ईषद् अर्थ अनमें सम्भव है)
तद् ;॥ इति० किमर्थम्;॥ मतिज्ञान निर्देश	=(इस सूत्रमें) तद् ऐसा शब्द किस लिये है। (तद् शब्द) मतिज्ञानके कथनके
अर्थम् ;० ननु० च० तद् अनन्तरम् ,॥	=लिये है। और (=च) प्रश्न (=ननु)। वह (मतिज्ञान शब्द इस सूत्रके) लगता ही है (अर्थात् इस सूत्रके अत्यन्त समीप लगता ही मतिस्मृतिसञ्ज्ञाचिन्ताभिनिबोधः इत्यादि सूत्र कह चुके हैं तिस सूत्रका मति शब्द इस सूत्रके लगता ही है जब एक सूत्र के पीछे दूसरा सूत्र आवे तो दूसरे सूत्रसे पहिले सूत्रकी)
अनन्तरस्य;॥ विधिः।। वा० भवति। प्रतिषेधः।।	=अत्यन्तसमीपवर्ती (वस्तु) का विधान होता है या निषेध ऐसा (परिभाषा सूत्र) है
तस्य ,॥ एव० ग्रहणम् ,०	=(अतः इस सूत्रमें बिना तद् शब्द लाये हुये) तिस (मतिज्ञान) का ही आदान
भवति।	=होता है (इसलिये इस सूत्रमें तद् शब्द निरर्थक ही है)

विषयाविषयिसन्निपातसमयानन्तरमाद्यग्रहणमवग्रह । विषयाविषयिसन्निपाते सति दर्शनं भवति तदनन्तर-मर्थस्य ग्रहणमवग्रहः ।

जैसे नेत्र इन्द्रियके ग्रहणमें आया जो ये श्वेत है ॥ (२) बहुरि श्वेत रूप जाने हुये पदार्थ में विशेष जाननेकी आकांक्षा भो यह श्वेत है सो बकपंक्ति होना चाहिये अथवा श्वेत धुजा होना चाहिये इस प्रकार इच्छा होना सो ईहा मतिज्ञान है। ऐसे ही शब्दादिकोंमें अन्य इन्द्रियों द्वारा ईहा होती है ॥ (३) ईहाकरि जाने हुये पदार्थका विशेष निर्णय होनेंसे जैसा पदार्थ हो तिसमें तैसा ही निश्चय होना सो अवाय मतिज्ञान है ॥ जैसे बगुला (=बगला-बग-बक)की पंक्तिमें बगलोंकी पंक्तिहीकी जाननेरूप इच्छा थी परंतु ध्वजाका निषेध नहीं किया था ऐसा तो ईहा ज्ञान था। अब ऊंचा नीचा आवना पंखोंका हलावना इत्यादि क्रिया चिन्हकरि ऐसा निश्चय हुआ जो ये बक पंक्तिही है अन्य धुजादिक कुछ भी नहीं है ऐसा निश्चय ज्ञान अवाय है (४) अवायकरि निश्चय या निर्णय किया जो वस्तु उसका ऐसा दृढ़ज्ञान होना जो भिन्न भिन्न कालमें वा कालान्तरमें भूलना नहीं धुमकनी रहै उसको धारण ज्ञान या धारणा मतिज्ञान कहते हैं ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस सूत्रपर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दश हिंदी अनुवाद ॥

विषय-विषयिन्-	=विषय (शब्दरूपादि) अथवा इन्द्रियार्थ और विषयी वा विषयवाले (पांचइन्द्रिय और मन) तिनके
सन्निपात-समय-अनन्तरम् १।।।	=संबंध होनेके समयसे लगताही (=अनन्तर)
आद्य-ग्रहणम् १।।। अवग्रहः १।	=प्रथम ग्रहण अथवा जो पहिलेही ग्रहणमें आवे (सो) अवग्रह है (अर्थात्)
विषय-विषयि-	=(स्पर्श-रस-गंध-रूप-शब्द जे) विषय और विषयको ग्रहण करने वाले पांच इन्द्रिय और मन ि
सन्निपाते ।।। सति ।। दर्शनम् १।।।	=संबंध या संयोग होने पर (=सति) (किसी वस्तुके) सत्ता या होने मात्रका ग्रहण दर्शन
भवति T तद्-अन्तरम् १।।।	=होता है। उस (दर्शन)के लगता ही अथवा अत्यंत निकट (अनन्तर)
अर्थस्य ६। ग्रहणम् १।।। अवग्रहः १।	=पदार्थका ग्रहण सो अवग्रह है ॥

इस श्रुतकी अनुवृत्ति १५वें सूत्रमें जाकर इस१५वें सूत्रका अर्थ होजाता कि अवग्रह ईहा-अवाय-धारणारूप श्रुतज्ञान है, ऐसे अर्थ विरुद्ध हो जाता अत' तत् शब्द लाये हैं ॥

तत्[*] निज्ञात-उत्पत्ति निमित्तम् ।॥	=ऐसे (मतिज्ञानके) उत्पन्न होने का हेतु जानागया (परन्तु मतिज्ञानके)
अनिर्णीत-भेदम् ,॥ इति[*] तत्	=भेद या विधान नहीं जाने गये इस प्रकार (प्रश्न होने पर) उस (मतिज्ञान) के
भेद प्रतिपत्ति-अर्थम् ,॥ आह T	=भेदोंको जाननेके लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्

अवग्रहेहावायधारणा ॥ १५ ॥

पदार्थ	(पूर्वोक्त पांच इन्द्रिय और अनिन्द्रिय जनित मतिज्ञानके एक होने पर भी)
अवग्रह	=अवग्रह (पदार्थके सत्तामात्र जाननेके पीछे श्वेत कृष्णादि विशेष विकल्परूप ज्ञान)
ईहा	=ईहा (अवग्रह से जाने हुये पदार्थके विशेष जाननेकी आकांक्षा रूप ज्ञान)
अवाय-	=अवाय या अपाय (ईहासे जानी हुई वस्तुका अवधारणरूप वा निश्चयरूप ज्ञान)
धारणा' ॥	=धारणा (अवायसे जानेहुये पदार्थको अन्य कालमें न भूलना, सुध रखना (ये चार भेद) हैं

भावार्थ —जो इन्द्रिय और इन्द्रियके ग्रहण योग्य विषय के संयोग होते ही जो वस्तु के सत्तामात्र का ग्रहण सो दर्शन है जैसे दृष्टिके पड़ते ही वस्तुका प्रकाश मात्र निर्विकल्प ग्रहणमें आया सो चक्षुर्दर्शन है। ऐसेही कर्णादिक चार इन्द्रियोंके द्वारा सामान्य विकल्प रहित ग्रहण होय सो अचक्षुर्दर्शन है। और तिस (दर्शन) के लगता ही जो देखेहुये पदार्थ का वर्ण संस्थानादिक विशेष ग्रहण में आवै सो अवग्रह नामा मतिज्ञान है ॥

(१) दिगम्बर आम्नायके "सर्वार्थ तत्त्वार्थाधिगम सूत्रमें अवाय और अपाय' दोनों पाठ हैं॥ शेष पाठ दोनों आम्नायोंमें एक है अर्थ भी एक है॥

(२) ईहादिक ज्ञान बिना अवग्रह के नहीं हो सकते किन्तु अवग्रह पूर्वकही होते हैं इसलिये अवग्रह आदि चारों भेदोंमें सबसे पहिले अवग्रह का उल्लेख है अवाय और धारणा ईहा पूर्वक होते हैं इस लिये अवग्रहके पश्चात् ईहाका कथन है धारणा ज्ञान अवाय पूर्वक होता है इस लिये ईहाके पीछे अवायका कथन है। धारणा ज्ञान सबसे अन्तमें होता है इसलिये सबके अन्तमें धारणा ज्ञान रक्खागया है। इसप्रकार उत्पत्तिके क्रमकी अपेक्षा से अवग्रह आदिका क्रमसे उल्लेख है॥

विषयविषयिसन्निपातसमयानन्तरमाद्यग्रहणमवग्रह । विषयविषयिसन्निपाते सति दर्शनं भवति तदनन्तर मर्थस्य ग्रहणमवग्रहः ।

जैसे नेत्र इन्द्रियके ग्रहणमें आया जो ये श्वेत है ॥ (२) बहुरि श्वेत रूप जाने हुये पदार्थ में विशेष जाननेकी आकांक्षा जो यह श्वेत है सो बकपंक्ति होना चाहिये अथवा श्वेत ध्वजा होना चाहिये इस प्रकार इच्छा होना सो ईहा मतिज्ञान है। ऐसे ही शब्दादिकोंमें अन्य इन्द्रियों द्वारा ईहा होती है ॥ (३) ईहाकरि जाने हुये पदार्थका विशेष निर्णय होनेसे जैसा पदार्थ हो तिसमें तैसा ही निश्चय होना सो अवाय मतिज्ञान है ॥ जैसे बगुला (=बगला-बग-बक)की पंक्तिमें बगलोंकी पंक्तिहीकी जाननेरूप इच्छा थी परंतु ध्वजाका निषेध नहीं किया था ऐसा तो ईहा ज्ञान था। अब ऊंचा नीचा आवना पंखोंका हलावना इत्यादि क्रिया चिन्हकरि ऐसा निश्चय हुआ जो ये बक पंक्तिही है अन्य ध्वजादिक कुछ भी नहीं है ऐसा निश्चय ज्ञान अवाय है (४) अवायकरि निश्चय वा निर्णय किया जो वस्तु उसका ऐसा दृढ़ज्ञान होना जो भिन्न भिन्न कालमें वा कालान्तरमें भूलना नहीं सुमरनी रहै उसको धारण ज्ञान वा धारणा मतिज्ञान कहते हैं ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस सूत्रपर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दश हिंदी अनुवाद ॥

विषय-विषयिन्	=विषय (शब्दरूपादि) अथवा इन्द्रियार्थ और विषयी वा विषयवाले (पांचइन्द्रिय और मन) तिनके
सन्निपात-समय-अनन्तरम् १॥।	=संबंध होनेके समयसे लगताही (=अनन्तर)
आद्य-ग्रहणम् १॥। अवग्रहः १।	=प्रथम ग्रहण अथवा जो पहिलेही ग्रहणमें आवै (सो) अवग्रह है (अर्थात्)
विषय-विषयि-	=(स्पर्श-रस-गंध-रूप-शब्द जे) विषय और विषयको ग्रहण करने वाले पांच इन्द्रिय और मन ति
सन्निपाते ७॥। सति ७॥ दर्शनम् १॥।	=संबंध वा संयोग होने पर (=सति) (किसी वस्तुके) सत्ता वा होने मात्रका ग्रहण दर्शन
भवति T तद् अन्तरम् १॥।	=होता है। उस (दर्शन)के लगता ही अथवा अत्यंत निकट (अनन्तर)
अर्थस्य ६। ग्रहणम् १॥। अवग्रहः १।	=पदार्थका ग्रहण सो अवग्रह है ॥

यथा चक्षुषा शुक्लं रूपमिति ग्रहणमवग्रहः ॥ अवगृहीतेऽर्थे तद्विशेषाकाङ्क्षणमीहा । यथा-शुक्लं रूपं किं बलाका पताकेति ॥

भावार्थ — किसी पदार्थका इंद्रिय और मनके संबंध होने से उस वस्तुके होने या सत्ता मात्रको जानना सो दर्शन है। दर्शनके पश्चात् ही या लगता ही वस्तुका श्वेत अरुणादिरूप विशेषज्ञान सो अवग्रह नामा मतिज्ञान है

यथा चक्षुषा शुक्लम् रूपम् इति ग्रहणम् =जैसे नेत्रकरि श्वेतरूप इसप्रकार आदान वा ग्रहण

अवग्रहः ॥ अवग्रहे गृहीते अर्थे तद्विशेषाकाङ्क्षणम् ईहा ॥ =सो अवग्रह है। अवग्रहकरि ग्रहण किये हुये पदार्थ में उस पदार्थ के =अधिक वा विशेष (जानने) की अभिलाषा वा वांछा रूप ज्ञान सो ईहा है

यथा शुक्लम् रूपम् किम् बलाका पताका इति =जैसे यह श्वेत रूप क्या बक पंक्ती होना चाहिये (अथवा) ध्वजा।

---

(१) ईहा और संशय ज्ञानमें यह अन्तर है कि संशय ज्ञान तो दोय पक्षमें अनिश्चित ज्ञान है अप्रमाण है बहुरि ईहा एकही पक्षमें वांछारूप ज्ञान है जो बक पंक्ति है तो उसहीकी जाननेकी इच्छा है जो पताका है तो उसहीकी जाननेकी अभिलाषा है। क्योंकि संशय ज्ञानमें न जाने बगुलाकी पांती है न जाने पताका है ॥

१ ननु ईहा मानप्रमाणं भवितुमर्हति किं बलाका पताकेति उभयकोटीपरामर्शप्रत्ययत्वात्, संशयज्ञानवत् ॥ तथा च प्रमाणाः प्रामाण्यमिति न शोभितम्। हेतोरसिद्धेः। तस्या भवितव्यताप्रत्ययरूपत्वेन उभयकोटीपरामर्शप्रत्ययरूपताभावात्। किं बलाका पताकेति वचनं तु निरन्तरप्रश्नपदर्शनाप्युक्तम्। तथा च किं बलाकेयम् बलाकया भवितव्यमिति तात्पर्यम्। किं पताकेयम् च पताकया भवितव्यमिति तात्पर्यम् ॥ कथमस्य प्रतीतिरिति चेत् प्रकरणवशात् ज्ञानमार्गणायां मतिज्ञानव्याख्यानावसरे श्रीमद्भगवत्पुष्पदन्तभूतबलिभिरेवं निरूपितत्वात् ॥ यथाहि तत्प्रमाण अवग्रहेण इदं शुक्लमिति ज्ञातेऽर्थे विशेषस्य बलाकारूपस्य पताकारूपस्य वा यथावस्थितस्य आकांक्षा, बलाकया भवितव्यमिति भवितव्यताप्रत्ययरूपा बलाकायामेव संप्रत्ययात्मा ईहाख्यं द्वितीयं ज्ञानं भवेत् ॥ अथवा पताकायां विज्ञानमनस्य उत्पन्नमत्ता सम च पताकया भवितव्यमिति भवितव्यताप्रत्ययरूपा

आकांक्षा ईहानाम द्वितीयं ज्ञानं भवेद् ॥ एवमिन्द्रियमानस विषयेषु मनोविषये च अवग्रहगृहीते यथा वस्तिवस्य विशेषस्य आकांक्षारूपा ईहेति विज्ञेयम् । मतिज्ञानावरण क्षयोपशमस्य आवरणस्य भेदेन अवग्रहीतार्थांशेषु समवाय ॥ अस्मिन् सम्यग्ज्ञानप्रकरणे बलाका वा पताका वा इति संशयस्य बलाकया पताकया भवितव्यमिति विपर्ययस्य च मिथ्याज्ञानस्यावतारात् ॥

मनुष्य ईहा संशयज्ञानम् भवितुम् अर्हति — प्रश्न, ईहा संदेहज्ञान होना चाहिये या होना योग्य है । (भवितुम् हेत्वर्थमूल कृदन्त है)

किम् बलाका पताका इति उभयकोटीपरामर्श — क्योंकि, वक पंक्ति (या) ध्वजा ऐसा दोनों पक्ष का अवलम्बन करने वाले

प्रत्ययत्वात् । भवितव्यसंशय ज्ञानवत् — ज्ञान होने या प्रतीति होनेसे प्रगटकरि संशयज्ञान समान है ॥

तथा च कथम् अस्याः प्रामाण्यम् — इसपरभी (व्यापाद, अर्थात् दोनों पक्षमें होनेपरभी इस (ईहा) के प्रमाणका होना कैसे है

इति न संशयितव्यम् — ऐसा संदेह (आक्षेप करते हैं) न होना चाहिये । प्रश्नका भावार्थ यह है कि ईहाज्ञानको बक पंक्ति है या ध्वजा है ऐसा विचार होनेसे संशयज्ञान कहना चाहिये, उत्तर यह है कि दोनों पक्षमें विचार होनेपर भी ईहाको संशयज्ञान न कहना चाहिये ।

हेतो असिद्धेः — (क्योंकि) हेतु (=साधन) की सिद्धि नहीं होती तात्पर्य यह है कि ईहाज्ञानको संशयज्ञान बनाने के लिये जो हेतु "दो कोटि परामर्शी ज्ञान होनेसे" दिया है वह असिद्ध है, हेत्वाभास है ।

यस्या भवितव्यता-प्रत्यय रूपत्वेन — क्योंकि जिस (ईहा) के होनेकी (भवितव्यता) प्रतीति रूपपना से

उभय-कोटी परामर्शि प्रत्यय प्रत्ययत्वमात् — दोनों पक्ष अवलम्बी ज्ञानरूपका होना नहीं घटता है या नहीं बनता है ॥

किम् बलाका पताका वा इति वचनम् — क्या बगुला की पंक्ति है (या) ध्वजा है ऐसा वाक्य तो (=तु)

निदर्शनप्रदर्शन- अर्थं च उक्तम् — (ईहाके) जो उदाहरण (=निदर्शन) दिखलाने के लिये कहा गया है ॥

यथा चक्षुषा शुक्लं रूपमिति ग्रहणमवग्रहः ॥ अवगृहीतेऽर्थे तद्विशेषाकांक्षणमीहा । यथा-शुक्लं रूपं किं बलाका पताकेति ॥

भावार्थ— किसी पदार्थका इंद्रिय और मनके संबंध होने से उस वस्तुके होने या सत्ता मात्रको जानना सो दर्शन है। दर्शनके पश्चात् ही या लगता ही वस्तुका श्वेत अरुणादिरूप विशेषज्ञान सो अवग्रह नामा मतिज्ञान है

यथा ॥ चक्षुषा ॥ शुक्लम् ॥ रूपम् ॥ इति ग्रहणम् =जैसे नेत्रकरि श्वेतरूप इसप्रकार आदान या ग्रहण

अवग्रहः ॥ अवग्रहे गृहीते ॥ अर्थे ॥ तद् =सो अवग्रह है। अवग्रहकरि ग्रहण किये हुये पदार्थ में उस पदार्थ के

विशेष आकांक्षणम् ॥ ईहा ॥ =अधिक या विशेष (जानने) की अभिलाषा या वांछा रूप ज्ञान सो ईहा है

यथा ॥ शुक्लम् ॥ रूपम् किम् बलाका ॥ पताका ॥ इति =जैसे यह श्वेत रूप क्या बक श्रेणी होना चाहिये (अथवा) ध्वजा।

(१) ईहा और संशय ज्ञानमें यह अन्तर है कि संशय ज्ञान तो दोय पक्षमें अनिश्चित ज्ञान है अप्रमाण है बहुरि ईहा एकही पक्षमें वांछारूप ज्ञान है जो यह पंक्ति है तो उसहीकी जाननेकी इच्छा है या पताका है तो उसहीकी जाननेकी अभिलाषा है। क्योंकि संशय ज्ञानमें न जाने बगुलाकी पंक्ती है अथवा न जाने पताका है॥

१ ननु ईहा संशयज्ञानं भवितुमर्हति किं बलाका पताकेति उभयकोटीपरामर्शप्रत्ययत्वात्, स्थाणुपुरुषसंशयज्ञानवत् ॥ तथा च संशयस्याः प्रामाण्यमिति न निश्चितम्। इति चेत्। तथा भवितव्यताप्रत्ययरूपत्वेन उभयकोटिपरामर्शित्वाभावात्। किं बलाका पताका इति वचनं तु निर्दर्शनमात्रमुक्तम्। तथा च किं बलाकेयम् बलाकया भवितव्यमिति तात्पर्यम्। किं पताकेयम् च पताकया भवितव्यमिति तत्त्वम्॥ कथमेतत् प्रतीतिरिति चेत् प्रकरणादिना ज्ञानमार्गणायां मतिज्ञानव्याख्यानावसरे श्रीमद्भास्करनंदिसूरिभिरेवमेव निरूपितत्वात् ॥ यथाहि तद्ग्रन्थः अवग्रहेण गृहीतमिति ज्ञानेऽर्थे विशेषस्य बलाकारूपस्य पताकारूपस्य वा यथावस्थितस्य आकांक्षणं, बलाकया भवितव्यमिति भवितव्यताप्रत्ययरूपा सा ईहा। संशयज्ञानात् ईहायां द्वितीय ज्ञानभवत् ॥ अथवा पताकादौ विपर्ययमनस्य उत्पन्नमना अत्र च पताकया भवितव्यमिति भवितव्यताप्रत्ययरूपा

एवम् इन्द्रियान्तरविषयेषु ॥	—इस प्रकार अन्य (स्पर्शन रसन, घ्राण श्रोत्र) इन्द्रियों के विषयोंमें
मनस्-विषये ॥ च	—और (—च) मनिन्द्रिय विषयमें या अन्तः करण गोचर (वस्तु) में
अवग्रहगृहीते ॥ यथावस्थितस्य ॥	—अवग्रह ज्ञानसे ग्रहण किये हुये या जाने हुये (पदार्थ) में यथा अवस्थित (पदार्थ) के
विशेषस्य आकांक्षारूपा॥ ईहा॥ इति निर्णेतव्यम्॥॥	—अधिक (जानने) की वाञ्छारूप ईहा ज्ञान है इस प्रकार निर्णय किया जाना चाहिये (या)
मतिज्ञान-आवरणक्षयोपशमस्य ॥ तारतम्यभेदेन ।	—मतिज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमके न्यूनाधिक्य भेदकरि
अवग्रह ईहा-ज्ञानयोः ॥॥ भेदसंभवात् ॥ अस्मिन् ॥	—अवग्रह ईहा ज्ञानोंकि भेद संभव है इस
सम्यग्ज्ञानप्रकरणे ॥ बलाका ॥॥ वा पताका ॥	—सुज्ञानके अधिकार में बगुलोंकी पांती है अथवा ध्वजा है
वा इति संशयस्य ॥ च बलाकायाम् ॥	—ऐसे संदेह की तथा बक श्रेणी में
पताकया ॥ भवितव्यम् ॥॥ इति विपर्ययस्य ॥॥	—पताका होनी चाहिये ऐसे विपर्यय
मिथ्याज्ञानस्य ॥॥ अन्-अवतरात् ॥॥	—मिथ्या ज्ञानका अवतार (प्रसंग) नहीं होसक्ता ॥ प्रश्न और उत्तरका सारांश यह है कि ध्वजा है या बक पंक्ति है-यह तो संशय ज्ञान हुआ ॥ उत्तर में कहते हैं

कि ईहा ज्ञान के दो उदाहरण दिये हैं ईहाज्ञानवाला उनको देखकर यह नहीं कहता है कि ध्वजा है या बक पंक्ति है यह यह कहता है या विचारता है कि यह श्वेत वस्तु ध्वजा होना चाहिये, बक पंक्ति होना चाहिये ॥ उसका ज्ञान दो ओर नहीं जाता है कि न जाने ध्वजा है कि न जाने बक पंक्ति है उक्त दो ओर जाने वाले ज्ञानको संशय ज्ञान कहते हैं ध्वजा होना चाहिए, बक पंक्ति होना चाहिये ऐसी इच्छाको ईहा कहते हैं (२) दूसरी बात यह है कि यहां सम्यग्मतिज्ञान का प्रकरण है और ईहा सम्यग्ज्ञान का भेद है,संशय जो मिथ्याज्ञान है उसका अवतरण का प्रसंग नहीं आता ॥

(८) स्मरण रहे कि अग्रिम पृष्ठ १६८ में अपाय और अवाय दोनों प्रकार के पाठोंकि मानने में कोई दोष नहीं क्योंकि 'यह पुरुष दक्षिणी नहीं है' जिस समय ऐसा अपाय निषेध किया जाता है उससमय 'उत्तरी है' इस अर्थसे अवाय ज्ञानसे ग्रहण होता है और जिस समय 'यह उत्तरी है' इस रूपसे पदार्थका ग्रहण होता है उस समय 'यह दक्षिणी नहीं है' इस पदार्थ का निषेध हो जाता है इस लिये अवाय और अपाय यह दोनों प्रकार का पाठ ठीक है ॥ और यह भी स्मरण रहे कि जिस पदार्थ को जाना जाता है वह विषय है और जिसके द्वारा जाना जाता है वह विषयी कहा जाता है इन्द्रियोंके द्वारा पदार्थ जाने जाते हैं इस लिये यहां विषयी शब्दसे इन्द्रियों का ग्रहण है और विषय का अर्थ पद पद्‌ सार्थक है ॥

तगा • य • विम ,।। रस्या ॥ इति • अत्र • दसाकया ।।।
मवितव्यम ,।।। इति • नान्यम ,।।; य • किम ।।।
पताका ,। इति • अत्र • पतकया ।।। मविसव्यम् ।।।
इति • सारयम ,।।

नगम • पग ।। मा गीति ,। इति • सेस •
प्रकपनाजात्व ।८,।। मागणायाम् । मतिज्ञान-
व्याख्यान मवसरे । श्रीमद् अमयसूरि-श्येँ ।
नता • एव • निरूपित वान् ।।। यथाहि • तद्-
मयः ,। अनमदर्वे ।। इह य ,।।। दवेतम् ।।। इति •
जाने । मर्थे ,। विशेषस्य ।। बलाकारूपस्य ।।
वा • पताकारूपस्य । यथा२ मवस्थितस्य ।। आकांक्षा ।।
ध्वाकया ।। मवितव्यम ,।।। इति• मवितव्यता ।।।
प्रत्ययरूपा ,। बलाकायाम् ,। एव • सजायमाना ,।

हि-मारूयम ,।।। द्वितीयम् ।।। नामम् ,।।। मवेत् T
अथवा • पताकारूपम ,।।। विषयम् ।। आलम्ब्य+
उत्पन्ना ,। मनया ।। पताकया ।। मवितव्यम् ।।। इति •
मवितव्यता-प्रत्ययरूपा ।। आकांक्षा ,।।
ईहाया ।।। द्वितीयम् ।।। नामम् ।।। मवेत् T

= जैसा कि (= तथा च) क्या बगुलों की पंक्ति ऐसा है यहां बकपंक्ति
= अवश्य होनी चाहिये (= मवितव्यम्) ऐसा आशय है। और (= च) क्या
= ध्वजा ऐसा है यहां पताका अवश्य होनी चाहिये।
= ऐसा आशय है भावार्थ जो बगुलों की पंक्ति है तो उसहीकी जानने की इच्छा
है जो पताकाहै तो उसहीकी जानकी चाहना है ऐसा एकपक्ष ग्रहण ईहाज्ञानमें है।
= कसे यह विश्वास हो (कि ईहा ज्ञान एकपक्ष ग्रहण करता है) ऐसा संदेह है॥
=(उत्तर) प्ररूपणा प्रथमें ज्ञान मागणा विषै मतिज्ञान के
= वर्णन के प्रसंग में श्रीमद् अभयसूरि ग्रंथ द्वारा
= वैसा ही व्याख्यान वा वर्णन किये जाने से (प्रतीत होती है) जैसा कि यह
= शास्त्र है। अवग्रहज्ञान करि यह शुक्ल है ऐसा
= विदित या जानलेने पर अर्थमें या स्वरूपमें विशेष बक श्रेणी रूपकी
= अथवा (विशेष) ध्वजा रूप की अवस्था के अनुसार (जानने की) इच्छा
= सो बलाका होनी चाहिये। ऐसी (एक पक्ष) की संभावनात्मक
= प्रतीतिरूप है, बगुला की पांती होने पर ही उत्पद्यमान (= संजायमाना) या
उपजने वाला
= ईहा नाम (= आख्या) दूसरा ज्ञान होता है॥
= अथवा ध्वजारूप विषय को ग्रहण करि या अवलम्ब करि
= संजायमान यह पताका होनी चाहिये ऐसी
= संभावना की प्रतीतिरूप अभिलाषा (= आकांक्षा) है
= सो ईहा नामक दूसरा ज्ञान है॥

एवम् इन्द्रियान्तरविषयेषु	—इस प्रकार अन्य (स्पर्शन, रसन, घ्राण, श्रोत्र) इन्द्रियों के विषयोंमें
मनस्-विषये । च	—और (—च) अनिन्द्रिय विषयमें या अन्तः करण गोचर (वस्तु) में
अवग्रहगृहीते । यथावस्थितस्य ॥	—अवग्रह ज्ञानसे ग्रहण किये हुये या जाने हुये (पदार्थ) में यथा अवस्थित (पदार्थ) के
विशेषस्य॥आकांक्षारूपा॥ ईहा॥ इति निश्चेतव्यम्॥	—अधिक (जानने) की वाञ्छारूप ईहा ज्ञान है इस प्रकार निर्णय किया जाना चाहिये (वा)
मतिज्ञान-आवरणक्षयोपशमस्य । तारतम्यभेदेन ।	—मतिज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमके न्यूनाधिक्य भेदकरि
अवग्रह-ईहा-ज्ञानयो ॥ भेदसंभवात् ॥ अस्मिन्	—अवग्रह ईहा ज्ञानोंके भेद संभव हैं इस
सम्यग्ज्ञानप्रकरणे ॥ बलाका ॥ वा पताका ॥	—सुज्ञानके अधिकार में बगुलोंकी पाँती है अथवा ध्वजा है
वा इति संशयस्य । च वक्ष्यमाणस्य ॥	—ऐसे संदेह की तथा वक्ष्यमाण में
पताकया ॥ भवितव्यम् ॥ इति विपर्ययस्य ॥	—पताका होनी चाहिये ऐसे विपर्यय
मिथ्याज्ञानस्य ॥ अन्-अवतरात् ॥	—मिथ्या ज्ञानका अवतार (प्रसंग) नहीं होसक्ता ॥ प्रश्न और उत्तरका सारांश यह है कि ध्वजा है या बक पंक्ति है-यह तो संशय ज्ञान हुआ ॥ उत्तर में कहते हैं

कि ईहा ज्ञान के दो उदाहरण दिये हैं ईहाज्ञानवाला उसको देखकर यह नहीं कहता है कि ध्वजा है या बक पंक्ति है वह यह कहता है या विचारता है कि यह श्वेत वस्तु ध्वजा होना चाहिये बक पंक्ति होना चाहिये । उसका ज्ञान दो ओर नहीं जाता है कि न जाने ध्वजा है कि न जाने बक पंक्ति है उभय दो ओर जाने वाले ज्ञानको संशय ज्ञान कहते हैं ध्वजा होना चाहिए, बक पंक्ति होना चाहिये ऐसी इच्छाको ईहा कहते हैं (२) दूसरी बात यह है कि यहां सम्यग्मतिज्ञान का प्रकरण है और ईहा सम्यग्ज्ञान का भेद है,संशय जो मिथ्याज्ञान है उसका अवतरण का प्रसंग नहीं आता ॥

(२) स्मरण रहे कि अग्रिम पृष्ठ १६८ में अपाय और अवाय दोनों प्रकार के पाठोंके मानने में कोई दोष नहीं क्योंकि 'यह पुरुष दक्षिणी नहीं है' जिस समय ऐसा अपाय निषेध किया जाता है उसममय 'उत्तरी है' इस अर्थसे अवाय ज्ञानसे ग्रहण होता है और जिस समय 'यह उत्तरी है' इस रूपसे पदार्थका ग्रहण होता है उस समय 'यह दक्षिणी नहीं है' इस पदार्थ का निषेध हो जाता है इस लिये अवाय और अपाय यह दोनों प्रकार का पाठ इष्ट है ॥ और यह भी स्मरण रहै कि जिस पदार्थ को जाना जाता है वह विषय है और जिसके द्वारा जाना जाता है वह विषयी कहा जाता है इन्द्रियोंके द्वारा पदार्थ जाने जाते हैं इस लिये यहां विषयी शब्दसे इन्द्रियों का ग्रहण है और विषय का अर्थ घट पट आदिक हैं ॥

कालान्तरे-ऽविस्मरणकारणं धारणा । यथा-सैवेयं बलाका पूर्वाह्णे यामहमद्राक्षमिति ॥ एषामवग्रहादीनामुपन्यासक्रमः उत्पत्तिक्रमतः कृतः ॥

विशेष निर्ज्ञानात् ॥	=(ईहासे जाने हुये पदार्थका) अधिक निर्णय (होने) से
याथात्म्य अवगमनम् ॥ अपायः ॥	=वास्तविक या ज्योंका त्यों स्वरूपका (=याथात्म्य) निश्चित ज्ञान सो अवाय है ।
उत्पतन निपतन-पक्षविक्षेप आदिभिः ॥	=ऊंचा चढ़ना (=उत्पतन) नीचे आवना (=निपतन) पंख फैलना हिलावना आदिसे
बलाका ॥ एव० इयम् ॥ न० पताका ॥ इति०	=बगुलोंकी पांतीही (=एव) यह है पताका नहीं है ॥
अथ० एतस्य ॥ काल-अन्तरे० अविस्मरण-कारणम् ॥ धारणा ॥	=उपरान्त, पश्चात् या पीछे (=अथ) इस (अवाय ज्ञान) के अन्यकालमें न भूलनेका =कारण धारणा ज्ञान है अर्थात् अपाय ज्ञानकरि निश्चय की हुई वस्तुका ऐसा दृढ़ ज्ञान होय जो उस वस्तुको अन्य अन्य कालमें भूलने न देवे सो धारणा है
यथा० सा ॥ एव० इयम् ॥ बलाका ॥ याम् ॥ पूर्वाह्णे ॥ अहम् , अद्राक्षम् ॥ इति०	=जैसे वो (=सा) ही (=एव) यह (=इयम्) बक पंक्ति है जिसको (=याम् ॥) =प्रातःकालमें या प्रभातमें मैंने देखा था । (इसप्रत्यभिज्ञानका कारण धारणा है)॥
एषाम् ॥ अवग्रह आदीनाम् ॥ उपन्यास-क्रमः ॥	=इन अवग्रह आदिकोंका कहनेका (=उपन्यास) अनुक्रम (इनके)
उत्पत्ति क्रमतः० कृतः ॥	=उत्पत्तिके क्रमानुसार किया गया है अर्थात् जिस जिस क्रमसे ये सूत्रमें वर्णित हैं उसी उसी क्रमसे ये जीव के उत्पन्न होते हैं ॥ इस सबका भावार्थ यह है कि

जो वस्तु सामान्य विशेष स्वरूप है उस (वस्तु) के और इन्द्रियों के संबंध होने पर प्रथम तो सामान्य अवलोकनरूप निराकार दर्शन होता है । पश्चात् उसी (वस्तु) का सामान्य विशेष रूप साकार ग्रहण होता है उस को अवग्रह कहते हैं । तिस के पीछे उक्त वस्तुमें विशेष बहुत हैं उन विशेषोंमें से किसी एक विशेषरूप जाननकी अभिलाषारूप जो ज्ञान प्रवर्तता है जो यह अमुक विशेष होना चाहिये तिसको ईहा कहते हैं । पश्चात् उसी विशेषकी क्रिया चिन्ह देखकर यह निश्चय हुआ कि जो यह अभिलाषामें ग्रहण हुई थी सो ही है । सो अपाय है । पश्चात् उस विशेष में ऐसा ज्ञान दृढ़ हुआ जो अन्य काल में उसका नहीं भूले उस को धारणा कहिये ॥ (१) अवाय या अपायके संबन्धमें देखो टिप्पणी (१) पृष्ठ १६७।

उक्तानामवग्रहादीना प्रभेदप्रतिपत्त्यर्थमाह ॥

बहुबहुविधक्षिप्राऽनि:सृताऽनुक्तध्रुवाणां सेतराणाम् ॥ १६ ॥

उक्तानाम् । अवग्रह-आदीनाम् ।। प्रभेद =वर्णित अवग्रह, ईहा, अवाय धारणा के (आदीनाम्) विशेष भेदोंकी
प्रतिपत्ति अर्थम् ।।। आह = प्राप्ति (-प्रतिपत्ति-यह अर्थ पं॰जयचन्दजीने किया है)के लिये (अगले सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्— बहु बहुविधं क्षिप्राऽनि-सृताऽनुक्तध्रुवाणां सेतराणाम् ॥ १६ ॥

पदच्छेद— बहु-बहुविध-क्षिप्र-अनि:सृत-अनुक्त-ध्रुवाणाम् सेतराणाम्
(अवग्रह-ईहा अवाय-धारणा भवन्ति एकश: एवे इन्द्रिय अनिन्द्रिये प्रत्येकं प्रादुर्भाव्यन्ते) ॥

(१) इस सूत्र का दोनों श्वेताम्बर और दिगम्बर आम्नायों में एक अर्थ है। श्वेताम्बर सम्प्रदाय में इस सूत्रका पाठ ऐसे है कि 'बहुबहुविधक्षिप्रानिश्रितानुक्तध्रुवाणां सेतराणाम् ॥ अर्थात् निसृत के स्थान में निश्रित' है ऽ ऐसे दो स्थानों में चिन्ह नहीं है शेष पाठ एक है।
(२) अधिकतम पाठों में हमारे यहां ऽ ऐसा चिन्ह नहीं है। यह चिन्ह इस बात का द्योतक है कि 'क्षिप्रा' और "अनिसृता" में से केवल लघु अकार ग्रहण किया है॥ (देखो पृष्ठ ३५०)
(३) विसर्ग के पश्चात् श-ष-स अथवा स् आवे तो इस विसर्गका विसर्गही बना रहता है अथवा यह विसर्ग श ष-स् में यथासम्भव परिवर्तन होजाता है अत: हमारे यहां कहीं कहीं 'नि: सृत' पाठ है और कहीं कहीं 'निस्सृत' भी पाठ है ॥ (इस अनुवाद के पृष्ठ ४८ में भी यही नियमदिया है)
(४) किसी किसी प्रति में हमारे यहां 'सेतराणां' भी पाठ है यह यद्यपि पाणिनि-शाकटायन और जैनेन्द्र प्रक्रिया के रचयिता के मतानुसार अशुद्ध है परन्तु कातंत्ररूपमाला व्याकरण के अनुसार शुद्ध है जैसा कि हम इस पुस्तक के आरम्भ में सिद्ध कर चुके हैं ॥ (देखो टिप्पणी पृष्ठ ५ और ६)
(५) यहां जो बहु-बहुविध-क्षिप्र-अनि:सृत-अनुक्त ध्रुव शब्दों में षष्ठी विभक्ति है सो द्वन्द्व समासके होनेसे उनके शब्द ध्रुव में और उनके प्रतिपक्षी इतर शब्द में समाई गई है अर्थात् बहुका, बहुविधका, क्षिप्रका अनि:सृतका, अनुक्तका ध्रुवका (अवग्रह-ईहा-अवाय और धारणा होता) है और इनके प्रतिपक्षीयों अल्पका अल्पविधका अक्षिप्रका-नि:सृतका-उक्तका-अध्रुवका (अवग्रह-ईहा-अवाय धारणा होता है) ॥ इस सूत्रमें 'बहु' शब्द (१) संख्या, गणना या गिनती के अर्थ में है जैसे एक दो-तीन-चार-पांच बहु इत्यादि बहुत ये तो संख्या हुई दूसरे विपुल अथवा समूहपना के अर्थमें आया है जैसे भात बहुत है दाल बहुत है यहां विपुलताही कही। सूत्रमें बहु शब्द दोनों अर्थों में है।
(६) बहुविध = बहुत प्रकार (के पदार्थों) का, अनेक प्रकार (की वस्तुओं) का, नानाभांति (की द्रव्यों) का जैसे सेनामें हस्ती, घोड़े, ऊंट, बैल, भैंसा इत्यादिक अनेक जातिका ग्रहण करनेवाला बहुविध है ॥

कालान्तरे-विस्मरणकारण धारणा । यथा-सैवेय बलाका पूर्वाह्णे यामहमद्राक्षमिति ॥ एषामवग्रहादीनामुपन्यासक्रम उत्पत्तिक्रमत कृत ॥

विशेष निर्ज्ञानात् ॥	=(ईहासे जाने हुये पदार्थका) अधिक निर्णय (होने) से
याथात्म्य अवगमनम् ॥ अवाय ॥	=वास्तविक या ज्योंका त्यों स्वरूपका (=याथात्म्य) निश्चित ज्ञान सो अवाय है ।
उत्पतन निपतन-पक्षविक्षेप आदिभि ॥	=ऊंचा चढ़ना (=उत्पतन) नीचे आवना (=निपतन) पंख फैंकना हिलावना आदिसे
बलाका ॥ एव॰ इयम् ॥ न॰ पताका ॥ इति॰	=बगुलोंकी पांतीही (=एव) यह है पताका नहीं है ॥
अथ॰ एतस्य ॥ काल-अन्तरे॰ अविस्मरण-	=उपरान्त, पश्चात् या पीछे (=अथ) इस (अवाय ज्ञान) के अन्यकालमें न भूलनेका
कारणम् ॥ धारणा ॥	=कारण धारणा ज्ञान है अर्थात् अवाय ज्ञानकरि निश्चय की हुई वस्तुका ऐसा दृढ़ ज्ञान होय जो उस वस्तुको अन्य अन्य कालमें भूलने न देवे सो धारणा है
यथा॰ सा ॥ एव॰ इयम् ॥ बलाका ॥ याम् ॥	=जैसे यो (=सा) ही (=एव) यह (=इयम्) बक पंक्ति है जिसको (=याम् ॥)
पूर्वाह्णे ॥ अहम् । अद्राक्षम् । इति॰	=प्रात:कालमें या प्रभातमें मैंने देखा था । (इसप्रत्यभिज्ञानका कारण धारणा है)॥
एषाम् ॥ अवग्रह आदीनाम् ॥ उपन्यास-क्रम ॥	=इन अवग्रह आदिकोंका कहनेका (=उपन्यास) अनुक्रम (इनके)
उत्पत्ति क्रमत॰ कृत ॥	=उत्पत्तिके क्रमानुसार किया गया है अर्थात् जिस जिस क्रमसे ये सूत्रमें वर्णित हैं उसी उसी क्रमसे ये जीव के उत्पन्न होते हैं ॥ इस सबका भावार्थ यह है कि

जो वस्तु सामान्य विशेष स्वरूप है उस (वस्तु) के और इन्द्रियों के संबंध होने पर प्रथम तो सामान्य अवलोकनरूप निराकार दर्शन होता है । पश्चात् उसी (वस्तु) का सामान्य विशेष रूप साकार ग्रहण होता है उस को अवग्रह कहते हैं । तिस के पीछे उक्त वस्तुमें विशेष बहुत हैं उन विशेषोंमें से किसी एक विशेषरूप जाननकी अभिलाषारूप जो ज्ञान प्रवर्तता है सो यह अमुक विशेष होना चाहिये तिसको ईहा कहते हैं । पश्चात् उसी विशेषकी क्रिया चिन्ह देखकर यह निश्चय हुआ कि जो यह अभिलाषामें ग्रहण हुई थी सो ही है । सो अवाय है । पश्चात् उस विशेष में ऐसा ज्ञान दृढ़ हुआ जो अन्य काल में उसका नहीं भूले उस को धारणा कहिये ॥ (१) अवाय या अपायके संबन्ध में देखो टिप्पणी (१) पृष्ठ १६७।

उक्तानामवग्रहादीना प्रभेदप्रतिपत्यर्थमाह ॥

बहुबहुविधक्षिप्राऽनिसृताऽनुक्तध्रुवाणा सेतराणाम् ॥ १६ ॥

उक्तानाम् ᵍ। अवग्रह आदीनाम् ᵢ। प्रभेद =वर्णित अवग्रह, ईहा, अवाय धारणा के (आदीनाम्) विशेष भेदोंकी
प्रतिपत्ति-अर्थम् ᵢᵢᵢ आह ᵀ =प्राप्ति (-प्रतिपत्ति-यह अर्थ पं•जयचंदजीने किया है)के लिये (अगले सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्— बहु बहुविधं क्षिप्राऽनि सृताऽनुक्तध्रुवाणां सेतराणाम् ॥ १६ ॥

पदच्छेद— बहु-बहुविध-क्षिप्र-अनिःसृत-अनुक्त ध्रुवाणाम् सेतराणाम्
(अवग्रह-ईहा-अवाय-धारणा भवन्ति एतेषां एते इन्द्रिय अनिन्द्रिये प्रत्येकं प्रादुर्भाव्यन्ते) ॥

(१) इस सूत्र का दोनों श्वेताम्बर और दिगम्बर आम्नायों में एक अर्थ है। श्वेताम्बर सम्प्रदाय में इस सूत्रका पाठ ऐसे है कि 'बहुबहुविधक्षिप्रानिश्रितानुक्तध्रुवाणां सेतराणाम् ॥ अर्थात् निसृत के स्थान में निश्रित' है ऽ ऐसे दो स्थानों में चिन्ह नहीं है शेष पाठ एक है।

(२) अधिकतम पाठों में हमारे यहां ऽ ऐसा चिन्ह नहीं है। यह चिन्ह इस बात का द्योतक है कि 'क्षिप्रा' और "अनिसृता" में से केवल लघु अकार ग्रहण किया है॥ (देखो पृष्ठ २५०)

(३) विसर्ग के पश्चात् श्-ष अथवा स् आवे तो इस विसर्गका विसर्गही बना रहता है अथवा यह विसर्ग श् ष्-स् में यथासम्भव परिवर्तन होजाता है अत' हमारे यहां कहीं कहीं 'निः सृत' पाठ है और कहीं कहीं 'निस्सृत' भी पाठ है॥ (इस अनुवाद के पृष्ठ ५८ में भी यही नियमदिया है)

(४) किसी किसी प्रति में हमारे यहां 'सेतराणां' भी पाठ है वह प्रायुस पाणिनि-शाकटायन और जैनेन्द्र प्रक्रिया के रचयिता के मतानुसार अशुद्ध है परन्तु कातंत्ररूपमाला व्याकरण के अनुसार शुद्ध है जैसा कि हम इस पुस्तक के आरम्भ में सिद्ध कर चुके हैं॥ (देखो टिप्पणी पृष्ठ ५ और ६)

(५) यहां छहो बहु-बहुविध-क्षिप्र अनिःसृत-अनुक्त ध्रुव शब्दों में षष्ठी विभक्ति है सो द्वन्द्व समासके होनेसे अतके शब्द ध्रुव में और उनके प्रतिपक्षी इतर शब्द में लगाई गई है अर्थात् बहुका, बहुविधका, क्षिप्रका अनिःसृतका, अनुक्तका, ध्रुवका (अवग्रह-ईहा-अवाय और धारणा होता) है और इनके प्रतिपक्षीयों अल्पका अल्पविधका-अक्षिप्रका-निःसृतका उक्तका-अध्रुवका (अवग्रह-ईहा-अवाय धारणा होता है)॥ इस सूत्रमें 'बहु' शब्द (१) संख्या, गणना या गिनती के अर्थ में है जैसे एक-दो-तीन-चार-पांच बहु इत्यादि बहुत ये तो संख्या हुई दूसरे विपुल अथवा समूहपना के अर्थमें आया है जैसे भात बहुत है दाल बहुत है यहां विपुलताही कहीं। सूत्रमें बहु शब्द दोनों अर्थों में है॥

(६) बहुविध'—बहुत प्रकार (के पदार्थों) का, अनेक प्रकार (की वस्तुओं) का, नानाभांति (की द्रव्यों) का जैसे सेनामें हस्ती, घोड़े, ऊंट, बैल, भैंसा इत्यादिक अनेक जातिका ग्रहण करनेवाला बहुविध है॥

बहु बहुविध =(१) अनेक (पदार्थों) का अथवा ढेर (पदार्थ) का (२) अनेक प्रकार के या नाना भांति के (पदार्थों) का,

क्षिप्र अनिःसृत =(३) शीघ्र गमन करते हुये (पदार्थ) का (=क्षिप्रस्य) (४) छिपे हुये (पदार्थ) का या अल्पभाग दीखते हुये (पदार्थ) का

अनुक्त (=अन् उक्त)- =(५) बिना कहे हुये (अभिप्राय से ही) (पदार्थ) का या वचनसे सुने बिना (अभिप्राय मे ही पदार्थ) का

ध्रुवाणाम् ।। =(६) स्थिर (पदार्थों) का, निश्चल (पदार्थों) का, अथवा बहुत काल तक जितनाका तितना निश्चलरूप (पदार्थों) का

सेतराणाम् ।। =इन छहोंसे विरुद्धोंके प्रतिपक्षीयोंके या विपरीतों के सहित अर्थात (७) एक पदार्थका या अल्प (पदार्थ) का (८) एक प्रकार के (पदार्थों) का (९) अक्षिप्रका या मंद गमन करते हुए (पदार्थ) का (१०) निःसृत का या समस्त बाह्य निकले हुये (पदार्थ) का (११) उक्त पदार्थ का, कहे हुये (पदार्थ) का, या शब्द सुनकरि के (पदार्थ) का (१२) अध्रुवका, अस्थिर (पदार्थ) का, चलायमान (पदार्थ) का, अथवा क्षणमात्र स्थिर रहने वाले (बिजली सदृश) का-इन बारहों में से—

प्रत्येक अवग्रह ईहा अवाय =प्रत्येकके या भिन्न भिन्नके या पृथक् पृथकके (उक्त बारह प्रकारके पदार्थोंके) अवग्रह और ईहा और आवाय (=अवाय)

धारणा ।। मतिज्ञान ।। =और धारणा होते हैं और (इन अड़तालीस में से)

प्रत्येक ।इन्द्रिय अनिन्द्रिय ।।=प्रत्येक स्पर्शन-रसन घ्राण चक्षु-श्रोत्र और ईषत् इन्द्रिय (मन, अनिन्द्रिय) द्वारा

प्रादुर्भाव्यन्ते =(समुदाय होकर दोसो अठासी मति ज्ञानके भेद) प्रगट किये जाते हैं या प्रकाश किये जाते हैं कि

(१) स्पार्शन (अथवा स्पर्शनइन्द्रियजन्य) बहु पदार्थ (=अर्थ) का अवग्रहरूप मतिज्ञान

(२) स्पार्शन अल्पपदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (३) स्पार्शन बहुविध पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान

(४) स्पार्शन अल्पविध पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (५) स्पार्शन क्षिप्र पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान

(६) स्पार्शन अक्षिप्र पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (७) स्पार्शन अनिःसृत पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान

(८) स्पार्शन निःसृत पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (९ स्पार्शन अनुक्त पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान

(१०) स्पार्शन उक्त पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (११) स्पार्शन ध्रुव पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान

(१२) स्पार्शन अध्रुव पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान।।

(१३) रासन बहु पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान	(१४) रासन अल्प पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(१५) रासन बहुविध पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान	(१६) रासन अल्पविध पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(१७) रासन क्षिप्र पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान	(१८) रासन अक्षिप्र पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(१९) रासन अनिःसृत पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान	(२०) रासन निःसृत पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२१) रासन अनुक्त पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान	(२२) रासन उक्त पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२३) रासन ध्रुव पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान	(२४) रासन अध्रुव पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२५) घ्राणज बहु पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान	(२६) घ्राणज अल्प पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२७) घ्राणज बहुविध पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान	(२८) घ्राणज अल्पविध पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२९) घ्राणज क्षिप्र पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान	(३०) घ्राणज अक्षिप्र पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(३१) घ्राणज अनिःसृत पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान	(३२) घ्राणज निःसृत पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(३३) घ्राणज अनुक्त पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान	(३४) घ्राणज उक्त पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(३५) घ्राणज ध्रुव पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान	(३६) घ्राणज अध्रुव पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(३७) चाक्षुष बहु पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान	(३८) चाक्षुष अल्प पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(३९) चाक्षुष बहुविध पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान	(४०) चाक्षुष अल्पविध पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(४१) चाक्षुष क्षिप्र पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान	(४२) चाक्षुष अक्षिप्र पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(४३) चाक्षुष अनिःसृत पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान	(४४) चाक्षुष निःसृत पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(४५) चाक्षुष अनुक्त पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान	(४६) चाक्षुष उक्त पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(४७) चाक्षुष ध्रुव पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान	(४८) चाक्षुष अध्रुव पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान

(१) तेरह भेदसे चौबीस भेद तक 'रासन' शब्दके स्थानमें 'रसनेन्द्रिय जन्य (बहु पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान) ऐसा भी वाक्य लासक्ते हैं इसी प्रकार पचीस भेदसे छत्तीस तक और सैंतीससे अड़तालीस तक 'घ्राणज' के स्थानमें घ्राणेन्द्रियजन्य और 'चाक्षुष' के स्थानमें चक्षुरिन्द्रियजन्य लासक्ते हैं॥

बहु बहुविध =(१) अनेक (पदार्थों) का अथवा ढेर (पदार्थ) का (२) अनेक प्रकार के वा नाना भांति के (पदार्थों) का,
क्षिप्र-अनिःसृत =(३) शीघ्र गमन करते हुये (पदार्थ) का (=क्षिप्रस्य) (४) छिपे हुये (पदार्थ) का वा अल्पभाग दीखते हुये (पदार्थ) का
अनुक्त (=अन् उक्त)- =(५) बिना कहे हुये (अभिप्राय से ही) (पदार्थ) का वा वचनसे सुने बिना (अभिप्राय से ही पदार्थ) का
ध्रुवाणाम् ।। =(६) स्थिर (पदार्थों) का, निश्चल (पदार्थों) का, अथवा बहुत काल तक जिसनाका तिवना निश्चलरूप (पदार्थों) का
स इतराणाम् ।। =इन छहोंसे विरुद्धोंके प्रतिपक्षीयोंके वा विपरीतों के सहित अर्थात (७) एक पदार्थका वा अल्प (पदार्थ) का (८) एक प्रकार के (पदार्थों) का (९) अक्षिप्रका वा मंद गमन करते हुए (पदार्थ) का (१०) निःसृत का या समस्त बाहर निकले हुये (पदार्थ) का (११) उक्त पदार्थ का, कहे हुये (पदार्थ) का, वा शब्द सुनकरि के (पदार्थ) का (१२) अध्रुवका, अस्थिर (पदार्थ) का, चलायमान (पदार्थ) का, अथवा क्षणमात्र स्थिर रहने वाले (बिजली सदृश) का-इन बारहों में से—

एकैकस्य अवग्रह ईहा अवाय =प्रत्येकके वा भिन्न भिन्नके वा पृथक् पृथकके (उक्त बारह प्रकारके पदार्थोंके) अवग्रह और ईहा और आवाय (=अवाय)
धारणा ,अष्टचत्वारिंशत्,। =और धारण होवे हैं और (इन अड़तालीस में से)
प्रत्येकं ।इन्द्रिय अनिन्द्रिय' ।।।=प्रत्येक स्पर्शन-रसन घ्राण चक्षु-श्रोत्र और ईषद् इन्द्रिय (मन, अनिन्द्रिय) द्वारा'
प्रादुर्भाव्यन्ते =(समुदाय होकर दोसो अठासी मति ज्ञानके भेद) प्रगट किये जाते हैं वा प्रकाश किये जावे हैं कि
(१) स्पार्शन (अथवा स्पर्शनइन्द्रियजन्य) बहु पदार्थ (=अर्थ) का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२) स्पार्शन अल्पपदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (३) स्पार्शन बहुविध पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(४) स्पार्शन अल्पविध पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान(५) स्पार्शन क्षिप्र पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(६) स्पार्शन अक्षिप्र पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (७) स्पार्शन अनिःसृत पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(८) स्पार्शन निःसृत पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (९ स्पार्शन अनुक्त पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(१०) स्पार्शन उक्त पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (११) स्पार्शन ध्रुव पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(१२) स्पार्शन अध्रुव पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान।।

(८५) रासन बहु पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(८६) रासन अल्प पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(८७) रासन बहुविध पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(८८) रासन अल्पविध पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(८९) रासन क्षिप्र पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(९०) रासन अक्षिप्र पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(९१) रासन अनिस्सृत पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(९२) रासन निस्सृत पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(९३) रासन अनुक्त पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(९४) रासन उक्त पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(९५) रासन ध्रुव पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(९६) रासन अध्रुव पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान

(९७) घ्राणज बहु पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(९८) घ्राणज अल्प पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(९९) घ्राणज बहुविध पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(१००) घ्राणज अल्पविध पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(१०१) घ्राणज क्षिप्र पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(१०२) घ्राणज अक्षिप्र पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(१०३) घ्राणज अनिस्सृत पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(१०४) घ्राणज निस्सृत पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(१०५) घ्राणज अनुक्त पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(१०६) घ्राणज उक्त पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(१०७) घ्राणज ध्रुव पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(१०८) घ्राणज अध्रुव पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान

(१०९) चाक्षुष बहु पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(११०) चाक्षुष अल्प पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(१११) चाक्षुष बहुविध पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(११२) चाक्षुष अल्पविध पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(११३) चाक्षुष क्षिप्र पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(११४) चाक्षुष अक्षिप्र पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(११५) चाक्षुष अनिस्सृत पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(११६) चाक्षुष निस्सृत पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(११७) चाक्षुष अनुक्त पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(११८) चाक्षुष उक्त पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(११९) चाक्षुष ध्रुव पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(१२०) चाक्षुष अध्रुव पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान

(४९) श्रावण बहु पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान

(५०) श्रावण अल्प पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान।

(५१) श्रावण बहुविध पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान

(५२) श्रावण अल्पविध पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान।

(५३) श्रावण क्षिप्रपदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान

(५४) श्रावण अक्षिप्रपदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान

(५५) श्रावण अनिसृत पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान

(५६) श्रावण निःसृत पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान

(५७) श्रावण अनुक्त पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान

(५८) श्रावण उक्त पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान

(५९) श्रावण ध्रुव पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान

(६०) श्रावण अध्रुव पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान

(६१) मानस बहुपदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान

(६२) मानस अल्पपदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान

(६३) मानस बहुविधपदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान

(६४) मानस अल्पविध पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान

(६५) मानस क्षिप्रपदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान

(६६) मानस अक्षिप्रपदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान

(६७) मानस अनिसृतपदार्थका अवगृहरूप मतिज्ञान

(६८) मानस निःसृत पदार्थका अवगृहरूप मतिज्ञान

(६९) मानस अनुक्त पदार्थका अवगृहरूपमतिज्ञान

(७०) मानस उक्त पदार्थका अवगृहरूप मतिज्ञान

(७१) मानस ध्रुव पदार्थका अवगृहरूप मतिज्ञान

(७२) मानस अध्रुव पदार्थका अवगृहरूप मतिज्ञान

स्पार्शन बहुपदार्थका ईहारूप मतिज्ञान

(७४) स्पार्शन अल्प पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान

स्पार्शन बहुविध पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान

(७६) स्पार्शन अल्पविध पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान

स्पार्शन क्षिप्रपदार्थका ईहारूप मतिज्ञान

(७८) स्पार्शन अक्षिप्रपदार्थका ईहारूप मतिज्ञान

(७९) स्पार्शन अनिसृत पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान

(८०) स्पार्शन निसृतपदार्थका ईहारूप मतिज्ञान

(८१) स्पार्शन अनुक्त पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान

(८२) स्पार्शन उक्त पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान

(८३) स्पार्शन ध्रुव पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान

(८४) स्पार्शन अध्रुव पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान

भेदों मे अर्थावग्रहका तात्पर्य रक्खा है क्योंकि अवग्रह ज्ञान व्यक्त पदार्थ और व्यञ्जन (अव्यक्त) पदार्थ दोनोंका होता है। ईहा धारणा ज्ञान व्यक्त पदार्थके ही होते हैं व्यंजन पदार्थके नहीं होते हैं इसलिये अवगृह ज्ञानकेही अर्थावगृह और व्यञ्जनावगृह भेदके नहीं ॥ तिसपर भी स्मरण रहे कि व्यंजनका अवगृह नेत्र और मनके पदार्थ से भिड़न न होनेके हेतु से केवलचार है ॥

(८५) रासन बहु पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (८६) रासन अल्प पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(८७) रासन बहुविध पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (८८) रासन अल्पविध पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(८९) रासन क्षिप्र पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (९०) रासन अक्षिप्र पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(९१) रासन अनिसृत पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (९२) रासन निसृत पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(९३) रासन अनुक्त पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (९४) रासन उक्त पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(९५) रासन ध्रुव पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (९६) रासन अध्रुव पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान

(९७) घ्राणज बहु पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (९८) घ्राणज अल्प पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(९९) घ्राणज बहुविध पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (१००) घ्राणज अल्पविध पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(१०१) घ्राणज क्षिप्र पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (१०२) घ्राणज अक्षिप्र पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(१०३) घ्राणज अनिसृत पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (१०४) घ्राणज निसृत पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(१०५) घ्राणज अनुक्त पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (१०६) घ्राणज उक्त पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(१०७) घ्राणज ध्रुव पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (१०८) घ्राणज अध्रुव पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान

(१०९) चाक्षुष बहु पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (११०) चाक्षुष अल्प पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(१११) चाक्षुष बहुविध पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (११२) चाक्षुष अल्पविध पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(११३) चाक्षुष क्षिप्र पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (११४) चाक्षुष अक्षिप्र पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(११५) चाक्षुष अनिसृत पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (११६) चाक्षुष निसृत पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(११७) चाक्षुष अनुक्त पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (११७) चाक्षुष उक्त पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(११९) चाक्षुष ध्रुव पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान (१२०) चाक्षुष अध्रुव पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान

(४९) श्रावण बहु पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(५०) श्रावण अल्प पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान।
(५१) श्रावण बहुविध पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(५२) श्रावण अल्पविध पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान।
(५३) श्रावण क्षिप्रपदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(५४) श्रावण अक्षिप्रपदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(५५) श्रावण अनिस्सृत पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(५६) श्रावण निःसृत पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(५७) श्रावण अनुक्त पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(५८) श्रावण उक्त पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(५९) श्रावण ध्रुव पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(६०) श्रावण अध्रुव पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(६१) मानस बहुपदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(६२) मानस अल्पपदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(६३) मानस बहुविधपदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(६४) मानस अल्पविध पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(६५) मानस क्षिप्रपदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(६६) मानस अक्षिप्रपदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान
(६७) मानस अनिस्सृतपदार्थका अवगृहरूप मतिज्ञान
(६८) मानस निःसृत पदार्थका अवगृहरूप मतिज्ञान
(६९) मानस अनुक्त पदार्थका अवगृहरूपमतिज्ञान
(७०) मानस उक्त पदार्थका अवगृहरूप मतिज्ञान
(७१) मानस ध्रुव पदार्थका अवगृहरूप मतिज्ञान
(७२) मानस अध्रुव पदार्थका अवगृहरूप मतिज्ञान
(७३) स्पार्शन बहुपदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(७४) स्पार्शन अल्प पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(७५) स्पार्शन बहुविध पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(७६) स्पार्शन अल्पविध पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(७७) स्पार्शन क्षिप्रपदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(७८) स्पार्शन अक्षिप्रपदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(७९) स्पार्शन अनिस्सृत पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(८०) स्पार्शन निसृतपदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(८१) स्पार्शन अनुक्त पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(८२) स्पार्शन उक्त पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(८३) स्पार्शन ध्रुव पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(८४) स्पार्शन अध्रुव पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान

(१) ऊपर के ४२ भेदों में अर्थावग्रहका तात्पर्य रक्खा है क्योंकि अवग्रह ज्ञान व्यक्त पदार्थ और व्यंजन (अव्यक्त) पदार्थ दोनोंका होता है। ईहा अवाय, धारणा ज्ञान ये व्यक्त पदार्थके ही होते हैं व्यंजन पदार्थके नहीं होते हैं इसलिये अवगृह ज्ञानकेही अर्थावगृह और व्यंजनावगृह ऐसे दो भेद होते हैं अन्यके नहीं ॥ तिसपर भी स्मरण रहे कि व्यंजनका अवगृह नेत्र और मनके पदार्थ से भिड़न न होनेके हेतु से केवलचार इन्द्रियों द्वारा होता है ॥

(१५७) रासन बहु पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१५८) रासन अल्प पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१५९) रासन बहुविध पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१६०) रासन अल्पविध पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१६१) रासन क्षिप्र पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१६२) रासन अक्षिप्र पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१६३) रासन अनिस्सृत पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१६४) रासन निःसृत पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१६५) रासन अनुक्त पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१६६) रासन उक्त पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१६७) रासन ध्रुव पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१६८) रासन अध्रुव पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान

---

(१६९) घ्राणज बहुपदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१७०) घ्राणज अल्प पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१७१) घ्राणज बहुविध पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१७२) घ्राणज अल्पविध पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१७३) घ्राणज क्षिप्र पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१७४) घ्राणज अक्षिप्र पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१७५) घ्राणज अनिस्सृत पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१७६) घ्राणज निस्सृत पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१७७) घ्राणज अनुक्त पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१७८) घ्राणज उक्त पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१७९) घ्राणज ध्रुवपदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१८०) घ्राणज अध्रुव पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान

---

(१८१) चाक्षुष बहुपदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१८२) चाक्षुष अल्प पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१८३) चाक्षुष बहुविध पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१८४) चाक्षुष अल्पविध पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१८५) चाक्षुष क्षिप्रपदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१८६) चाक्षुषअक्षिप्र पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१८७) चाक्षुष अनिस्सृत पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१८८) चाक्षुष निस्सृत पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१८९) चाक्षुष अनुक्त पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१९०) चाक्षुष उक्तपदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१९२) चाक्षुष ध्रुवपदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१९२) चाक्षुष अध्रुवपदार्थका अवायरूप मतिज्ञान

(१२१) श्रावण बहु पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान	(१२२) श्रावण अल्प पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान ।
(१२३) श्रावण बहुविध पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान	(१२४) श्रावण अल्पविध पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान ।
(१२५) श्रावण क्षिप्रपदार्थका ईहारूप मतिज्ञान	(१२६) श्रावण अक्षिप्रपदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(१२७) श्रावण अनिःसृत पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान	(१२८) श्रावण निःसृत पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(१२९) श्रावण अनुक्त पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान	(१३०) श्रावण उक्त पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(१३१) श्रावण ध्रुव पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान	(१३२) श्रावण अध्रुव पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(१३३) मानस बहुपदार्थका ईहारूप मतिज्ञान	(१३४) मानस अल्पपदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(१३५) मानस बहुविध पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान	(१३६) मानस अल्पविध पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(१३७) मानस क्षिप्रपदार्थका ईहारूप मतिज्ञान	(१३८) मानस अक्षिप्रपदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(१३९) मानस अनिःसृतपदार्थका ईहारूप मतिज्ञान	(१४०) मानस निःसृत पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(१४१) मानस अनुक्त पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान	(१४२) मानस उक्त पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(१४३) मानस ध्रुव पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान	(१४४) मानस अध्रुव पदार्थका ईहारूप मतिज्ञान
(१४५) स्पार्शन बहुपदार्थका अवायरूप मतिज्ञान	(१४६) स्पार्शन अल्प पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१४७) स्पार्शन बहुविध पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान	(१४८) स्पार्शन अल्पविध पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१४९) स्पार्शन क्षिप्रपदार्थका अवायरूप मतिज्ञान	(१५०) स्पार्शन अक्षिप्रपदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१५१) स्पार्शन अनिःसृत पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान	(१५२) स्पार्शन निःसृतपदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१५३) स्पार्शन अनुक्त पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान	(१५४) स्पार्शन उक्त पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१५५) स्पार्शन ध्रुव पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान	(१५६) स्पार्शन अध्रुव पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान

(१) 'श्रावण' शब्द और मानस शब्दके स्थानमें घ्राणेन्द्रिय जन्य और मनोजन्य क्रमसे ऊपरके उदाहरणों में समझने हैं ॥

(१५७) रासन बहु पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१५८) रासन अल्प पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१५९) रासन बहुविध पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१६०) रासन अल्पविध पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१६१) रासन क्षिप्र पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१६२) रासन अक्षिप्र पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१६३) रासन अनिसृत पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१६४) रासन निःसृत पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१६५) रासन अनुक्त पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१६६) रासन उक्त पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१६७) रासन ध्रुव पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१६८) रासन अध्रुव पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान

---

(१६९) घ्राणज बहुपदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१७०) घ्राणज अल्प पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१७१) घ्राणज बहुविध पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१७२) घ्राणज अल्पविध पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१७३) घ्राणज क्षिप्र पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१७४) घ्राणज अक्षिप्र पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१७५) घ्राणज अनिसृत पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१७६) घ्राणज निस्सृत पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१७७) घ्राणज अनुक्त पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१७८) घ्राणज उक्त पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१७९) घ्राणज ध्रुवपदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१८०) घ्राणज अध्रुव पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान

---

(१८१) चाक्षुप बहुपदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१८२) चाक्षुप अल्प पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१८३) चाक्षुप बहुविध पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१८४) चाक्षुप अल्पविध पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१८५) चाक्षुप क्षिप्रपदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१८६) चाक्षुपअक्षिप्र पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१८७) चाक्षुप अनिसृत पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१८८) चाक्षुप निस्सृत पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१८९) चाक्षुप अनुक्त पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१९०) चक्षुप उक्तपदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१९२) चाक्षुप ध्रुवपदार्थका अवायरूप मतिज्ञान (१९२) चाक्षुप अध्रुवपदार्थका अवायरूप मतिज्ञान

(१९३) श्रावणबहु पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१९४) श्रावणअल्प पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१९५) श्रावणबहुविध पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१९६) श्रावणअल्पविध पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१९७) श्रावणक्षिप्र पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१९८) श्रावणअक्षिप्र पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१९९) श्रावणअनिस्सृत पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२००) श्रावणानिःसृत पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२०१) श्रावणअनुक्त पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२०२) श्रावणउक्त पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२०३) श्रावणध्रुव पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२०४) श्रावणअध्रुव पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान

---

(२०५) मानसबहु पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२०६) मानसअल्प पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२०७) मानसबहुविध पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२०८) मानस अल्पविध पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२०९) मानसक्षिप्र पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२१०) मानसअक्षिप्र पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२११) मानसअनिस्सृत पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२१२) मानसनिःसृत पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२१३) मानसअनुक्त पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२१४) मानसउक्त पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२१५) मानसध्रुव पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२१६) मानसअध्रुव पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान

---

(२१७) स्पार्शनबहु पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२१८) स्पार्शनअल्प पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२१९) स्पार्शनबहुविध पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२२० स्पार्शनअल्पविध पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२२१) स्पार्शनक्षिप्र पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२२२) स्पार्शनअक्षिप्र पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२२३) स्पार्शन अनिस्सृत पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२२४) स्पार्शननिःसृत पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२२५) स्पार्शन अनुक्त पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२२६) स्पार्शनउक्त पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२२७) स्पार्शनध्रुव [illegible]

(२२९) रासन बहुपदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२३०) रासन अल्प पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२३१) रासन बहुविध पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२३२) रासन अल्पविध पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२३३) रासन क्षिप्र पदार्थकाधारणारूप मतिज्ञान (२३४) रासन अक्षिप्र पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२३५) रासन अनिस्सृत पदार्थकाधारणारूपमतिज्ञान (२३६) रासन निस्सृत पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२३७) रासन अनुक्त पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२३८) रासन उक्त पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२३९) रासन ध्रुव पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२४०) रासन अध्रुव पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान

(२४१) घ्राणज बहुपदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२४२) घ्राणज अल्प पदार्थका धारणारूपमतिज्ञान
(२४३) घ्राणज बहुविध पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२४४) घ्राणज अल्पविध पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२४५) घ्राणज क्षिप्र पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२४६) घ्राणज अक्षिप्र पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२४७) घ्राणज अनिस्सृतपदार्थका धारणारूपमतिज्ञान (२४८) घ्राणज निःसृत पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२४९) घ्राणज अनुक्त पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२५०) घ्राणज उक्त पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२५१) घ्राणज ध्रुवपदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२५२) घ्राणज अध्रुव पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान

(२५३) चाक्षुष बहुपदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२५४) चाक्षुष अल्प पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२५५) चाक्षुष बहुविध पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२५६) चाक्षुष अल्पविध पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२५७) चाक्षुष क्षिप्रपदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२५८) चाक्षुषअक्षिप्र पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२५९) चाक्षुष अनिस्सृत पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२६०) चाक्षुष निस्सृत पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२६१) चाक्षुष अनुक्त पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२६२) चाक्षुष उक्तपदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२६३) चाक्षुष ध्रुवपदार्थका धारणारूप मतिज्ञान (२६४) चाक्षुष अध्रुवपदार्थका धारणारूप मतिज्ञान

(१९३) श्रावणबहु पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१९५) श्रावणबहुविध पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१९७) श्रावणक्षिप्र पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१९९) श्रावणअनिःसृत पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२०१) श्रावणअनुक्त पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२०३) श्रावणध्रुव पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान

(१९४) श्रावणअल्प पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१९६) श्रावणअल्पविध पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(१९८) श्रावणअक्षिप्र पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२००) श्रावणनिःसृत पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२०२) श्रावणउक्त पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२०४) श्रावणअध्रुव पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान

---

(२०५) मानसबहु पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२०७) मानसबहुविध पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२०९) मानसक्षिप्र पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२११) मानसअनिःसृत पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२१३) मानसअनुक्त पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२१५) मानसध्रुव पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान

(२०६) मानसअल्प पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२०८) मानस अल्पविध पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२१०) मानसअक्षिप्र पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२१२) मानसनिःसृत पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२१४) मानसउक्त पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान
(२१६) मानसअध्रुव पदार्थका अवायरूप मतिज्ञान

---

(२१७) स्पार्शनबहु पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२१९) स्पार्शनबहुविध पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२२१) स्पार्शनक्षिप्र पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२२३) स्पार्शन अनिःसृत पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२२५) स्पार्शन अनुक्त पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२२७) स्पार्शनध्रुव पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान

(२१८) स्पार्शनअल्प पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२२० स्पार्शनअल्पविध पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२२२) स्पार्शनअक्षिप्र पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२२४) स्पार्शननिःसृत पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२२६) स्पार्शनउक्त पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२२८) स्पार्शनअध्रुव पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान

बहुशब्दस्य संख्यावैपुल्यवाचिनो ग्रहणमविशेषात् । संख्यावाची यथा—एको द्वौ बहव इति । वैपुल्यवाची यथा—बहुरोदनो बहुः सूप इति । विधशब्द प्रकारवाची । क्षिप्रग्रहणमचिरप्रतिपत्त्यर्थम् । अनिःसृतग्रहणं असकलपुद्गलोद्गमार्थम्

बहु शब्दस्य ।। संख्यावैपुल्य-वाचिनः ।। अविशेषात् ।। ग्रहणम् ।।।	=बहु शब्दका (जो) गणना वा गिनती तथा समूह का वाचक है (=वाचिन्) =अभेदपना से ग्रहण किया गया है अर्थात् दोनों गणना और ढेर (समूह) में भेद नहीं माना है सामान्य रूप से संख्या तथा ढेर अर्थो में बहु शब्द को ग्रहण्या है ।
संख्यावाची।। यथा॰ एकः।। द्वौ।। बहवः।। इति॰	=गणना वाचक जैसे एक दो बहुत इस प्रकार हैं
वैपुल्यवाची।। यथा॰ बहुः।। ओदनः । बहुः।।	=समूह वाचक जैसे अधिक भात बहुत
सूपः ।। इति॰ । विधशब्दः ।। प्रकारवाचीः ।।	=दाल (=सूप) ऐसे है ॥ विध शब्द प्रकार वाची है वा भेद वाचक है (जैसे हस्ती-ऊंट, घोडा, बैल, गाय, बकरी, बन्दर इत्यादि अनेक जाति का ग्रहण करने वाला बहुविध अवग्रह, बहुविध ईहा, बहुविध अवाय, बहुविध धारणा है)
क्षिप्र-ग्रहणम् ।।। अचिर-प्रतिपत्ति अर्थम् ।।।	=(ग्रन्थमें) क्षिप्र (शब्द) का लाना शीघ्रता (=अचिर) के प्राप्ति के लिये है अर्थात् शीघ्रता से पदार्थका अवग्रहरूप ज्ञान होना, ईहारूप ज्ञान होना, अवायरूप ज्ञान होना, धारणारूप ज्ञान होना सो क्षिप्र ग्रहण है
अनिःसृत-ग्रहणम् ।।। असकल-पुद्गल-उद्गम अर्थम् ।।।	=(सूत्र में) अनिःसृत (शब्द) का ग्रहण असमस्त पुद्गल वा असमस्त शरीर के प्रगटके =लिये है अर्थात् समस्त वस्तु बाहर प्रगट नहीं निकली हो जैसे जलमें डूबे हुये हस्ती मनुष्यादिक का एक देश जानने से संपूर्ण पदार्थका अवग्रह रूप ज्ञान होना, ईहारूप ज्ञान होना, अवायरूप ज्ञान होना, धारणारूप ज्ञान होना सो अनिःसृत ग्रहण है ॥

(२६५) श्रावणबहु पदार्थका धारणारूपमतिज्ञान
(२६६) श्रावणअल्प पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२६७) श्रावणबहुविध पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२६८) श्रावणअल्पविध पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२६९) श्रावणक्षिप्र पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२७०) श्रावणअक्षिप्र पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२७१) श्रावणअनिसृत पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२७२) श्रावणनिःसृत पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२७३) श्रावणअनुक्त पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२७४) श्रावणउक्त पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२७५) श्रावणध्रुव पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२७६) श्रावणअध्रुव पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२७७) मानसबहु पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२७८) मानसअल्प पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२७९) मानसबहुविध पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२८०) मानस अल्पविध पदार्थका धारणारूपमतिज्ञान
(२८१) मानसक्षिप्र पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२८२) मानसअक्षिप्र पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२८३) मानसअनिसृत पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२८४) मानसनिःसृत पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२८५) मानसअनुक्त पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२८६) मानसउक्त पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२८७) मानसध्रुव पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२८८) मानसअध्रुव पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस (सोलहवां) सूत्रपर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दश भाषानुवाद

एषाम् ।। अवग्रह =अधिकृत या अधिकार में लाये गये अथवा पूर्वकथित अवग्रह
आदय: ।। क्रिया-विशेषा ।। =ईहा अवाय तथा धारणा (जानना रूप अथवा ज्ञानरूप) क्रिया के विशेष या भेद हैं ।
तद् भावः । अयम् ।। =उन (ज्ञानरूप क्रियाओं) की अपेक्षारूप यहां (=अयम् या इस सूत्र में)
क्रम-निर्देश ।। षट् =(षष्ठी विभक्तिकरि) कमका निर्देश अथवा उपदेश किया गया है (अर्थात्) बहु
आदीनां ।। मन्दतराणां ।। =आदिकोंका तथा इनसे उल्टोंका (अवग्रहरूपजानना-ईहारूपजानना अवायरूपजानना धारणारूपजानना होता है
इति० =इस प्रकार (षष्ठी विभक्तिकरि कमका निर्देश या उपदेश किया गया) है

(१) "बहु" आदि शब्दकी प्रथमाविभक्ति बहुवचन पुल्लिंग है । और इसका ... "बहुनाम" ... पृष्ठ ३६में लिखी है । इसको ... यहां ... मध्य में लिया है

वहुशब्दस्य संख्यावैपुल्यवाचिनो ग्रहणमविशेषात् । संख्यावाची यथा—एक द्वौ वहव इति । वैपुल्यवाची यथा—वहुरोदनो वहु सूप इति । विधशब्द प्रकारवाची । क्षिप्रग्रहणमचिरप्रतिपत्यर्थम् । अनि सृतग्रहणं असकलपुद्गलोद्गमार्थम्

बहु शब्दस्य ग, संख्यावैपुल्य-वाचिनः ग,	=बहु शब्दका (जो) गणना वा गिनती तथा समूह का वाचक है (=वाचिन्)
अविशेषात । ग्रहणम् ॥	=अभेदपना से ग्रहण किया गया है अर्थात् दोनों गणना और ढेर (समूह) में भेद नहीं माना है सामान्य रूप से संख्या तथा ढेर अर्थो में बहु शब्द को ग्रहण्या है ।
संख्यावाची, । यथा॰ एकः, । द्वौ । बहवः, । इति॰	=गणना वाचक जैसे एक दो बहुत इस प्रकार हैं
वैपुल्यवाची, । यथा॰ बहु, । ओदनः । बहु, ।	=समूह वाचक जैसे अधिक भात बहुत
सूपः । इति॰ । विधशब्दः, । प्रकारवाचीः ।	=दाल (=सूप) ऐसे है ॥ विध शब्द प्रकार वाची है वा भेद वाचक है (जैसे हस्ती-ऊंट, घोड़ा, बैल, गाय, बकरी, बन्दर इत्यादि अनेक जाति का ग्रहण करने वाला वहुविध अवग्रह, बहुविध ईहा, बहुविध अवाय, बहुविध धारणा है)
क्षिप्र-ग्रहणम् ॥ अचिर-प्रतिपति अर्थम् ॥	=(सूत्रमें) क्षिप्र (शब्द) का लाना शीघ्रता (=अचिर) के प्राप्ति के लिये है अर्थात शीघ्रता से पदार्थका अवग्रहरूप ज्ञान होना, ईहारूप ज्ञान होना, अवायरूप ज्ञान होना, धारणारूप ज्ञान होना सो क्षिप्र ग्रहण है
अनिःसृत-ग्रहणम् ॥ असकल-पुद्गल-उद्गम	=(सूत्र में) अनिस्सृत (शब्द) का ग्रहण असमस्त पुद्गल वा असमस्त शरीर के प्रगटके
अर्थम् ॥	=लिये है अर्थात् समस्त वस्तु बाह्य प्रगट नहीं निकली हो जैसे जलमें डूबे हुये हस्ती मनुष्यादिक का एक देश जानने से सपूर्ण पदार्थका अवग्रह रूप ज्ञान होना, ईहारूप ज्ञान होना, अवायरूप ज्ञान होना, धारणारूप ज्ञान होना सो अनिःसृत ग्रहण है ॥

बहूनामनुक्ताभिप्रायेण ग्रहणम् । ध्रुव निरन्तर यथार्थग्रहणम् । सेतरग्रहण प्रतिपक्षसंग्रहार्थं ।। बहूनामवग्रहः । अल्पस्यावग्रह । बहुविधस्यावग्रह । एकविधस्यावग्रह

बहूनाम् ;। अभिप्रायेण ,। ग्रहणम् ,।।।	=बहुतों का (बिना कहे हुये) अभिप्राय अथवा प्रयोजन से ग्रहण सो
अनुक्तम् ,।।।	=अनुक्त है अर्थात् वचन से सुने बिनाही अभिप्राय से जान लेना अनुक्त (ग्रहण) है
निरन्तरम् ,।।। यथार्थ ग्रहणम् ,।।। ध्रुवम् ,।।।	=असीम वा लगातार जैसा का तैसा (=यथार्थ-ठीक ठीक पदार्थ का) ग्रहण ध्रुव है अर्थात् निरन्तर पदार्थ के सत्य स्वरूप का निश्चलरूप से ज्ञान होते रहना सो ध्रुव ग्रहण है
सेतरग्रहणम् ;।।।	=(इस सूत्रमें) सेतर (वाक्य) का ग्रहण (इन बहु-बहुविध आदिक के)
प्रतिपक्ष संग्रह अर्थम् ,।।।	=प्रतिपक्षियों के वा विरुद्धों के संचये के लिये हैं (अर्थात्)
बहूनाम् ; अवग्रहः । अल्पस्य ", अवग्रहः ,	=बहुत (पदार्थ) निका अवग्रह और थोड़े (पदार्थ) निका अवग्रह
बहुविधस्य ", अवग्रहः ,।	=बहुविध वा अनेक प्रकार के (पदार्थ) निका अवग्रह (और)
एकविधस्य ", अवग्रहः ।	=एकविध अथवा एक भांति के (पदार्थ) निका अवग्रह

(१) बहु बहुविधयोरविशेष इति न मन्तव्यम । बहुष्ववग्रह इत्यत्र बहुत्व संख्यया मुख्यतया ग्रहण एक विधस्यावग्रह इत्यर्थः ।

बहु बहुविधयोः " अविशेषः ,। इति न मन्तव्यम् ,।।।	—बहु विध (और) एक विध में भेद नहीं है ऐसा न समझना चाहिये (दोनों में भेद है)
बहुषु ।। अवग्रहः , इति अत्र बहुत्व संख्यया ;।।	—बहुतों का अवग्रह ऐसा यहाँ बहुत्व गणना की
मुख्यतया ") ग्रहणं ;। एकविधस्य ;। अवग्रहः ;।	—प्रधानता से ग्रहण और एक प्रकार की (वस्तुओं) अवग्रह है
इति अर्थः ;।	—ऐसा अर्थ है। जैसे पशुओं में हाथी घोड़ा-ऊंट, बैल, भैंसा इत्यादिक अनेक प्रकार के हैं इनका ग्रहण सो बहुविध वा अनेक प्रकार ग्रहण है और इनमेंसे हाथी का घोड़ा या ऊंट का बैल या भैंसा एक भांति के पशुओं का ग्रहण सो एकविध अवग्रहादि है अथवा इन

क्षिप्रमवग्रहः । चिरेणावग्रहः । अनिःसृतस्यावग्रह । निःसृतस्यावग्रहः । अनुक्तस्यावग्रहः । उक्तस्यावग्रहः । ध्रुवस्यावग्रहः । अध्रुवस्यावग्रहश्चेति अवग्रहो द्वादशविकल्पः ॥ एवमीहादयोऽपि । ते एते पञ्चभिरिन्द्रियाद्वारैर्मनसा च प्रत्येकं प्रादुर्भाव्यन्ते ॥

क्षिप्रम् ॥ अवग्रहः ॥	=क्षिप्र अवग्रह अर्थात् शीघ्रता से पदार्थका अवग्रहरूप ज्ञान होजाना
चिरेण ॥ अवग्रहः ॥	=देरी से वा चिरकालकरि वा बहुत कालकरि अवग्रह अर्थात् वस्तुका धीरे धीरे बहुत कालमें जानना (सो चिर अवग्रह है)
अनिःसृतस्य॥ अवग्रहः॥ निःसृतस्य॥ अवग्रहः॥	=सर्व प्रगट न हो ताका अवग्रह, बाहर निकले हुये प्रगटरूप का अवग्रह
अनुक्तस्य॥ अवग्रहः॥ उक्तस्य॥ अवग्रहः॥	=बिना कहे हुये (पदार्थ) का अभिप्राय से अवग्रह, कही हुई वस्तुका अवग्रह
ध्रुवस्य॥ अवग्रहः॥ च॥ अध्रुवस्य॥ अवग्रहः॥	=ध्रुवका अवग्रह और (=च) अध्रुवका अवग्रह वा अध्रुवका ग्रहण
इति॥ अवग्रहः ॥ द्वादशविकल्पः ॥ एवम्॥	=इस प्रकार अवग्रह बारह प्रकार है। (और) इस भांति (=एवम्)
ईहा ॥ आदयः ॥ अपि॥	=ईहा अवाय-धारणा (=आदयः) भी (अपि) (बारह बारह प्रकार) हैं अर्थात् सब मिलकर अड़तालीस भेद हुये
ते ॥ एते ॥	=वे (अवग्रह बारह प्रकार और) ये (ईहा, अवाय, धारणा छत्तीस प्रकार में से)
प्रत्येकम्॥ पञ्चभिः॥ इन्द्रियद्वारैः॥ मनसा॥ च॥	=प्रत्येक पांच इन्द्रियों द्वाराकरि और (=च) मनसे
प्रादुर्भाव्यन्ते ॥	=आविर्भाव वा प्रगट वा प्रकाश किये जाते हैं अर्थात् अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा प्रत्येक के बारह बारह भेद हैं सो इन अड़तालीस भेदों को पांच और छठा मन पर लगाने से सब दोसौ अठासी भेद हुये

दृष्टान्त वा उदाहरण का यों भी हो सकते हैं कि बहुत गायों में काली सफेद-कावरी-धोली मुंडी अनेक प्रकार की हैं बहुविध तो इन गायों में से नाना प्रकारकी गायों का भासी है और एकविध केवल एक वर्णकी गायका ग्रहण करने वाला है। एक विध और क्षिप्र में यही भेद वा अन्तर है।

वहूनामनुक्तमभिप्रायेण ग्रहणम् । ध्रुव निरन्तर यथार्थग्रहणम् । सेतरग्रहण प्रतिपक्षसंग्रहार्थं ।। वहूनामवग्रह । अल्पस्यावग्रह । वहुविधस्यावग्रह । एकविधस्यावग्रह

बहूनाम् ६। अभिप्रायेण ३। ग्रहणम् १।।।	=बहुतों का (बिना कहे हुये) अभिप्राय अथवा प्रयोजन से ग्रहण सो
अनुक्तम् १।।	=अनुक्त है अर्थात् वचन से सुने विनाही अभिप्राय से जान लेना अनुक्त (ग्रहण) है
निरन्तरम् १।।। यथार्थ ग्रहणम् १।।। ध्रुवम् १।।।	=असीम वा लगातार जैसा का तैसा (=यथार्थ-ठीक ठीक पदार्थ का) ग्रहण ध्रुव है अर्थात् निरन्तर पदार्थ के सत्य स्वरूप का निश्चलरूप से ज्ञान होवे रहना सो ध्रुव ग्रहण है
स-इतरग्रहणम् १।।।	=(इस सूत्रमें) सेतर (वाच्य) का ग्रहण (इन बहु-बहुविध आदिक के)
प्रतिपक्ष-संग्रह अर्थम् १।।।	=प्रतिपक्षियों के वा विरुद्धों के संचये के लिये हैं (अर्थात्)
बहूनाम् ६। अवग्रहः १। अल्पस्य ६। अवग्रहः १।	=बहुत (पदार्थ) निका अवग्रह और थोड़े (पदार्थ) निका अवग्रह
बहुविधस्य ६। अवग्रहः १।	=बहुविध वा अनेक प्रकार के (पदार्थ) निका अवग्रह (और)
एकविधस्य ६। अवग्रहः १।	=एकविध अथवा एक भांति के (पदार्थ) निका अवग्रह

(१) इह बहु विधयारविशेष इति न मन्तव्यम । बहु अवग्रह इत्यत्र बहुत्व सख्याया मुख्यतया ग्रहेण एक विधस्यावग्रह इत्यर्थः ।

बहु एकविधयोः ६। अविशेषः १। इति न मन्तव्यम् १।।।	—बहु विध (और) एक विध में भेद न है ऐसा न समझना चाहिये (दोनों म भेद है)
बहूनाम् ६। अवग्रहः १। इति अत्र बहुत्व सख्यायाः ६।	—बहुतों का अवग्रह ऐसा यहाँ बहुत्व गणना की
मुख्यतया ३। ग्रहणेन ३। एकविधस्य ६। अवग्रहः १।	—प्रधानता से ग्रहण करि एक प्रकार की (वस्तु का) अवग्रह है
इतिअर्थः १।	—ऐसा अर्थ है। जैसे पशुओं में हाथी घोड़ा ऊंट, बैल भैंसा इत्यादिक अनेक प्रकार के हैं इनका ग्रहण सो बहुविध वा अनेक प्रकार ग्रहण है और इनमेंसे हाथी वा घोड़ा वा ऊंट वा बैल वा भैंसा एक जाति के पशु ों का ग्रहण सो एकविध अवग्रहादि - है अथवा इन

क्षिप्रमवग्रह । चिरेणावग्रहः । अनि सृतस्यावग्रह । नि.सृतस्यावग्रहः । अनुक्तस्यावग्रहः । उक्तस्यावग्रह. । ध्रुवस्यावग्रहः । अध्रुवस्यावग्रहश्चेति अवग्रहो द्वादशविकल्पः ॥ एवमीहादयोऽपि । ते एते पञ्चभिरिन्द्रियाद्वारैर्मनसा च प्रत्येकं प्रादुर्भाव्यन्ते ॥

क्षिप्रम् ॥ अवग्रहः ॥	=क्षिप्र अवग्रह अर्थात् शीघ्रता से पदार्थका अवग्रहरूप ज्ञान होजाना
चिरेण ॥ अवग्रहः ॥	=देरी से वा चिरकालकरि वा बहुत कालकरि अवग्रह अर्थात् वस्तुका धीरे धीरे बहुत कालमें जानना (सो चिर अवग्रह है)
अनिःसृतस्य ॥ अवग्रहः ॥ निःसृतस्य ॥ अवग्रहः ॥	=सर्व प्रगट न हो ताका अवग्रह, बाह्य निकले हुये प्रगटरूप का अवग्रह
अन् उक्तस्य ॥ अवग्रहः ॥ उक्तस्य ॥ अवग्रहः ॥	=बिना कहे हुये (पदार्थ) का अभिप्राय से अवग्रह, कही हुई वस्तुका अवग्रह
ध्रुवस्य ॥ अवग्रह ॥ च ॥ अध्रुवस्य ॥ अवग्रहः ॥	=ध्रुवका अवग्रह और (=च) अध्रुवका अवग्रह वा अध्रुवका ग्रहण
इति ॥ अवग्रह ॥ द्वादशविकल्प ॥ एवम् ॥	=इस प्रकार अवग्रह बारह प्रकार है । (और) इस भांति (=एवम्)
ईहा ॥ आदयः ॥ अपि ॥	=ईहा अवाय-धारणा (=आदयः) भी (अपि) (बारह बारह प्रकार) हैं अर्थात् सब मिलकर अड़तालीस भेद हुये
ते ॥ एते ॥	=वे (अवग्रह बारह प्रकार और) ये (ईहा, अवाय, धारणा छत्तीस प्रकार में से)
प्रत्येकम् ॥ पञ्चभिः ॥ इन्द्रियद्वारैः ॥ मनसा ॥ च ॥	=प्रत्येक पांच इन्द्रियों द्वाराकरि और (=च) मनसे
प्रादुर्भाव्यन्ते ॥	=आविर्भाव वा प्रगट वा प्रकाश किये जाते हैं अर्थात् अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा प्रत्येक के बारह बारह भेद हैं सो इन अड़तालीस भेदों को पांच और छठा मन पर लगाने से सब दोसौ अठासी भेद हुये

दृष्टान्त वा उदाहरण को यों भी कह सकते हैं कि बहुत गायों में काली श्वेत-कावरी-कांबी मुंडी अनेक प्रकार की हैं बहुविध तो इन गायों में से नाना प्रकारकी गायों का माही है और एकविध केवल एक वर्णकी गायका ग्रहण करने वाला है । एक विध और बहुविध में यही भेद वा अन्तर है ॥

तत्र वह्ववग्रहादय मतिज्ञानावरणक्षयोपशमप्रकर्षात् प्रभवन्ति। नेतर इति। तेषामभ्यर्हितत्वादादौ ग्रहणं क्रियते॥ वहुवहुविधयो क प्रतिविशेषः॥ यावता वहुषु वहुविधष्वपि वहुत्वमस्ति।

तत्र॰ वहु अवग्रह आदय ;।	=जहां (सूत्रमें) वहु अवग्रह आदि (=वहु विध, क्षिप्र, अनिःसृत, अनुक्त, ध्रुव)
मतिज्ञान आवरण-क्षयोपशम-प्रकर्षात ",	=मतिज्ञानावरणीयकर्मके क्षयोपशमकी अधिकतासे या उत्कर्षतासे
प्रभवन्ति T इतरे ",	=उपजे हैं। अन्य या अवशेष अर्थात् अल्प, एकविध, चिर, निःसृत, उक्त, अध्रुव
॰ इति॰	=ऐसे नहीं हैं अर्थात् ये मतिज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमकी उत्कर्षता से नहीं होते हैं वरन थोडे क्षयोपशमसे होते हैं अत ये छै पीछे कहे गये हैं
तेषाम् ' अभ्यर्हितत्वात "॥	=तिन (वहु, वहुविध, क्षिप्र, अनिस्सृत, अनुक्त, ध्रुव) का प्रधान होनेके हेतुसे
आदौ ;। ग्रहणम् ;॥ क्रियते T वहु-वहुविधयो	॥=आदि में या प्रारम्भ में ग्रहण किया गया है। (प्रश्न) वहु और वहुविध में
क ,। प्रतिविशेष ,। यावता ;। वहुषु ॥	=क्या भेद या अन्तर है (क्योंकि) यथार्थ में (=यावता) वहु में और
वहुविधषु । अपि॰ वहुत्वम् ,॥ अस्ति T	=वहुविध में भी (=अपि) वहुतपना है

(१) आदि शब्देन वहुविधावग्रहादयो गृह्यन्ते ॥

आदि-शब्देन "। वहुविध अवग्रह आदयः ,।=आदि शब्दसे वहुविध अवग्रह आदि अर्थात् क्षिप्रअवग्रह,अनिस्सृतअवग्रह, अनुक्तअवग्रह, ध्रुवअवग्रह गृह्यन्ते T =ग्रहण किये गये हैं

(२) सूत्रे इतरशब्दगृहीता अल्पावग्रहादयः॥

सूत्रे "॥ इतरशब्द-गृहीताः ,। अल्प अवग्रह आदयः ;। —इस सोलहवां सूत्रमें इतर शब्दसे लिये गये हैं अल्प अवग्रह —आदिक अर्थात् अल्पअवग्रह (या अवहुअवग्रह) अल्पविधअवग्रह, अक्षिप्रअवग्रह निःसृतअवग्रह उक्तअवग्रह, अध्रुवअवग्रह॥

एकप्रकारनानाप्रकारकृतो विशेष ॥ उक्तनि सृतयो क प्रतिविशेष ? । यावता सकलनिःसरणान्नि सृतम् । उक्तमप्येवंविधमेव ॥ अयमस्ति विशेष –अन्योपदेशपूर्वक ग्रहणमुक्तम् । स्वत एव ग्रहण निःसृतम् ॥ अपरेषां क्षिप्रनिःसृत इति पाठः ॥ त एव वर्णयन्ति–श्रोत्रेन्द्रियेण शब्दमवगृह्यमाण मयूरस्य वा कुररस्यवेति कश्चि त्प्रतिपद्यते । अपर स्वरूपमेवानिःसृत इति ।

एक प्रकार-नाना प्रकार कृता ;। विशेषः ;।	=एक प्रकार अनेक पकार से किया हुआ भेद अथवा अंतर है
उक्त-निःसृतयोः ;। कः ;। प्रतिविशेषः ;।	=उक्त और निःसृत में क्या भिन्नता (=प्रतिविशेष) है
यावता॰ सकलनिःसरणात् ;।। निःसृतम् ;।।।	=ज्योंका त्यों समस्त प्रगट होनेसे निःसृत है अर्थात् पूरा व्यक्ति हो सो निःसृत है
उक्तम् ;।।। अपि॰ एवम्॰ विधम् ;।।। एव॰	=उक्त भी इसी (=एवम्) प्रकार ही है अर्थात् उक्तमें भी समस्त प्रगटता है
अयम् ;। अस्ति T विशेषः । अन्य-उपदेश-	=(परंतु अनिःसृत और उक्त में) यह भेद है कि दूसर के उपदेश
पूर्वकम् ;।।। ग्रहणम् ;।।। उक्तम् ;।।। स्वतस्॰ एव॰	=निमित्तक ग्रहण सो उक्त है। अपनेआप (=स्वतस्) ही
ग्रहणम् ;।।। निःसृतम् ;।।। अपरेषाम् ;। क्षिप्र-	=ग्रहण सो निःसृत है। अन्य या दूसरे (आचार्य) जिनका क्षिप्र
निःसृतः ;। इति॰ पाठः ;।	=निसृत पाठ है अर्थात् सोलहवां सूत्र बहु बहुविध इत्यादिमें "क्षिप्रानिःसृत" के स्थानमें क्षिप्रनिःसृत पढते हैं अव निःसृत शब्द पहले छै शब्दों में आता है
ते ;। एवम्॰ वर्णयन्ति ;। श्रोत्र-इन्द्रियेण ;।।।	=वे (आचार्य) इस प्रकार कहते हैं कि कर्ण इन्द्रिय से
शब्दम् । अवगृह्यमाणं ;। मयूरस्य ;। वा कुररस्य ;। वा॰	=अवग्रह किया हुआ शब्द मोरका या कुररिय (कुरर-क्रौंच) पक्षीका (शब्द) है
इति॰ कश्चित्॰ प्रतिपद्यते T	=ऐसा कोई प्रतिपादन करते हैं (=कश्चित् प्रतिपद्यते) (सो निःसृत है)
अपरः ;। स्वरूपम् ;।।। एव॰ अनिःसृतः ;। इति॰	=दूसरा रूपही अनिःसृत है अर्थात् सूत्रमें जब प्रथम छै शब्दोंमें निःसृत माना तब उससे भिन्न अथवा उलटा शब्द अनिःसृत सोलहवां सूत्र बहुबहुविध इत्यादिमें ग्रहण होनेमा

तत्र बह्ववग्रहादय मतिज्ञानावरणक्षयोपशमप्रकर्षात् प्रभवन्ति। नेतर इति। तेषामभ्यर्हितत्वादादौ ग्रहणं क्रियते॥ बहुबहुविधयोः कः प्रतिविशेषः॥ यावता बहुषु बहुविधेष्वपि बहुत्वमस्ति।

तत्र॰ बहु अवग्रह आदयः॥	=यहां (सूत्रमें) बहु अवग्रह आदि (=बहु-विध, क्षिप्र, अनिःसृत, अनुक्त, ध्रुव)
मतिज्ञान आवरण-क्षयोपशम-प्रकर्षात्॥	=मतिज्ञानावरणीयकर्मके क्षयोपशमकी अधिकतासे या उत्कर्षतासे
प्रभवन्ति॥ इतरे॥	=उपजे हैं। अन्य या अवशेष अर्थात् अल्प, एकविध, चिर, निःसृत, उक्त, अध्रुव
न॰ इति॰	=ऐसे नहीं हैं अर्थात् ये मतिज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमकी उत्कर्षता से नहीं होते हैं वरन थोड़े क्षयोपशमसे होते हैं अतः ये छै पीछे कहे गये हैं
तेषाम्॰ अभ्यर्हितत्वात्॥	=तिन (बहु, बहुविध, क्षिप्र, अनिस्सृत, अनुक्त, ध्रुव) का प्रधान होनेके हेतुसे
आदौ॥ ग्रहणम्॥ क्रियते॥ बहु-बहुविधयोः॥	=आदि में या प्रारम्भ में ग्रहण किया गया है। (प्रश्न) बहु और बहुविध में
कः॥ प्रतिविशेषः॥ यावता॥ बहुषु॥	=क्या भेद या अन्तर है (क्योंकि) यथार्थ में (=यावता) बहु में और
बहुविधेषु॥ अपि॰ बहुत्वम्॥ अस्ति॥	=बहुविध में भी (=अपि) बहुतपना है

(१) आदि शब्देन बहुविधावग्रहादयो गृह्यन्ते॥

आदि-शब्देन॥ बहुविध अवग्रह आदयः॥ गृह्यन्ते॥	=आदि शब्दसे बहुविध अवग्रह आदि अर्थात् क्षिप्रअवग्रह, अनिस्सृतअवग्रह अनुक्तअवग्रह, ध्रुवअवग्रह ग्रहण किये गये हैं

(२) सूत्रे इतरशब्दगृहीता ऽ बह्ववग्रहादयः॥

सूत्रे॥ इतरशब्द-गृहीताः॥ अबहु अवग्रह आदयः॥	=इस सोलहवां सूत्रमें इतर शब्दसे लिये गये हैं अबहु अवग्रह =आदिक अर्थात् अल्पअवग्रह (या अबहुअवग्रह) अल्पविधअवग्रह, अक्षिप्रअवग्रह निःसृतअवग्रह उक्तअवग्रह, अध्रुवअवग्रह॥

एकप्रकारनानाप्रकारकृतो विशेषः ॥ उक्तनिःसृतयोः कः प्रतिविशेषः ? । यावता सकलनिःसरणान्निःसृतम् । उक्तमप्येवंविधमेव ॥ अयमस्ति विशेषः—अन्योपदेशपूर्वकं ग्रहणमुक्तम् । स्वत एव ग्रहणं निःसृतम् ॥ अपरेषां क्षिप्रनिःसृत इति पाठः ॥ त एवं वर्णयन्ति–श्रोत्रेन्द्रियेण शब्दमवगृह्यमाणं मयूरस्य वा कुररस्य वेति कश्चित्प्रतिपद्यते । अपरः स्वरूपमेवानिःसृत इति ।

एक प्रकार-नाना प्रकार कृतः ।। विशेषः ।।	=एक प्रकार अनेक प्रकार से किया हुआ भेद अथवा अंतर है
उक्त-निःसृतयोः ।। कः ।। प्रतिविशेषः ।।	=उक्त और निःसृत में क्या भिन्नता (=प्रतिविशेष) है
यावता॰ सकलनिःसरणात् ।।। निःसृतम् ।।।	=ज्योंका त्यों समस्त प्रगट होनेसे निःसृत है अर्थात् पूरा व्यक्ति हो सो निःसृत है
उक्तम् ।।। अपि॰ एवम्॰ विधम् ।।। एव॰	=उक्त भी इसी (=एवम्) प्रकार ही है अर्थात् उक्तमें भी समस्त प्रगटता है
अयम् ।। अस्ति T विशेषः । अन्य-उपदेश-	=(परंतु अनिःसृत और उक्त में) यह भेद है कि दूसरे के उपदेश
पूर्वकम् ।।। ग्रहणम् ।।। उक्तम् ।।। स्वतस्॰ एव॰	=निमित्तक ग्रहण सो उक्त है। अपनेआप (=स्वतस्) ही
ग्रहणम् ।।। निःसृतम् ।।। अपरेषाम् ।। क्षिप्र-	=ग्रहण सो निःसृत है। अन्य या दूसरे (आचार्य) जिनका क्षिप्र
निःसृत ।। इति॰ पाठः ।।	=निसृत पाठ है अर्थात् सोलहवां सूत्र बहु बहुविध इत्यादिमें "क्षिप्रानिःसृत" के स्थानमें क्षिप्रनिःसृत पढ़ते हैं अतः निःसृत शब्द पहले छे शब्दों में आता है
ते ।। एवम्॰ वर्णयन्ति T श्रोत्र-इन्द्रियेण ।।।	=वे (आचार्य) इस प्रकार कहते हैं कि कर्ण इन्द्रिय से
शब्दम् ।। अवगृह्यमाणं ।। मयूरस्य ।। वा कुररस्य ।। वा॰	=अवग्रह किया हुआ शब्द मोरका वा कुरचि (कुरर-कुंज) पक्षीका (शब्द) है
इति॰ कश्चित्॰ प्रतिपद्यते T	=ऐसा कोई प्रतिपादन करते हैं (=कश्चित् प्रतिपद्यते) (सो निःसृत है)
अपरः ।। स्वरूपम् ।।। एव॰ अनिःसृतः ।। इति॰	=दूसरा रूपही अनिःसृत है अर्थात् सूत्रमें जब प्रथम छे शब्दोंमें निःसृत माना तब उससे भिन्न अथवा उलटा शब्द अनिःसृत सोलहवां सूत्र बहुबहुविध इत्यादिमें ग्रहण होवेगा

तत्र बह्ववग्रहादयः मतिज्ञानावरणक्षयोपशमप्रकर्षात् प्रभवन्ति। नेतर इति। तेषामभ्यर्हितत्वादादौ ग्रहणं क्रियते॥ बहुबहुविधयोः कः प्रतिविशेषः ? यावता बहुषु बहुविधेष्वपि बहुत्वमस्ति।

तत्र॰ बहु अवग्रह आदयः ।।	=यहाँ (सूत्रमें) बहु अवग्रह आदि (=बहु-विध, क्षिप्र, अनिःसृत, अनुक्त, ध्रुव)
मतिज्ञान आवरण-क्षयोपशम-प्रकर्षात् ।।	=मतिज्ञानावरणीयकर्मके क्षयोपशमकी अधिकतासे वा उत्कर्षतासे
प्रभवन्ति । इतरे ।।	=उपजे हैं। अन्य वा अवशेष अर्थात् अल्प, एकविध, चिर, निःसृत, उक्त, अध्रुव
न॰ इति॰	=ऐसे नहीं हैं अर्थात् ये मतिज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमकी उत्कर्षता से नहीं होते हैं वरन थोड़े क्षयोपशमसे होते हैं अतः ये छः पीछे कहे गये हैं
तेषाम् । अभ्यर्हितत्वात् ।।।	=तिन (बहु, बहुविध, क्षिप्र, अनिःसृत, अनुक्त, ध्रुव) का प्रधान होनेके हेतुसे
आदौ ।। ग्रहणम् ।।। क्रियते। बहु-बहुविधयो ।।	=आदि में वा प्रारम्भ में ग्रहण किया गया है। (प्रश्न) बहु और बहुविध में
कः ।। प्रतिविशेषः ।। यावता ।। बहुषु ।।	=क्या भेद वा अन्तर है (क्योंकि) यथार्थ में (=यावता) बहु में और
बहुविधेषु ।। अपि॰ बहुत्वम् ।।। अस्ति ।	=बहुविध में भी (=अपि) बहुतपना है

(१) आदि शब्देन बहुविधावग्रहादयो गृह्यन्ते ॥

आदि-शब्देन ।। बहुविध अवग्रह आदयः ।।=आदि शब्दसे बहुविध अवग्रह आदि अर्थात् क्षिप्रअवग्रह,अनिःसृतअवग्रह, अनुक्तअवग्रह, ध्रुवअवग्रह
गृह्यन्ते । =ग्रहण किये गये हैं

(२) सूत्रे इतरशब्दगृहीता ऽ बह्ववग्रहादयः ॥

सूत्रे ।।। इतरशब्द-गृहीताः ।। अबहु अवग्रह =इस सोलहवां सूत्रमें इतर शब्दसे किये गये हैं अबहु अवग्रह
आदयः ।। =आदिक अर्थात् अल्पअवग्रह (वा अबहुअवग्रह) अल्पविधअवग्रह, अक्षिप्रअवग्रह निःसृतअवग्रह उक्तअवग्रह, अध्रुवअवग्रह ॥

पद्यवग्रहादयो बह्वादीनां कर्मणामाक्षेप्तार, बह्वादीनि पुनर्विशेषणानि कस्येत्यत आह--

॥ अर्थस्य ॥ १७ ॥

भावार्थ क्षयोपशमकी प्राप्तिके कालविषै बहुत परिमाणके संतानकरि पाया जो क्षयोपशम ताकै पहले समय जैसा अवग्रह भया तैसाही द्वितियादिक समयनिविषै होय है किछु कम भी नाहीं होय अरु अधिक भी नाहीं होय है ताकूं तो ध्रुवावग्रह कहिये । बहुरि धारणा है सो जा पदार्थकूं ग्रह्या ताकूं नाहीं भूलनेका कारण रूपज्ञान है।" ऐसे ध्रुवावग्रह और धारणा में बड़ा अन्तर या भेद है ॥ प० अप० वचनिका मुद्रित पृष्ठ १५१, १५२

यदि॰ अवग्रह-आदयः ,। बहु आदीनाम् ;। =जो अवग्रह ईहा अवाय-धारणा (=आदयः) बहु आदिक (बारह)

कर्मणाम् '।।। आक्षेप्तारः।। पुनर्बहु-आदीनि ।।।। =कर्मोंके ग्रहण करने वाले हैं फिर (=पुनः) बहु आदिक (बारह)

कस्य ;। विशेषणानि ,।।। इति॰ अतः॰ आह T =किसके विशेषण हैं । ऐसा (प्रश्न होने पर) इस लिये कहते हैं कि

अर्थस्य ॥ १७ ॥ =अवग्रहादयो मतिज्ञान विकल्पा अर्थस्य भवन्ति

अवग्रह-आदयः ,। मतिज्ञान =अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा, (=आदयः) जो (पूर्वोक्त २८८) मतिज्ञान के

विकल्पाः ;। अर्थस्य ;। भवन्ति T =भेद हैं सो अर्थ, पदार्थ, द्रव्य या वस्तु के होते हैं भावार्थ

ये बहु, अल्प, बहुविध, अल्पविध, क्षिप्र, अक्षिप्र, अनिःसृत, निःसृत, अनुक्त, उक्त, और ध्रुव-अध्रुव बारह हैं से द्रव्य, वस्तु, अर्थ या पदार्थके विशेषण हैं और अर्थ (पदार्थ-वस्तु-द्रव्य) इन बहु आदिकका विशेष्य है और अवग्रह, ईहा, अवाय-धारणा बहु आदिक (बारह) कर्मोंके ग्रहण करने वाले हैं जैसे अल्प पदार्थका अवग्रह बहु वस्तु या पदार्थका अवग्रह इत्यादि अवग्रहके बारह; अल्प पदार्थ का ईहा, बहु पदार्थका ईहा इत्यादि ईहा के बारह; बहुद्रव्य या अर्थका अवाय, अल्प अर्थ या पदार्थका अवाय ऐसे अवायके बारह; इसी प्रकार बहुवस्तुका धारणा अल्प वस्तु या अर्थ का धारणा इत्यादि बारह, ऐसे ४८ हुये पांच इन्द्रिय और छठे

ध्रुवावग्रहस्य धारणायाश्च कः प्रतिविशेपः ? उच्यते । क्षयोपशमप्राप्तिकाले विशुद्धपरिणामसन्तत्या प्राप्तात्क्षयोपशमात्प्रथमसमये यथावग्रहस्तथैव द्वितीयादिष्वपि समयेषु नोनाभ्यधिक इति ध्रुवावग्रह इत्युच्यते ॥ यदा पुनर्विशुद्धपरिणामस्य सङ्क्लेशपरिणामस्य च मिश्रणात्क्षयोपशमो भवति तत उत्पद्यमानोऽवग्रहः कदाचिद्बहूनां कदाचिदल्पस्य कदाचिद्बहुविधस्य कदाचिदेकविधस्य वेति न्यूनाधिक भावाद ध्रुवावग्रह इत्युच्यते ॥ धारणा पुनर्गृहीतार्थाविस्मरणकारणमिति महदनयोरन्तरम् ॥

ध्रुवअवग्रहस्य ॥ च॰ धारणायाः ॥ का ॥	=ध्रुव अवग्रहके और (=च) धारणाके क्या
प्रतिविशेपः ॥ उच्यते । क्षयोपशम प्राप्तिकाले ॥	=भेद अथवा अन्तर कहा गया है । क्षयोपशमके लाभ कालमें
विशुद्धपरिणामसन्तत्या ॥ क्षयोपशमात् ॥	=विशुद्ध स्वभावके विस्तार वा सन्तानकरि क्षयोपशमकी
प्राप्तात् ॥ प्रथमसमये ॥ यथा॰ अवग्रहः ॥	=लब्धि से पहिले समय में जैसा अवग्रह है
तथा॰ एव॰ द्वितीयादिषु ॥ समयेषु ॥ अपि॰	=वैसा ही दूसरे आदिक समयों में भी (होय)
न॰ ऊनः ॥ न॰ अभ्यधिकः ॥ इति॰	=न हीन (होय) न अधिक (होय)
ध्रुव-अवग्रहः ॥ इति॰ उच्यते । यदा॰ पुनर्॰	=ध्रुव अवग्रह ऐसा कहा गया है । और (=पुनः) जब
विशुद्धपरिणामस्य ॥ च॰ संक्लेशपरिणामस्य ॥	=विशुद्ध परिमाणका और (=च) संक्लेश परिमाणका
मिश्रणात् ॥ क्षयोपशमः ॥ भवति । ततः॰	=मिलाप होने से वा संयोग से क्षयोपशम होता है । यहां से
उत्पद्यमानः ॥ अवग्रहः ॥ कदाचित्॰ बहूनाम् ॥	=उत्पन्न होनेवाला अवग्रह कभी (=कदाचित्) बहुतों का
कदाचित्॰ अल्पस्य ॥ कदाचित्॰ बहुविधस्य ॥	=कभी थोड़ों का कभी बहु प्रकार का
वा॰ कदाचित्॰ एकविधस्य ॥ इति॰ न्यून	=अथवा (=वा) कभी एक प्रकार का ऐसे हीन
अधिकभावात् । अध्रुव-अवग्रहः ॥ इति॰ उच्यते ।	=अधिकपना से (=अधिकभावात्) अध्रुवअवग्रह इस प्रकार कहा गया है
धारणा ॥ पुनः॰ गृहीत अर्थ-अविस्मरण-कारणम्-	=पुनि धारणा ग्रहण किये हुये पदार्थका न भूलनेका हेतु (रूपज्ञान) है
इति॰ अनयोः ॥ महत् ॥ अन्तरम् ॥	=इस प्रकार इन दोनों (ध्रु० अवग्रह और धारणा) में बड़ा भेद है ॥

अर्थस्येत्युच्यते। केचित्प्रवादिनो मन्यन्ते रूपादयो गुणा एव इन्द्रियै सन्निकृष्यन्ते तेषामेव ग्रहणमिति। तदयुक्तम्। नहि ते रूपादयो गुणा अमूर्ता इन्द्रियै सन्निकर्षमापद्यन्ते। न तर्हि इदानीमिदं भवति रूप मया दृष्ट, गन्धो वा घ्रात इति भवति कथम्।

अर्थस्य ।। इति॰ उच्यतेT। केचित्॰ प्रवादिनः ।।	='अर्थस्य' ऐसा (सूत्र) कहा गया है। (क्योंकि) कोई (=केचित्) अन्यवादी
मन्यन्तेT रूप-आदय',। गुणाः,। एव॰ इन्द्रियैः ।।।	=मानते हैं (कि) रूपादिक गुण ही इन्द्रियोंकरि
सन्निकृष्यन्तेT तेषाम् ¹। एव॰	=स्पर्शे जाते हैं या ग्रहण किये जाते हैं (=सन्निकृष्यन्ते)। तिन (रूपादिक गुणों)का ही
ग्रहणम्,।।।	=अवग्रह होता है (ग्रहणम्) (नकि द्रव्योंका अवग्रह इन्द्रियों से होय है) ।।
इति॰ तद् ।।। अयुक्तम् ,।।।	=ऐसी (कल्पना) है यह ठीक नहीं है। अर्थात् ऐसा मानना कि इन्द्रियों द्वारा रूपादिक गुणोंका ही ग्रहण होता है द्रव्यका ग्रहण नहीं होता है ठीक नहीं है। उक्त कल्पनाके निषेध के लिये यह सूत्र कहा है।
रूप-आदय' ,। गुणा' ,। अमूर्ता' ,।	=(क्योंकि परमतकी अपेक्षासे) रूपादिक गुण अमूर्तिक (आकार रहित) हैं।
ते ,। इन्द्रियैः।।। सन्निकर्षम्ः। न॰हि॰ आपद्यन्तेT	=ये (रूपादिक गुण जैन मतानुसार) इन्द्रियोंकरि सन्निकर्ष या स्पर्शको नहीं प्राप्त होवेहैं।
तर्हि॰ इदानीम्॰	=(अन्यवादी फिर प्रश्न करता है कि) तो (=तर्हि) इस समय
इदम्।।। न॰ भवतिT रूपम्,।।। मयाः। दृष्टम्,।।।	=यह (कथन) नहीं बनता है कि रूप मुझसे देखा गया
गन्ध' ,। वा॰ घ्रात ,। इति॰ भवतिT कथम्॰	=वा गंध मुझसे सूंघा गया। ऐसा कैसे (प्रतीति) होगा [शब्दशः होता है] अर्थात् वादी कहता है कि यदि आप रूपादिक गुणका इन्द्रियोंके साथ संबंध न मानेंगे तो (मैंने रूप देखा और मैंने गंध सूंघा यह प्रतीति न होगी ।। (उत्तर)

(१) परमत् अपेक्षया ¹।। (परमतापेक्षया) — अन्यमतकी अपेक्षासे। संस्कृतप्रति पृष्ठ ११४ की टिप्पणीके आधारपर अनुवाद में 'परमतकी अपेक्षासे' ऐसा वाक्य कोष्ठकमें अधिक लिखदिया है ।।

चक्षुरादिविषयोऽर्थः । तस्य बह्वादिविशेषणविशिष्टस्य अवग्रहादयो भवन्तीत्यभिसम्बन्धः क्रियते ॥ किमर्थमिदमुच्यते यावता बह्वादिरर्थ एव ? सत्यमेव किन्तु प्रवादिपरिकल्पनानिवृत्त्यर्थम् ।

मनपर प्रत्येक ४८ भेदको लगाने से सर्व २८८ हुये (देखो पृष्ठ २७० ३७८)

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस सत्रहवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः भाषानुवाद

चक्षु आदि-विषय ₁। = नेत्रादिक इन्द्रियोंका विषय वा नेत्रादिक इन्द्रियोंसे ग्रहण होनेवाला (सो)
अर्थः ₁। तस्य ₆ बहु आदि-विशेषण- = अर्थ है। तिस (अर्थ) के बहु आदिक (बारह) विशेषण हैं।
विशिष्टस्य ₆। अवग्रह = (उपयुक्त अर्थ) विशेष्य के (= विशिष्टस्य) अवग्रह
आदयः ₁। भवन्ति ॥ इति॰ अभिसम्बन्ध ₁। = ईहा अवाय-धारणा (= आदयः) होते हैं। ऐसे संबंध (अर्थ और अवग्रह आदि में)
क्रियते = किया गया है अर्थात् द्रव्य, वस्तु, अर्थ वा पदार्थ के अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा ज्ञान होते हैं। ऐसा अभिसंबंध 'अर्थ' और अवग्रह आदिका आपसमें है।
यावता ₃। बहु आदि ₁। अर्थ ₁। = (प्रश्न) जब (= यावता) बहुआदि (बारह) अर्थ वा वस्तु
एव॰ किम् ₁॥ अर्थम् ₁॥ इदम् ₁॥ उच्यते सत्यम् ₁। = ही (= एव) हैं तो किसलिये यह (सूत्र) कहागया है। (उत्तर) सत्य वा ठीक
एव॰ किन्तु॰ प्रवादि परिकल्पना-निवृत्ति-अर्थम्॥ = ही (तुम्हारा कहना) है परन्तु अन्य वादियोंकी कल्पनाके निषेधके लिये

(१) तस्य बह्वादि विशेषण विशि॰स्य – तस्य बहु-आदि विशेषणेन विशिष्टस्य यहां॥ विशेषण शब्द करण तृतीया विभक्तिमें है समासके कारण करण विभक्तिका लोप है। अत वाक्य का क्रम ऐसे है कि 'तस्य विशिष्टस्य बहु आदि विशेषणेन अवग्रह आदय भवन्ति।

तस्य ₆ विशिष्टस्य ₆। बहु आदि – तिस विशेष्य (विशेषण वाले-विशेष युक्त अर्थ)के बहुआदिक (उक्त बारह)
विशेषणेन॥ अवग्रह आदय ₁। भवन्ति – विशेषणकरि वा गुणधर्मकरि अवग्रह ईहा, अवाय, धारणा (ज्ञान) होते हैं।

तस्मिन्निन्द्रियैः सन्निकृष्यमाणे तदव्यतिरेकाद्रूपादिष्वपि सव्यवहारो युज्यते ॥ किमिमे अवग्रहादयः सर्वस्येन्द्रियानिन्द्रियस्य भवन्ति उत कश्चिद्विषयविशेषोऽस्तीत्यत आह ॥

व्यञ्जनस्यावग्रहः ॥ १८॥

तस्मिन् ७॥ इन्द्रियैः ३॥ सन्निकृष्यमाणे ७। रूपादिषु ७।	=तिस (द्रव्य) में इन्द्रियों से संबंध होने पर (= सन्निकृष्यमाणे) रूपादिकों में
अपि# तद् अव्यतिरेकात् ५। संव्यवहारः १।	=भी उस (द्रव्य) से (उन रूपादिकोंकि) अभिन्न होने (के निमित्त) से व्यवहार
युज्यते T	=प्रवर्तता है अर्थात् जब द्रव्य से और इन्द्रियों से संबंध होता है तब (क्योंकि रूपादिक गुण द्रव्य से सदा अभिन्न हैं) उन गुणों में ऐसा व्यवहार प्रवर्तता है कि रूप मैंने देखा वा गंध मैंने सूंघा इत्यादि
किम् १॥ इमे १। अवग्रह आदयः १। सर्वस्य ६।	=(प्रश्न) क्या ये अवग्रह ईहा अवाय धारणा (=आदय) सब
इन्द्रिय अनिन्द्रियस्य ६॥ भवन्ति T उत# कश्चित् #	=इन्द्रियों (तथा) मनके होते हैं अथवा (=उत) कोई (=कश्चित्)
विषय-विशेषः १। अस्ति T इति# अतः# आह T	=विषयका भेद वा अन्तर है ? ऐसा (पूछने पर) इसलिये (आचार्य) कहते हैं कि
॥ व्यञ्जनस्यावग्रहः ॥ १८ ॥	=व्यञ्जनस्यावग्रहः (एव भवति नेहादय)
व्यञ्जनस्य ६॥ अवग्रहः १॥	=अव्यक्त वा अप्रगट (जे शब्दादिक) पदार्थ है तिसका अवग्रहरूपज्ञान
एव# भवति T न ईहा-आदयः १।	=ही (=एव) होता है न कि ईहा अवाय और धारणारूप ज्ञान होते हैं अर्थात् इस प्रकार अवग्रह ज्ञान दो प्रकार का होता है एक तो व्यक्त प्रगट वस्तुओंके संबंध में दूसरा अव्यक्त वा अप्रगट वस्तुओंके संबंधमें परंतु ईहा अवाय-धारणा ये तीन ज्ञान केवल प्रकट वा व्यक्त पदार्थोंके संयोगमें होते हैं क्योंकि जब पदार्थ अधिक जानने योग्य होजाता है अथवा यों कहिये कि जब पदार्थ व्यक्त होजाता है तब व्यञ्जनावग्रह नहीं रहता है

इयर्तिपर्यायोस्तैर्वार्य्यंत इत्यर्थो द्रव्य ।

पर्यायान्,। इयर्ति वा॰ तैः ;। अर्यते	= जो पर्यायोंको प्राप्त होता है अथवा (= वा) तिन (पर्यायों) करि (= तैः) जो प्राप्त किया जाता है ।
इति॰ अर्थः ,। द्रव्यम् ,।।।	= ऐसा अर्थ अर्थात् पदार्थ वा वस्तु है (सो गुण पर्यायोंका समुदाय) द्रव्य है ।

(१) इयर्ति—यह शब्द जुहोत्यादि तीसरे गणके ऋ (= जाना गमन करना) धातुके प्रथम (अन्य) पुरुष कर्तरि प्रधान परस्मैपद ए॰ वचन वर्तमान कालकी क्रियाका रूप है। यह रूप इस प्रकार बना है कि तृतीयगणके धातुओंके अंग बनानेमें धातु कुछ नियमोंके अनुकूल दोहराया जाता है। इस ऋ धातुमें "एकाचो द्वे प्रथमस्य" ६-१-१ अष्टाध्यायी ॥ (धातुके) प्रथम एकाच (अवयव) को द्वित्व हो अर्थात् वे धातु जिनमें एक स्वर हो तो उस स्वरको दुहरा देते हैं (जैसे ऋ धातु का स्वर दोहराने से ऋ ऋ ऐसा रूप बना) यदि धातुके प्रारंभमें व्यंजन हो तो प्रारंभिक व्यंजन सहित स्वरको दोहरा देते हैं (जैसे पुष्—पोषना का पुपुष् रूप हो जाता है)॥ श्लु (जुहोत्यादि का विकरण) पर हो (पश्चात्में आवे) तो अर्ति और पिपर्ति धातुओंके अभ्यास को इ आदेश हो जाय अर्थात् ऋ ऋ रूपके प्रथम ऋ के स्थानमें इ होवे अतः ऋ ऋ = इ ऋ (७-४-७७ अष्टाध्यायी) = इ य ऋ (अभ्यासस्यासवर्णे = अभ्यासस्य असवर्णे (य्वोरियङुवङौ) = असवर्ण अच् परे हो तो अभ्यासके इवर्ण और उवर्ण को इयङ् (= इय्) उवङ् (= उव्) आदेश हो ६-४-७८ टिप्पणी पृष्ठ ५६से इस ऋका गुण होकर इयर् ऐसा रूप हुआ इसमें प्रथम पुरुष कर्तरि प्रधान परस्मैपद एक वचन वर्तमान कालकी क्रियाका ति प्रत्यय जोड़नेसे इयर् ति हुआ = इयर्ति ।

(२) अर्यते—धातु ऋ (अदादि द्वितीयगण आत्मने पदी) = सोम्य गमन करना)के ई स्वरके स्थानमें क्ङित् संज्ञक प्रत्ययके पहिले जिसके प्रारम्भमें य हो और धातु ऋ (प्रथम और तीसरे गणका धातु परस्मैपदी = प्राप्त करना, जाना) और ऋण (= जाना द्वितीयगण के) गुण होजाते हैं आत्मने पदका ते प्रत्यय कर्मणि प्रधानमें लगाया जाता है अत ऋ द्वितीय गण आत्मनेपदी = ईर्त्ते बुलाया जाता है ऋण = द्वितीयगण परस्मैपदी अर्यते = जगाया जाता है (देखो धातु रूप चंद्रिका पृष्ठ १६४) ऋ = अर् (गुण संज्ञा करनेसे) य कर्मणि प्रधान प्रत्यय लगानेसे अर्य हुआ पश्चात् ते प्रथम पुरुष कर्मणि प्रधान आत्मनेपदी एक वचन वर्तमान कालकी क्रियाका लगाने से अर्य+ते अर्यते प्राप्तकिया जाता है ॥

तस्मिन्निन्द्रिये सन्निकृष्यमाणे तदव्यतिरेकाद्रूपादिष्वपि सव्यवहारो युज्यते ॥ किमिमे अवग्रहादयः सर्वे स्येन्द्रियानिन्द्रियस्य भवन्ति उत कश्चिद्विषयविशेषोऽस्तीत्यत आह ॥

व्यञ्जनस्यावग्रहः ॥ १८ ॥

तस्मिन् ॥ इन्द्रिये ॥ सन्निकृष्यमाणे ॥ रूपादिषु ॥	=तिस (द्रव्य) में इन्द्रियों से संबंध होने पर (= सन्निकृष्यमाणे) रूपादिकों में
अपि॰ सन् अव्यतिरेकात् ॥ संव्यवहारः ॥	=भी उस (द्रव्य) से (उन रूपादिकोंके) अभिन्न होने (के निमित्त) से व्यवहार
युज्यते ॥	=प्रवर्तता है अर्थात् जब द्रव्य से और इन्द्रियों से संबंध होता है तब (क्योंकि रूपादिक गुण द्रव्य से सदा अभिन्न हैं) उन गुणों में ऐसा व्यवहार प्रवर्तता है कि रूप मैंने देखा या गंध मैंने सूंघा इत्यादि
किम् ॥ इमे ॥ अवग्रह आदयः ॥ सर्वस्य ॥	=(प्रश्न) क्या ये अवग्रह ईहा अवाय धारणा (=आदय) सब
इन्द्रिय अनिन्द्रियस्य ॥ भवन्ति ॥ उत॰ कश्चित्॰	=इन्द्रियों (तथा) मनके होते हैं अथवा (=उत) कोई (=कश्चित्)
विषय-विशेषः ॥ अस्ति ॥ इति॰ अतः॰ आह ॥	=विषयका भेद वा अन्तर है ? ऐसा (पूछने पर) इसलिये (आचार्य) कहते हैं कि

॥ व्यञ्जनस्यावग्रहः ॥ १८ ॥ =व्यञ्जनस्यावग्रहः (एव भवति नेहादयः)

व्यञ्जनस्य ॥ अवग्रहः ॥	=अव्यक्त या अप्रगट (जो शब्दादिक) पदार्थ है तिसका अवग्रहरूपज्ञान
एव॰ भवति ॥ न ईहा-आदयः ॥	=ही (=एव) होता है न कि ईहा अवाय और धारणारूप ज्ञान होते हैं अर्थात् इस प्रकार अवग्रह ज्ञान दो प्रकार का होता है एक तो व्यक्त प्रगट वस्तुओंके संबंध में दूसरा अव्यक्त या अप्रगट वस्तुओंके संबंधमें परंतु ईहा अवाय-धारणा ये तीन ज्ञान केवल प्रकट या व्यक्त पदार्थोंके संयोगमें होते हैं क्योंकि जब पदार्थ अधिक जानने योग्य होजाता है अथवा यों कहिये कि जब पदार्थ व्यक्त होजाता है तब व्यञ्जनावग्रह नहीं रहता है

इयर्तिपर्यायोस्तैर्वार्थ्येत इत्यर्थो द्रव्यं ।

पर्यायान्,। इयर्ति वा॰ तैः ;। अर्यते	= जो पर्यायोंको प्राप्त होता है अथवा (= वा) तिन (पर्यायों) करि (= तैः) जो प्राप्त किया जाता है ।
इति॰ अर्थः ,। द्रव्यम् ,।।।	= ऐसा अर्थ अर्थात् पदार्थ या वस्तु है (सो गुण पर्यायोंका समुदाय) द्रव्य है ।

(१) इयर्ति—यह शब्द जुहोत्यादि तीसर गणके ऋ (= जाना गमन करना) धातुके प्रथम (अन्य) पुरुष कर्तरि प्रधान परस्मैपद ए॰ वचन वर्तमान कालकी क्रियाका रूप है । यह रूप इस प्रकार बना है कि तृतीयगणके धातुओंके अन्य गणोंमें धातु कुछ नियमोंके अनुकूल दोहराया जाता है । इस ऋ धातुमें "एकाचो द्वे प्रथमस्य" ६-१-१ अष्टाध्यायी ॥ (धातुके) प्रथम एकाच (अवयव) को द्वित्व हो अर्थात् वे धातु जिनमें एक स्वर हो तो उस स्वरको दुहरा देते हैं (जैसे ऋ धातु का स्वर दोहराने से ऋ ऋ ऐसा रूप बना) यदि धातुके प्रारंभमें व्यंजन हो तो प्रारंभिक व्यंजन सहित स्वरको दोहरा देते हैं (जैसे पुष्—पोषना का पुपुष् रूप हो जाता है) ॥ श्लु (जुहोत्यादि का विकरण) पर हो (पश्चात्में आवे) तो अर्ति और पिपर्ति धातुओंके अभ्यास को इ आदेश हो जाय अर्थात् ऋ ऋ रूपके प्रथम ऋ के स्थानमें इ होवे अतः ऋ ऋ = इ ऋ (७-४-७७ अष्टाध्यायी) = इ ऋ ऋ (अभ्यासस्यासवर्णे = अभ्यासस्य-असवर्णे (य्वोरियङ्-उवङौ) = असवर्ण अच् परे हो तो अभ्यासके इवर्ण और उवर्ण को इयङ् (= इय्) उवङ् (= उव्) आदेश हो ॥६-४-७८ टिप्पणी पृष्ठ ५६से इस ऋ का गुण होकर इयृअर् ऐसा रूप हुआ इसमें प्रथम पुरुष कर्तरि प्रधान परस्मैपद एक वचन वर्तमान कालकी क्रियाका ति प्रत्यय आनेसे इयृअर ति हुआ = इयर्ति ।

(२) अर्यते—धातु ऋ (अदादि द्वितीयगण आत्मने पदी) = सोना शयन करना) के ई स्वरके स्थानमें कित् संज्ञक प्रत्ययके पहिले जिसके प्रारम्भमें य हो और धातु ऋ (प्रथम और तीसरे गणका धातु परस्मैपदी = प्राप्त करना, जाना) और जागृ (= जागना द्वितीयगण के) गुण होजाते हैं आत्मने पदका ते प्रत्यय कर्मणि प्रधानमें लगाया जाता है अतः शी द्वितीय गण आत्मनेपदी = शय्यते सुलाया जाता है ऋच्छ— द्वितीयगण परस्मैपदी अर्यते = जगाया जाता है (देखो धातु रूप चंद्रिका पृष्ठ ११५) ऋ = अर् (गुण संज्ञा करनेसे) य कर्मणि प्रधान प्रत्यय लगानेसे अर्य हुआ पश्चात् ते प्रथम पुरुष कर्मणि प्रधान आत्मनेपदी एक वचन वर्तमान कालकी क्रियाका लगाने से अर्य+ते अर्यते प्राप्तकिया जाता है ॥

तस्मिन्निन्द्रिये सन्निकृष्यमाणे तदव्यतिरेकाद्रूपादिष्वपि सव्यवहारो युज्यते ॥ किमिमे अवग्रहादय. सर्वस्येन्द्रियानिन्द्रियस्य भवन्ति उत कश्चिद्विषयविशेषोऽस्तीत्यत आह ॥

व्यञ्जनस्यावग्रहः ॥ १८ ॥

तस्मिन् ७।। इन्द्रियैः ३।।। सन्निकृष्यमाणे ७। रूपादिषु ७।	=जिस (द्रव्य) में इन्द्रियों से संबंध होने पर (= सन्निकृष्यमाणे) रूपादिकों में
अपि* तद् अव्यतिरेकात् ५। संव्यवहारः १।	=भी उस (द्रव्य) से (उन रूपादिकोंके) अभिन्न होने (के निमित्त) से व्यवहार
युज्यते T	=प्रवर्तता है अर्थात् जब द्रव्य से और इन्द्रियों से संबंध होता है तब (क्योंकि रूपादिक गुण द्रव्य से सदा अभिन्न हैं) उन गुणों में ऐसा व्यवहार प्रवर्तता है कि रूप मैंने देखा या गंध मैंने सूंघा इत्यादि
किम् १।। इम १। अवग्रह आदयः १। सर्वस्य ६।	=(प्रश्न) क्या ये अवग्रह ईहा अवाय धारणा (=आदय) सब
इन्द्रिय अनिन्द्रियस्य ६॥ भवन्ति T उत* कश्चित् *	=इन्द्रियों (तथा) मनके होते हैं अथवा (=उत) कोई (=कश्चित्)
विषय विशेषः ,। अस्ति T इति* अतः* आह T	=विषयका भेद या अन्तर है ? ऐसा (पूछने पर) इसलिये (आचार्य) कहते हैं कि
॥ व्यञ्जनस्यावग्रह. ॥ १८ ॥	=व्यञ्जनस्यावग्रह (एव भवति नेहादय)
व्यञ्जनस्य ६॥ अवग्रहः १।।।	=अव्यक्त वा अप्रगट (जो शब्दादिक) पदार्थ है तिसका अवग्रहरूपज्ञान
एव* भवति T न ईहा-आदयः १।	=ही (=एव) होता है न कि ईहा अवाय और धारणारूप ज्ञान होते हैं अर्थात् इस प्रकार अवग्रह ज्ञान दो प्रकार का होता है एक तो व्यक्त प्रगट वस्तुओंके संबंध में दूसरा अव्यक्त वा अप्रगट वस्तुओंके संबंधमें परंतु ईहा अवाय-धारणा ये तीन ज्ञान केवल प्रकट वा व्यक्त पदार्थोंके संयोगमें होते हैं क्योंकि जब पदार्थ अधिक जानने योग्य होजाता है अथवा यों कहिये कि जब पदार्थ व्यक्त होजाता है तब व्यञ्जनावग्रह नहीं रहता है

इयर्तिपर्यायांस्तैर्वाऽर्यंत इत्यर्थो द्रव्य।

पर्यायान्,॥ इयर्ति वा॰ तैः ॥ अर्यते	=जो पर्यायोंको प्राप्त होता है अथवा (=वा) तिन (पर्यायों) करि (=तैः) जो प्राप्त किया जाता है।
इति॰ अर्थः ॥ द्रव्यम् ॥॥	=ऐसा अर्थ अर्थात् पदार्थ या वस्तु है (सो गुण पर्यायोंका समुदाय) द्रव्य है।

(१) इयर्ति—यह शब्द जुहोत्यादि तीसरे गणके ऋ (=जाना गमन करना) धातुके प्रथम (अन्य) पुरुष कर्तरि प्रधान परस्मैपद ए॰ वचन वर्तमान कालकी क्रियाका रूप है। यह रूप इस प्रकार बना है कि तृतीयगणके धातुओंके रूप बनानेमें धातु कुछ नियमोंके अनुकूल दोहराया जाता है। इस ऋ धातुमें "एकाचो द्वे प्रथमस्य" ६-१-१ अष्टाध्यायी॥ (धातुके) प्रथम एकाच (अवयव) को द्वित्व हो अर्थात् वे धातु जिनमें एक स्वर हो तो उस स्वरको दुहरा देते हैं (जैसे ऋ धातु का स्वर दोहराने से ऋ ऋ ऐसा रूप बना) यदि धातुके प्रारंभमें व्यंजन हो तो प्रारंभिक व्यंजन सहित स्वरको दोहरा देते हैं (जैसे पुष्=पोसना का पुपुष् रूप हो जाता है)॥ श्लु (जुहोत्यादि का विकरण) पर हो (पश्चात्में आवे) तो अर्ति और पिपर्ति धातुओंके अभ्यास को इ आदेश हो जाय अर्थात् ऋ ऋ रूपके प्रथम ऋ के स्थानमें इ होवे अतः ऋ ऋ=इ ऋ (७-४-७७ अष्टाध्यायी)=इ य् ऋ (अभ्यासस्यासवर्णे=अभ्यासस्य-असवर्णे (अचोऽयङ्-उवङौ)=असवर्ण अच् परे हो तो अभ्यासके इवर्ण और उवर्ण का इयङ् (=इय्) उवङ् (=उव्) आदेश हो ७१-४-७८ टिप्पणी पृष्ठ ५१से इस ऋका गुण होकर इयृअर् ऐसा रूप हुआ इसमें प्रथम पुरुष कर्तरि प्रधान परस्मैपद एक वचन वर्तमान कालकी क्रियाका ति प्रत्यय जोड़नेसे इयृअर् ति हुआ=इयर्ति।

(२) [illegible] —ी)=सोना शयन करना) के ई स्वरके स्थानमें ङित् संज्ञक प्रत्ययके पहिले जिसके प्रारम्भमें

[illegible] करना, जाना) और आप (=अथवा द्वितीयगण के) गुण हटाते हैं

[illegible] यरी=घातसे सुलाया जाता है अनु=द्वितीयगण

[illegible]) य कर्मणि प्रधान प्रत्यय लगानेसे

[illegible] प्राप्तकिया जाता है॥

स तर्हि एवकार कर्तव्यो न कर्तव्य ।। सिद्धे विधिरारभ्यमाणो नियमार्थ इति अन्तरेणेवकारं नियमार्थो भविष्यति ॥ ननु अवग्रहग्रहणमुभयत्र तुल्यं तत्र किं कृतोऽय विशेषः ? ॥

सः ,। तर्हि॰ एवकार ;।	=(प्रश्न-यह सूत्र यदि) नियमार्थ (=सः) है तो (=तर्हि) एवकार
कर्तव्यः ;।	=(इस सूत्रमें) लाना चाहिये (कर्तव्यः)
	भावार्थ—जो यह सूत्र नियम वाचक है तो इसमें अवग्रह शब्दके पश्चात् "एव" शब्द लाते और सूत्र ऐसा होता "व्यंजनस्यावग्रह एव!" ॥
न॰ कर्तव्य ;।	=(उत्तर—एव इस सूत्रमें) नहीं लाना चाहिये
सिद्धेः ;।। विधिः ;।	=(सत्रहवां सूत्रमें अवग्रह शब्दका) विधान सिद्ध होने (के हेतु) से
आरभ्यमाणः ;। नियम-अर्थः ;। इति॰	=(पुनि इस सूत्र में अवग्रह शब्दका) आरम्भ किया जाना नियमके लिये है
अन्तरेण॰ एवकारम् ,।	=बिना (=अन्तरेण) एवकार (अर्थात् इस सूत्रमें बिना एव शब्द लाये हुये ही)
नियम-अर्थः ;। भविष्यति । ननु अवग्रह-ग्रहणं ,॰	=नियमके लिये (यह सूत्र) होगा। प्रश्न (=ननु) अवग्रहका लाना
उभयत्र॰ तुल्यम् ।।।	=दोनों स्थानोंमें (अर्थात् अर्थमें तथा व्यंजनमें) समान है
तत्र॰ अयम् ,।	=उस स्थानमें (=सत्र-अर्थावग्रह सूत्र १७ में और) यहां (=अयम्)
किं॰ कृतः ,। विशेषः ,। ॥	=अर्थात् (व्यंजनावग्रह सूत्र १८में) क्या विशेष, भेद या अन्तर कियागया है

(१) "इदम् (त्रि०) (अयं-पु०, इयं स्त्री०, इद-न०) यह किसी ऐसी चीज़को जतलाता है जो कहने वालेके निकट हो। यह। यहाँ" पद्म० पृष्ठ ७५। यहांके अर्थमें लिया है॥

(२) विशेषाभावे षट्त्रिंशत्त्रिशत मतिज्ञान संख्या विघटनमाविरभिप्राय पूर्वपक्षिणः।

विशेष-अभावे ,। षट्त्रिंशत्त्रिशत मतिज्ञान-संख्या विघटनात् ।।। इति अभिप्रायः ;। पूर्वपक्षिणः ;।	=(अर्थावग्रह और व्यंजनावग्रहके भेद न होनेमें तीनसौ छत्तीस मतिज्ञानके भेदोंकी) गणनाके न्यून करने (के हेतु) से है—ऐसा अभिप्राय प्रश्नकर्ता का है

यञ्जनम् यक्त शब्दादिजात तस्यावग्रहो भवति । किमर्थमिदं ? नियमार्थं, अवग्रह एव नेहादय इति।

अर्थावग्रह हो जाता है जैसे माटीके डेल अथवा नवीन मोलुआ-मटकना वा और कोई मिट्टीका नवीन भाजन लीजिये और उसमें जलके कण-बूंदें डालिये वहां दो तीन आदि कण तक सींचा हुआ गीला या आला नहीं होता है तब तक अव्यक्त है जिसको व्यंजन कहिये और वही उक्त भाजन जब धीरे धीरे (मंद मंद) गीला हो जाय तब व्यक्त होता है। वैसे ही कर्ण आदिक इन्द्रियोंके अवग्रह में शब्दादिरूप परिणमें पुद्गलके स्कन्ध दो तीन आदि समयोंमें ग्रहण हुये प्रकट ग्रहण नहीं होते हैं व्यक्त ग्रहण में नहीं आते हैं तब तक व्यंजनावग्रह है ॥ पुनि पुनि उन पुद्गल स्कन्धोंके ग्रहण होनेपर प्रगट होते हैं तब अर्थावग्रह है इस प्रकार व्यक्त ग्रहणसे पूर्व पूर्व तो व्यंजनावग्रह है व्यक्त ग्रहण होने पर वही अर्थावग्रह है इसलिये अप्रगट या अव्यक्तके ग्रहणमें अवग्रह ही होता है ईहा अवाय धारणा इन तीनोंमेंसे कोई भी नहीं होता है ॥

॥ पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित इस अठारहवां सूत्रपर संस्कृत सर्वार्थसिद्धिका शब्दश हिंदी अनुवाद ॥

व्यञ्जनम् ।।। अव्यक्तम् ।।। शब्द आदि जातम् ।।। = व्यंजन अर्थात् अप्रगट शब्दादिकों का समूह है
तस्य ।।। अवग्रह ।। भवति = तिस (व्यंजन) का अवग्रहरूप (ज्ञान) होता है
किम् ।।। अर्थम् ।।। इदम् ।।। नियम-अर्थम् ।।। = (प्रश्न) यह (अठारहवां सूत्र) किस लिये (कहागया) है । नियम के लिये है
अवग्रह ।। एव न ईहा आदय ।। इति = (अर्थात् व्यंजन का) अवग्रह (ज्ञान) ही होता है नकि ईहा अवाय धारणा ॥

स तर्हि एवकार कर्तव्यो न कर्तव्यः ।। सिद्धे विधिरारभ्यमाणो नियमार्थ इति अन्तरेणैवकारं नियमार्थो भविष्यति ॥ ननु अवग्रहग्रहणमुभयत्र तुल्यं तत्र किं कृतोऽयं विशेषः ? ॥

सः ,। तर्हि एवकारः ।। = (प्रश्न-यह सूत्र यदि) नियमार्थ (=सः) है तो (=तर्हि) एवकार

कर्तव्यः ।। = (इस सूत्रमें) लाना चाहिये (कर्तव्यः)

भावार्थ—जो यह सूत्र निश्चय वाचक है तो इसमें अवग्रह शब्दके पश्चात् "एव" शब्द लावे और सूत्र ऐसा होता "व्यंजनस्यावग्रह एव" ॥

[illegible] = (उत्तर—एव इस सूत्रमें) नहीं लाना चाहिये

[illegible] = (सत्रहवां सूत्रमें अवग्रह शब्दका) विधान सिद्ध होने (के हेतु) से

[illegible] = (पुनि इस सूत्र में अवग्रह शब्दका) आरम्भ किया जाना नियमके लिये है

[illegible] = बिना (=अन्तरेण) एवकार (अर्थात् इस सूत्रमें बिना एव शब्द लाये हुये ही)

[illegible] = नियमके लिये (यह सूत्र) होगा । प्रश्न (=ननु) अवग्रहका लाना

[illegible] = दोनों स्थानोंमें (अर्थात् अर्थमें तथा व्यंजनमें) समान है

[illegible] = उन स्थानमें (=अत्र-अर्थावग्रह सूत्र १७ में और) यहां (=अयम्)

[illegible] = भाति (व्यंजनावग्रह सूत्र १८में) क्या विशेष, भेद वा अन्तर कियागया है

[illegible] बतलाता है जो कहने हारेके हित हो। यह। यहाँ पद्य० पृष्ठ ७६।

[illegible]

अर्थावग्रहव्यञ्जनावग्रहयोर्व्यक्ताव्यक्तकृतो विशेषः । कथम् । अभिनवशरावार्द्रीकरणवत् । यथा जलकणद्वित्रिसिक्तः शरावोऽभिनवो नार्द्रीभवति, स एव पुनः पुनः सिच्यमानः शनैस्तिम्यते, एवं श्रोत्रादिष्विन्द्रियेषु शब्दादिपरिणताः पुद्गला द्वित्र्यादिषु समयेषु गृह्यमाणा न व्यक्तीभवन्ति, पुनः पुनरवग्रहे सति व्यक्तीभवन्ति ॥ अतो व्यक्तग्रहणात्प्राग्व्यञ्जनावग्रहः । व्यक्तग्रहणमर्थावग्रहः । ततोऽव्यक्तावग्रहणादीहादयो न भवन्ति

अर्थ अवग्रह-व्यंजन अवग्रहयोः ७। व्यक्त अव्यक्त	=अर्थावग्रह और व्यंजनावग्रहमें प्रगट और अप्रगट
कृतः १। विशेष १।	=कृत भेद या अन्तर है अर्थात् प्रगट पदार्थोंका ग्रहण हो सो अर्थावग्रह है और अप्रगट वस्तुओंका ग्रहण हो सो व्यंजनावग्रह है
कथम्॰ अभिनव	=(प्रश्न) किस प्रकार है (उत्तरमें कहते हैं कि) नवीन (माटीका)
शराव आर्द्रीकरणवत्॰ यथा॰ जल-	=कटोरा या सकोराके भिजोने (गीला करने)के सदृश है। जैसे जलके
कण-द्वि त्रि सिक्तः १। शरावः १। अभिनवः १। न॰ आर्द्री	=दो तीन कणसे सींचा हुआ नवीन माटीका कटोरा गीला नहीं
भवति। सः १। एव॰ पुनः॰ पुनः॰ सिच्यमानः १।	=होता है (तबतक अव्यक्त है) वो (=सः) ही (=एव) फिर फिर सींचा हुआ
शनैः॰ तिम्यते	=धीरे धीरे (=शनैः) गीला होजाता है (तब व्यक्त है)
एवं॰ श्रोत्र आदिषु ७॥ इन्द्रियेषु ७॥ शब्दादि-परिणताः १	=ऐसे कर्ण आदिक इन्द्रियों (के अवग्रह)में शब्दादिक रूप परिणम्या
पुद्गलाः १। द्वि त्रि आदिषु ७। समयेषु ७। गृह्यमाणाः १।	=पुद्गलके स्कन्ध (=पुद्गलाः) दो तीन आदिक समयोंमें ग्रहण हुये (=गृह्यमाणाः)
न व्यक्तीभवन्ति पुनः॰ पुनः॰	=प्रगट नहीं होते हैं (तबतक व्यंजनावग्रह है) वार वार
अवग्रहे, सति ७ व्यक्तीभवन्ति।	=(उन पुद्गलस्कन्धोंके) ग्रहण (=अवग्रह) होनेपर प्रगट होते हैं (तब अर्थावग्रह होता है)॥
अतः॰ व्यक्त-ग्रहणात् ५॥ प्राग् व्यंजन अवग्रहः १।	=इसलिये प्रगट ग्रहणसे पहिले पहिले व्यंजनावग्रह है
व्यक्त-ग्रहणम् १॥ अर्थ अवग्रहः १। ततः अव्यक्त-	=प्रगटका ग्रहण (है सो) अर्थावग्रह है। तिससे अप्रगटके
अवग्रहणात् ५॥ ईहा आदयः १। न भवन्ति	=ग्रहणसे ईहा-अवाय धारणा नहीं होते हैं

सर्वेन्द्रियाणामविशेषेण व्यञ्जनावग्रहप्रसंगे यत्रासम्भवस्तदर्थप्रतिषेधमाह –

न चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम् ॥ १९ ॥

सर्व–इन्द्रियाणाम् ६/३ अविशेषेण ३/१ व्यञ्जनावग्रह–	= (पूर्वोक्त कथन में) विशेष न होनेसे समस्त इन्द्रियों के व्यञ्जनावग्रहका
प्रसंगे ७/१ यत्र०	= संयोग वा सम्बन्ध आनेपर जहां (जिस जिस इंद्रियमेंव्यंजनावग्रह)
असम्भवः १/१ तद्–अर्थम् ४/१ प्रतिषेधम् २/१ आह T	= असम्भव है। तिस (व्यञ्जनावग्रह) के लिये निषेध (को) करते हैं कि
सूत्रम्–न चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम् ॥ १९ ॥	= (व्यजनस्यावग्रहो) न(भवति) चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम्
सूत्रार्थ–चक्षुर्–अनिन्द्रियाभ्याम् ३/२	= नेत्रइन्द्रिय और अनिन्द्रिय (मन,ईषत् इन्द्रिय, नो इन्द्रिय वा अन्तःकरण) से
व्यजन–अवग्रह १/१ न० भवति T	= अप्रगट पदार्थों का वा अव्यक्त वस्तुओं का अवग्रहरूप ज्ञान नहीं होता है।
	(किंतु स्पर्शन-रसन-घ्राण श्रोत्र इनचार इन्द्रियों द्वारा व्यंजनावग्रह होता है)

व्याख्या – उपयुक्त अर्थ से प्रगट है कि 'न चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम्" सूत्र में "व्यञ्जनस्यावग्रह" अठारहवां समस्त सूत्र की अनुवृत्ति आती है और उन्नीसवां सूत्र अठारहवां सूत्र का अपवाद है अर्थात् व्यञ्जनस्यावग्रह सूत्र से यह झलकता है कि पांच इन्द्रिय और छठवां मन इन छहो द्वारा अप्रगट पदार्थों का अवग्रहरूप ज्ञान होता है। यह सूत्र उपयुक्त सूत्र का केवल इतना विरोधक है कि व्यञ्जन (अप्रगट) पदार्थों का अवग्रहरूपज्ञान नेत्र और मन को छोड़कर अवशेष स्पर्शन-रसन-घ्राण-श्रोत्र चार इन्द्रियों द्वारा (अवग्रह रूप ज्ञान) होता है। ध्यान रहे कि व्यञ्जन पदार्थ के ईहा आवाय धारणा किसी भी इन्द्रिय से

व्यक्त हो जावे उसको व्यक्ती भवति और व्यक्ती भवति कहते हैं। अष्टाध्यायी ५-४-५० सूत्र से अभूततद्भावे कृभ्वस्तियोगे संपद्यकर्तरिच्विः = अभूततद्भावे कृ-भू-अस्ति-योगे सम्पद्यकर्तरि च्विः = सम्पद्य कर्ता में (वर्तमान प्रातिपदिक से) कृ (=करना) भू (=होना) अस्ति (होना) के योग में च्वि (=ई) प्रत्यय हो जो अवस्था प्रथम न थी उसके हो जाने पर (च्वि प्रत्यय हो) इसलिये आर्द्र+ई भवति, आर्द्र करोति, व्यक्त ई भवति क्रम से हुये। अस्य च्वौ सूत्र (७—४—३२) द्वारा = अस्य च्वौ (ई)॥ च्विके पहिले अंग के अन्त अ के स्थान में ई हो, अतः आर्द्री भवति आर्द्री करोति, व्यक्ती भवति रूप हुये—(२) दोनों समास में इस सूत्र का पाठ तर अर्थ एक है।

अर्थावग्रहव्यञ्जनावग्रहयोर्व्यक्ताव्यक्तकृतो विशेष. । कथम् । अभिनवशरावार्द्रीकरणवत् । यथा जल कणद्वित्रिसिक्त. शरावोऽभिनवो नार्द्रीभवति, स एव पुन पुन' सिच्यमान शनैस्तिम्यते, एव श्रोत्रादिष्विन्द्रियेषु शब्दादिपरिणता पुद्गला द्वित्र्यादिषु समयेषु गृह्यमाणा न व्यक्तीभवन्ति, पुन पुनरवग्रहे सति व्यक्तीभवन्ति ॥ अतो व्यक्तग्रहणात्प्राग्व्यञ्जनावग्रह । व्यक्तग्रहणमर्थावग्रह । ततोऽव्यक्तावग्रहणादीहादयो न भवन्ति

अर्थ अवग्रह-व्यंजन-अवग्रहयो ६। व्यक्त-अव्यक्त	=अर्थावग्रह और व्यंजनावग्रहमें प्रगट और अप्रगट
कृत' १। विशेष १।	=कृत भेद वा अन्तर है अर्थात् प्रगट पदार्थोंका ग्रहण हो सो अर्थावग्रह है और अप्रगट वस्तुओंका ग्रहण हो सो व्यंजनावग्रह है
कथम्० अभिनव-	=(प्रश्न) किस प्रकार है (उत्तरमें कहते हैं कि) नवीन (माटीका)
शराव आर्द्रीकरणवत्० यथा० जल-	=कटोरा वा सकोराके भिजोने (गीला करन)के सदृश है। जैसे जलके
कण-द्वि-त्रि-सिक्तः १। शराव' १। अभिनव' १। न० आर्द्री	=दो तीन कणसे सींचा हुआ नवीन माटीका कटोरा गीला नहीं
भवति। स' १। एव० पुन' ० पुन' ० सिच्यमान' १।	=होता है (तबतक अव्यक्त है) सो (=सः) ही (=एव) फिर फिर सींचा हुआ
शनै ० तिम्यते	=धीरे धीरे (=शनैः) गीला होजाता है (तब व्यक्त है)
एवं० श्रोत्र आदिषु ७॥ इन्द्रियेषु ७॥ शब्दादि-परिणताः	=ऐसे कर्ण आदिक इन्द्रियों (के अवग्रह)में शब्दादिक रूप परिणम्या
पुद्गला' १। द्वि त्रि-आदिषु। समयेषु। गृह्यमाणाः १।	=पुद्गलके स्कन्ध (=पुद्गलाः) दो तीन आदिक समयोंमें ग्रहण हुये (=गृह्यमाणाः)
न व्यक्तीभवन्ति पुन' ० पुन' ०	=प्रकट नहीं होते हैं (तबतक व्यंजनावग्रह है) बार बार
अवग्रहे। सति ७। व्यक्तीभवन्ति।	=(उन पुद्गलस्कन्धोंके) ग्रहण (=अवग्रह) होनेपर प्रगट होते हैं (तब अर्थावग्रह होता है)॥
अत' ० व्यक्त-ग्रहणात् ५॥ प्राग्-व्यंजन अवग्रहः १।	=इसलिये प्रगट ग्रहणसे पहिले पहिले व्यंजनावग्रह है
व्यक्त-ग्रहणम् १॥ अर्थ-अवग्रह' १। तत' अव्यक्त-	=प्रगटका ग्रहण (है सो) अर्थावग्रह है। तिससे अप्रगटके
अवग्रहणात् ५॥ ईहा आदयः १। न भवन्ति।	=ग्रहणसे ईहा-अवाय धारणा नहीं होते हैं

(१३) रासन बहु व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान।
(१५) रासन बहुविध व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान।
(१७) रासन क्षिप्र व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(१९) रासन अनिसृत व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२१) रासन अनुक्त व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२३) रासन ध्रुव व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२५) घ्राणज बहु व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२७) घ्राणज बहुविध व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२९) घ्राणज क्षिप्र व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान।
(३१) घ्राणज अनिसृत व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(३३) घ्राणज अनुक्त व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(३५) घ्राणज ध्रुव व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(३७) श्रावण बहु व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(३९) श्रावण बहुविध व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(४१) श्रावण क्षिप्र व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(४३) श्रावण अनिसृत व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(४५) श्रावण अनुक्त व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(४७) श्रावण ध्रुव व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान

(१४) रासन अल्प व्यंजन का अवग्रह रूप मतिज्ञान।
(१६) रासन अल्पविध व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान।
(१८) रासन अक्षिप्र व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान।
(२०) रासन निसृत व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२२) रासन उक्त व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२४) रासन अध्रुव व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२६) घ्राणज अल्प व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२८) घ्राणज अल्पविध व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(३०) घ्राणज अक्षिप्र व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान।
(३२) घ्राणज निसृत व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(३४) घ्राणज उक्त व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(३६) घ्राणज अध्रुव व्यंजन की अवग्रहरूप मतिज्ञान
(३८) श्रावण अल्प व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(४०) श्रावण अल्पविध व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(४२) श्रावण अक्षिप्र व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(४४) श्रावण निसृत व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान।
(४६) श्रावण उक्त व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(४८) श्रावण अध्रुव व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान।

मतिज्ञान के २८८ भेद पृष्ठ ३७० से ३७८ तक लिखे ४८ भेद ये हुये ऐसे ३३६ भेद सर्व मिलकर हुये।

पदच्छेद और विभक्तयर्थ सहित इस (उन्नीसवां) सूत्र पर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दश भाषानुवाद॥

नहीं होवे । क्योंकि व्यंजन पदार्थ का अवग्रहरूप ज्ञान ही होता है ईहा आवाय धारणा कदापि नहीं हो सकते । प्रश्न—नेत्र इन्द्रिय और मन अनिन्द्रिय द्वारा व्यंजन वा अव्यक्त पदार्थ का अवग्रहरूप ज्ञान क्यों नहीं होता है? उत्तरः— क्योंकि "नेत्र इन्द्रिय और मन ए दोऊ पदार्थनिकैं भिडकरि नाहीं जानें हैं अपने विषय कूं दूरि ही तें जानें हैं यातें ए दोऊ इन्द्रिय अप्राप्यकारी हैं ॥ जैसे नेत्र आपके मध्य तिष्ठता अञ्जनकूं नाहीं जानें हैं दूरि ही तिष्ठता पदार्थ कू जानें हैं ॥ अर मन है सोहू दूरि तिष्ठता पदार्थ कू विचार में ले है । ऐसें नेत्र अर मन ए दोऊ अप्राप्यकारी हैं" अर्थ प्रकाशिका पृष्ठ ९६ ॥ अप्राप्यकारी = पदार्थों से भिडकर स्पर्शनकरि नहीं जानते हैं दूरि ही से जानते हैं ॥ इन दोनों सूत्रों का सार यह है कि 'अव्यक्त पदार्थों का अवग्रहरूप ज्ञान भी केवल स्पर्शन, रसन, घ्राण और श्रोत्र द्वारा होता है और इनका फल यह हुआ कि स्पर्शन, रसन, घ्राण, और श्रोत्र इन चार ही इन्द्रियों से व्यंजनावग्रह वा अव्यक्त पदार्थों का अवग्रहरूप ज्ञान होता है और व्यंजन वा अप्रगट पदार्थों के ईहा, अवायरूप, और धारणारूप ज्ञान नहीं होते हैं इसलिये स्पर्शन, रसन, घ्राण और श्रोत्र इन प्रत्येक इन्द्रियों से प्राप्त हुये व्यंजनावग्रहरूप ज्ञान को बहु एक [अल्प] बहुविध, एकविध, क्षिप्र, अक्षिप्र, अनिःसृत, निःसृत, अनुक्त, उक्त ध्रुव, अध्रुव, में से पृथक् २ पर लगाने से व्यंजनावग्रह [अर्थात् अप्रगट पदार्थ के अवग्रहरूप ज्ञान] के निम्न लिखित अडतालीस भेद होते हैं —

(१) स्पार्शन बहुव्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान ।	(२) स्पार्शन अल्प व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान ।
(३) स्पार्शन बहुविध व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान ।	(४) स्पार्शन अल्पविध व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान ।
(५) स्पार्शन क्षिप्र व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान ।	(६) स्पार्शन अक्षिप्र व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान ।
(७) स्पार्शन अनिःसृत व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान ।	(८) स्पार्शन निःसृत व्यंजन अवग्रहरूप मतिज्ञान ।
(९) स्पार्शन अनुक्त व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान ।	(१०) स्पार्शन उक्त व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान ।
(११) स्पार्शन ध्रुव व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान ।	(१२) स्पार्शन अध्रुव व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान ।

(१३) रासन बहु व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान।
(१५) रासन बहुविध व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान।
(१७) रासन क्षिप्र व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(१९) रासन अनिसृत व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२१) रासन अनुक्त व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२३) रासन ध्रुव व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२५) घ्राणज बहु व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२७) घ्राणज बहुविध व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२९) घ्राणज क्षिप्र व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान।
(३१) घ्राणज अनिसृत व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(३३) घ्राणज अनुक्त व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(३५) घ्राणज ध्रुव व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(३७) श्रावण बहु व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(३९) श्रावण बहुविध व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(४१) श्रावण क्षिप्र व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(४३) श्रावण अनिसृत व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(४५) श्रावण अनुक्त व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(४७) श्रावण ध्रुव व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान

(१४) रासन अल्प व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान।
(१६) रासन अल्पविध व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान।
(१८) रासन अक्षिप्र व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान।
(२०) रासन निसृत व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२२) रासन उक्त व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२४) रासन अध्रुव व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२६) घ्राणज अल्प व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(२८) घ्राणज अल्पविध व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(३०) घ्राणज अक्षिप्र व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान।
(३२) घ्राणज निसृत व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(३४) घ्राणज उक्त व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(३६) घ्राणज अध्रुव व्यंजन की अवग्रहरूप मतिज्ञान
(३८) श्रावण अल्प व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(४०) श्रावण अल्पविध व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(४२) श्रावण अक्षिप्र व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(४४) श्रावण निसृत व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान।
(४६) श्रावण उक्त व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान
(४८) श्रावण अध्रुव व्यंजन का अवग्रहरूप मतिज्ञान।

मतिज्ञान के २८८ भेद पृष्ठ २७० से ३०८ तक लिखे ४८ भेद ये हुये ऐसे ३३६ भेद सर्व मिलकर हुये।

पदच्छेद और विभक्तयर्थ सहित इस (उन्नीसवां) सूत्र पर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दश भाषानुवाद॥

चक्षुषा अनिन्द्रियेण च व्यजनावग्रहो न भवति। कुत ?। अप्राप्यकारित्वात् ॥ यतोऽप्राप्तमर्थमविदिक्षं युक्तसन्निकर्षविशेषेऽवस्थितं बाह्यप्रकाशाभिव्यक्तमुपलभते चक्षुः, मनश्चाप्राप्तमतो नानयोर्व्यंजनावग्रहोऽस्ति ॥ चक्षुषोऽप्राप्यकारित्वं कथमध्यवसीयते ?। आगमतो युक्तितश्च ॥ आगमतस्तावत्—

चक्षुषा ३/३ च अनिन्द्रियेण ३/३ व्यंजन-अवग्रह १/१ = नेत्र से और (= च) अन्तः करण से अप्रगट वस्तु का अवग्रहरूप ज्ञान (भी)
न भवति T कुतः* अप्राप्यकारित्वात् ५/३ = नहीं होता है। (प्रश्न) क्योंकर ? अस्पर्शक्रियापन से अर्थात् नेत्र और मन
ये दोनों बिना स्पर्श किये हुये या बिना भिड़ हुये [दूरही से] पदार्थ को ग्रहण करते हैं।
यत अप्राप्तम् २/१ अर्थम् २/१ अविदिक्षम् २/१ = क्योंकि बिना स्पर्श हुये (वस्तु) को (अप्राप्तम्) सन्मुख आये हुये को (अविदिक्षं)
युक्त-सन्निकर्ष—विशेष ७/१ अवस्थितम् २/१ = उचित (= युक्त) निकटता के विशेष में (= सन्निकर्षविशेष) ठहरे हुये (अवस्थितं)
बाह्य-प्रकाश अभिव्यक्तम् २/१ चक्षु १/३ = [और] बाह्य उजालाकरि प्रगट किये गये को [= अभिव्यक्तं] नेत्र (इंद्रिय)
उपलभते T; च* मनस् १/३ अप्राप्तम् २/१ = माने है (= उपलभते) और अन्तःकरण बिनास्पर्श हुये को वा दूर तिष्ठ हुये को
(उपलभते) अतः* अनयोः ६/३ = (विचार में लेता है) इसलिये इन (नेत्र और मन) दोनों में
व्यंजन-अवग्रह १/१ न* अस्ति T = व्यंजनावग्रह (= अव्यक्त पदार्थ का अवग्रहरूप ज्ञान) नहीं होता है
चक्षुषः ६/३ अप्राप्यकारित्वम् १/३ कथम् अध्यवसीयते T = (प्रश्न) नेत्र के अप्राप्यकारीपना कैसे निश्चय किया गया है ('अध्यवसीयते')
आगमत युक्तित च* आगमतः* ॥ तावत् = (उत्तर) शास्त्रसे और न्याय वा अनुमान से प्रथम (= तावत्) शास्त्रद्वारा ऐसे है कि

---

[१] अप्राप्य कारित्वात्—यह शब्द अ + नहीं, प्राप्य = गम्य, पहुँचने योग्य, कारि (क्रीडित) + क्रियो, त्व + पन वा औ भाववाची प्रत्यय है
त है आत पंचमी विभक्ति अपादानका चिन्ह जोड़नेसे अ + प्राप्यकारि + त्व + आत् = अप्राप्यकारित्वात् = अर्थात् क्रियापनसे अस्पर्श क्रियापन से
[२] अप्राप्तं—अविदिक्षं—अवस्थितं—अभिव्यक्तं ये "अर्थम्" शब्दके विशेषण हैं इन अर्थ के आगे अर्थम् शब्द का बोध जानना ॥

पुठ्ठ सुणोदि सद्दं अपुट्ठं चेव (१)पस्सदे रूवम् । फासं रसं च गन्धं बद्धं पुट्ठं च (२)आणीहि
युक्तिश्च—अप्राप्य-कारि चक्षुः स्पृष्टानवग्रहात् । यदि प्राप्यकारि स्यात् त्वगिन्द्रियवत्

पुट्ठं। सुणोदि। सद्दं ।[=स्पृष्टं। शृणोति। शब्दं।] = स्पर्श हुये शब्द को सुनता है
{अपुट्ठं चेव पस्सदे रूवम् ।।। अस्पृष्टं।।। च एव पश्यते रूपम् ।।।} = और [= च] विना स्पर्श हुए ही [= एव] अर्थात् विना स्पर्श किये हुये ही रूप को देखता है
फासं।रसं।च गन्धं ।[= स्पर्शं। रसं। च गन्धं।] = स्पर्श को रस को और गन्ध को
बद्धं।पुट्ठं ।च(२ आणीहि [बद्धं ।स्पृष्टं ।च जानाति) = बन्ध [बन्धन] से और [= च] स्पर्श से जानता है
युक्तिः च स्पृष्ट अन्-अवग्रहात्। = और अनुमान से स्पर्श हुये या मिले हुये [पदार्थ] को न जानने के हेतु से
अप्राप्यकारि।।। चक्षुः।।। = नेत्र [इन्द्रिय] अप्राप्यकारी है अर्थात् नेत्र विना स्पर्श किये हुये या विना मिले हुये [दूर ही से] पदार्थ को ग्रहण करता है
यदि प्राप्यकारि ।।। स्यात् त्वक्-इन्द्रियवत् = जो [नेत्र इन्द्रिय] प्राप्यकारी होती [तो] त्वचा या स्पर्श इन्द्रिय के सदृश

---

(१) दृश् धातु भ्वादि प्रथम गणका है उसका रूप कर्तरि प्रयोगमें 'पश्य' होजाता है। अ विकरण या चिन्ह भ्वादिगणका लगानेसे 'पश्य' हो जाता है यह धातु उभय पदी है और परस्मैपदी है। प्रथमपुरुष या अन्यपुरुष एकवचन आत्मनेपदी कर्तरिप्रधान वर्तमान क्रियाका ते प्रत्यय लगानेसे पश्य+ते = पश्यते (= देखता है) बनजाता है। इसी प्रकारसे प्रथमपुरुष एक वचन परस्मैपद कर्तरि प्रधान वर्तमानक्रिया का ति प्रत्यय लगानेसे पश्य+ति = पश्यति बन जाता है परन्तु ध्यानरहे कि कर्मणि प्रयोगमें दृश् इसी रूपमें यक् (= य) प्रत्यय लगानेसे दृश्य हो जाता है पुनः त आत्मने पद लगाकर दृश्य+ते = दृश्यते = देखाजाता है देखा गया है बनजाता है। (देखो धातुरूप चन्द्रिका पृष्ठ ५०१ जिसमें 'पश्यति' और पश्यते दोनों रूप दिये हैं)॥

(२ जानाति— ज्ञा (= जानना) धातु क्र्यादि नवमगणका धातु है प्रत्ययसे प्रथम इस गणके धातुओंमें ना जोड़ा जाता है। ज्ञा जनोर्जा (शिति ७।३।७९ अष्टाध्यायी—शित प्रत्यय पर हो तो ज्ञा और जन् धातुओंको जा आदेश हो (= शिति आदेशः 'जा')॥ परन्तु ना में आ या ई उसके स्थानमें ई रहते हैं यदि व्यञ्जनादि हलक प्रत्यय ना के पश्चात् का हो जा+ना+ति = जा+नी+ति = जानीति बन गया॥

स्पृष्टमञ्जनं गृह्णाति। न तु गृह्णात्यतो मनोवदप्राप्यकारीत्यवसेयम्। ततश्चक्षुर्मनसी वर्जयित्वा शेषाणामिन्द्रियाणां व्यञ्जनावग्रहः। सर्वेषामिन्द्रियानिन्द्रियाणामर्थावग्रह इति सिद्धम्॥

आह निर्दिष्टं मतिज्ञानं लक्षणतो विकल्पतश्च, तदनन्तरमुद्दिष्टं यत् श्रुतं तस्येदानीं लक्षणं विकल्पश्च वक्तव्य इत्यत आह॥

स्पृष्ट ॥ अञ्जनं ॥ [१]गृह्णाति	= स्पर्शहुये अर्थात् आँख में लगाये हुवे अंजन को ग्रहण करती वा देखती
न॰ तु॰ गृह्णाति अतः	= किन्तु [आँख] नहीं ग्रहण करती है अर्थात् नहीं देखती है। इसलिये
मनोवत्॰ अप्राप्यकारि ॥ इति अवसेयम् ॥	= अन्त करण सदृश अप्राप्यकारी है इस प्रकार निश्चय या प्रतीति करना चाहिये
ततः चक्षुर्मनसी ॥ वर्जयित्वा + शेषाणाम् ॥	= तिससे [= ततः] नेत्र [और] मन को छोड़कर अवशेष या बची हुई
इन्द्रियाणाम् ॥ व्यञ्जन अवग्रहः ॥	= [चार स्पर्शन-रसन-घ्राण श्रोत्र] इन्द्रियों का व्यंजनरूप अवग्रह होता है
सर्वेषाम् ॥ इन्द्रिय अनिन्द्रियाणाम् ॥	= सब [स्पर्शन-रसन-घ्राण-नेत्र-श्रोत्र] इन्द्रियों का और मन का
अर्थ अवग्रहः ॥ इति सिद्धम् ॥	= अर्थावग्रहरूप ज्ञान होता है ऐसा सिद्ध होगया है
आह मतिज्ञानम् ॥ लक्षणतः च विकल्पतः	= [शिष्य] पूछता है कि मतिज्ञान स्वरूपसे और [= च] भेद से
निर्दिष्टम् ॥ तद् अनन्तरम् ॥	= कहा गया है उस मतिज्ञान के निकट [अर्थात् नवमां सूत्र में]
यत् ॥ श्रुतम् ॥ उद्दिष्टम् ॥ तस्य ॥ इदानीम्	= जो [= यत्] श्रुतज्ञान उपदेश्या गया है तिस [श्रुतज्ञान] का अब [= इदानीम्]
लक्षणम् ॥ विकल्पः । च वक्तव्यः ॥ इति अतः आह	= स्वरूप और भेद कहना योग्य है। ऐसा [प्रश्न होने पर] इसलिये कहते हैं कि

(१) यह कगादि नाम गणका आरम्भ[illegible] और [illegible] धातु है। अष्टाध्याय अध्याय १ पाद २ सू॰ १९। [illegible] सूत्र [illegible] कि[illegible] (= किङि) से अर्थात् कित् और ङित् प्रत्यय परे हो तो यदि [illegible] और [illegible] धातुओंके य् ए् इ॰ अनुक्रमसे इ उ [illegible] हो जावें। इसलिये यहां पर [illegible] गृह् हो गया क्यों कि धातु प्रथमपुरुष (या अन्य पुरुष) एक वचन परस्मैपद [illegible] प्रधान [illegible] क्रियाका ङित् प्रत्यय है। [illegible] गृह + धातु ऐसा [illegible] [illegible] लगता है [illegible] है (देखो पृ॰ [illegible]) गृह् + ना + धातु (न [illegible] देखो पृ॰ [illegible]) [illegible]

श्रुत मतिपूर्वं द्व्यनेकद्वादशभेदम् ॥ २० ॥

श्रतशब्दोऽयं श्रवणमुपादाय व्युत्पादितोऽपि रूढिवशात्

श्रुत मतिपूर्वं द्व्यनेकद्वादशभेदम् ॥ २० ॥

(१) श्रुतम् ।।। मतिपूर्वम् ।।। = श्रुतज्ञान मतिज्ञान पूर्वक (मतिज्ञान निमित्तक, मतिज्ञानकारणक, मतिज्ञानजन्य है अर्थात् मतिज्ञान है निमित्त वा कारण अथवा उत्पन्न करनेवाला जिसको सो श्रुतज्ञान है भावार्थ श्रुतज्ञान को मतिज्ञान उत्पन्न करता है और श्रुतज्ञान मतिज्ञान के पश्चात होता है

द्व्यनेकद्वादशभेदम् ।।। = (वह श्रुतज्ञान) दो (अंग बाह्यरूप और अंगप्रविष्टरूप) है । बहुत और बारह प्रकार है अर्थात् अंगबाह्य और अंगप्रविष्टरूप जो श्रुतज्ञान है उनमें से अंगबाह्य अनेक प्रकार हैं । अंगबाह्य चौदह प्रकीर्णक हैं और आचारांग सूत्र कृतांगादि बारह अंग प्रविष्ट हैं

य ।। श्रुतशब्द ।। श्रवणम् ।। = यहां श्रुत शब्द सुनने को

उपादाय ॥ व्युत्पादित ।। अपि ॥ = ग्रहण करके उत्पन्न हुआ है तो भी (= अपि)

रूढिवशात् ।। = रूढि या प्रसिद्धि के वशसे अथवा बलसे

(१) दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदायों में इस सूत्रका पाठ और सामान्य अर्थ भी एकसा है परन्तु अंग बाह्य के जो अनेक भेद हैं उनमें भेद है

श्वे० सं० के अंग बाह्यों के उदाहरण		दि० आ० के अंगबाह्योंके उदाहरण	
१) सामायिक	प्रकीर्णक	(१) सामायिक	प्रकीर्णक
२) चतुर्विंशतिस्तव	प्रकीर्णक	(२) संस्तव	प्रकीर्णक
३] स्तोत्र वन्दन	प्रकीर्णक	(३) वन्दना	प्रकीर्णक
४) प्रतिक्रमण	प्रकीर्णक	(४) प्रतिक्रमण	प्रकीर्णक

५) काय व्युत्सर्ग प्रकीर्णक अर्थात् ( )
किये हुये पापको शुभ्र ... शरीर के त्याग से वर्णन की गई है
(६) ... (६) ... प्रका...

श्वे० आ० अंग बाह्य के उदाहरण	दिग० अंग बाह्य के उदाहरण
(७) उत्तर अध्याय	(८) उत्तराध्ययन
(८) दशा	
(९) कल्प (१०) व्यवहार	(९) कल्प व्यवहार
(११) निशीथि इत्यादि	(१४) निषिधिका

ऋषियों से भाषित अनेक (विनय प्र०) कृतिकर्म प्र०
... प्रकार का अंग ... है देखो कल्पाकल्प प्र० महाकल्प प्र०
समाप्यवरणाधिगमसूत्र पृष्ठ २० पुण्डरीक प्र० महापुण्डरीक प्र० करें

कस्मिंश्चिज्ज्ञानविशेषे वर्तते ॥ यथा कुशलवनकर्म प्रतीत्य व्युत्पादितोऽपि कुशलशब्दो रूढिवशात्पर्यवदाते वर्तते ॥ क पुनरसौ ज्ञानविशेष इति अत आह "श्रुतं मतिपूर्वमिति" श्रुतस्य प्रमाणत्वं पूरयतीति पूर्वं निमित्तं कारणमित्यनर्थान्तरम् ॥

कस्मिन्-चित् ० ज्ञान-विशेषे । वर्तते T	= कोई एक (= कस्मिंश्चित्) ज्ञानके विशेषमें प्रवर्तता है अर्थात् श्रुतशब्द सुननेके अर्थमें व्याकरणकी रीतिसे आता है तौभी रूढिवशसे एक ज्ञानका नाम है
यथा कुशलवन कर्म प्रतीत्य ॥ व्युत्पादितः ॥	= जैसे कुशल डाभ वा कोश(= कुश) काटनेकी क्रियामें निश्चय कर व्युत्पन्न हुआ है
अपि, कुशलशब्दः ॥ रूढिवशात् ॥ पर्यवदाते ॥ वर्तते T	= तौभी (= अपि) कुशलशब्द रूढिके बलसे बहुत प्रवीण वा चतुर पुरुषकेअर्थ में
	= प्रवर्तता है भावार्थ जैसे कुशलशब्द व्याकरण की रीतिसे डाभके काटनेके अर्थमें आता है तौभी रूढिके बलसे बहुत चतुर पुरुषके अर्थमें प्रयोग किया जाता है ऐसे श्रुत शब्द यद्यपि सुनने के अर्थ व्याकरणानुकूल आता है तौभी रूढिकी सामर्थ्यसे एक ज्ञानका नाम है
पुनः क ॥ असौ । ज्ञान-विशेषः ॥ इति अतः आह T	= और यह श्रुत कौनसा (= कः) ज्ञानविशेष है ऐसा(प्रश्न होने पर)अब कहते हैं
श्रुतम् ॥ मतिपूर्वम् ॥ इति श्रुतस्य ॥ प्रमाणत्वम् ॥	= श्रुत है सो मतिपूर्वक है ऐसे श्रुतके प्रमाणरूप ज्ञानपना है ॥
पूरयति ॥ इति पूर्वं ॥ निमित्तम् ॥ कारणम् ॥	= जो पूरे है उत्पत्ति करे है ऐसा पूर्व होता है निमित्त है कारण है
इति, अन् अर्थ-अन्तरम् ॥	= इसप्रकार (इन तीनों पूर्व निमित्त-कारण शब्दोंमें) अर्थभेद नहीं है

(१ कस्मिंश्चित्– मन्तका म् जब उसके पश्चात् च्, छ्, त थ् और ट् ठ् आवे तो (यह म्) अनुस्वार और विसर्ग (स्में) पलट जाता है इसलिये कस्मिन् + चित् = कस्मिंश्चित् यह विसर्ग वर्तमान व्याकरणके निम्नलिखित नियमानुसार 'श्' में परिवर्तित हो जाता है– विसर्गके पश्चात् यदि च् छ् हो तो विसर्ग 'श्' में यदि त थ् हो तो स् में और यदि ट् ठ् हो तो 'ष्' में पलट जाता है जैसे हरिः चरति = हरिश्चरति (= हरि चलता है) रामः तरति = रामस्तरति (राम तरता है पार जाता है) । रामः टीकते = रामष्टीकते ॥(राम फिरता है।) इसलिये "कस्मिन् चित्" का रूप "कस्मिंश्चित्" हो गया

मतिर्निर्दिष्टा। मति पूर्वमस्य मतिपूर्वं मतिकारणमित्यर्थः ॥ यदि मतिपूर्वं श्रुतं तदपि मत्यात्मकं प्राप्नोति कारणसदृशं हि लोके कार्यं दृष्टमिति। नैतदैकान्तिकम्। दण्डादिकारणोऽयं घटो न दण्डाद्यात्मकः। अपि च सति तस्मिन् तदभावात् सत्यपि मतिज्ञाने बाह्यश्रुतज्ञाननिमित्तसन्निधानेऽपि प्रबल श्रुतावरणोदयस्य श्रुताभाव

मतिः ।। निर्दिष्टा ३।। मतिपूर्वम् १।।। अस्य ३।। मति-	= मतिज्ञान [पहिले] कहा गया है। मति है कारण जिसका [= अस्य] सो मति
पूर्वम् १।।। मति-कारणम् ३।।। इति ⊛ अर्थः १।	= पूर्व है। मतिकारणक वा मतिनिमित्तक है ऐसा अर्थ वा अभिप्राय है।
यदि ⊛ मतिपूर्वम् ३।।। श्रुतम् १।।। तद् १।।। अपि ⊛	= [प्रश्न] जो [= यदि] मतिज्ञान निमित्तक वा जन्य श्रुतज्ञान है [तो] वह [श्रुतज्ञान] भी
मति-आत्मकम् १।।। प्राप्नोति T हि ⊛ लोके ३।। कारण-	= मतिस्वरूप को प्राप्त होता है। क्योंकि [= हि] जगत में कारण के
सदृशम् ३।।। कार्यम् ३।।। दृष्टम् ३।।। इति ⊛	= समान कार्य ऐसा देखा जाता है।
एतद् ३।।। एकान्तिकम् ३।।। न ⊛	= [उत्तर] यह एकान्त वा अवश्य होनेवाला नियम नहीं है ॥
	यह भावार्थ है कि यह नियम कि कारण के समान ही कार्य होता है सर्वत्र ठीक नहीं है कहीं कहीं पर कार्य कारण के सदृश नहीं भी होता है जैसे
अयम् ३।। घटः १। दण्ड आदि-कारणः ३।। दण्ड-आदि	= यह घट दण्ड [चाक] आदि निमित्तक है [परन्तु] दंड चाक आदिके
आत्मकः ३।। न ⊛	= स्वरूप [पूर्वोक्त घट] नहीं है अर्थात् घड़ाके बनानेके लिये दंड चाक आदिक कारण हैं परन्तु यह उत्पन्न हुआ घट दंड चाक आदिके समान नहीं है भिन्नस्वरूप ही है
च ⊛ तस्मिन् १।।। सति ३।।। अपि ⊛	= और क्योंकि उस [मतिज्ञान] के अस्तित्वमें वा विद्यमानता में भी
तद् अभावात् ३।। सति ३।।। अपि ⊛ मतिज्ञाने १।।।	उस श्रुतज्ञानका अभाव [रहता] है [अर्थात्] मतिज्ञान होने पर भी
बाह्य-श्रुतज्ञान-निमित्त-सन्निधाने १। अपि ⊛	बाह्यमें श्रुतज्ञानके [अन्य अन्य] निमित्त निकट होने पर भी [जैसे गुरुउपदेशादि]
प्रबल-श्रुतावरण-उदयस्य ३।। श्रुत-अभावः ३।।	= श्रुतज्ञानावरण कर्मका प्रबल उदय वाले [जीव] के श्रुतज्ञान नहीं होता है

(१) सर्वार्थ सिद्धि संस्करणके प्रथम संस्करणमें 'तदभावात्' के स्थानमें तथापात् अशुद्ध छप गया है॥

कस्मिंश्चिज्ज्ञान विशेष वर्तते ॥ यथा कुशललवनकर्म प्रतीत्या व्युत्पादितोऽपि कुशलशब्दो रूढिवशात्पर्यवदाते वर्तते ॥ क पुनरसौ ज्ञानविशेष इति अत आह "श्रुत मतिपूर्वमिति' श्रुतस्य प्रमाणत्वं पूरयतीति पूर्वं निमित्तं कारणमित्यनर्थान्तरम् ॥

कस्मिन्श्चित् ० ज्ञान-विशेषे ।। वर्तते ।	= कोई एक (= कस्मिंश्चित्) ज्ञानके विशेषमें प्रवर्तता है अर्थात् श्रुतशब्द सुननेके अर्थमें व्याकरणकी रीतिसे आता है तौभी रूढिवशसे एक ज्ञानका नाम है
यथा कुशलवन कर्म प्रतीत्या ।। व्युत्पादितः ।।	= जैसे कुशल ग्राम वा कोश(= कुश) काटनेकी क्रियामें निश्चय कर व्युत्पन्न हुआ है
अपि कुशलशब्द ।। रूढिवशात् ।। पर्यवदाते ।। वर्तते ।	= तौभी (= अपि) कुशलशब्द रूढिके वशसे बहुत प्रवीण वा चतुर पुरुषकेअर्थ में
	= प्रवर्तता है भावार्थ जैसे कुशलशब्द व्याकरण की रीतिसे दाभके काटनके अर्थमें आता है तौभी रूढिके वशसे बहुत चतुर पुरुषके अर्थमें प्रयोग किया जाता है वैसे श्रुत शब्द यद्यपि सुनने के अर्थ व्याकरणानुकूल आता है तौभी रूढिकी सामर्थ्यसे एक ज्ञानका नाम है
पुनः क ।। असौ ।। ज्ञान-विशेष ।। इति अत आह ।	= और यह श्रुत कौनसा (= क) ज्ञानविशेष है ऐसा(प्रश्नहोने पर)अतः कहते हैं
श्रुतम् ।।। मतिपूर्वम् ।।। इति श्रुतस्य ।।। प्रमाणत्वम् ।।।	= श्रुत है सो मतिपूर्वक है ऐसे श्रुतके प्रमाणरूप ज्ञानपना है ॥
पूरयति । इति पूर्वं ।।। निमित्तम् ।।। कारणम् ।।।	= जो पूरै है उत्पत्ति करे है ऐसा पूर्व होता है निमित्त है कारण है
इति अन् अर्थ-अन्तरम् ।।।	= इसप्रकार (इन तीनों,पूर्व-निमित्त-कारण शब्दोंमें) अर्थभेद नहीं है

(१ कस्मिंश्चित्— अन्तका म् जब उसके पश्चात् च्, छ्, त् थ् और ट् ठ् आवे तो (यह म्) अनुस्वार और विसर्ग (रूपमें) बदल जाता है इसलिये कस्मिन् + चित् = कस्मिंःचित यह विसर्ग वर्तमान दशामें व्याकरणके निम्नलिखित नियमानुसार 'श्' में परिवर्तित हो जाता है— विसर्गके पश्चात् यदि च् छ् हो तो विसर्ग 'श्' मे परिवर्तित च् हो तो स् मे और यदि ट् ठ् हो तो ष् में बदल जाता है जैसे हरिः चरति = हरिश्चरति (= हरि चलता है) रामः तरति = रामस्तरति (राम तैरता है) । रामः टीकते = रामष्टीकते ।(रा [illegible]) इसलिये [illegible] "कस्मिंश्चित्" हो गया ॥

द्रव्यादिसामान्यार्पणात् श्रुतमनादिनिधनमिष्यते ॥ नहि केनचित्पुरुषेण क्वचित्कदाचित्कथञ्चिदुत्प्रेक्षितमिति । तेषामेव विशेषापेक्षया आदिरन्तश्च सम्भवतीति मतिपूर्वमित्युच्यते ॥ यथाङ्कुरो बीजपूर्वक स च सन्तानापेक्षया अनादिनिधन इति ॥ न चापौरुषेयत्वं प्रामाण्यकारणम् । चौर्याद्युपदेशस्यास्मर्यमाणकर्तृकस्य प्रामाण्यप्रसंगात् ॥ अनित्यस्य च प्रत्यक्षादेः प्रामाण्ये को विरोध

द्रव्यादि-सामान्य-अर्पणात् ; श्रुतम् अनादि निधनम् ॥ = द्रव्यादिक सामान्य की अपेक्षा से श्रुत आदि अंत रहित (= अनादिनिधन)
इष्यते । हि ● केनचित् ● पुरुषेण ॥ क्वचित् ● = माना गया है । क्योंकि (यह श्रुतज्ञान) किसी मनुष्य करि कहीं या किसी क्षेत्र में
कदाचित् ● कथञ्चित् ● = कभी या किसी समय में (= कदाचित्) किसी प्रकार से (= कथञ्चित्)
न ● उत्प्रेक्षितम् ॥ इति । तेषाम् ॥ एव विशेष-अपेक्षया ॥ = नवीन नहीं किया है उन (द्रव्य) क्षेत्र, काल, भाव, की ही भेद विवक्षा से
आदिः । अन्तः । च ● सम्भवति । इति ● मतिपूर्वम् = आदि अंत भी (= च) सम्भव है ॥ इस प्रकार मतिज्ञान जनित वा जन्य (श्रुतज्ञान है)
इति ● उच्यते । यथा ● अंकुरः । बीजपूर्वकः । = ऐसा कहा गया है । जैसे अंकुरा बीज जनित है
सः । च ● सन्तान अपेक्षया ॥ अनादिनिधनः । इति = सो [अंकुरा] ही [= च] सन्तान की अपेक्षा करि आदि अंतरहित ऐसे [कहा जावे है]
न ● च ● अपौरुषेयत्वम् । प्रामाण्यकारणम् ॥ = और [= च] अपौरुषेयपना प्रमाणता [सत्यता] होने को हेतु नहीं है अर्थात् प्रमाणता होने के लिये इस बात की आवश्यकता नहीं है कि वह पुरुषकृत न हो-कोई वस्तु मनुष्य कृत न होने से ही प्रमाण रूप नहीं कही जा सकती है
चौर्य-आदि-उपदेशस्य ॥ अस्मर्यमाण-कर्तृकस्य । = क्यों कि स्तेय वा चोरी आदिक के उपदेशों के जिनके करनेवाले को स्मरण नहीं [कि कब ऐसे उपदेश करनेवाला हुआ और कब ऐसे उपदेश दिये और किसने ऐसे उपदेश दिये]
प्रामाण्य-प्रसङ्गात् ॥ अनित्यस्य ॥ च ● = प्रमाण होने का [= प्रामाण्य] प्रसंग या सम्बन्ध आता है ॥ अनित्य के और [= च]
प्रत्यक्ष-आदेः ॥ प्रामाण्ये ॥ कः ॥ विरोध ॥ = प्रत्यक्ष आदि के प्रमाणता होने में क्या विरोध [आता] है अर्थात् संसार में अनित्य प्रत्यक्षादि प्रमाण हैं ही कुछ विरोध नहीं है

(१) अर्पणात—पञ्चमी विभक्ति एक वचन पुल्लिंग और नपुंसक लिङ्ग है ॥ (२) द्रव्य, आदि (= क्षेत्र, काल, भाव) = द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव

श्रुतावरणक्षयोपशमप्रकर्षे तु सति श्रुतज्ञानमुत्पद्यत इति मतिज्ञान निमित्तमात्र ज्ञेयम्॥ आह श्रुतमनादिनिधनमिष्यते। तस्य मतिपूर्वकत्वे तदभाव। आदिमतोऽन्तवत्त्वात्। ततश्च पुरुषकृतत्वादप्रामाण्यमिति, नैप दोप ॥

श्रुत- आवरण- क्षयोपशम प्रकर्षे ।। तु ॥ सति ।।	= परन्तु श्रुतज्ञानावरणीयकर्मके क्षयोपशम के प्रकर्ष होनेपर [= सति]
श्रुतज्ञानम् ।।। उत्पद्यते । इति मतिज्ञानम् ।।।	= श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है। इस प्रकार मतिज्ञान
निमित्तमात्र ।।। ज्ञेयम् ।।।	= निमित्तमात्र (सहायक निमित्त) मानो॥ भावार्थ ऐसा है कि सम्भव है कि श्रुतज्ञानके उत्पन्न होने के लिये बाहिरी कारण मतिज्ञानादि वर्तमान भी हों तो भी श्रुतज्ञानावर्णीयकर्मका जीव के ऐसा प्रबल उदय हो कि श्रुतज्ञान न होने दे। जब श्रुतज्ञानावर्णीय कर्म का क्षयोपशम अन्तरंग कारण विद्यमान हो तबही जीव के श्रुतज्ञान होता है इसलिये मतिज्ञान केवल नाममात्र बाह्य कारण श्रुतज्ञान के उत्पन्न होने को हुआ॥ मुख्य और अंतरंग कारण श्रुतज्ञान के उत्पन्न होने के लिये श्रुतज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम ही है॥
आह । श्रुतम् ।।।अनादि + अनिधनम् ।।।इष्यते।	= पूछता है [आह] कि श्रुत आदिरहित अन्तरहित [= अनिधन] माना गया है
तस्य ।।। मतिपूर्वकत्व ।।। तद् अभाव ।।	= तिस [श्रुतज्ञान] के मतिज्ञान कारण होने में नित्यपने का वा अनादि निधनताका [= तद्] अभाव आता है प्रश्न का सारांश यह है कि श्रुतज्ञान को अनादि निधन माना है और यदि श्रुतज्ञानको मतिज्ञान उत्पन्न करता है तो श्रुतज्ञान नित्यपने का अभाव प्राप्त हुआ (क्यों कि)
आदिमत ! अन्तवत्त्वात् ।।।	= आदि वाले का अन्त होने से अर्थात् जिसका आदि है उसका अंत भी है
अप्रामाण्यम् ।।। इति ॥ न ॥ एष ।। दोष ।।	= [पुरुषकृत होने से] अप्रमाण है ऐसा [प्रश्न होने पर उत्तर] है कि यह दोष नहीं है

अनादिनिधन = अनादि (= आदिरहित) + अनिधन = अन्तरहित। निधन = नाश अन्त (हिंदी शब्दसागर भाग १ पृ. २१२)

द्रव्यादिसामान्यार्पणात् श्रुतमनादिनिधनमिष्यते ॥ नहि केनचित्पुरुषेण कचित्कदाचित्कथञ्चिदुत्प्रेक्षित मति । तेषामेव विशेषापेक्षया आदिरन्तश्च सम्भवतीति मतिपूर्वमित्युच्यते ॥ यथाङ्कुरो बीजपूर्वक स च सन्तानापेक्षया अनादिनिधन इति ॥ न चापौरुषयत्वं प्रामाण्यकारणम् । चौर्याद्युपदेशस्यास्मर्यमाणकर्तृक स्य प्रामाण्यप्रसंगात् ॥ अनित्यस्य च प्रत्यक्षादे प्रामाण्ये को विरोध

द्रव्यादि-सामान्य-अर्पणात् ;। श्रुतम् अनादि निधनम् ।॥	= द्रव्यादिक सामान्य की अपेक्षा से श्रुत आदि अंत रहित (= अनादिनिधन)
इष्यते । हि ⊛ केनचित् ⊛ पुरुषेण ।। कचित् ⊛	= माना गया है। क्योंकि (यह श्रुतज्ञान) किसी मनुष्य करि कहीं वा किसी क्षेत्र में
कदाचित् ⊛ कथञ्चित् ⊛	= कभी वा किसी समय में (= कदाचित्) किसी प्रकार से (= कथञ्चित्)
न ⊛ उत्प्रेक्षितम् ।॥ इति। तेषाम् ।। एव विशेष-अपेक्षया ;॥	= नवीन नहीं किया है उन (द्रव्य) क्षेत्र, काल, भाव, की ही भेद विवक्षा से
आदि ।। अन्त ।। च ⊛ सम्भवति । इति ⊛ मतिपूर्वम्	= आदि अंत भी (= च) सम्भव है ॥ इस प्रकार मतिज्ञान जनित वा जन्य (श्रुतज्ञान है)
इति ⊛ उच्यते । यथा ⊛ अंकुरः ।। बीजपूर्वकः ।।	= ऐसा कहा गया है। जैसे अङ्कुरा बीज जनित है
सः।। च ⊛ सन्तान अपेक्षया ।॥ अनादिनिधनः ।।इति[१]	= सो [अङ्कुरा] ही [= च] सन्तान की अपेक्षा करि आदि अंतरहित ऐसे [चला आवे है]
न ⊛ च ⊛ अपौरुषयेत्वम् ।॥ प्रामाण्यकारणम् ।॥	= और [= च] अपौरुषेयपना प्रमाणता [सत्यता] होने को हेतु नहीं है अर्थात् प्रमाणता होने के लिये इस बात की आवश्यकता नहीं है कि वह पुरुषकृत न हो-कोई वस्तु मनुष्य कृत न होनें से ही प्रमाण रूप नहीं कही जा सक्ती है
चौर्य-आदि-उपदेशस्य ;। अस्मर्यमाण-कर्तृकस्य ;।	= क्यों कि स्तेय वा चोरी आदिक के उपदेशों के जिनके करनेवाले को स्मरण नहीं [कि कब ऐसे उपदेश करनेवाला हुआ और कब ऐसे उपदेश दिये और किसने ऐसे उपदेश दिये]
प्रामाण्य-प्रसङ्गात् ;। अनित्यस्य ;॥ च ⊛	= प्रमाण होने का [= प्रामाण्य] प्रसंग वा सम्बन्ध आता है॥ अनित्य के और [= च]
प्रत्यक्ष-आदेः ।।प्रमाण्ये ,॥कः ।। विरोधः।।	= प्रत्यक्ष आदि के प्रमाणता होने में क्या विरोध [आता] है अर्थात् संसार में अनित्य प्रत्यक्षादि प्रमाण हैं ही कुछ विरोध नहीं है

(१) अर्पणात—पञ्चमी विभक्ति एक वचन पुल्लिंग और नपुंसक लिङ्ग है। (२) द्रव्य, आदि (— क्षेत्र, काल भाव) — द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव

आह, प्रथमसम्यक्त्वोत्पत्तौ युगपज्ज्ञानपरिणामान्मतिपूर्वकत्वं श्रुतस्य नोपपद्यत इति । तदयुक्तं सम्यक्त्वस्य तदपेक्षत्वात् । आत्मलाभस्तु क्रमवानिति मतिपूर्वकत्वव्याघाताभाव ॥ आह मतिपूर्वं श्रुतमित्येतल्लक्षणमव्यापि श्रुतपूर्वमपि श्रुतमिष्यते । तद्यथा

आह १ प्रथमसम्यक्त्व-उत्पत्तौ ।॥ युगपद् ॐ	= पूछता है कि प्रथमसम्यग्दर्शन की उत्पत्ति में एकबार या एक काल [= युगपत्]
ज्ञान परिणामात् ; । श्रुतस्य ; ।॥ मतिपूर्वकत्वम् ।॥	= [मतिश्रुत] ज्ञानके उत्पन्न होने से [= परिणामात्] श्रुतज्ञान के मतिनिमित्तपना
न ॐ उपपद्यते १ इति ॐ तद् ।॥ अयुक्तम् ।॥	= उत्पन्न नहीं होता है । [उत्तर] सो [= तद्] [तुम्हारा कथन] ठीक नहीं है
सम्यक्त्वस्य ॥ तद् अपेक्षत्वात् ? ॥	= क्योंकि [ज्ञान के] सम्यक्पना उस [सम्यग्दर्शन] के प्रसंग से है अर्थात् सम्यक्त्व के उत्पन्न होते ही कुमतिज्ञान और कुश्रुतज्ञान का परिवर्तन मतिज्ञान और श्रुतज्ञान में हो जाता है ।
तु ॐ आत्मलाभः ।॥ क्रमवान् ।॥	= परन्तु [पूर्वोक्त परिवर्तन होने पर भी] ज्ञान के स्वरूप की लब्धि क्रमवाली है अर्थात् प्रथम मतिज्ञान होता है उसके पश्चात् श्रुतज्ञान होता है
इति ॐ मति- पूर्वकत्व-व्याघात-अभावः ।।	= इस प्रकार मति निमित्तपने में विरोध नहीं है भावार्थ यह है कि मतिज्ञान प्रथम होता है पश्चात् श्रुतज्ञान होता है । यद्यपि इन मतिज्ञान और श्रुतज्ञान के सम्यक्पना सम्यक्त्व की उत्पत्ति होते ही एक साथ या एक काल में ही होता है मतिज्ञान और श्रुतज्ञान के सम्यक्पना एक साथ होने के कारण से उन मतिज्ञान और श्रुतज्ञान की क्रमानुसार[एक दूसरे के पश्चात्]उत्पत्ति में कुछ अड़चन नहीं है ।
आह मतिपूर्वम् ।॥ श्रुतम् ।॥ इति ॐ एतद् ।॥	= पूछता है कि "मतिज्ञान जनित श्रुतज्ञान" ऐसा यह
लक्षणम् ।॥ अव्यापि ।॥	= लक्षण अव्यापक या असर्वगत है अर्थात् सब श्रुतज्ञान में लागू नहीं है
श्रुतपूर्वम् ।॥ अपि श्रुतम् ।॥ इष्यते १ तद्यथा ॐ	= क्योंकि श्रुतज्ञान निमित्तक भी श्रुतज्ञान माना गया है । जैसे [= तद्यथा]

(१) [illegible] प्रारम्भ में उपशम सम्यक्त्व ही होता है और प्रथम उपशम सम्यक्त्व होता है । द्वितीय उपशम [illegible] स्थान में होता है

शब्दपरिणतपुद्गलस्कन्धादाहितवर्णपदवाक्यादिभावाच्चक्षुरादिविषयाच्च आद्यश्रुतविषयभावमापन्ना—दव्यभिचारिणः कृतसंगीतिर्जनो घटाज्जलधारणादिकार्यसम्बन्ध्यन्तरं प्रतिपद्यते धूमादेर्वाग्न्यादिद्रव्यं तदा श्रुतात् श्रुतप्रतिपत्तिरिति । नैष दोषः । तस्यापि मतिपूर्वकत्वमुपचारतः ॥ श्रुतमपि क्वचिन्मतिरित्युपचर्यत इति ॥

शब्दपरिणत- पुद्गलस्कन्धात् ५। आहित-	= क्योंकि शब्दरूप परिणये वा शब्दरूप अवस्थाको पहुँचे पुद्गलों के स्कंध स्थापित निर्मित
वर्णपदवाक्यादि॰ भावात् ५। चक्षुः आदि-विषयात् ५।च	= अक्षर पद वचनादिक (रूप) होते हैं और (=च) नेत्रादिक इन्द्रियों के विषय होते हैं
आद्यश्रुतविषयभावम् ४। आपन्नात् ५।	= (उन अक्षर पद वाक्यों को) प्रथम वा पहिला श्रुतज्ञानके विषय भावको प्राप्त होनेमें
अव्यभिचारिणः ५। कृतसंगीतिर्जनः १।	= (कुछ) व्यभिचार वा दोष नहीं है। उन (अक्षर पद वाक्यों) से संकेतित पुरुष
घटात् ५। जल-धारणादि—	= (घट शब्द से गोचर होनेवाला) घट (नामा पदार्थ) में पानी रखने आदिक
कार्यसम्बन्धअन्तरम् २।। प्रतिपद्यते T तथा ॐ धूमात् ५।	= कार्य रूप अन्यसंयोग को प्राप्त होता है। वैसे ही (तथा) धुवाँ (पदार्थ) से
एव अग्नि आदि द्रव्यम् २।। श्रुतात् ५।। श्रुत—	= ही अनल आदिक वस्तुको (प्राप्त होता है जानता है)। श्रुत ज्ञानसे श्रुतज्ञानकी
प्रतिपत्तिः १।। इति ॐ न ॐ एषः १। दोषः १।	= प्राप्ति (प्रति पत्ति) इस प्रकार है। (उत्तर) यह दूषण नहीं है
तस्य ६।। अपि ॐ मति- पूर्वकत्वम् १।।उपचारतः ●	= तिस (श्रुतज्ञान) का भी मतिज्ञान पूर्वक होना उपचार से है वा मानलेने से है अर्थात् श्रुतज्ञान से जो श्रुतज्ञान उत्पन्न हुआ है उस श्रुत ज्ञान के उत्पन्न होने को भी उपचार से मतिज्ञान ही कारण है
श्रुतम् १।। अपि ● क्वचित् ● मतिः १।। इति ●	= श्रुतज्ञान को भी कहीं वा किसी स्थान में (=क्वचित्) मति ही का
उपचर्यते T इति ● । मति पूर्वकत्वात् ५।।	= उपचार कीजिये क्योंकि मति पूर्वक हो सोही पूर्वोक्त श्रुतज्ञान भया है सारांश है कि

श्रुतज्ञान को मति निमित्तक कहा है उसपर प्रश्न है कि जब श्रुतज्ञान से भी श्रुतज्ञान होता है तब मतिजन्य श्रुतज्ञान कैसे रहा जैसे पहिले घट शब्द को श्रोत्र इन्द्रिय जनित मतिज्ञान से सुनकर अथवा उसके रूप को नेत्र इन्द्रिय जनित मतिज्ञान से देख कर घट को जानता है यह प्रथम श्रुतज्ञान है फिर उस ही नियत संबंधवाले घट से दूसरे संबंधी जल धारण आदि का ज्ञान होता है सो श्रुतज्ञान पूर्वक ही श्रुतज्ञान हुआ—फिर मतिपूर्वक श्रुतज्ञान कैसे ? (उत्तर) उपर्युक्त उदाहरण में प्रथम

भेदश [illegible] प्रत्येक परिसमाप्यते द्विभेदमनेकभेद द्वादशभेदा इति ॥ द्विभेद तावत्-अङ्गबाह्यमङ्गप्रविष्टमिति । अङ्गबाह्यमनेकविध दशवैकालिकोत्तराध्ययनादि ॥

श्रुतज्ञान मतिज्ञानजन्य है दूसरा श्रुतज्ञान प्रथम श्रुतज्ञान से हुआ है तो भी मतिज्ञान पूर्वक उपचार से श्रुतज्ञान हुआ है तथा कहने में दोष नहीं क्योंकि श्रुतज्ञान कहीं साक्षात् मतिपूर्वक है कहीं परंपरा मतिपूर्वक है अत "श्रुत मति पूर्व" ऐसा कहा है॥

भेदशब्द ॥ प्रत्येकम् ॥ परिसमाप्यते ॥ द्वि-भेदम् ॥	= (इस सूत्र में) भेदशब्द प्रत्येक पर लगाया गया है। (श्रुतज्ञानके) दो भेद हैं
अनेक भेदं ॥ द्वादश-भेदं ॥ इति ❀ । तावत् ❀	= अनेक भेद हैं। बारह भेद हैं। प्रथम
द्विभेद ॥ अङ्गबाह्यम् ॥ अङ्गप्रविष्टम् ॥ इति ❀	= दो भेद अङ्गबाह्य (और) अङ्ग प्रविष्ट इस प्रकार हैं
अङ्गबाह्यं ॥ अनेक विधम् ॥ दशवैकालिक-	= अङ्गबाह्य अनेक प्रकार वा बहुतभेद रूप है। दशवैकालिक (सातवां प्रकीर्णक)
उत्तराध्ययन-आदि ॥	= उत्तराध्ययन (आठवा प्रकीर्णक) (१) आदिक (बारह प्रकीर्णक और हैं)
	अर्थात् अक्षरात्मक श्रुतज्ञान में बारहअङ्ग और चौदह प्रकीर्णक समिलित हैं।

[illegible] ग्रन्थ में (१) सामायिक प्रकीर्णक (२) संस्तव प्र (३) वन्दना प्र (४) प्रतिक्रमण प्र (५) विनय प्र (६) कृतिकर्म प्र० [illegible] प्र (१०) [illegible] प्र (११) महाकल्प प्र (१२) पुण्डरीक प्र० (१३) महापुण्डरीक प्र० (१४) निषिधिका प्रकीर्णक निवेशित हैं [illegible] (क) सामायिक प्रकीर्णक — जिसमें नाम स्थापना द्रव्य क्षेत्र काल भावकरि षट् प्रकार सामायिक का वर्णन हो।

(ख) [illegible]नाम प्रकीर्णक वो है जिसमें तीर्थकरों के पंचकल्याण चौतिस अतिशय अष्ट प्रातिहार्य परमौदारिक दिव्यदेह समवसरण धर्मोपदेशादिक और तीर्थकरों के माहात्म्य का प्रकट करनेवाला स्तवन का बखान हो।

(ग) वंदनानाम प्रकीर्णक वह है जिसमें एक ही तीर्थ करके आश्रय के अर्थ प्रतिमा चैत्यालयादिके स्तवन का व्याख्यान हो।

(घ) प्रतिक्रमणनाम प्रकीर्णक वह है जिसमें एक दिन सम्बन्धी दोष के निराकरण के लिये दैवसिक प्रतिक्रमण तैसे ही रात्रिक पाक्षिक चातुर्मासिक सांवत्सरिक ऐर्यापथिक और सन्यास मरण के अवसर में संपूर्ण पर्यायों में उपजे दोषों के निराकरण के लिये प्रतिक्रमण का कथन हो

(ङ) विनयनाम प्रकीर्णक वह है जिसमें दर्शन ज्ञान चारित्र तप उपचार इन पञ्चप्रकार को विनय का कथन हो।

(च) कृतिकर्मनाम प्रकीर्णक वह है जिसमें जिन पूजनादिक क्रिया के करने के विधान का वर्णन वा पञ्चपरमेष्ठी जिनधर्म जिनप्रतिमा जिन वचन जिनमन्दिर के वन्दना के लिये तीन प्रदक्षिणा तीन अवनति चार शिरोनति बारह आवर्त इत्यादि और नित्यनैमित्तिक क्रिया का प्ररूपण हो।

(ख) दशवैकालिकनाम प्रकीर्णक वो है जिसमें साधुओं का ...
(ग) उत्तराध्ययन प्रकीर्णक वह है जिसमें चार प्रकार के उपसर्ग और द्वाविंशति परिषह सहने के विधान तथा इनके फलका वर्णन हो ॥
(छ) कल्पव्यवहारनाम प्रकीर्णक वाहे जिसमें साधुओं के योग्य आचरण का विधान और अयोग्य सेवन होते प्रायश्चित्तका ग्रहण हो
(ज) कल्पाकल्प्यनाम प्रकीर्णक वो है जिसमें द्रव्य क्षेत्र, काल भाव का आश्रयकरि साधु के यह योग्य है यह अयोग्य है ऐसे द्रव्य, क्षेत्र काल भाव के अनुकूल कथन हो ॥
(झ) महाकल्पसंज्ञक प्रकीर्णक वह है जिसमें उत्कृष्ट संहननादि सहित जिन कल्पी साधुओं के द्रव्य क्षेत्र काल भाव के योग्य त्रिकाल योगादिकनि का आचरण का वर्णन और स्थविर कल्पी साधुओं का दीक्षा शिक्षा गणपोषण आत्मसंस्कार सल्लेखना उत्तमार्थस्थानगत उत्कृष्ट आराधना का ग्रहण हो ॥
(ठ) पुण्डरीकनाम प्र — जिसमें चार प्रकार के देवों के उपजने का कारण दान पूजा तपश्चरण अकाम निर्जरा सम्यक्त्व संयमादिक का देवों के उपपादस्थान के विषयका कथन हो ॥
(ड) महापुण्डरीक प्रकीर्णक वह है जिसमें इन्द्र प्रतीन्द्रादिकों में उत्पत्ति का कारण तपश्चरणादिक का वर्णन हो ॥
(ढ) निषिधिका नाम प्रकीर्णक वह है जिसमें प्रमाद जनितदोष दूर करने के लिये बहुत प्रकार प्रायश्चित्तादिक का कथन हो

इनसे उपरान्त या विशेष कथन ऐसे है कि संस्कृत वर्णमाला में मात्रे के १४ स्वर हैं परन्तु प्राकृत भाषा में और देशांतर भाषा में ए ऐ ओ औ ह्रस्व भी होते हैं और एक दीर्घ लृकार संस्कृत में नहीं है अनुकरण विर्षे देशांतर की भाषा में दीर्घ लृकार होता है ͝ ह्रस्व ͝ दीर्घ ँ अनुनासिक चिह्न ळ् यह अक्षर ये चार यम नाहीं हैं

ह्रस्व	दीर्घ	प्लुत स्वर हैं	व्यञ्जन	प्रयोग वाह रूप ये १२ संस्कृत में हैं।		ह्रस्व स्वर	दीर्घ स्वर	प्लुत स्वर	व्यञ्जन ३४ मूल अक्षर हैं	सूचना
अ	आ	अ ३	कवर्ग-कखगघङ	ः विसर्जनीय	͝ ह्रस्व	अ	आ	अ ३	कवर्ग-क् ख् ग् घ् ङ्	
इ	ई	इ ३	चवर्ग चछजझञ्	≍ जिह्वामूलीय	͝ दीर्घ	इ	ई	इ ३	चवर्ग-च् छ् ज् झ् ञ्	
उ	ऊ	उ ३	टवर्ग-टठडढण	≍ उपध्मानीय	ँ अनुनासिक चिह्न	उ	ऊ	उ ३	टवर्ग ट् ठ् ड् ढ् ण्	
ऋ	ॠ	ऋ ३	तवर्ग-त थ द ध न	अनुस्वार	और ळ यह	ऋ	ॠ	ऋ ३	तवर्ग त् थ् द् ध् न्	
ऌ	०	ऌ ३	पवर्ग प फ ब भ म		अक्षर। इनको	ऌ	ॡ	ऌ ३	पवर्ग-प् फ् ब् भ् म्	
०	ए	ए ३	अन्तस्थ य र ल व		चार यम भी	ए १	ए २	ए ३	य् र् ल् व्	
०	ऐ	ऐ ३	ऊष्म-श ष स ह		कहते हैं।	ऐ १	ऐ २	ऐ ३	श् ष् स् ह्	
०	ओ	ओ ३				ओ १	ओ २	ओ ३	योगवाह अं अः ≍क ≍प अनुस्वार, विसर्ग	
	औ	औ ३				औ १	औ २	औ ३	जिह्वामूलीय उपध्मानीय चार हैं।	

भेदश... प्रत्येक परिसमाप्यते द्विभेदमनेकभेदं द्वादशभेदमिति॥ द्विभेदं तावत्-अङ्गबाह्यमङ्ग प्रविष्टमिति। अङ्गबाह्यमनेकविधं दशवैकालिकोत्तराध्ययनादि॥

श्रुतज्ञान मतिज्ञानजन्य है दूसरा श्रुतज्ञान प्रथम श्रुतज्ञान से हुआ है वो भी मतिज्ञान पूर्वक उपचार से श्रुतज्ञान हुआ है ऐसा कहने में दोष नहीं क्योंकि श्रुतज्ञान कहीं साक्षात् मतिपूर्वक है कहीं परंपरा मतिपूर्वक है अत "श्रुत मति पूर्व" ऐसा कहा है॥

भेदशब्दः ।। प्रत्येकम् ।।। परिसमाप्यते ।। द्वि-भेदम् ।।।	= (इस सूत्र में) भेदशब्द प्रत्येक पर लगाया गया है। (श्रुतज्ञानके) दो भेद हैं
अनेक भेदं ।।। द्वादश भेदं ।।। इति ⊛ । तावत् ⊛	= अनेक भेद हैं। बारह भेद हैं। प्रथम
द्विभेदं ।। अङ्गबाह्यम् ।।। अङ्गप्रविष्टम् ।।। इति ⊛	= दो भेद अङ्गबाह्य (और) अङ्ग प्रविष्ट इस प्रकार हैं
अङ्गबाह्यं ।।। अनेक विधम् ।।। दशवैकालिक-	= अङ्गबाह्य अनेक प्रकार वा बहुतभेद रूप है। दशवैकालिक (सातवां प्रकीर्णक)
उत्तराध्ययन-आदि ।।।	= उत्तराध्ययन (आठवां प्रकीर्णक) (१) आदिक (बारह प्रकीर्णक और हैं)

अर्थात् अक्षरात्मक श्रुतज्ञान में बारहअङ्ग और चौदह प्रकीर्णक सम्मिलित हैं।

...आदि" शब्द में (१) सामायिक प्रकीर्णक (२) संस्तव प्र (३) वन्दना प्र (४) प्रतिक्रमण प्र (५) विनय प्र (६) कृतिकर्म प्र० (९) कल्पव्यवहार प्र (१०) कल्पाकल्प प्र (११) महाकल्प प्र (१२) पुण्डरीक प्र० (१३) महापुण्डरीक प्र० (१४) निषिधिका प्रकीर्णक निवेशित हैं यथा (क) सामायिक प्रकीर्णक—जिसमें नाम स्थापना द्रव्य क्षेत्र काल भावकरि षट् प्रकार सामायिक का वर्णन हो।

(ख) स्तवनाम प्रकीर्णक वो है जिसमें तीर्थंकरों के पंचकल्याण चौंतिस अतिशय अष्ट प्रातिहार्य परमौदारिक दिव्यदेह समवसरण धर्मोपदेशादिक और तीर्थंकरों के माहात्म्य का प्रकट करनेवाला स्तवन का वर्णन हो॥

(ग) वन्दनानाम प्रकीर्णक वह है जिसमें एक ही तीर्थंकरके आश्रय के अर्थ प्रतिमा चैत्यालयादिके स्तवन का व्याख्यान हो॥

(घ) प्रतिक्रमणनाम प्रकीर्णक वह है जिसमें एक दिन सम्बन्धी दोष के निराकरण के लिये दैवसिक प्रतिक्रमण तैसे ही रात्रिक पाक्षिक चातुर्मासिक सांवत्सरिक ऐर्यापथिक और सन्यास मरण के अवसर में संपूर्ण पर्यायों में उपजे दोषों के निराकरण के लिये प्रतिक्रमण का कथन हो

(ङ) विनयनाम प्रकीर्णक वह है जिसमें दर्शन ज्ञान चारित्र तप उपचार इन पञ्चप्रकार के विनय का कथन हो॥

(च) कृतिकर्मनाम प्रकीर्णक वो है जिसमें जिन पूजनादिक क्रिया के करने के विधान का वर्णन वा पञ्चपरमेष्ठी जिनधर्म जिनप्रतिमा जिन वचन जिनमंदिर के वन्दना के लिये तीन प्रदक्षिणा तीन अवनति चार शिरोनति बारह आवर्त इत्यादि और नित्यनैमित्तिक क्रिया का प्ररूपण हो

आत्मा शब्दों को कानों द्वारा सुनता है तो इस प्रकार का सुनना मतिज्ञान है सुनने के पश्चात् जीव को आत्मा के गुणों का ज्ञान भया सो श्रुतज्ञान है इसको अक्षरात्मक इसलिये कहते हैं कि इसका रस का ज्ञान शब्द द्वारा होता है जो शब्द अक्षरों से बने अथवा रचे गये हैं॥ सूक्ष्मपर्याप्ति से अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान के दो भेद पर्यायज्ञान और पर्याय समास ज्ञान हैं। सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्य पर्याप्तक = लब्धि अपर्याप्तक) जीवके उत्पन्न होने के प्रथम समय में सबसे जघन्य श्रुतज्ञान होता है उसको पर्यायज्ञान कहते हैं। इतना ज्ञान जीव के सदैव निरावरण तथा प्रकाशमान रहता है इसमें विशेषता केवल यही है कि इस के आवरण करने वाले कर्म के उदय का फल इस पर्याय ज्ञान में नहीं होता किन्तु इसके अनन्तर ज्ञान (पर्याय समास) के प्रथम भेद में होता है। भावार्थ यदि पर्यायावरण कर्म के उदयका फल पर्यायज्ञान में हाजाय तो ज्ञानोपयोग का अभाव होने से जीवका भी अभाव होजाय इसलिये पर्यायावरण कर्मका फल उसके आगे के ज्ञानके प्रथम भेद में ही होता है। इसीलिये न्यून से न्यून पर्यायरूप ज्ञान जीवके अवश्य पाया जाता है॥ "असंख्यात लोक प्रमाण पर्याय समास ज्ञानके भेद हैं पृष्ठ ७२६

दूसरे प्रकार से अक्षरात्मक श्रुतज्ञान के अठारह भेद अर्थाक्षर, पद संघात प्रतिपत्तिक अनुयोग प्राभृतप्राभृत प्राभृत वस्तु पूर्व ये नव भेद और क्रमसे एक एक अक्षर की वृद्धि के द्वारा उत्पन्न होनेवाले अक्षर समास आदि नव ऐसे सब मिल अठारह भेद

अर्थाक्षर, अर्थाक्षरसमास पद पदसमास संघात संघात समास प्रतिपत्तिक प्रतिपत्तिकसमास अनुयोग अनुयोग समास प्राभृतप्राभृत प्राभृतप्राभृत समास प्राभृत प्राभृत समास वस्तु वस्तु समास पूर्व पूर्वसमास। अक्षरात्मक द्रव्यश्रुत के हैं। और ज्ञानकी अपेक्षा इनको द्रव्यश्रुतके सुनने से जो ज्ञान भया सो उस ज्ञानके भी अठारह भेद (भाव श्रुतज्ञान) कहिये। यदि ग्रन्थ (शास्त्र) रूपको विवक्षा करो तो "अंगे बारस चोद्दसपुं (=अन्ये द्वादश च चतुर्दशपूर्व) (गोम्मटसार जी० का गाथा ३५१ के अनु १८ आचारांग आदि द्वादशअङ्ग और उत्पाद पूर्व आदि चौदह पूर्व और प्रकार से सामायिकादि चतुर्दश प्रकीर्णकादि स्वरूप द्रव्यश्रुतज्ञान जानना तिनके सुनने से जो ज्ञान हुआ सो भाव श्रुतज्ञान जानना। पुद्गल द्रव्यस्वरूप अक्षर पदादिक मय तो द्रव्यश्रुत है तिसके सुनने से जो श्रुतज्ञान का पर्यायरूप ज्ञान हुआ है सो भाव श्रुत है आगे यह भी ज्ञात होगा कि चौदह पूर्व परिवाद बारहवें अङ्ग में गर्भित हैं ऐसे द्वादश अङ्गको अंगप्रविष्ट कहते हैं और चौदह प्रकीर्णकों अङ्गबाह्य कहते हैं। आगे इस बातको दिखलाते हैं कि यह अंगबाह्य और अंग प्रविष्टरूप द्रव्य श्रुतज्ञानका

टिप्पणी—ये चौसठि मूल अक्षर अनादि निधन परमागम में "सिद्धोवर्णः समाम्नायः" सूत्र से प्रसिद्ध हैं। आधी मात्रा जिसके बोलने के कालविषैं होय तिसको व्यंजन कहे हैं। जिसको एक मात्रा हो उसको ह्रस्व दो मात्राहों उसको दीर्घ तीनमात्रा हों उसको प्लुत कहते हैं इन्हें स्वर कहते हैं। श्रुतज्ञान के दो भेद हैं (१) अक्षरात्मक या शब्दज अथवा शब्दजन्य श्रुतज्ञान (२) अनक्षरात्मक, लिङ्गज या लिंगजन्य श्रुतज्ञान।

(अ) अनन्तभाग वृद्धि असंख्यातभाग वृद्धि संख्यातभागवृद्धि संख्यातगुणवृद्धि असंख्यातगुणवृद्धि अनन्तगुणवृद्धि इन षट्स्थानपतित वृद्धिकी अपेक्षा से अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान के सब से जघन्य स्थान से लेकर उत्कृष्ट स्थान पर्यंत असंख्यात लोक प्रमाण भेद होते हैं। अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान के असंख्यात भेद हैं। लिंग जो चिन्ह तातैं उत्पन्न भया ऐसा अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान सो एकेन्द्रियतैं लगाय पंचेन्द्रिय पर्यंत सर्व जीवनिकै है तथापि याते किछू व्यवहार प्रवृत्ति नाहीं" तातैं प्रधान नाहीं गोम्मटसार मुद्रित पृष्ठ ६७५ "जैसें शीतल पवन का स्पर्श भया तहां शीतल पवन का जानना तो मतिज्ञान है बहुरि तिसका ज्ञानकरि वायु की प्रकृति वाले कौं यह शीतल पवन अनिष्ट है ऐसा जानना सो श्रुतज्ञान है सो यह अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान है। अक्षर के निमित्ततैं भया नाहीं। ऐसैं ही सर्व अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान का स्वरूप जानना" गोम्मटसार मुद्रित पृष्ठ ६७५।

(ब) "शब्दज कहिए अक्षरादिरूप शब्दतैं उत्पन्न भया जो अक्षरात्मक श्रुतज्ञान सो प्रमुख कहिए मुख्य है प्रधान है जातैं लेना देना शास्त्र पढ़ना इत्यादिक सब व्यवहारनिका मूल अक्षरात्मक श्रुतज्ञान है" पृष्ठ ६७४।

"तहां 'जीवः अस्ति' ऐसा शब्द कह्या तहां कर्णरूप इन्द्रिय मतिज्ञानकरि जीवः अस्ति ऐसे शब्दकौं ग्रह्या। बहुरि तीहि ज्ञानकरि जीव नामा पदार्थ है ऐसा जो ज्ञान भया सो श्रुतज्ञान है। शब्द और अर्थ के वाच्य वाचक संबंध है। अर्थ वाच्य है शब्द वाचक है, अर्थ है सो उस शब्द करि कहने योग्य है शब्द उस अर्थ का कहन हारा है ऐसा जो ज्ञान भया सो श्रुतज्ञान है। सो इहां 'जीवः अस्ति' ऐसे शब्दका जानना तो मतिज्ञान है अर उसके निमित्ततैं जीवनामा पदार्थ का अस्तित्व जानना सो श्रुतज्ञान है। ऐसें ही सब अक्षरात्मक श्रुतज्ञान का स्वरूप जानना। अक्षरात्मक जो शब्द तातैं उत्पन्न भया जो ज्ञान ताकौं भी अक्षरात्मक कह्या। इहां कार्यविषै कारण का उपचार किया है परमार्थतैं ज्ञान कोई अक्षररूप है नाहीं। पृ ६७५। अक्षरात्मक श्रुतज्ञान का एक और पक्का उदाहरण जैसे जब कोई मनुष्य 'मीठा' और

आत्मा शब्दों को कानों द्वारा सुनता है तो इस प्रकार का सुनना मतिज्ञान है सुनने के पश्चात् श्रोता जो आत्मा के गुणों का हृदय में भाना श्रुतज्ञान है इसको अक्षरात्मक इसलिये कहते हैं कि इसका रस का ज्ञान शब्द द्वारा होता है जो शब्द अक्षरों से बने अथवा रचे गये हैं। दूसरा भाँति से अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान के दो भेद पर्यायज्ञान और पर्याय समास ज्ञान हैं। सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्य पर्याप्तक = लब्धि अपर्याप्तक) जीवके उत्पन्न होने के प्रथम समय में सबसे जघन्य श्रुतज्ञान होता है उसको पर्यायज्ञान कहते हैं। इतना ज्ञान जीव के सदैव निरावरण तथा प्रकाशमान रहता है इसमें विशेषता केवल यही है कि इस के आवरण करने वाले कर्म के उदय का फल इस पर्याय ज्ञान में नहीं होता किन्तु इसके अनन्तर ज्ञान (पर्याय समास) के प्रथम भेद में होता है। भावार्थ यदि पर्यायावरण कर्म के उदयका फल पर्यायज्ञान में हो जाय तो ज्ञानोपयोग का अभाव होने से जीवका भी अभाव होजाय इसलिये पर्यायावरण कर्मका फल उसके आगे के ज्ञानके प्रथम भेद में ही होता है। इसीलिये न्यून से न्यून पर्यायरूप ज्ञान जीवके अवश्य पाया जाता है। "असंख्यात लोक प्रमाण पर्याय समास ज्ञानके भेद हैं पृष्ठ ७२६

दूसरे प्रकार से अक्षरात्मक श्रुतज्ञान के अठारह भेद अर्थाक्षर, पद संघात प्रतिपत्तिक अनुयोग प्राभृतप्राभृत प्राभृत वस्तु पूर्व ये नव भेद और इनमें एक एक अक्षर की वृद्धि के द्वारा उत्पन्न होनेवाले अक्षर समास आदि नव ऐसे सब मिल अठारह भेद अर्थाक्षर, अर्थाक्षरसमास पद पदसमास संघात संघात समास प्रतिपत्तिक प्रतिपत्तिकसमास अनुयोग अनुयोग समास प्राभृतप्राभृत प्राभृतप्राभृत समास प्राभृत, प्राभृत समास वस्तु वस्तु समास पूर्व पूर्वसमास। अक्षरात्मक द्रव्यश्रुत के हैं। और ज्ञानकी अपेक्षा इनही द्रव्यश्रुतिके सुनने से जो ज्ञान भया सो उस ज्ञानके भी अठारह भेद (भाव श्रुतज्ञान) कहिये। यदि ग्रन्थ (शास्त्र) रूपको विवक्षा करिये तो "गये बारउय चोद्दसयं (= ग्रन्थे द्वादश च चतुर्दशकं) (गोम्मट-जी० का गाथा ३४९ के अनु १८ आचारांगादि द्वादशांग और उत्पाद पूर्व आदि चौदह पूर्व और प्रकार से सामायिकादि चतुर्दश प्रकीर्णकविनि स्वरूप द्रव्यश्रुतज्ञान जानना तिनके सुनने से जो ज्ञान हुआ सो भाव श्रुतज्ञान जानना। पुद्गल द्रव्यस्वरूप अक्षर पदादिक मय सो द्रव्यश्रुत है तिसके सुनने से जो श्रुतज्ञान का पर्यायरूप ज्ञान हुआ है सो भाव श्रुत है आगे चल कर ज्ञात होगा कि चौदह पूर्व यद्यपि बारहवे अंग में गर्भित हैं ऐसे द्वादश अंगका अंगप्रविष्ट कहते हैं और चौदह प्रकीर्णकों अंगबाह्य कहते हैं। आगे इस बातको दिखलाते हैं कि यह अंगबाह्य और अंग प्रविष्टरूप द्रव्य श्रुतज्ञानको

टिप्पणी—ये चौसठि मूल अक्षर अनादि निधन परमागम में "सिद्धोवर्णः सम म्नायः" सूत्र से प्रसिद्ध हैं । आधी मात्रा जिसके बोलने के कालविषें होय तिनको व्यंजन कहे हैं । जिसकी एक मात्रा हो उसको ह्रस्व दो मात्रा हो उसको दीर्घ तीनमात्रा हो उसको प्लुत कहते हैं ह्रस्व दीर्घ प्लुत स्वर ही होते हैं । श्रुतज्ञान के दो भेद हैं (१) अक्षरात्मक या शब्दज अथवा शब्दजन्य श्रुतज्ञान (२) अनक्षरात्मक, लिङ्गज या लिंगजन्य श्रुतज्ञान ।

(क) अनन्तभाग वृद्धि असंख्यातभाग वृद्धि संख्यातभागवृद्धि संख्यातगुणवृद्धि असंख्यातगुणवृद्धि अनन्तगुणवृद्धि इन षट्स्थानपतित वृद्धिको अपेक्षा से अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान के सब सेजघन्य स्थान तें लेकर उत्कृष्ट स्थान पर्यंत असंख्यात लोक प्रमाण भेद होते हैं । अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान के असंख्यात भेद हैं । "लिंग जो चिन्ह तातैं उत्पन्न भया ऐसा अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान सो एकेन्द्रियतैं लगाइ पंचेन्द्रिय पर्यंत सर्व जीवनिके है तथापि यानै किछू व्यवहार प्रवृत्ति नाहीं" तातैंप्रधान नाहीं गोम्मटसार मुद्रित पृष्ठ ६७३"ऐसैं शीतल पवन का स्पर्श भया तहां शीतल पवन का जानना तो मतिज्ञान है बहुरि तिसका ज्ञानकरि वायु की प्रकृति वाले कौं यह शीतल पवन अनिष्ट है ऐसा जानना सो श्रुतज्ञान है सो यह अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान है । अक्षर के निमित्ततैं भया नाहीं । ऐसैं ही सर्व अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान का स्वरूप जानना गोम्मटसार मुद्रित पृष्ठ ६७५ ॥

(ख) "शब्दज कहिए अक्षर रूप शब्दतैं उपजा भया जो अक्षरात्मक श्रुतज्ञान सो प्रमुख कहिए मुख्य है प्रधान है जातैं देना लेना शास्त्र पढ़ना इत्यादिक सब व्यवहारनिका मूल अक्षरात्मक श्रुतज्ञान है" पृष्ठ ६७४ ॥

"तहां 'जीवः अस्ति' ऐसा शब्द कह्या तहां कर्णरूप इन्द्रिय मतिज्ञानकरि 'जीवः अस्ति' ऐसे शब्दकौं ग्रह्या । बहुरि तीहिं ज्ञानकरि 'जीवनामा पदार्थ है' ऐसा जो ज्ञान भया सो श्रुतज्ञान है । शब्द और अर्थ के वाच्य वाचक संबंध है । अर्थ वाच्य है शब्द वाचक है, अर्थ है सो उस शब्द करि कहने योग्य है शब्द उस अर्थ का कहने वाला है ऐसा जो ज्ञान भया सो श्रुतज्ञान है । सो यहां 'जीवः अस्ति' ऐसे शब्दका जानना तो मतिज्ञान है अर उसके निमित्ततैं जीवनामा पदार्थ का अस्तित्व जानना सो श्रुतज्ञान है । ऐसैं ही सब अक्षरात्मक श्रुतज्ञान का स्वरूप जानना । अक्षरात्मक जो अक्षर तातैं उपजा भया जो ज्ञान ताकौं भी अक्षरात्मक कह्या । यहां कार्यविषै कारण का उपचार किया है परमार्थतैं ज्ञान कोई अक्षर रूप है नाहीं ॥ पृष्ठ ६७५ ॥ अक्षरात्मक श्रुतज्ञान का एक और अच्छा उदाहरण जैसे जब कोई मनुष्य 'नीका' और

भंग चार त्रिसंयोगी भंग छह चतुःसंयोगी भंग चार पंचसंयोगी भंग (क् ख् ग् घ् ङ्) एक ऐसे सोलह भंग हैं। च वर्ण सहित छिर्ये अर्थात् क वर्ण से च वर्ण की अपेक्षा से प्रत्येक भंग (च्) एक है द्विसंयोगी पांच भंग हैं त्रिसंयोगी दश भंग हैं, चतुःसंयोगी दश भंग हैं पंच संयोगी भग पांच और षट्संयोगी भंग (क् ख् ग् घ् ङ् च्) एक है। ऐसे भंग बत्तीस हैं। छ वर्ण सहित छिर्ये अर्थात् क व र्ग से छ वर्ण तक इन मात्र अक्षरों की विवक्षा से प्रत्येक भंग (छ) एक है द्विसंयोगी भंग छह हैं। त्रिसंयोगी भंग पन्द्रह हैं चतुःसंयोगी भग बीस हैं पञ्चसंयोगी भंग पन्द्रह हैं षट् सयोगी भंग छह हैं और सप्त संयोगी भग (क् ख् ग् घ् ङ् च् छ्) एक है इस प्रकार चौंसठि हैं। ज् वर्ण सहित छिर्ये अर्थात् कवर्ग से जवर्ग तक इन आठ अक्षरों की अपेक्षा से प्रत्येक भग (ज) एक है द्विसंयोगी भंग सात हैं त्रिसंयोगी भंग इक्कीस हैं चतुःसंयोगी भंग पैंतीस हैं, पंचसंयोगी भंग पैंतीस हैं षट् सयोगी भग इक्कीस हैं सप्तसंयोगी भंग सात हैं अष्ट सयोगी भंग (क् ख् ग् घ् ङ् च् छ् ज्) एक है ऐसे एकसौ अट्ठाईस हैं। झ् वर्ण सहित छिर्ये अर्थात् कवर्ण से झ वर्ण तक में प्रत्येक भंग एक (झ्) है द्विसंयोगी भंग आठ हैं त्रिसंयोगी भंग २८ अट्ठाईस हैं। चतुःसंयोगी भग छप्पन हैं पंच संयोगी भंग सत्तर हैं। षट्सयोगी भग छप्पन हैं। सप्त संयोगी भग अट्ठाईस हैं। अष्टसंयोगी भंग आठ हैं नवसयोगी भंग (क् ख् ग् घ् ङ् च् छ् ज् झ्) एक है ऐसे कवर्ण से झ तक दोसौछप्पन भंग हैं। और कवर्ण से ञ वर्ण पर्यन्त इन दश अक्षरों की अपेक्षा से प्रत्येक भंग (ञ्) एक है। द्विसंयोगी भंग नौ हैं। त्रिसंयोगी भंग छत्तीस हैं चतुर्संयोगी भंग चौरासी हैं पंचसंयोगी एकसौछब्बीस हैं। षट्संयोगी भंग भी एकसौ छब्बीस हैं। सप्तसंयोगी भंग चौरासी हैं अष्टसंयोगी भग छत्तीस हैं नव संयोगी भग नव हैं दश संयोगी भग (क् ख् ग् घ् ङ् च् छ् ज् झ् ञ) एक है ऐसे ये ५१२ भग हैं ये सब भग एक सहस्र चौबीस जोड़ने पर होते हैं ये सब पृथक् पृथक् लिखे जासकते हैं विस्तार भय से नहीं लिखे लिखने की रीति ऊपर बता चुके हैं। स्मरण रहे कि ये भंग अपुनरुक्त अक्षरों द्वारा बने हुये हैं अर्थात् एक भंग में उलटफेर कर वही अक्षर नहीं आसकते हैं जैसे क्ख्ग् और ख्ग्क् वा गखक् यह तीनों अपुनरुक्त भंग की अपेक्षा से एक ही भंग है। इस ही क्रम से चौंसठि स्थानों में प्रत्येक भग द्विसंयोगी भग त्रिसंयोगी भंग, चतुः संयोगी भंग इत्यादिक भंग पूर्व पूर्व स्थानों के भंगों से उत्तर उत्तर अर्थात् अगले अगले स्थानों से दूने दूने होते जाते हैं। जैसे—

उत्पत्ति कैसे है और जिनवाणी कितने अक्षर प्रमाण है और वर्णाक्षर इतने ही अक्षर होते हैं न्यूनाधिक क्यों नहीं होते और किस प्रकार होते हैं।

उक्त अनादिनिधन ये चौंसठि मूल अक्षर एक संयोगी द्विसंयोगी त्रिसंयोगी चतु:संयोगी पंचसंयोगी आदि चौंसठि संयोगी पर्यन्त जानना (ग्र भंगाणियों या भंगों) का उत्पत्ति का अनुक्रम मूलवर्ण चौंसठि अक्षरों के सम्बन्ध में निम्नलिखित चित्रमें दिखाते हैं—

क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ	६४ अक्षर पर्यन्त
१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	प्रत्येक भङ्ग
जोड़	१	२	३	४	५	६	७	८	९	द्विसंयोगी भंग
	२ जोड़	१	३	६	१०	१५	२१	२८	३६	त्रि „ „
		४ जोड़	१	४	१०	२	३५	५६	८४	चतु: „ „
			८ जोड़	१	५	१५	३५	७०	१२६	पंच „ „
				१६ जोड़	१	६	२१	५६	१११	षट् „ „
					३२ जोड़	१	७	२८	८४	सप्त „ „
						६४ योग	१	८	३६	अष्ट „ „
							१२८योग	१	९	नव „
								२५६ योग	१	दश „
									५१२ योग	

यहां केवल क वर्गमें तो एक प्रत्येक भंग (क) ही है इस क वर्गमें द्विसंयोगी त्रिसंयोगी आदिक भङ्ग नहीं है। ख वर्ण सहित विर्षे अर्थात् क् ख् की अपेक्षा से प्रत्येक भङ्ग ख एक और द्विसंयोगी भंग क् ख् एक ऐसे दो भङ्ग हैं। और ग वर्ण सहित विर्षे अर्थात् क् ख् ग् की अपेक्षा से प्रत्येक भङ्ग ग् एक द्विसंयोगी भङ्ग क् ग् ख् ग् दो त्रिसंयोगी भङ्ग क् ख् ग एक। ऐसे चार भङ्ग हैं। घ वर्ण सहित विर्षे अर्थात् क् ख् ग् घ की अपेक्षा से प्रत्येक भंग घ् एक है, द्विसंयोगी भङ्ग कघ्–खघ्–गघ् ये तीन त्रिसंयोगी भंग क् ख् ग क् गघ् खगघ् ये तीन हैं चतु:संयोगी भङ्ग क् ख् ग् घ् एक है ऐसे आठ हैं

और ङ वर्ण सहित विर्षे अर्थात् क ख ग घ ङ का ... पूर्वोक्त रीति से भंग निकालने पर प्रत्येक भंग ङ एक होगा द्विसंयोगी

भंग चार द्विसंयोगी भंग छह चतुःसंयोगी भंग चार पंचसंयोगी भंग (क् ख् ग् घ ङ) एक ऐसे सोलह भंग हैं। च वर्ण सहित विधि अर्थात् क वर्ण से च वर्ण की अपेक्षा से प्रत्येक भंग (च्) एक है द्विसंयोगी पांच भंग हैं त्रिसंयोगी दश भंग हैं, चतुःसंयोगी दश भंग हैं पंच संयोगी भंग पांच और षट्संयोगी भंग (क् ख् ग् घ् ङ् च्) एक है। ऐसे भंग बत्तीस हैं। छ वर्ण सहित विधि अर्थात् क से ले छ वर्ण तक इन सात अक्षरों की विवक्षा से प्रत्येक भंग (छ) एक है द्विसंयोगी भंग छह हैं। त्रिसंयोगी भंग पन्द्रह हैं चतुःसंयोगी भंग बीस हैं पंचसंयोगी भंग पन्द्रह हैं षट् संयोगी भंग छह हैं और सप्त संयोगी भंग (क् ख् ग् घ ङ् च् छ) एक है इस प्रकार चौंसठि हैं। ज् वर्ण सहित विधि अर्थात् ककार से जकार तक इन आठ अक्षरों की अपेक्षा से प्रत्येक भंग (ज) एक है द्विसंयोगी भंग सात हैं त्रिसंयोगी भंग इक्कीस हैं चतुःसंयोगी भंग पैंतीस हैं, पंचसंयोगी भंग पैंतीस हैं षट् संयोगी भंग इक्कीस हैं सप्तसंयोगी भंग सात हैं अष्ट संयोगी भंग (क् ख् ग् घ् ङ च् छ ज्) एक है ऐसे एकसौ अट्ठाईस हैं। झ् वर्ण सहित विधि अर्थात् ककार से झ वर्ण तक में प्रत्येक भंग एक (झ्) है, द्विसंयोगी भंग आठ हैं त्रिसंयोगी भंग २८ अट्ठाईस हैं। चतुःसंयोगी भंग छप्पन हैं पंच संयोगी भंग सत्तर हैं। षट्संयोगी भंग छप्पन हैं। सप्त संयोगी भंग अट्ठाईस हैं। अष्टसंयोगी भंग आठ हैं नवसंयोगी भंग (क ख् ग् घ् ङ् च् छ् ज् झ्) एक है ऐसे ककार से झ तक दोसौछप्पन भंग हैं। और ककार से ञ वर्ण पर्यन्त इन दश अक्षरों की अपेक्षा से प्रत्येक भंग (ञ्) एक है। द्विसंयोगी भंग नौ हैं। त्रिसंयोगी भंग छत्तीस हैं, चतुःसंयोगी भंग चौरासी हैं पंचसंयोगी एकसौछब्बीस हैं। षट्संयोगी भंग भी एकसौ छब्बीस हैं। सप्तसंयोगी भंग चौरासी हैं अष्टसंयोगी भंग छत्तीस हैं नव संयोगी भंग नव हैं दश संयोगी भंग (क् ख् ग् घ् ङ् च् छ ज् झ् ञ) एक है ऐसे ये ५१२ भंग हैं ये सब भंग एक सहस्र तेईस जोड़ने पर होते हैं ये सब पृथक् पृथक् लिखे जासकते हैं विस्तार भय से नहीं लिखे लिखने की रीति उपर बता चुके हैं। स्मरण रहे कि ये भंग अपुनरुक्त अक्षरों द्वारा बने हुये हैं अर्थात् एक भंग में उलटफेर कर वही अक्षर नहीं आसकते हैं जैसे क्खग् और खगक् वा गखक् यह तीनों अपुनरुक्त भंग की अपेक्षा से एक ही भंग है। इस ही क्रम से चौंसठि स्थानों में प्रत्येक भंग द्विसंयोगी भंग त्रिसंयोगी भंग चतुः संयोगी भंग इत्यादिक भंग पूर्व पूर्व स्थानों के भंगों से उत्तर उत्तर अर्थात् अगले अगले स्थानों से दूने दूने होते आते हैं। जैसे—

उत्पत्ति कैसे है और जिनवाणी कितने अक्षर प्रमाण है और परोक्ष ज्ञान दो अक्षर होते हैं न्यूनाधिक क्यों नहीं होते और किस प्रकार होते हैं ।

उक्त अनादिनिधन से चौंसठि मूल अक्षर एक संयोगी द्विसंयोगी त्रिसंयोगी चतुःसंयोगी पञ्चसंयोगी आदि चौंसठि संयोगी पर्यन्त जानना उन (संयोगियों या भङ्गों) की उत्पत्ति का अनुक्रम मूलभूत चौंसठि अक्षरों के सम्बन्ध में निम्नलिखित चित्रमें दिखाते हैं—

क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ	१० अक्षर प्रथम
१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	प्रत्येक भङ्ग है
१ जोड़	१	२	३	४	५	६	७	८	९	द्विसंयोगी भङ्ग
	२ जोड़	१	३	६	१०	१५	२१	२८	३६	त्रि „ „
		४ जोड़	१	४	१०	२०	३५	५६	८४	चतुः „ „
			८ जोड़	१	५	१५	३५	७०	१२६	पंच „ „
				१६ जोड़	१	६	२१	५६	१२६	षट् „ „
					३२ जोड़	१	७	२८	८४	सप्त „ „
						६४ योग	१	८	३६	अष्ट „ „
							१२८ योग	१	९	नव „
								२५६ योग	१	दश „ „
									५१२ योग	

यहां केवल क वर्णमें तो एक प्रत्येक भंग (क) ही है इस क वर्णमें द्वि संयोगी त्रिसंयोगी आदिक भङ्ग नहीं है। ख वर्ण सहित लिये अर्थात् क् ख् की अपेक्षा से प्रत्येक भङ्ग ख् एक और द्विसंयोगी भंग क् ख् एक ऐसे दो भङ्ग हैं। और ग वर्ण सहित लिये अर्थात् क् ख् ग् की अपेक्षा से प्रत्येक भङ्ग ग् एक द्विसंयोगी भङ्ग क् ग् ख् ग् दो त्रिसंयोगी भङ्ग क् ख् ग एक। ऐसे चार भङ्ग हैं। घ वर्ण सहित लिये अर्थात् क् ख् ग् घ की अपेक्षा से प्रत्येक भंग घ् एक है, द्विसंयोगी भङ्ग क्घ्–ख्घ्–ग्घ् ये तीन त्रिसंयोगी भंग क्ख्ग् क् ग्घ् ख्ग्घ् ये तीन हैं चतुःसंयोगी भङ्ग क् ख् ग् घ एक है ऐसे आठ हैं

और ङ वर्ण सहित लिये अर्थात् क ख ग् घ् ङ की अपेक्षा से पूर्वोक्त रीति से भंग [illegible] प्रत्येक भंग ङ एक होगा द्विसंयोगी

भंग चार त्रिसंयोगी भंग छह चतुःसंयोगी भंग चार पंचसंयोगी भंग (क् ख् ग् घ् ङ्) एक ऐसे सोलह भंग हैं। च वर्ण सहित विषै अर्थात् क वर्ण से च वर्ण की अपेक्षा से प्रत्येक भंग (च्) एक है द्विसंयोगी पांच भंग हैं त्रिसंयोगी दश भंग हैं, चतुःसंयोगी दश भंग हैं पंच संयोगी भंग पांच और षट्संयोगी भंग (क् ख् ग् घ् ङ् च्) एक है। ऐसे भंग बत्तीस हैं। छ वर्ण सहित विषै अर्थात् क से छ से छ वर्ण तक इन सात अक्षरों की विवक्षा से प्रत्येक भंग (छ) एक है द्विसंयोगी भंग छह हैं। त्रिसंयोगी भंग पन्द्रह हैं चतुःसंयोगी भंग बीस हैं पञ्चसंयोगी भंग पन्द्रह हैं षट् संयोगी भंग छह हैं और सप्त संयोगी भंग (क ख् ग् घ ङ् च् छ्) एक है इस प्रकार चौंसठि हैं। ज् वर्ण सहित विषै अर्थात् कवर्ण से जवर्ण तक इन आठ अक्षरों की अपेक्षा से प्रत्येक भंग (ज) एक है द्विसंयोगी भंग सात हैं त्रिसंयोगी भंग इकीस हैं चतुःसंयोगी भंग पैंतीस हैं, पंचसंयोगी भंग पैंतीस हैं षट् संयोगी भंग इकीस हैं सप्तसंयोगी भंग सात हैं अष्ट संयोगी भंग (क् ख् ग् घ् ङ च् छ् ज्) एक है ऐसे एकसौ अट्ठाइस हैं। झ् वर्ण सहित विषै अर्थात् कवर्ण से झ वर्ण तक में प्रत्येक भंग एक (झ्) है, द्विसंयोगी भंग आठ हैं त्रिसंयोगी भंग २८ अट्ठाईस हैं। चतुःसंयोगी भंग छप्पन हैं पंच संयोगी भंग सत्तर हैं। षट्संयोगी भंग छप्पन हैं। सप्त संयोगी भंग अट्ठाईस हैं। अष्टसंयोगी भंग आठ हैं नवसंयोगी भंग (क् ख् ग् घ् ङ् च् छ् ज् झ्) एक है ऐसे कवर्ण से झ तक दोसौछप्पन भंग हैं। और कवर्ण से ञ वर्ण पर्यन्त इन दश अक्षरों की अपेक्षा से प्रत्येक भंग (ञ्) एक है। द्विसंयोगी भंग नौ हैं। त्रिसंयोगी भंग छत्तीस हैं, चतुःसंयोगी भंग चौरासी हैं पंचसंयोगी एकसौछब्बीस हैं। षट्संयोगी भंग भी एकसौ छब्बीस हैं। सप्तसंयोगी भंग चौरासी हैं अष्टसंयोगी भंग छत्तीस हैं नव संयोगी भंग नव हैं दश संयोगी भंग (क् ख् ग घ ङ च् छ् ज् झ् ञ) एक है ऐसे ये ५१२ भंग हैं (ये सब भंग एक सहस्र चौबीस जोड़ने पर होते हैं ये सब पृथक् पृथक् लिखे जासकते हैं विस्तार भय से नहीं लिखे लिखने की रीति ऊपर बता चुके हैं। स्मरण रहे कि ये भंग अपुनरुक्त अक्षरों द्वारा बने हुये हैं अर्थात् एक भंग में उलटफेर कर पढ़ो अक्षर नहीं आसकते हैं जैसे कखग् और खगक् वा गखक् यह तीनों अपुनरुक्त भंग की अपेक्षा से एक ह भंग है। इस ही क्रम से चौंसठि स्थानों में प्रत्येक भंग द्विसंयोगी भंग त्रिसंयोगी भंग चतुः संयोगी भंग इत्यादिक भंग पूर्व पूर्व स्थानों के भंगों से उत्तर उत्तर अर्थात् अगले अगले स्थानों से दूने दूने होते आते हैं। जैसे—

स्थान	सबप्रकार के भंगोंका योग	स्थान	सब भांतिके भंगोंका जोड़	स्थान	सबभांतिके भंगोंका जोड़	स्थान	सब भांति के भंगोंका जोड़
पहिला	१	सत्रहवां	६५५३६	तेतीसवां	४२९४९६७२९६	उनचासवां	२८१४७४९७६७१०६५६
दूसरा	२	अठारहवां	१३१०७२	चौंतीसवां	८५८९९३४५९२	पचासवां	५६२९४९९५३४२१३१२
तीसरा	४	उन्नीसवां	२६२१४४	पैंतीसवां	१७१७९८६९१८४	इक्यावनवां	११२५८९९९०६८४२६२४
चौथा	८	बीसवां	५२४२८८	छत्तीसवां	३४३५९७३८३६८	बावनवां	२२५१७९९८१३६८५२४८
पांचवां	१६	इक्कीसवां	१०४८५७६	सैंतीसवां	६८७१९४७६७३६	त्रेपनवां	४५०३५९९६२७३७०४९६
छठा	३२	बाईसवां	२०९७१५२	अड़तीसवां	१३७४३८९५३४७२	चौवनवां	९००७१९९२५४७४०९९२
सातवां	६४	तेईसवां	४१९४३०४	उनतालीसवां	२७४८७७९०६९४४	पचपनवां	१८०१४३९८५०९४८१९८४
आठवां	१२८	चौबीसवां	८३८८६०८	चालीसवां	५४९७५५८१३८८८	छप्पनवां	३६०२८७९७०१८९६३९६८
नवमां	२५६	पच्चीसवां	१६७७७२१६	इकतालीसवां	१०९९५११६२७७७६	सतावनवां	७२०५७५९४०३७९२७९३६
दसवां	५१२	छब्बीसवां	३३५५४४३२	बियालीसवां	२१९९०२३२५५५५२	अठावनवां	१४४११५१८८०७५८५५८७२
ग्यारवां	१०२४	सत्ताईसवां	६७१०८८६४	तेतालीसवां	४३९८०४६५११९०४	उनसठवां	२८८२३०३७६१५११७११७४४
बारहवां	२०४८	अट्ठाईसवां	१३४२१७७२८	चवालीसवां	८७९६०९३०२२२०८	साठवां	५७६४६०७५२३०३४२३४८८
तेरहवां	४०९६	उनतीसवां	२६८४३५४५६	पैंतालीसवां	१७५९२१८६०४४४१६	इकसठवां	११५२९ १५०४६०६८४६९७६
चौदहवां	८१९२	तीसवां	५३६८७०९१२	छयालीसवां	३५१८४३७२ ०८८८३२	बासठवां	२३ ०५८४३००९२१३६९३९५२
पंद्रहवां	१६३८४	इकतीसवां	१ ०७३७४१८२४	सैंतालीसवां	७०३६८७४४१७७६६४	त्रेसठवां	४६११६८६०१८४२७३८७९०४
सोलहवां	३२७६८	बत्तीसवां	२१४७४८३६४८	अड़तालीसवां	१४०७३७४८८३५५३२८	चौंसठवां	[illegible]

इन सब प्रत्येक भंगों को द्विसंयोगी भंगों को त्रिसंयोगी इत्यादि चौसठि मूलवर्ण के भंगों का प्रमाण १८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ है यही समस्त श्रुतज्ञान के एक घाटि एकट्ठी प्रमाण अपुनरुक्त अक्षर हैं अर्थात् एकसौ चौरासी शंख छयालीसपद्म चौहत्तर नील चालीस खरब तेहत्तर अरब सत्तर करोड पचानवे लाख इक्यावन सहस्र छसौ पन्द्रह इतने अक्षर भिन्न भिन्न अर्थात् अपुनरुक्त अक्षर प्रमाण श्रुतज्ञान के हुये जानें तो वाक्य का प्रत्यक्ष प्रतीति के निमित्त उनको कोई अक्षरनिका पारंपार कहे तो उनका किछु संख्या का नियम है नाहीं" गाम्मटसार पृष्ठ ७४१

( ) दूसरे प्रकार से उक्त पोस अक्षर प्रमाण श्रुतज्ञान ऐसे निकालते हैं कि उक्त चौसठ अक्षरों को विरलन करके अर्थात् बरोबरि पंक्तिरूप एक एक का पृथक् पृथक् चौसठि स्थानों में मांडिय। प्रत्येक चौसठ अक्षर के ऊपर दो दो का अङ्क देकर परस्पर सम्पूर्ण दो के अङ्कों का निरूपित से गुणा करके जो लब्ध राशि आवे उसमें से एक घटा देने से जो प्रमाण रहता है उतने ही श्रुतज्ञान के अपुनरुक्त अक्षर रहते हैं क् ‒ख्‒ग् ‒घ ‒ङ इत्यादि चौसठ स्थानों पर दो रखिये ५ कि द य द य के अङ्कों का ही परस्पर गुणन करते हैं। दो के गुणने मूल चौसठ अक्षर विकार का प्राप्त नहीं होते हैं अतः प्रत्येक चौसठ मूल अक्षर के स्थान में एक का अङ्क लिखकर अथवा □ ऐसे चिह्न चौसठ लिखकर उन प्रत्येक के ऊपर दो दो का अङ्क लिखकर पुनः सब दो दो के अङ्कों का परस्पर गुणा करें तो भी वही (परिणाम) होगा जैसे □ □²□²□ □ □ □ □ □ □ □ □²□ □ □ □ □ □ □ □ □²□²□²□²□²□²□²□ □²□ □²
□ □ □ □²□ □ □ □²□ □ □ □²□ □ □ □²□ □²□ □ □ □ □ □²□²□ □²□²□²□²□²□²

= २×
२×२

१६×१६×१६×१६×१६×१६×१६×१६×१६×१६×१६×१६×१६×१६×१६×१६ = २५६×२५६×२५६×२५६×२५६×२५६×
२५६×२५६ क्योंकि २५६ गुणा किये गये २५६ से बराबर हैं ६५५३६ के इस लिये समस्त संख्या = ६५५३६×६५५३६×६५५३६×६५५३६

= ४२९४९६७२९६ / ४२९४९६७२९६ × ४२९४९६७२९६ / ४२९४९६७२९६ इसमें से पीछे एक दिया

स्थान	सब प्रकार के भंगोंका योग	स्थान	सब भांतिके भंगोंका जोड़	स्थान	सब भांतिके भंगोंका जोड़	स्थान	सब भांति के भंगोंका जोड़
पहिला	१	सत्रहवां	६५५३६	तेतीसवां	४२९४९६७२९६	उनचासवां	२८१४७४९७६७१०६५६
दूसरा	२	अठारहवां	१३१०७२	चौंतीसवां	८५८९९३४५९२	पचासवां	५६२९४९९५३४२१३१२
तीसरा	४	उन्नीसवां	२६२१४४	पैंतीसवां	१७१७९८६९१८४	इक्यावनवां	११२५८९९९०६८४२६२४
चौथा	८	बीसवां	५२४२८८	छत्तीसवां	३४३५९७३८३६८	बावनवां	२२५१७९९८१३६८५२४८
पांचवां	१६	इक्कीसवां	१०४८५७६	सैंतीसवां	६८७१९४७६७३६	त्रेपनवां	४५०३५९९६२७३७०४९६
छठा	३२	बाईसवां	२०९७१५२	अड़तीसवां	१३७४३८९५३४७२	चौवनवां	९००७१९९२५४७४०९९२
सातवां	६४	तेईसवां	४१९४३०४	उनतालीसवां	२७४८७७९०६९४४	पचपनवां	१८०१४३९८५०९४८१९८४
आठवां	१२८	चौबीसवां	८३८८६०८	चालीसवां	५४९७५५८१३८८८	छप्पनवां	३६०२८७९७०१८९६३९६८
नवमां	२५६	पच्चीसवां	१६७७७२१६	इकतालीसवां	१०९९५११६२७७७६	सतावनवां	७२०५७५९४०३७९२७९३६
दशवां	५१२	छब्बीसवां	३३५५४४३२	बियालीसवां	२१९९०२३२५५५५२	अट्ठावनवां	१४४११५१८८०७५८५५८७२
ग्यारवां	१०२४	सत्ताईसवां	६७१०८८६४	तेतालीसवां	४३९८०४६५११०४	उनसठवां	२८८२३०३७६१५१७११७४४
बारहवां	२०४८	अट्ठाईसवां	१३४२१७७२८	चवालीसवां	८७९६०९३०२२२०८	साठवां	५७६४६०७५२३०३४२३४८८
तेरहवां	४०९६	उनतीसवां	२६८४३५४५६	पैंतालीसवां	१७५९२१८६०४४४१६	इकसठवां	११५२९२१५०४६०६८४६९७६
चौदहवां	८१९२	तीसवां	५३६८७०९१२	छियालीसवां	३५१८४३७२०८८८३२	बासठवां	२३०५८४३००९२१३६९३९५२
पन्द्रहवां	१६३८४	इकतीसवां	१०७३७४१८२४	सैंतालीसवां	७०३६८७४४१७७६६४	त्रेसठवां	४६११६८६०१८४२७३८७९०४
सोलहवां	३२७६८	बत्तीसवां	२१४७४८३६४८	अड़तालीसवां	१४०७३७४८८३५५३२८	चौंसठवां	९२२३३७२०३६८५४७७५८०८

( ) इसी भेद को तीसरे प्रकार से ऐसे भी प्रकाश करते हैं कि द्विरूपवर्गधाराका (अथवा दो के वर्ग धारा में) छठा वर्गस्थान जिसको गणना [illegible] पण्ण्ट्ठी सख्याके बराबर है। इस एकट्ठी प्रमाण संख्यामें [illegible] उत्पन्न हो [illegible] प्रकार [illegible] गुणस्थानके हैं अर्थात् दो के ऊपर २ का वर्ग करके जब छठा वर्गका स्थान आवे (२ ^ ^ ^ ^ ^ ^) उस गुणनफलमें १ एकप्रमाण वेदी द्रव्यश्रुतके अपुनरुक्त अक्षर हैं

जैसे दो का एक वर्गस्थान २ ^ = ४ दूसरा दूसरा वर्गस्थान [२]^ = [४]^ = १६

दोका तीसरा वर्ग स्थान [२] = [४] = [१६] = २५६ दो का चौथा वर्ग स्थान = [२] = [४] = [१६] = [२५६] = ६५५३६

दोका पांचवां वर्गस्थान [२] = [४] = [१६] = [२५६] = [६५५३६] = ४ २९४९६७२९६

दोका छठा वर्गस्थान [२] = [४] = [१६] = [२५६] = [६५५३६] = [४२९४९६७२९६]

= ४२९४९६७२९६ × ४२९४९६७२९६

= १८४४६७४४०७३७०९५५१६१६ इससे एक

घटाने पर १८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ शेष रहे येही अपुनरुक्त अङ्क द्रव्य श्रुतज्ञान के हैं

६५५३६	६५५३६
६५५३६	६५५३६
३९३२१६	३९३२१६
१९६६ ८	१९६६०८
३२७६८०	३२७६८
३२७६८	३२७६८
३९३२१६	३९३२१६
४२९४९६७२९६	४२९४९६७२९६

अथ ४२९४९६७२९६ का आपस में गुणा करने पर जो लब्ध राशि आवे उसमें से एक घटाने पर शेष इष्ट राशि है

अर्थात्

४२९४९६७२९६
४२९४९६७२९६

२५७६९८ ३७७६
३८६५४७ ५६६४
८५८९९३४५९२
३ ००६४७७१ ०७२
२५७६९८ ३७७६
३८६५४७ ५६६४
१७१७९८६९१८४
३८६५४७ ५६६४
८५८९९३४५९२
१७१७९८६९१८४

१८४४६७४४ ०७३७०९५५१६१६
१

१८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ । ये एक राशि [illegible] की प्रमाण [illegible] अनुपमान्त [illegible] है

( ) इसी भेद को तीसरे प्रकार से ऐसे भी प्रकाश करते हैं कि द्विरूपवर्गधारामें (अथवा दूजे वर्ग धारा में)छठवां वर्गस्थान जिस को एकट्ठी संख्याके बराबर है । इस एकट्ठी प्रमाण सकलों ... एक समान ... शरीर ... गुणाकारके ...गुणनफलमें १ एक घटाना ऐसी द्रव्यश्रुतके अपुनरुक्त अक्षर हैं अर्थात् दूजे का २ वर्ग रखकर अब छठवां वर्गका स्थान पावें(२ ' ' ' ' ' ')२२

जैसे दो का एक वर्गस्थान २ = ४ दो का दूसरा वर्गस्थान [२] = [४] = १६

दो का तीसरा वर्ग स्थान [[२]] = [[४]] = [१६] = २५६ दो का चौथा वर्ग स्थान = [[[२]]] = [[[४]]] = [[१६]] = [२५६] = ६५५३६

दो का पांचवां वर्गस्थान [[[[२]]]] = [[[[४]]]] = [[[१६]]] = [[२५६]] = [६५५३६] = ४२९४९६७२९६

दो का छठा वर्गस्थान [[[[[२]]]]] = [[[[[४]]]]] = [[[[१६]]]] = [[[२५६]]] = [[६५५३६]] = [४२९४९६७२९६]

= ४२९४९६७२९६ × ४२९४९६७२९६

= १८४४६७४४ ०७३७०९५५१६१६ इससे एक

घटाने पर १८४४६७४४ ०७३७ ०९५५१६१५ शेष रहे येही अपुनरुक्त मात्र द्रव्य श्रुतज्ञान के हैं

मा अंगप्रविष्ट और अंगबाह्य के ऊपर से लिखते हैं। एक अक्षर से उत्पन्न हुआ जो ज्ञान जिसके ऊपर क्रम से एक एक अक्षर को वृद्धि होत हो। जा संख्यात अक्षर की वृद्धि हो जाय तब पदनामक श्रुतज्ञान होता है। अक्षरज्ञान के ऊपर और पदज्ञान के पूर्व तक जितने ज्ञान के भेद हैं (ये ज्ञान के भेद संख्या में पद के अक्षरों से एक न्यून होते हैं) ये सब अक्षर समासज्ञान के भेद हैं। (जी० का० गो ३३५ गाथा) स्मरण रहे कि यहाँ १८ पद से अभिप्राय मध्यमपद से है क्योंकि पद तीन प्रकार के हैं (प) अर्थपद (फ) प्रमाण पद (ब) मध्यम पद। तहाँ जितने अक्षरों के समूह द्वारा वांछित अर्थ जाना जाता है उसको 'अर्थपद' कहते हैं अर्थात् विवक्षित अर्थ के अर्थी एक वा आदि अक्षरमय समूह ताको अर्थपद कहिये" जैसे 'गामभ्याज शुक्लां दण्डेन' वाक्य में गाम अभ्याज शुक्लां दण्डेन (= श्वेत गाय को दण्डे के बल) से बस करना। गाम् अभ्याज शुक्लां इन चार अर्थ पद हुये। ऐसे ही अग्निमानय, वाक्य में अग्निम् आनय (= आग को ला) दो अर्थ पद हुये। और दण्डेन शालिभ्यो गां निवारय वाक्य में दण्डेन – शालिभ्य: – गां – निवारय (= दंड से गाय को धानों में से निकाल दो) ये चार अर्थ पद हुये। इन उदाहरणों से प्रकट है कि अर्थ पद में प्रत्येक पद के अक्षर बराबर नहीं होते न्यून हों व अधिक हों कभी कभी बराबर भी हों प्रमाणेन अष्टोक्षरादि संख्या निरूप्य: अक्षरसमूह: प्रमाण पदं । तद्यथा नम: श्री वर्द्ध मानाय। नियमित संख्या को लिये हुये आठ अक्षर आदि गणना करि उत्पन्न हुआ अक्षरोंका समूह सो प्रमाण पद है जैसे श्री वर्द्ध मान (भगवान्) को नमस्कार हो अन्य उदाहरण प्रमाणपद के मध्ये मज्जमाणमीलि माध्य प्रमाणाम् वैशाली स्यात्कृत नर पद साधते जाप पदका प्रत्येक। इत्यादि इन तीन प्रमाणपद के उदाहरणों से प्रगट है इनके अक्षरों की संख्या होन अधिक है परन्तु प्रत्येक छन्द अन्तर्गत तीन प्रमाणपदों के अक्षरों का प्रमाण बराबर होगा। उक्त सब उदाहरणों के मिलाने से यह फल निकलता है कि अर्थपद और प्रमाणपद के अक्षरों की कोई गणना नियत नहीं है॥

म और सोलहसै चौंतीस कोडि तियासी लाख सात हजार आठसे अठ्यासी (१६३४८३०७८८८) गाथा विषे (= परमागम, कहीं अपुनरुक्त अक्षर तिनिका समूह सो मध्यमपद कहिये। इनि विषें अर्थपद अर प्रमाणपद तौ हीन अधिक अक्षरनिकरि प्रमाणकौं लिए लोकव्यवहारकरि ग्रहण कीए हैं तातें इनकरि परमागमविषें गाथाविषे कहे जो संख्या सो नहीं विषै वर्तमान जो मध्यम पद ताही का ग्रहण जानना" सारांश, अर्थपद और प्रमाणपद न्यूनाधिक्य मात्रा होने से लोकव्यवहार में प्रचलित है जिससे लोकोत्तर गाथा विषे [= परमागम में] कहे हुये पदके अक्षरों का प्रमाण १६३४८३०७८८८ सर्वदा के लिये निश्चित है। इस ही को मध्यम पद कहते हैं॥

अंगप्रविष्ट द्वादशविधम् ॥ तद्यथा—

अङ्गप्रविष्टम्।।। द्वादशविधं।।।। तद्यथा ॥ = अंगप्रविष्ट बारह प्रकार है जैसे (सो = तद् क्यों है = यथा ऐसा शब्दार्थ है)

इसका भाव है कि समस्त जिनवाणी (अर्थात् द्रव्यश्रुतज्ञान) के १८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ अपुनरुक्त अक्षर प्रमाण है इन बीस अक्षरों में १६३४८३०७८८८ अक्षरों का भाग देने से द्रव्यश्रुतज्ञान के मध्यम पदों की संख्या इस भांति निकलती है कि

१६३४८३०७८८८) १८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ (११२८३५८००५

१६३४८३०७८८८
२०९८४३६१८५७
१६३४८३०७८८८
४६३५ ५३९६९
३२६९६६१५७७६
१ ३६६९३६९१४८
१३ ०७८६४६३१ ४
५८२२७०६ ४९९
४९०४४९२३६६४
९४८२८३६०९१५
८१७४१२२९४४०
१३ ८९८२८४७५१
१३०७८६४६३१ ४
८१८२१६४७९१५
८१७४१५३९४५
= ८ १ ८१७५

इतने अंग प्रविष्ट श्रुतज्ञान के मध्यम पद हुये इतने पदों का ता सामूहिक रूप द्रव्यश्रुत है और शेष अक्षर आठ करोड़ एक लाख आठ सहस्र एकसौ पचहत्तर = (८१०८१७५) रहे इनका पूरा एक मध्यम पद नहीं होसका है इनसे अंगबाह्यको उत्पत्ति है अर्थात् इन अक्षरों से चौदह पूर्वोक्त प्रकीर्णकों की उत्पत्ति हुई है।

अर्थ - अब अंगबाह्य पद और अंगबाह्य को रूप से लिखते हैं। एक अक्षर से उत्पन्न हुआ जो ज्ञान तिसके ऊपर क्रम से एक एक अक्षर की वृद्धि हुए सते जब संख्यात अक्षरों की वृद्धि होजाय तब पदनामक श्रुतज्ञान होता है। अक्षरज्ञान के ऊपर और पदज्ञान के पूर्व तक जितने ज्ञान के भेद हैं वे सब अक्षर समासज्ञान के भेद हैं। (जी० का० गो ३३५ गाथा) स्मरण रहे कि यहां इस पद से अभिप्राय मध्यमपद से है क्योंकि पद तीन प्रकार के हैं (१) अर्थपद (२) प्रमाण पद (३) मध्यम पद। तहां जितने अक्षरों के समूह द्वारा वांछित अर्थ जाना जाता है उसको अर्थपद कहते हैं अर्थात् विवक्षित अर्थ के अर्थी एक वा आदि अक्षरनिका समूह ताको अर्थपद कहिये" जैसे 'गामभ्याज शुक्लां दंडेन' वाक्य में गाम अभ्याज शुक्लां दंडेन (= श्वेत गाय को दंडे के बल) से बन्द करदो। गाम् अभ्याज शुक्लां-दण्डेन चार अर्थ पद हुये। ऐसे ही 'अग्निमानय' वाक्य में अग्निम् आनय (= आग को ला) दोअर्थ पद हुये। और दंडेन शालिभ्यो गां निवारय' वाक्य में दंडेन - शालिभ्यः - गां - निवारय (= दंडे से गाय को धानों में से निकाल दो) ये चार अर्थ पद हुये। इन उदाहरणों से प्रकट है कि अर्थपद में प्रत्येक पद के अक्षर बराबर नहीं होते न्यून भी व अधिक भी कहीं कभी बराबर भी हों प्रमाणेन अष्टोत्तरादि संख्या निर्दिष्टा अक्षरसमूहः प्रमाणपदं ॥ तद्यथा नमः श्री वर्द्ध मानाय। नियमित संख्या को लिये हुये आठ अक्षर आदि गणना करि उत्पन्न हुआ अक्षरोंका समूह सो प्रमाण पद है जैसे श्री वर्द्ध मान (भगवान्) को नमस्कार हो अन्य उदाहरण प्रमाणपद के नमो अरहंताणं। णमो सिद्धाणं। प्रमाणपद के उदाहरणों से प्रगट है इनके अक्षरों की संख्या हीन अधिक है परन्तु प्रत्येक छन्द अर्थात् तीन प्रमाणपदों के अक्षरों का प्रमाण बराबर होगा। उक्त सब उदाहरणों के मिलाने से यह फल निकलता है कि अर्थपद और प्रमाणपद के अक्षरों की कोई गणना नियत नहीं है॥

अर सोलासै चौंतीस कोडि तियासी लाख सात हजार आठसै अट्यासी (१६३४८३ ०७८८८) गाथा विषै (= परमागम) कहे अपुनरुक्त अक्षर तिनिका समूह सो मध्यमपद कहिये। इनि विषै अर्थपद अर प्रमाणपद तो हीन अधिक अक्षरनिका प्रमाणको लिए लोकव्यवहार करि ग्रहण करि कर का प्रयोजन है तातै लोकोत्तर परमागमविषै गाथाविषै कहो जो संख्या सोई विषै वर्तमान जो मध्यम पद ताही का ग्रहण जानना" सारांश, अर्थपद और प्रमाण पद न्यूनाधिक्य मात्र होने से लोकव्यवहार में ग्रहण है जिससे लोकोत्तर गाथा विषै [= परमागम में] कहे हुये पदके अक्षरों का प्रमाण १६३४८३ ०७८८८ सर्वदा के लिये निश्चित है। इस ही को मध्यम पद कहते हैं॥

अन्तकृद्दशम् । अनुत्तरापपादिकदशम् । प्रश्नव्याकरणम् । विपाकसूत्रम । दृष्टिवाद इति ॥ दृष्टिवाद पञ्चविध —

अन्तकृद्दशम् ।।। = अन्तकृद्दशांग जिसमें प्रत्येक तीर्थंकरके तीर्थमें (= एक तीर्थंके पीछे जबतक दूसरा तीर्थंकर हो वो काल) जो दश दश मुनि चार प्रकार का तीव्र उपसर्ग सहन करके संसारके अन्त को प्राप्त हुए उनका वर्णन है इसके तेईस लाख अट्ठाईस सहस्र २३२८००० पद हैं

अनुत्तरोपपादिकदशम् ।।। = अनुत्तरोपपादिक दशांग वह है जिसमें एक एक तीर्थंकरके तीर्थमें दश दश महामुनि घोर उपसर्ग सहकर अन्तमें समाधि के द्वारा अपने प्राणों को त्याग करके विजय आदिक पांच प्रकारके अनुत्तर विमानोंमें उत्पन्न हुए। इसमें बानवे लाख चवालीस सहस्र ९२४४००० पद हैं।

प्रश्न व्याकरणम् ।।। = प्रश्न व्याकरणांग वो है जिसमें अतीत अनागत काल सम्बन्धी लाभ अलाभ सुख दुःख जीवित मरणादि शुभाशुभका कोई प्रश्न करै तिसके उत्तर यथार्थ कहनेका उपाय वर्णन है और आक्षेपिणी, विक्षेपिणी संवेजिनी निर्वेजनी इन चार प्रकारकी कथाओं का वर्णन है इसमें तिरानवे लाख सोलह सहस्र ९३१६००० पद हैं।

विपाकसूत्रम् । ॥ = विपाकसूत्रांग वह अङ्ग है जिसमें द्रव्य, क्षेत्र, काल भावके अनुसार शुभाशुभ कर्मों की तीव्र मन्द मध्यम आदि अनेक प्रकारकी अनुभाग-शक्तिके फल देने रूप विपाक का वर्णन है इसमें एककरोड़ चौरासीलाख पद हैं

दृष्टिवादः ।। = दृष्टिवादाङ्ग वह अङ्ग है जिसमें तीनसौ तिरेसठ मिथ्या मतों का वर्णन और उनका निराकरण है इसमें एकसौ आठ करोड़ अड़सठलाख छप्पन सहस्र पांच १०८६८५६००५ पद हैं

दृष्टिवादः।। पञ्चविधः ।। = दृष्टिवादः (बारहवां अङ्ग) पांच प्रकार का है (इसी पुस्तक का पृष्ट ४२० देखो)

आचारः । सूत्रकृतम् । स्थानम् । समवाय । व्याख्याप्रज्ञप्ति । ज्ञातृधर्मकथा । उपासकाध्ययनम्

आचार ;। =आचारांग अर्थात् वह है जिसमें साधुओं के समस्त आचरणका वर्णन हो। अठारह सहस्र जिसके पद हैं।

सूत्रकृतम् ;।।। =सूत्रकृतांग अर्थात् वह है। जिसमें ज्ञानका विनयादिक तथा धर्मक्रियामें स्वमत परमतकी क्रियाका और निर्विघ्न अध्ययन क्रियाका विशेष निरूपण हो इस में छतीस सहस्र ३६००० पद हैं।

स्थानम् ;।।। =स्थानाङ्ग अर्थात् जिसमें सम्पूर्ण द्रव्योंके एकसे लेकर कितने विकल्प होसक्ते हैं और उन विकल्पों का वर्णन किया है जैसे समान्यकी अपेक्षासे जीवद्रव्यका एक ही विकल्प वा भेद है, संसारी और मुक्त की अपेक्षा से दो भेद हैं उत्पाद व्यय ध्रौव्यकी अपेक्षा से तीन भेद हैं। चार गतियोंकी अपेक्षासे चार भेद हैं, इत्यादि। इसी प्रकार पुद्गल आदिक द्रव्यों के भी भेद समझना। इस में बियालीस सहस्र ४२००० पद हैं।

समवाय ;। =समवायाङ्ग अर्थात् वह अङ्ग है जिसमें द्रव्य क्षेत्र, काल भाव की अपेक्षासे सामान्यताका वर्णन है। सारांश सम्पूर्ण द्रव्यों में परस्पर किस किस धर्म की अपेक्षा से सादृश्य है यह बताया है। जैसे द्रव्यकरि धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय समान है। क्षेत्रकरि मनुष्यक्षेत्र और प्रथम नरकका प्रथम इन्द्रकबिल, अर प्रथम स्वर्गका प्रथम इन्द्रक विमान समान है। कालकरि उत्सर्पिणी अवसर्पिणी समान हैं। भावकरि केवल ज्ञान केवल दर्शन समान हैं। इसके एक लाख चौसठ सहस्र १६४००० पद हैं।

व्याख्याप्रज्ञप्ति ;।। =व्याख्याप्रज्ञप्ति अङ्ग वह है जिसमें जीव के अस्तिनास्ति, वक्तव्य अवक्तव्य नित्य अनित्य एक अनेक इत्यादि साठ सहस्र प्रश्न गणधर देवने तीर्थंकर भगवान के निकट किये सो कथन है। दोलाखअट्ठाईस सहस्र पद हैं।

ज्ञातृधर्मकथा;।। =ज्ञातृ धर्म कथांग वह है जिसमें जीवादि वस्तुओं का स्वभाव, तीर्थंकरोंका महात्मय, तीर्थंकरोंकी दिव्यध्वनिका समय तथा महात्म्य, उत्तम क्षमा आदि दशधर्म सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रयका स्वरूप तथा गणधर इन्द्र चक्रवर्ती आदिकी कथा उपकथाओं का वर्णन है पांचलाख छप्पनसहस्र पद हैं।

उपासकाध्ययनम् ,।।। =उपासकाध्ययनाङ्ग वह है जिसमें उपासकोंकी (श्रावकोंकी) सम्यग्दर्शनादि ग्यारह प्रतिमा संबन्धी व्रत गुण शील आचार तथा दूसरे क्रिया कांड और उनके मन्त्रादिकों का विस्तार वर्णन है। ग्यारहलाख सत्तर सहस्र पद हैं

अन्तकृद्दशम् । अनुत्तरोपपादिकदशम् । प्रश्नव्याकरणम् । विपाकसूत्रम् । दृष्टिवाद इति ॥ दृष्टिवाद पञ्चविध —

अन्तकृद्दशम् ;।। = अन्तकृद्दशांग जिसमें प्रत्येक तीर्थंकरके तीर्थमें (= एक तीर्थंके पीछे जबतक दूसरा तीर्थंकर हो वो काल) जो दश दश मुनि चार प्रकार का तीव्र उपसर्ग सहन करके संसारके अन्त को प्राप्त हुए उनका वर्णन है इसके तेईस लाख अट्ठाईस सहस्र २३२८००० पद हैं

अनुत्तरोपपादिकदशम् ;।। = अनुत्तरोपपादिक दशांग यह है जिसमें एक एक तीर्थ करके तीर्थमें दश दश महामुनि घोर उपसर्ग सहकर अन्तमें समाधि के द्वारा अपने प्राणों को त्याग करके विजय आदिक पांच प्रकारके अनुत्तर विमानोंमें उत्पन्न हुए । इसमें बानवे लाख चवालीस सहस्र ९२४४००० पद हैं ।

प्रश्न व्याकरणम् ,।।। = प्रश्न व्याकरणांग वो है जिसमें अतीत अनागत काल सम्बन्धी लाभ अलाभ सुख दु:ख जीवित मरणादि शुभाशुभका कोई प्रश्न करै तिसके उत्तर यथार्थ कहनेका उपाय वर्णन है और आक्षेपिणी, विक्षेपिणी संवेजिनी निर्वेजनी इन चार प्रकारकी कथाओं का वर्णन है इसमें तिरानवे लाख सोलह सहस्र ९३१६००० पद हैं ।

विपाकसूत्रम् ; ।। = विपाकसूत्राङ्ग यह अङ्ग है जिसमें द्रव्य, क्षेत्र, काल भावके अनुसार शुभाशुभ कर्मों की तीव्र मन्द मध्यम आदि अनेक प्रकारकी अनुभाग-शक्तिके फल देने रूप विपाक का वर्णन है इसमें एककरोड़ चौरासीलाख पद हैं

दृष्टिवाद ;। = दृष्टिवादाङ्ग यह अङ्ग है जिसमें तीनसौ तिरेसठ मिथ्या मतों का वर्णन और उनका निराकरण है इसमें एकसौ आठ करोड़ अड़सठलाख छप्पन सहस्र पांच १०८६८५६००५ पद हैं

दृष्टिवाद ;। पञ्चविध: ;। = दृष्टिवाद: (बारहवां अङ्ग) पांच प्रकार का है (इसी पुस्तक का पृष्ट ४२० देखो)

आचारः । सूत्रकृतम् । स्थानम् । समवाय । व्याख्याप्रज्ञप्ति । ज्ञातृधर्मकथा । उपासकाध्ययनम्

आचारः ।। = आचारांग अर्थात् वह है जिसमें साधुओं के समस्त आचरणका वर्णन हो । अठारह सहस्र जिसके पद हैं ।

सूत्रकृतम् ।।। = सूत्रकृतांग अर्थात् वह है । जिसमें ज्ञानका विनयादिक तथा धर्मक्रियामें स्वमत परमतकी क्रियाका और निर्विघ्न अध्ययन क्रियाका विशेष निरूपण हो इस में छतीस सहस्र ३६००० पद हैं ।

स्थानम् ।।। = स्थानाङ्ग अर्थात् जिसमें सम्पूर्ण द्रव्योंके एकसे लेकर जितने विकल्प होसक्ते हैं और उन विकल्पों का वर्णन किया है जैसे समान्यकी अपेक्षासे जीवद्रव्यका एक ही विकल्प वा भेद है, संसारी और मुक्त की अपेक्षा से दो भेद हैं उत्पाद व्यय ध्रौव्यकी अपेक्षा से तीन भेद हैं । चार गतियों की अपेक्षा से चार भेद हैं, इत्यादि । इसी प्रकार पुद्गल आदिक द्रव्यों के भी भेद समझना । इस में बियालीस सहस्र ४२००० पद हैं ।

समवाय ।। = समवायाङ्ग अर्थात् वह अङ्ग है जिसमें द्रव्य क्षेत्र काल भाव की अपेक्षासे सामान्यताका वर्णन है । सारांश सम्पूर्ण द्रव्यों में परस्पर किस किस धर्म की अपेक्षा से सादृश्य है यह बताया है । जैसे द्रव्यकारि धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय समान है । क्षेत्रकरि मनुष्यक्षेत्र और प्रथम नरकका प्रथम इन्द्रकबिल, अर प्रथम स्वर्गका प्रथम इन्द्रक विमान समान है । कालकरि उत्सर्पिणी अवसर्पिणी समान हैं । भावकारि केवल ज्ञान केवल दर्शन समान हैं । इसके एक लाख चौसठ सहस्र १६४००० पद हैं ।

व्याख्याप्रज्ञप्ति ।। = व्याख्याप्रज्ञप्ति अङ्ग वह है जिसमें जीव के अस्तिनास्ति, वक्तव्य अवक्तव्य नित्य अनित्य एक अनेक इत्यादि साठ सहस्र प्रश्न गणधर देवने तीर्थंकर भगवान के निकट किये सो कथन है । दोलाखअट्ठाईस सहस्र पद हैं ।

ज्ञातृधर्मकथा ।। = ज्ञातृ धर्म कथांग वह है जिसमें जीवादि वस्तुओं का स्वभाव तीर्थंकरोंका महात्म्य, तीर्थंकरोंकी दिव्यध्वनिका समय तथा महात्म्य, उत्तम क्षमा आदि दशधर्म सम्यक्दर्शनादि रत्नत्रयका स्वरूप तथा गणधर इन्द्र चक्रवर्ती आदिकी कथा उपकथाओं का वर्णन है पांचलाख छप्पनसहस्र पद हैं ।

उपासकाध्ययनम् ।।। = उपासकाध्ययनाङ्ग वह है जिसमें उपासकोंकी (श्रावकोंकी) सम्यक्दर्शनादि ग्यारह प्रतिमा संबंधी व्रत गुण शील आचार तथा दूसरे क्रिया कांड और उनके मन्त्रादिकों का विस्तार वर्णन है । ग्यारहलाख सत्तर सहस्र पद हैं

पूर्वगतम्। चूलिका चेति ॥ तत्र पूर्वगतं चतुर्दशविधम्—उत्पादपूर्वम्। अग्रायणीयम्।

पूर्वगतम् ।।।	=[चतुर्थ भेद दृष्टिवाद अङ्ग का] वह है जिसके चौदह प्रभेद हैं। जिसमें पचानवे करोड़ उनचास लाख निन्यानवे सहस्र नौ सौ निन्यानवे [९५४९९९९९] पद हैं। (इनके विशेष के लिये देखो पृष्ठ ४२१, ४२२)
च* चूलिका (१) ।।। इति ※ = और	= च) चूलिका (१) (पञ्चम भेद दृष्टिवाद अंग का) है। (जिसके पांच प्रभेद हैं जिनका वर्णन निम्न टिप्पणी में है)
तत्र • पूर्वगतम् ।।।	= वहां (= तत्र) पूर्वगत (दृष्टिवाद अंग का चौथा भेद)
चतुर्दशविधम् ।।।	= चौदह प्रकार है अर्थात् दृष्टिवाद अङ्ग के चौथे भेद पूर्वगत में निम्नलिखित चौदह पूर्वगर्भित है
उत्पादपूर्वम् ।।।	= वह है जिसमें प्रत्येक द्रव्य के उत्पाद व्यय ध्रौव्य और उनके संयोगी धर्मों का वर्णन है। इसके एक करोड़ पद हैं
अग्रायणीयम् ।।।	= वह पूर्व है जिसमें द्वादशांग के प्रधानभूत सातसौ सुनय और दुर्नय पञ्चास्तिकाय षट्द्रव्य सप्ततत्त्व नव पदार्थ आदि का वर्णन है इसमें छियानवे लाख ९६००००० पद हैं

(१) [क] जलगता चूलिका [ख] स्थलगता चूलिका [ग] मायागता चूलिका [घ] रूपगता चूलिका [ङ] आकाशगता चूलिका ये पांच भेद हैं
[क] जलगता चूलिका वह है जिसमें जलगमन के जलस्तम्भन के अग्नि के प्रासन के, अग्नि के भक्षण के, अग्नि के प्रवेश के अग्नि के स्तम्भन आदि के मंत्र तंत्र तपश्चर्यादिक का कथन है। इन प्रत्येक के दो करोड़ नौ लाख नवासी सहस्र दो सौ पद हैं।
[ख] स्थलगता चूलिका वह है जिसमें मेरुकुलाचल भूमि पर्वत आदि में प्रवेश करना शीघ्र गमन करना इत्यादिक क्रिया के कारणभूत मंत्र तंत्रादिक का प्ररूपण है। इसके भी दो करोड़ नौ लाख नवासी सहस्र दो सौ पद हैं।
[ग] मायागता चूलिका वह है जिसमें मायामयी इन्द्रजालादि विक्रिया के कारण मन्त्र तंत्र आचरणादि का कथन है २०९८९२०० पद हैं।
[घ] रूपगता चूलिका वह है जिसमें सिंह हाथी घोड़ा बैल हिरण इत्यादिक रूपके पलटने के कारण मंत्र तंत्र तपश्चरणादिक का प्ररूपण है तथा चित्रकर्म काष्ठलेपादिक का वर्णन है। तथा धातु रस रसायन का निरूपण है २०९८९२०० पद हैं
[ङ] आकाशगता चूलिका वह है जिसमें आकाश में गमनादिक के कारणभूत मन्त्र तंत्र तपश्चरणादिक का वर्णन है। इसके भी दो करोड़ नव लाख नवासी सहस्र दो सौ (२०९८९२००) पद हैं।

परिकर्म । सूत्रम् । प्रथमानुयोगः ।

(१) परिकर्म ¹॥	=(प्रथम भेद दृष्टिवाद अंग का) परिकर्म¹ वह है जिसमें गणित के करण सूत्रों का वर्णन है
सूत्रम् ¹॥	=(द्वितीय भेद दृष्टिवाद अंगका) सूत्र वह है जिसमें तीनसौत्रेसठ मिथ्यादृष्टियों का पूर्वपक्षपूर्वक निराकरण है अर्थात् जिसमें मिथ्यादर्शन सम्बन्धी तीनसौत्रेसठ कुवाद हैं तिनका पूर्वपक्ष लेकर जीवादिक पदार्थों ऊपर लगावनेका वर्णन है। तिन मिथ्यादृष्टियों के ग्रन्थों में जीव अबंधक ही है, अकर्त्ता ही है निर्गुण ही है। अभोक्ता ही है। स्वप्रकाशक ही है। पर प्रकाशक ही है। अस्तिरूप ही है। नास्तिरूप ही है इत्यादि एकांत पक्षपात को दूर कर यथार्थस्वरूप का वर्णन है। इसमें अठासीलाख पद हैं।
प्रथमानुयोग ¹॥	(तृतीय भेद दृष्टिवाद अंगका) प्रथमानुयोग वह है जिसमें चतुर्विंशति तीर्थंकर, द्वादश चक्रवर्ती नव नारायण नव प्रतिनारायण और नव बलभद्र इन त्रेसठ शलाका (=उत्तम) पुरुषोंका वर्णन है। इसमें पांच सहस्र पद हैं।

१) इस (परिकर्म) के पंच भेद –(क) चन्द्र प्रज्ञप्ति (ख) सूर्य प्रज्ञप्ति (ग) जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति (घ) द्वीपसागर प्रज्ञप्ति (ङ) व्याख्या प्रज्ञप्ति

(क) चन्द्रप्रज्ञप्ति में चन्द्रमा सम्बन्धी विमान आयु परिवार ऋद्धि गमन हानि वृद्धि पूर्ण ग्रहण अर्धग्रहण चतुर्थांशग्रहण आदिका वर्णन है इसमें छत्तीसलाख पांच सहस्र (३६०५०००) पद हैं

(ख) सूर्यप्रज्ञप्ति में सूर्य सम्बन्धी आयु परिवार गमन ग्रहण ऋद्धि विभवका वर्णन है इसमें पांचलाख तीन सहस्र पद हैं। (५०३०००)

(ग) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति में जम्बूद्वीप सम्बन्धी मेरू कुलाचल द्रह (सरोवर) क्षेत्र कुण्ड वेदिका व व्यन्तरों के आवास महानदी आदिका वर्णन है। इसमें तीन लाख पचीस सहस्र ३२५००० पद हैं

(घ) द्वीपसागर प्रज्ञप्ति में असंख्यात द्वीप और समुद्रों का स्वरूप तथा वहां निवसने वाले भवन वासी व्यन्तर ज्योतिष्कों के आवासों का वर्णन और वहां पर होते वाले अकृत्रिम चैत्यालयों का वर्णन है इसमें बावन लाख छत्तीस सहस्र (५२३६००० पद) हैं

(ङ) व्याख्याप्रज्ञप्ति में भव्य अभव्य–भेद प्रमाण लक्षण रूपी अरूपी जीव अजीव द्रव्यों का और अनन्तरसिद्ध परम्परा सिद्धोंका तथा दूसरी वस्तुओं का भी वर्णन है। इसमें चौरासी लाख छत्तीस सहस्र (८४३६०००) पद हैं

पूर्वगतम् । चूलिका चेति ॥ तत्र पूर्वगत चतुर्दशविधम्—उत्पादपूर्वम् । अग्रायणीयम् ।

पूर्वगतम् ।॥ =[चतुर्थ भेद दृष्टिवाद अङ्ग का] वह है जिसके चौदह प्रभेद हैं। जिसमें पचानवे करोड़ उनचास लाख निन्यानवे सहस्र नौ सौ निन्यानवे [९५४९९९९९] पद हैं। (इनके विशेष के लिये देखो पृष्ठ ४२१, ४२२)

च (१) चूलिका ।॥ इति ॥ =और =च) (१) चूलिका (पञ्चम भेद दृष्टिवाद अंग का) है। (जिसके पांच प्रभेद हैं जिनका वर्णन निम्न टिप्पणी में है)

तत्र पूर्वगतम् ।॥ = तहां (=तत्र) पूर्वगत (दृष्टिवाद अंग का चौथा भेद)

चतुर्दशविधम् ।॥ =चौदह प्रकार है अर्थात् दृष्टिवाद अङ्ग के चौथे भेद पूर्वगत में निम्नलिखित चौदह पूर्वगर्भित है

उत्पादपूर्वम् ।॥ =वह है जिसमें प्रत्येक द्रव्य के उत्पाद व्यय ध्रौव्य और उनके संयोगी धर्मों का वर्णन है। इसके एक करोड़ पद हैं

अग्रायणीयम् ।॥ =यह पूर्व है जिसमें द्वादशांग के प्रधानभूत सातसौ सुनय और दुर्नय पञ्चास्तिकाय षड्द्रव्य सप्ततत्त्व नव पदार्थ आदिका वर्णन है इसमें छियानवें लाख ९६००००० पद हैं

(१) [क] जलगता चूलिका [ख] स्थलगता चूलिका [ग] मायागता चूलिका [घ] रूपगता चूलिका [ङ] आकाशगता चूलिका ये पांच भेद हैं।

[क] जलगता चूलिका वह है जिसमें जलगमन के जलस्तम्भन के अग्नि के आसन के, अग्नि के भक्षण के अग्नि के प्रवेश के अग्नि के स्तम्भन आदि के मंत्र तंत्र तपश्चरणादिक का कथन है। इन प्रत्येक के दो करोड़ नौ लाख नवासी सहस्र दो सौ पद हैं।

[ख] स्थलगता चूलिका वह है जिसमें मेरुकुलाचल भूमि पर्वत आदि में प्रवेश करना शीघ्र गमन करना इत्यादिक क्रिया के कारणभूत मंत्र तंत्रादिक का प्ररूपण है। इसके भी दो करोड़ नौ लाख नवासी सहस्र दो सौ पद हैं।

[ग] मायागता चूलिका वह है जिसमें मायामयी इन्द्रजालादि विक्रिया के कारण मन्त्र तंत्र तपश्चरणादि का कथन है २०९८९२०० पद हैं।

[घ] रूपगता चूलिका वह है जिसमें सिंह हाथी घोड़ा बैल हिरण इत्यादिक रूपके पलटने के कारण मंत्र तंत्र तपश्चरणादिक का प्ररूपण है तथा चित्राम काष्ठलेपादिक का वर्णन है। तथा धातु रस रसायन का निरूपण है २०९८९२०० पद हैं

[ङ] आकाशगता चूलिका वह है जिसमें आकाश में गमनादिक के कारणभूत मंत्र तंत्र तपश्चरणादिक का वर्णन है। इसके भी दो करोड़ नव लाख नवासी सहस्र दो सौ (२०९८९२००) पद हैं।

वीर्यानुप्रवादम्। अस्तिनास्तिप्रवादम् ॥ ज्ञानप्रवादम् । सत्यप्रवादम् । आत्मप्रवादम् । कर्मप्रवादम् प्रत्याख्याननामधेयम् ।

वीर्यानुवादम् ।।।। =(३) वीर्यानुवाद पूर्व वह है जिसमें आत्मवीर्य परवीर्य उभयवीर्य कालवीर्य गुणवीर्य तपोवीर्य द्रव्यवीर्य पर्यायवीर्य क्षेत्रवीर्य भाववीर्य आदि अनेक प्रकार के वीर्य (सामर्थ्य) का वर्णन है। इसमें सत्तरलाख ७०००००० पद हैं।

अस्तिनास्तिप्रवादम् ।।।। =(४) अस्तिनास्तिप्रवाद पूर्व वो है जिसमें जीवादिक वस्तुओंके स्व पर द्रव्य क्षेत्र काल भाव की अपेक्षाकरि स्यादस्ति स्यान्नास्ति आदि अनेक धर्मों में विधि निषेधकरि सप्तभंगकरि मुख्य गौणकरि वर्णन है। इसमें साठ लाख (६००००००) पद हैं।

ज्ञानप्रवादम् ।।।। =(५) ज्ञानप्रवाद पूर्व वह है जिसमें मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान मनःपर्ययज्ञान केवलज्ञान और कुमतिज्ञान कुश्रुतज्ञान कुअवधिज्ञान इन विभंगज्ञानों का स्वरूप संख्या विषय फलादिको का वर्णन है इसमें एक घाटि करोड़ (९९९९९९९) पद हैं ।

सत्यप्रवादम् ।।।। =(६) सत्यप्रवाद वह पूर्व है जिसमें आठ प्रकारके शब्दोच्चारण के स्थान, पांच प्रयत्न, वाक्यसंस्कारके कारण, शिष्ट दुष्ट शब्दों के प्रयोग, लक्षण, वचनके भेद बारह प्रकारकी भाषा अनेक प्रकार के असत्य वचन वाग्गुप्ति मौन आदि का वर्णन है। इसमें एक करोड़ छह (१००००००६) पद हैं।

आत्मप्रवादम् ।।।। =(७) आत्मप्रवाद पूर्व वह है जिसमें आत्मा के कर्ता भोक्ता आदि अनेक धर्मों का निश्चयनय और व्यवहार नयकी अपेक्षा से विशेषरूपमें वर्णन है । इसमें छव्वीस करोड़ (२६००००००० पद हैं।

कर्मप्रवादम् ।।।। =(८) कर्मप्रवाद पूर्व वह है जिसमें ज्ञानावर्णादि कर्मों की मूल प्रकृति उत्तरप्रकृति उत्तरोत्तर प्रकृतियों के भवलिये बंध सत्ता उदय उदीरणा उत्कर्षण अपकर्षण संक्रमण उपशम निधत्ति निःकांचित आदि अवस्थाओं का वर्णन है। इसमें एक करोड़ अस्सीलाख (१८०००००० पद हैं।

प्रत्याख्याननामधेयम् ।।।। =(९) प्रत्याख्याननामधेय पूर्व वह है जिसमें नाम स्थापना द्रव्य क्षेत्रकाल भावको आश्रयकरि पुरुषों के

विद्यानुप्रवादम् । कल्याणनामधेयम् । प्राणावायम् । क्रियाविशालम् । लोकबिन्दुसारमिति ॥

संहनन बलादिक के अनुसारकरि प्रमाणीक काल पर्यन्त वा अप्रमाणीक कालकरि त्यागकरना तथा सावद्य वस्तुओं का त्याग और उपवास विधि और इनकी भावना और पञ्चसमिति और तीनि गुप्ति आदिका वर्णन है। इसमें चौरासी लाख (८४०००००) पद हैं।

विद्यानुप्रवादम् ।।।। =(१०) विद्यानुप्रवाद पूर्व वह है जिसमें अंगुष्ठप्रसेना आदि सातसौ अल्पविद्या तथा रोहिणी आदि पांचसौ महा विद्याओंका स्वरूप सामर्थ्य मंत्र तंत्र पूजा-विधानआदिका तथा सिद्ध भई विद्याओं का फल और अन्तरिक्ष भौम अङ्ग स्वर स्वप्न लक्षण व्यञ्जन छिन्न इन अष्टांग निमित्तों के ज्ञान का वर्णन है ॥ ११०००००० पद हैं।

कल्याणनामधेयम् ।।।। =(११) कल्याणनामधेय पूर्व वह है जिसमें तीर्थंकर चक्रधर बलदेव वासुदेवादिकों के गर्भावतारण आदि कल्याणकोंके महोत्सव तथा उनके कारण (तीर्थंकरत्वादि पुन्य विशेषका हेतु) षोडशकारण भावनादि तपश्चरणादिकों का तथा चन्द्र सूर्यादि ग्रह नक्षत्रादिकों के गमन ग्रहण शकुनादिकों के फल वर्णन हैं इसके छब्बीस करोड़ २६०००००० पद हैं।

प्रणावायम् ।।।। =(१२) प्राणावाद पूर्व वह है जिसमें काय चिकित्सा आदि आठ प्रकार के आयुर्वेद का, इला (=पृथिवी) पिङ्गला (=अग्नि) आदिका दशप्राणोंके उपकारक अपकारक द्रव्योंका गतियों के अनुसार वर्णन है।
इस में तेरह करोड़ १३०००००० पद हैं।

क्रियाविशालम् ।।।। =(१३) क्रियाविशाल वह पूर्व है जिसमें संगीत छन्द अलङ्कार पुरुषोंकी बहत्तर कला स्त्रीके चौंसठ गुण तथा गर्भाधानादिकचौरासी क्रिया, शिल्पादि विज्ञान सम्यग्दर्शनादि एकसौ आठ क्रिया, देववन्दनादिक पच्चीस क्रिया और नित्य नैमित्तिक क्रियाओं का वर्णन है। इसमें नौ करोड़ पद हैं।

लोकबिन्दुसारम्-इति ❀ =(१४)लोकबिन्दुसार पूर्व वहहै जिसमें तीन लोकका स्वरूप छत्तीस परिकर्म आठ व्यवहार, चार बीजगणितादिक मोक्ष का स्वरूप, उसके गमन का कारण, क्रिया, मोक्षसुख के स्वरूप का वर्णन है। इसमें साढ़े बारह करोड़ पद हैं।

वीर्यानुप्रवादम्। अस्तिनास्तिप्रवादम् ॥ ज्ञानप्रवादम् । सत्यप्रवादम् । आत्मप्रवादम् । कर्मप्रवादम्
प्रत्याख्याननामधेयम् ।

वीर्यानुवादम् ।।।। =(३) वीर्यानुवाद पूर्व वह है जिसमें आत्मवीर्य परवीर्य उभयवीर्य कालवीर्य गुणवीर्य तपोवीर्य द्रव्यवीर्य पर्यायवीर्य क्षेत्रवीर्य भाववीर्य आदि अनक प्रकार के वीर्य (सामर्थ्य) का वर्णन है। इसमें सत्तरलाख ७००००००पद हैं।

अस्तिनास्तिप्रवादम् ।।।। =(४) अस्तिनास्तिप्रवाद पूर्व वो है जिसमें जीवादिक वस्तुओंके स्व पर द्रव्य क्षेत्र काल भाव की अपेक्षाकरि स्यादस्ति स्यान्नास्ति आदि अनेक धर्मों में विधि निषेधकरि सप्तभंगकरि मुख्य गौणकरि वर्णन है। इसमें साठ लाख (६००००००) पद हैं।

ज्ञानप्रवादम् ।।।। =(५) ज्ञानप्रवाद पूर्व वह है जिसमें मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान मनः पर्ययज्ञान केवलज्ञान और कुमतिज्ञान कुश्रुतज्ञान कुअवधिज्ञान इन विभंगज्ञानों का स्वरूप संख्या विषय फलादिको का वर्णन है इसमें एक घाटि करोड़ (९९९९९९९) पद हैं।

सत्यप्रवादम् ।।।। =(६) सत्यप्रवाद वह पूर्व है जिसमें आठ प्रकारके शब्दोच्चारण के स्थान, पांच प्रयत्न, वाक्यसंस्कारके कारण, शिष्ट दुष्ट शब्दों के प्रयोग, लक्षण, वचनके भेद बारह प्रकारकी भाषा अनेक प्रकार के असत्य वचन वाग्गुप्ति मौन आदि का वर्णन है। इसमें एक करोड़ छह (१००००००६) पद हैं।

आत्मप्रवादम् ।।।। =(७) आत्मप्रवाद पूर्व वह है जिसमें आत्मा के कर्ता भोक्ता आदि अनेक धर्मों का निश्चयनय और व्यवहार नयकी अपेक्षा से विशेषरूपमें वर्णन है। इसमें छब्बीस करोड़ (२६०००००००० पद हैं।

कर्मप्रवादम् ।।।। =(८) कर्मप्रवाद पूर्व वह है जिसमें ज्ञानावर्णादि कर्मों की मूल प्रकृति उत्तरप्रकृति उत्तरोत्तर प्रकृतियों के भवलिये बंध सत्ता उदय उदीरणा उत्कर्षण अपकर्षण संक्रमण उपशम निधत्ति निकाचित आदि अवस्थाओं का वर्णन है। इसमें एक करोड़ अस्सीलाख (१८०००००० पद हैं।

प्रत्याख्याननामधेयम् ।।।। =(९) प्रत्याख्याननामधेय पूर्व वह है जिसमें नाम स्थापना द्रव्य क्षेत्रकाल भावको आश्रयकरि पुरुषों के

विद्यानुप्रवादम् । कल्याणनामधेयम् । प्राणावायम् । क्रियाविशालम् । लोकबिन्दुसारमिति ॥

संहनन बलादिक के अनुसारकरि प्रमाणीक काल पर्यन्त वा अप्रमाणीक कालकरि त्यागकरना तथा सावद्य वस्तुओं का त्याग और उपवास विधि और इनकी भावना और पञ्चसमिति और तीनि गुप्ति आदिका वर्णन है। इसमें चौरासी लाख (८४०००००) पद हैं।

विद्यानुप्रवादम् ।।।। =(१०) विद्यानुप्रवाद पूर्व यह है जिसमें अंगुष्ठसेना आदि सातसौ अल्पविद्या तथा रोहिणी आदि पांचसौ महा विद्याओंका स्वरूप सामर्थ्य मंत्र तंत्र पूजा-विधानआदिका तथा सिद्ध भई विद्याओं का फल और अन्तरिक्ष भौम अङ्ग स्वर स्वप्न लक्षण व्यञ्जन छिन्न इन अष्टांग निमित्तों के ज्ञान का वर्णन है ॥ ११०००००० पद हैं।

कल्याणनामधेयम् ।।।। =(११) कल्याणनामधेय पूर्व यह है जिसमें तीर्थंकर चक्रधर बलदेव वासुदेवादिकों के गर्भावतारण आदि कल्याणकोंके महोत्सव तथा उनके कारण (तीर्थंकरत्वादि पुन्य विशेषका हेतु) षोडशकारण भावनादि तपश्चरणादिकों का तथा चन्द्र सूर्यादि ग्रह नक्षत्रादिकों के गमन ग्रहण शकुनादिकों के फल वर्णन हैं इसके छब्बीस करोड २६००००००० पद हैं।

प्राणावायम् ।।।। =(१२) प्राणावाद पूर्व यह है जिसमें काय चिकित्सा आदि आठ प्रकार के आयुर्वेद का, इला (=पृथिवी) पिङ्गला (=अग्नि) आदिका दशप्राणोंके उपकारक अपकारक द्रव्योंका। गतियों के अनुसार वर्णन है। इस में तेरह करोड १३००००००० पद हैं।

क्रियाविशालम् ।।।। =(१३) क्रियाविशाल यह पूर्व है जिसमें संगीत छन्द अलङ्कार पुरुषोंकी बहत्तर कला स्त्रीके चौसठ गुण तथा गर्भाधानादिकचौरासी क्रिया, शिल्पादि विज्ञान सम्यग्दर्शनादि एकसौ आठ क्रिया, देववन्दनादिक पच्चीस क्रिया और नित्य नैमित्तिक क्रियाओं का वर्णन है। इसमें नौ करोड पद हैं।

लोकबिन्दुसारम्-इति ⊕ =(१४)लोकबिन्दुसार पूर्व यहहै जिसमें तीन लोकका स्वरूप छत्तीस परिकर्म आठ व्यवहार, चार बीजगणितादिक मोक्ष का स्वरूप, उसके गमन का कारण, क्रिया, मोक्षसुख के स्वरूप का वर्णन है। इसमें साढ़े बारह करोड पद हैं।

वीर्यानुप्रवादम्। अस्तिनास्तिप्रवादम् ॥ ज्ञानप्रवादम् । सत्यप्रवादम्। आत्मप्रवादम् । कर्मप्रवादम्

प्रत्याख्याननामधेयम् ।

वीर्यानुवादम् ।॥ =(३) वीर्यानुवाद पूर्व वह है जिसमें आत्मवीर्य परवीर्य उभयवीर्य कालवीर्य गुणवीर्य तपोवीर्य द्रव्यवीर्य पर्यायवीर्य क्षेत्रवीर्य भाववीर्य आदि अनक प्रकार के वीर्य (सामर्थ्य) का वर्णन है। इसमें सत्तरलाख ७००००००पद हैं।

अस्तिनास्तिप्रवादम् ।॥ =(४) अस्तिनास्तिप्रवाद पूर्व वो है जिसमें जीवादिक वस्तुओंके स्व पर द्रव्य क्षेत्र काल भाव की अपेक्षाकरि स्यादस्ति स्यान्नास्ति आदि अनेक धर्मों में विधि निषेधकरि सप्तभंगकरि मुख्य गौणकरि वर्णन है। इसमें साठ लाख (६००००००) पद हैं।

ज्ञानप्रवादम् ।॥ =(५) ज्ञानप्रवाद पूर्व वह है जिसमें मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान मनः पर्ययज्ञान केवलज्ञान और कुमतिज्ञान कुश्रुतज्ञान कुअवधिज्ञान इन विभंगज्ञानों का स्वरूप संख्या विषय फलादिको का वर्णन है इसमें एक घाटि करोड़ (९९९९९९९) पद हैं।

सत्यप्रवादम् ।॥ =(६) सत्यप्रवाद वह पूर्व है जिसमें आठ प्रकारके शब्दोच्चारण के स्थान, पांच प्रयत्न, वाक्यसंस्कारके कारण, शिष्ट दुष्ट शब्दों के प्रयोग, लक्षण, वचनके भेद बारह प्रकारकी भाषा अनेक प्रकार के असत्य वचन वाग्गुप्ति मौन आदि का वर्णन है। इसमें एक करोड़ छह (१००००००६) पद हैं।

आत्मप्रवादम् ।॥ =(७) आत्मप्रवाद पूर्व वह है जिसमें आत्मा के कर्ता भोक्ता आदि अनेक धर्मों का निश्चयनय और व्यवहार नयकी अपेक्षा से विशेषरूपमें वर्णन है। इसमें छब्बीस करोड़ (२६०००००००) पद हैं।

कर्मप्रवादम् ।॥ =(८) कर्मप्रवाद पूर्व वह है जिसमें ज्ञानावर्णादि कर्मों की मूल प्रकृति उत्तरप्रकृति उत्तरोत्तर प्रकृतियों के भवस्थिये बंध सत्ता उदय उदीरणा उत्कर्षण अपकर्षण संक्रमण उपशम निधत्ति निकांचित आदि अवस्थाओं का वर्णन है। इसमें एक करोड़ अस्सीलाख (१८००००००) पद हैं।

प्रत्याख्याननामधेयम् ।॥ =(९) प्रत्याख्याननामधेय पूर्व वह है जिसमें नाम स्थापना द्रव्य क्षेत्रकाल भावकी आश्रयकरि पुरुषों के

टिप्पणी—अंगप्रविष्ट श्रुतज्ञानके पदों की संख्या—

(१) आचारांग	अठारहसहस्र	१८०००
(२) सूत्रकृतांग	छत्तीससहस्र	३६०००
(३) स्थानांग ..	बियालीससहस्र	४२०००
(४) समवायांग		१६४०००
(५) व्याख्या प्रज्ञप्तिअंग		२२८०००
(६) ज्ञातृधर्मकथांग ...		५५६०००
(७) उपासकाध्ययनांग		११७००००
(८) अन्तकृद्दशांग		२३२८०००
(९) अनुत्तरोपपादिकदशांग		९२४४०००
(१०) प्रश्नव्याकरणांग ..		९३१६०००
(११) विपाक सूत्रांग		१८४०००००
(१२) दृष्टिवादांग		१०८६८५६००५
द्वादशांग के सर्वपदोंका योग		११२८३५८००५

दृष्टिवाद अंग के पांच भेद हैं उनमें से प्रथम भेद परिकर्म के पांच प्रभेद हैं और चतुर्थभेद पूर्वगत के चौदह प्रभेद हैं और पांचवां भेद चूलिकाके भी पांच प्रभेद हैं "सूत्र" दूसरे भेद और 'प्रथमानुयोग' तीसरे भेद का कोई प्रभेद नहीं है इन सबके १०८६८५६००५ मध्यम पद हैं। इन प्रभेदों की पृथक २ संख्या और प्रत्येक प्रभेद के पदों की भी संख्या इस पृष्ठ के तीसरे स्तम्भ या धारा में लिखते हैं।

१-चन्द्रप्रज्ञप्ति (परिकर्म)	३६०५०००
२-सूर्यप्रज्ञप्ति ,,	५०३०००
३ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति ,,	३२५०००
४-द्वीपसागरप्रज्ञप्ति,,	५२३६०००
५ व्याख्याप्रज्ञप्ति ,,	८४३६०००
६-सूत्र (दूसरा भेद)	८८०००००
० प्रथमानुयोग (तीसरा भेद)	५०००
(क) उत्पादपूर्व (चौथाभेद)	१०००००००
(ख) अग्रायणीयपूर्व	९६०००००
(ग) वीर्यानुवादपूर्व	७००००००
(घ) अस्तिनास्तिप्रवादपू	६००००००
(ङ) ज्ञानप्रवादपूर्व	९९९९९९९
(च) सत्यप्रवादपूर्व	१०००००६
(छ) आत्मप्रवादपूर्व	२६०००००००
(ज) कर्मप्रवादपूर्व	१८००००००
(झ) प्रत्याख्यान नाम धेय पूर्व	८४०००००
(ञ) विद्यानुप्रवादपूर्व	११००००००
(ट) कल्याणनाम धेय पर्व	२६०००००००
(ठ) प्राणावाद पूर्व	१३०००००००
(ड) क्रियाविशालपूर्व	९०००००००
(ढ) लोकबिंदुसारपूर्व	१२५००००००
(१) जलगताचूलिका	२०९८९२००
(२) स्थलगताचूलिका	२०९८९२००
(३) रूपगताचूलिका	२०९८९२००
(४) मायागताचूलिका	२०९८९२००
(५) आकाशगता ,,	२०९८९२००
	१०८६८५६००५

दृष्टि वाद अंग के छब्बीस स्थानों के एक सौ आठ करोड़ अड़सठ लाख छप्पन सहस पांच पद हुये ॥

तदेतत् श्रुत द्विभेदमनेकभेदं द्वादशभेदमिति ॥

तद् ॥ एतद् ॥ श्रुतम् ॥ द्वि-भेदम् ॥	= पूर्वोक्त (= तद्) यह (= एतद्) (श्रुतज्ञान अङ्गबाह्य और अङ्गप्रविष्ट) दो भेदरूप
अनेक भेदम् ॥ द्वादशभेदम् ॥ इति॰	= (इनमें से अङ्गबाह्य) अनेक भेदरूप (अङ्गप्रविष्ट) बारह भेदरूप ऐसे हुआ

(१ मतिज्ञान-श्रुतज्ञानयोः ॥ कः ॥ प्रतिविशेषः ॥ इति॰	= मतिज्ञान और श्रुतज्ञान में क्या भेद(= प्रति विशेष)है ऐसा (प्रश्न होने पर)
अत्र उच्यते ॥ उत्पन्न-अविनष्ट-अर्थ-	= यहां कहा जाता है कि उत्पन्न होकर जो नष्ट नहीं हुआ है ऐसे पदार्थ (= अर्थ) के
साम्प्रतकाल-विषय ॥ ग्राहक ॥ मतिज्ञानम् ॥	= वर्तमान (= साम्प्रतम्) काल के विषय को ग्रहण करने वाला मतिज्ञान है
श्रुतज्ञानं ॥ तु ॥ त्रिकाल-विषय ॥ उत्पन्न-	= और (= तु) त्रिकाल विषयक श्रुतज्ञान है (अर्थात्) उत्पन्न पदार्थ का (और)
विनष्ट-अनुत्पन्न-	= (उत्पन्न होकर) नष्ट भये पदार्थ का (और) अनुत्पन्न (जो भविष्यत्में उत्पन्न होगा उस)
अर्थ ग्राहकम् ॥	= पदार्थ का (श्रुतज्ञान) ग्रहण करने वाला है (देखो समाप्यतत्त्वार्थाधिगम-सूत्र पृष्ठ १०)
च॰ विशुद्धतरं ॥ इति॰	= और(= च) अधिक विशुद्ध (मतिज्ञान से श्रुतज्ञान) है
किं ॥ च॰ अन्यत् ॰ मतिज्ञानम् ॥ इन्द्रिय-	= कुछ और भी (मतिज्ञान से श्रुतज्ञान में विशेष) है। मतिज्ञान है सो इन्द्रिय और
अनिन्द्रिय निमित्तम् ॥ आत्मनः ॥ ज्ञ-स्वभावात् ॥	= अनिन्द्रिय या मन (तिस) निमित्तक आत्माके ज्ञस्वभाव (= जाननेके स्वभाव)से होताहै
पारिणामिकम् ॥ श्रुतज्ञानं ॥ तु॰ तत्-	= (अतएव) पारिणामिक है। परन्तु (= तु) श्रुतज्ञान उस (मतिज्ञान)
पूर्वम् ॥ आप्त-उपदेशात् ॥ भवति ॥ इति॰	= सम्य(= पूर्वक) आप्तके उपदेशसे (रूपज्ञ) होता है। ऐसा (प्रतिविशेष भी)है समाप्य०१०

(२) श्रुतज्ञान और केवल ज्ञान में अन्तर या भेद यह है कि श्रुतज्ञान परोक्ष है केवल ज्ञान प्रत्यक्ष है यद्यपि ज्ञान की अपेक्षा से श्रुतज्ञान तथा केवल ज्ञान दोनों ही सदृश हैं। भावार्थ- जिस प्रकार श्रुतज्ञान सम्पूर्ण द्रव्य और उनकी पर्यायों को जानता है उस ही प्रकार केवल ज्ञान भी सम्पूर्ण द्रव्य और पर्यायों को जानता है। विशेषता इतनी ही है कि श्रुतज्ञान इन्द्रिय और मनकी सहायता से होता है इसलिये इसकी अमूर्त पदार्थों में और उनकी अर्थ पर्याय तथा दूसरे सूक्ष्म अंशों में स्पष्टरूप से प्रवृत्ति नहीं होती। किन्तु केवल ज्ञान निरावरण है अतएव समस्त पदार्थोंको स्पष्ट रूप से विषय करता है ॥

टिप्पणी —अंगप्रविष्ट श्रुतज्ञानके पदों की संख्या—

(१) आचारांग	अठारहसहस्र १८०० ०
(२) सूत्रकृतांग	छत्तीससहस्र ३६०००
(३) स्थानांग	बियालीससहस्र ४२०००
(४) समवायांग	१६४०००
(५) व्याख्या प्रज्ञप्तिअंग	२२८०००
(६) ज्ञातृधर्मकथांग	५५६०००
(७) उपासकाध्ययनांग	११७००००
(८) अन्तकृद्दशांग	२३२८०००
(९) अनुत्तरोपपादिकदशांग	९२४४०००
(१०) प्रश्नव्याकरणांग	९३१६०००
(११) विपाक सूत्रांग	१८४०००००
(१२) दृष्टिवादांग	१०८६८५६००५
द्वादशांग के सर्वपदोंका योग	११२८३५८००५

दृष्टिवाद अंग के पांच भेद हैं उनमें से प्रथम भेद परिकर्म के पांच प्रभेद हैं और चतुर्थभेद पूर्वगत के चौदह प्रभेद हैं और पांचवां भेद चूलिकाके भी पांच प्रभेद हैं "सूत्र" दूसरे भेद और 'प्रथमानुयोग' तीसरे भेद का कोई प्रभेद नहीं है इन सबके १०८६८५६००५ मध्यम पद हैं। इन प्रभेदों की पृथक् २ संख्या और प्रत्येक प्रभेद के पदों की भी संख्या इस पृष्ठ के तीसरे खम्भ या धारा में लिखते हैं।

१-चन्द्रप्रज्ञप्ति (परिकर्म)	३६०५०००
२-सूर्यप्रज्ञप्ति ,,	५०३०००
३-जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति ,,	३२५०००
४-द्वीपसागरप्रज्ञप्ति ,,	५२३६०००
५-व्याख्याप्रज्ञप्ति ,,	८४३६०००
६-सूत्र (दूसरा भेद)	८८०००००
() प्रथमानुयोग (तीसरा भेद)	५०००
(क) उत्पादपूर्व (चौथाभेद)	१००००००००
(ख) अग्रायणीयपूर्व	९६०००००
(ग) वीर्यानुवादपूर्व	७००००००
(घ) अस्तिनास्तिप्रवादपू	६००००००
(ङ) ज्ञानप्रवादपूर्व	९९९९९९९
(च) सत्यप्रवादपूर्व	१००००००६
(छ) आत्मप्रवादपूर्व	२६००००००००
(ज) कर्मप्रवादपूर्व	१८००००००
(झ) प्रत्याख्यान नाम थेय पूर्व	८४००००००
(ञ) विद्यानुप्रवादपूर्व	११००००००
(ट) कल्याणनाम धेय पर्व	२६००००००००
(ठ) प्राणावाद पूर्व	१३०००००००
(ड) क्रियाविशालपूर्व	९००००००००
(ढ) लोकबिंदुसारपूर्व	१२५०००००००
(१) जलगताचूलिका	२०९८९२००
(२) स्थलगताचूलिका	२०९८९२००
(३) रूपगताचूलिका	२०९८९२००
(४) मायागताचूलिका	२०९८९२००
(५) आकाशगता ,,	२०९८९२००
	१०८६८५६००५

दृष्टि वाद अंग के छब्बीस स्थानों के एक सौ आठ करोड़ अड़सठ लाख छप्पन सहस्र पांच पद हुये ॥

तदेतत् श्रुत द्विभेदमनेकभेदं द्वादशभेदमिति ॥

तद् ॥ एतद् ॥ श्रुतम् ॥ द्वि-भेदम् ॥	= पूर्वोक्त (= तद्) यह (= एतद्) (श्रुतज्ञान अङ्गबाह्य और अङ्गप्रविष्ट) दो भेदरूप
अनेक भेदम् ॥ द्वादशभेदम् ॥ इति॰	= (इनमें से अङ्गबाह्य) अनेक भेदरूप (अङ्गप्रविष्ट) बारह भेदरूप ऐसे हुआ

(१ मतिज्ञान-श्रुतज्ञानयोः ॥ क ॥ प्रतिविशेषः ॥ इति॰ = मतिज्ञान और श्रुतज्ञान में क्या भेद (= प्रति विशेष) है ऐसा (प्रश्न होने पर)
अत्र उच्यते उत्पन्न -अविनष्ट - अर्थ- = यहाँ कहा जाता है कि उत्पन्न होकर जो नष्ट नहीं हुआ है ऐसे पदार्थ (= अर्थ) के
साम्प्रतकाल - विषय ॥ ग्राहक ॥ मतिज्ञानम् ॥ = वर्तमान (= साम्प्रतम्) काल के विषय को ग्रहण करने वाला मतिज्ञान है
श्रुतम् ॥ तु ॥ त्रिकाल - विषय ॥ उत्पन्न- = और (= तु) त्रिकाल विषयक श्रुतज्ञान है (अर्थात्) उत्पन्न पदार्थ का (और)

= (उत्पन्न हो कर) नष्ट भये पदार्थ का (और) अनुत्पन्न (जो भविष्यमें उत्पन्न होगा उस)
= पदार्थ का (श्रुतज्ञान) ग्रहण करने वाला है (देखो समाप्यत तत्त्वार्थाधिगम सूत्र पृष्ठ १०)
= और (= च) अधिक विशुद्ध (मतिज्ञान से श्रुतज्ञान) है
-- और भी (मतिज्ञान से श्रुतज्ञान में विशेष) है। मतिज्ञान है सो इन्द्रिय और
... निमित्तक आत्माके स्वभाव (= ज्ञानके स्वभाव)से होताहै
... (= तु) श्रुतज्ञान उस (मतिज्ञान)
... (प्रति विशेष भी) है समाप्य॰१०

किंकृतोऽयं विशेषः ?। वक्तृविशेषकृतः ॥ त्रयो वक्तारः। सर्वज्ञतीर्थंकरः । इतरो वा श्रुतकेवली ॥

किम् कृतः अयम् विशेषः ?	= यह भेद (= विशेष) क्योंकर किया गया है ? अर्थात् यह श्रुत ज्ञान दो भेदरूप, अनेक भेदरूप और बारह भेदरूप है सो क्योंकर है।
वक्तृविशेष-कृतः	= (यह विशेष) वक्ता के विशेष या भेद [होने के कारण] से किया गया है।
त्रयः वक्तारः	= तीन [प्रकार के] वक्ता हैं अर्थात् शास्त्र या आगम के कहने वालों के तीन भेद हैं।
सर्वज्ञ-तीर्थंकरः	= सर्वज्ञतीर्थंकर अर्थात् तीर्थंकर होकर पश्चात् सर्वज्ञता को प्राप्त करनेवाला
इतरः वा	= अथवा (= वा) दूसरे [प्रकारके सर्वज्ञ] अर्थात् तीर्थंकर केवलीके अतिरिक्त भिन्न = अन्य मनुष्य जिसने तपश्चरणके द्वारा सर्वज्ञता प्राप्त की है
श्रुतकेवली	= श्रुतकेवली अर्थात् वह श्रेष्ठ पुरुष जो द्वादशांग और चौदह प्रकीर्णकों के ज्ञाता हैं)

१—(क) ग्यारह अङ्ग चौदह पूर्व के पाठी (ख) "द्वादशांगके पाठी" (ग) श्रुत केवली (घ) "पूर्वविदः" इन चारों वाक्यों के भावार्थ लिखते हैं

(क) मालविक पृष्ठ ४२१ से ज्ञात है कि दृष्टिवाद बारहवां अङ्ग का चौथा भेद 'पूर्वगत' है और जिस क्रम से इसमें मान जिसमें दृष्टिवाद अङ्ग के भेद किये हैं उसही क्रमसे जीवकांड गोम्मटसारगाथा ३६१ अर्थप्रकाशिका पृष्ठ ५४, सर्वार्थसिद्धि वचनिका पृष्ठ २६ में इसी दृष्टिवाद अंग के भेद किये गये हैं इससे यह बात झलकती है कि जो ग्यारह अङ्ग और पूर्वगत के भेद तक का पाठी हो अर्थात् ग्यारह अङ्ग परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग और चौदह पूर्वोंका ज्ञाता हो उसको ग्यारहअङ्ग चौदह पूर्वका पाठी कहेंगे न कि उसको जो केवल ग्यारहअङ्ग और चौदह पूर्वका पाठी परिकर्म-सूत्र प्रथमानुयोग को छोड़कर हो। बारह अङ्गोंके पढ़नेसे केवल चूलिका बाकी रहजाती है।

(ख) "द्वादशांग के पाठी" उनको कहेंगे जो बारह अङ्ग के पाठी हों अर्थात् चौदह प्रकीर्णकों को छोड़कर शेष सब श्रुतज्ञान के पाठी हों।

(ग) श्रुतकेवली वो है जो द्वादशांग और चौदह प्रकीर्णकों के ज्ञाता हों। अर्थात् समस्त द्रव्य श्रुत ज्ञान को जानते हों।

(घ) "पूर्वविदः" यह वाक्य नवमें अध्याय के सैंतीसवां सूत्र "शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः" में आया है और इसका अर्थ सर्वार्थसिद्धि वचनिका पृष्ठ ४९२) तत्त्वार्थराजवार्तिक (पृष्ठ ३५४) और तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक (पृष्ठ ५०४) और अर्थप्रकाशिका इनमें अवलोकन किया है सब भाषा टीकाकारों ने जैसे पं० जयचन्दजी सदासुखजी पन्नालालजी माणिकचन्दजी इत्यादिकोंने "श्रुतकेवली" किया है अब प्रश्न यह है कि 'पूर्वविदः' वाक्य का अर्थ श्रुतकेवली कैसे हुआ क्योंकि प्राकृत में "पूर्वविदः" का अर्थ पूर्व के जानने वाले ऐसा ही होता है अर्थात् पूर्व तक जानने वाले भावार्थ यह 'ग्यारहअङ्ग चौदह पूर्व तक के पाठी हों।

द्रव्य श्रुतज्ञानका मानचित्र

अंगप्रविष्ट

(१) आचारांग
(२) सूत्रकृतांग
(३) स्थानांग
(४) समवायांग
(५) व्याख्याप्रज्ञप्ति
(६) ज्ञातृधर्मकथांग
(७) उपासकाध्ययनांग
(८) अन्तकृद्दशांग
(९) अनुत्तरोपपादिकदशांग
(१०) प्रश्नव्याकरणांग
(११) विपाकसूत्रांग
(१२) दृष्टिवादांग

दृष्टिवादांग

परिकर्म (क)
- चन्द्रप्रज्ञप्ति
- सूर्यप्रज्ञप्ति
- जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति
- द्वीपसागर प्रज्ञप्ति
- व्याख्याप्रज्ञप्ति

सूत्र (ख)

प्रथमानुयोग (ग)

पूर्वगत (घ)
- उत्पादपूर्व
- अग्रायणीपूर्व
- वीर्यानुवादपूर्व
- अस्तिनास्तिप्रवादपूर्व
- ज्ञानप्रवादपूर्व
- सत्यप्रवादपूर्व
- आत्मप्रवादपूर्व
- कर्मप्रवादपूर्व
- प्रत्याख्याननामधेयपूर्व
- विद्यानुवादपूर्व
- कल्याणनामधेयपूर्व
- प्राणावाय या प्राणावादपूर्व
- क्रियाविशालपूर्व
- लोकबिन्दुसारपूर्व

चूलिका (ङ)
- जलगता चूलिका
- स्थलगता चूलिका
- मायागता चूलिका
- आकाशगता चूलिका
- रूपगता चूलिका

अंगबाह्य (ये चौदह प्रकीर्णक हैं)

(१) सामायिक प्रकीर्णक
(२) चतुर्विंशतिस्तव प्रकीर्णक
(३) वन्दना प्रकीर्णक
(४) प्रतिक्रमण प्रकीर्णक
(५) वैनयिक प्रकीर्णक
(६) कृतिकर्म प्रकीर्णक
(७) दशवैकालिक प्रकीर्णक
(८) उत्तराध्ययन प्रकीर्णक
(९) कल्पव्यवहार प्रकीर्णक
(१०) कल्पाकल्प प्रकीर्णक
(११) महाकल्प प्रकीर्णक
(१२) पुण्डरीक प्रकीर्णक
(१३) महापुण्डरीक प्रकीर्णक
(१४) निषिद्धिका प्रकीर्णक

प्रत्यक्षदर्शित्वात्प्रक्षीणदोषत्वाच्च प्रामाण्यम् । तस्य साक्षाच्छिष्यैर्बुद्ध्यतिशयर्द्धियुक्तैर्गणधरैः श्रुतकेवलिभिरनुस्मृतग्रन्थरचनमङ्गपूर्वलक्षणं तत्प्रमाणं तत्प्रामाण्यात् ॥ आरातीयैः पुनराचार्यैः कालदोषात्संक्षिप्तायुर्मतिबलशिष्यानुग्रहार्थं दशवैकालिकाद्युपनिबद्धं तत्प्रमाणमर्थतस्तदेवेदमिति॥ क्षीरार्णवजलं घटगृहीतमिव।

प्रत्यक्षदर्शित्वात् ॥ प्रक्षीण—दोषत्वात् ॥ च	=(सर्वज्ञ के) प्रत्यक्ष देखने से और (=च) उत्कृष्ट निर्दोषपना से है
तस्य ॥ साक्षात् • शिष्यैः ॥ बुद्धि—अतिशय—	= जिस (सर्वज्ञ) के निकटवर्ती (= साक्षात्) शिष्य बुद्धि के अतिशय और
ऋद्धियुक्तैः ॥ गणधरैः ॥ श्रुतकेवलिभिः ॥	= ऋद्धि करि सहित जे गणधरद्वारा और श्रुतकेवलियों करि
अनुस्मृत—ग्रन्थरचनम् ॥	= (उन गणधरों और श्रुतकेवलियों के) स्मरण के अनुसार ग्रन्थ रचना है
अङ्ग — पूर्व लक्षणम् ॥	=जो अङ्गों और पूर्वों का हेतु वा अक्षर (=लक्षण—देखो वैद्यजी रचित कोष पृष्ठ ११७)
तत्प्रमाणं ॥ तत्—प्रामाण्यात् ॥	=उन [गणधर के वचन] का प्रमाण उन (सर्वज्ञ के वचन) के प्रमाण होने से है,
आरातीयैः ॥ पुनर् ॥ आचार्यैः ॥	= और आरातियों करि [अर्थात्] पिछले आचार्यों करि अभिप्राय केवल ज्ञानियों, गणधरों और श्रुतकेवलियों के अतिरिक्त जे पिछले आचार्यों करि
कालदोषात् ॥ संक्षिप्त—आयुस्—मति—बल—शिष्यअनुग्रह	= काल के दोष से थोड़ी अथवा अल्प आयु बुद्धि सामर्थ्य के (धारक) शिष्यों के उपकारके
अर्थम् ॥ दशवैकालिक—आदि उपनिबद्धम् ॥	= लिये दशवैकालिक आदिक (प्रकीर्णक) रचे गये हैं
तत् प्रमाणम्— ॥ अर्थतः •	= उन (दशवैकालिक आदि प्रकीर्णकों) का प्रमाण अर्थ से, तात्पर्य से अथवा अभिप्राय से (जो सर्वज्ञ और गणधरों ने कहा) है।
तत् ॥ [तद् ॥] एव • इदम् ॥ इति •	= सो (तद्) ही (एव) यह (= इदम्) ऐसे है (इति)
घट-गृहीतम् ॥ क्षीर-अर्णव-जलम् ॥ इव ⊛	= मानो (= इव) घड़ा में ग्रहण किया गया वा भरा गया क्षीर समुद्र का जल है अर्थात् जैसे क्षीर समुद्र का थोड़ा सा जल घट में भरा हुआ यह प्रकट करता है कि घड़े का जल क्षीर समुद्र का जल ही है अन्य नहीं है तैसे ही ये दशवैकालिक सर्वज्ञ की परम्परा से उसी अर्थ को लेकर आचार्यों ने अपनी अपनी बुद्धि अनुकूल कहे हैं वो ही हैं वास्तव में सर्वज्ञकथित पदार्थ ही इनमें कहा गया है अतः यह प्रमाणभूत है।

आरातीयश्चेति ॥ तत्र सर्वज्ञेनपरमर्षिणा परमाचिन्त्यकेवलज्ञानविभूतिविशेषेण अर्थत आगम उद्दिष्ट ॥ तस्य

च० आरातीयः १[1] इति०	= इस दूसरी गणना में गणधर जो चार ज्ञान के धारक होते हैं सम्मिलित हैं और (=च) आरातीय अर्थात् केवलज्ञानियों, गणधरों और श्रुतकेवलियों को छोड़कर अन्य आचार्य, सूत्रकार टीकाकार और भाष्यकार ऐसे हैं।
तत्र० सर्वज्ञेन ३[1] परमर्षिणा ३[1] परम-अचिन्त्य-	= वहाँ सर्वज्ञकरि (जो) उत्कृष्ट ऋषि है (और) जो उत्कर्ष या प्रधान अचिन्त्य
केवलज्ञान विभूति विशेषेण ३[1]।	= केवलज्ञान ऐश्वर्य के विशेष सहित है।
अर्थतः० आगम १[1] उद्दिष्टः १[1]	= अर्थतें, आगम या शास्त्र उपदेशागया है अर्थात् अर्थको आश्रयकरि अभिप्राय को प्रगट करते हुए या तात्पर्य को लिये हुये सर्वज्ञने आगम को कहा है
तस्य ६[1] प्रामाण्यम् १[(१)]	= तिस (आगम) का प्रमाणपना या विश्वसनीयता (=प्रामाण्यम्) विश्वास्यता

(उत्तर) टिप्पणी पृष्ठ ५०२ से विदित है कि अक्षरात्मक श्रुतज्ञानके अठारह भेद अर्थाक्षर, पद संघात, प्रतिपत्तिक अनुयोग प्राभृतप्राभृत प्राभृत, वस्तु, पूर्व व तब भेद और क्रम से एक एक अक्षर की वृद्धि के द्वारा उत्पन्न होनेवाले अक्षर समास आदि नव एसे सब मिलि अठारह भेद हुए अर्थात सत्रहवाँ भेद "पूर्व" है और अठारहवाँ भेद "पूर्वसमास" है॥ "पूर्व" अन्तका भेद भी भेदों में से उत्कृष्ट है। मेरी समझ में "पूर्वविदः" वाक्यस "पूर्वसमासविदः" प्रयोजन है अर्थात् श्रुतज्ञान का यह सर्व से उत्कृष्ट भेद है कि जिसके ऊपर अब किसी प्रकार की क्रम से वृद्धि नहीं हो सकती है॥ द्रव्य श्रुतज्ञान के सबसे उत्कृष्ट भेद तक के जाननेवाले सो पूर्वसमासविदः है बोलते बोलते व्यवहार में समास शब्दको छोड़ दिया और पूर्व समासविदः के स्थान में पूर्वविदः कहन लगे। जब श्रुतज्ञानके सबसे उत्कृष्ट भेद के ज्ञाता हुये और श्रुतज्ञान का इस भेद से ऊपर कोई भेद है ही नहीं पूर्वसमास श्रुतज्ञान के ऊपर कोई अक्षर श्रुतज्ञान का अवशेष रहता ही नहीं कि कोई अन्य भेद किया जाय और श्रुतकेवली वही है जो समस्त द्रव्य श्रुतज्ञान को जानता है— इसलिये पूर्वविदः (=पूर्वसमासविदः) का अर्थ सर्व द्रव्य श्रुतज्ञानयुक्त चौसठ अक्षर के प्रमाण ज्ञाता हुआ अर्थात श्रुतकेवली हुआ। यह अर्थ समझ के अनुकूल लिखा विशेष अर्थ पाठकगण विचार लें॥

(१) प्रामाण्य शब्द के दो अर्थ एक प्रमाणपना दूसरा विश्वसनीयता या विश्वस्यता है (देखो वैद्य कोश पृष्ठ ५१० और आप्टेकोश पृष्ठ ७३)

प्रत्यक्षदर्शित्वात्प्रक्षीणदोषत्वाच्च प्रामाण्यम् । तस्य साक्षाच्छिष्यैर्बुद्ध्यतिशयर्द्धियुक्तैर्गणधरैः श्रुतकेवलिभिरनुस्मृतग्रन्थरचनमङ्गपूर्वलक्षणं तत्प्रमाणं तत्प्रामाण्यात् ॥ आरातीयैः पुनराचार्यैः कालदोषात्संक्षिप्तायुर्मतिबलशिष्यानुग्रहार्थं दशवैकालिकाद्युपनिबद्धं तत्प्रमाणमर्थतस्तदेवेदमिति॥ क्षीरार्णवजलं घटगृहीतमिव।

प्रत्यक्षदर्शित्वात् । ॥ प्रक्षीण—दोषत्वात् ' ॥ च*	=(सर्वज्ञ के) प्रत्यक्ष देखने से और = च) उत्कृष्ट निर्दोषपना से है
तस्य '। साक्षात् • शिष्यैः ॥ बुद्धि—अतिशय—	= तिस (सर्वज्ञ) के निकटवर्ती (= साक्षात्) शिष्य बुद्धि के अतिशय और
ऋद्धियुक्तैः । । गणधरैः ॥ श्रुतकेवलिभिः ॥	= ऋद्धि करि सहित ने गणधरद्वारा और श्रुतकेवलियों करि
अनुस्मृत—ग्रन्थरचनम् । ॥	= (उन गणधरों और श्रुतकेवलियों के) स्मरण के अनुसार ग्रन्थ रचना है
अङ्ग – पूर्व लक्षणम् ॥	=जो अङ्गों और पूर्वों का हेतु या अनसर (=लक्षण—देखो वैद्यजी रचित कोष पृष्ठ २१७)
तत्प्रमाणं । ॥ तत्—प्रामाण्यात् ॥	= उन [गणधर के वचन] का प्रमाण उन (सर्वज्ञ के वचन) के प्रमाण होने से है,
आरातीयैः ॥ पुनर् ॥ आचार्यैः ॥	= और आरातियों करि [अर्थात्] पिछले आचार्य्यों करि भावार्थ केवल ज्ञानियों, गणधरों और श्रुतकेवलियों के अतिरिक्त जे पिछले आचार्य्यों करि
कालदोषात् । । संक्षिप्त-आयुस्-मति-बल-शिष्यअनुग्रह	= कालके दोष से थोड़ी अथवा अल्प आयु बुद्धि सामर्थ्य के(धारक) शिष्यों के उपकारके
अर्थम् ॥ दशवैकालिक—आदि उपनिबद्धम् । ॥	= लिये दसवैकालिक आदिक (प्रकीर्णक) रचे गये हैं
तत् प्रमाणम्—। ॥ अर्थतः •	= उन (दशवैकालिकआदि प्रकीर्णकों) का प्रमाण अर्थ से, तात्पर्य से अथवा अभिप्राय से (जो सर्वज्ञ और गणधरों ने कहा) है।
तत् ॥ [तद् ॥] एव • इदम् ॥ इति •	= सो (तद्) ही (एव) यह (=इदम् ऐसे है (इति)
घट-गृहीतम् ॥ क्षीर-अर्णव-जलम् । ॥ इव ॥	= मानो (=इव) घड़ामें ग्रहण किया गया वा भरागया क्षीर समुद्र का जल है अर्थात् जैसे क्षीर समुद्र का थोड़ा सा जल घट में भरा हुआ यह प्रकट करता है कि घड़े का जल क्षीर समुद्र का जल ही है अन्य नहीं है तैसेही ये दसवैकालिक सर्वज्ञ की परम्परायसे उसी अर्थ को लेकर आचार्य्यों ने अपनी अपनी बुद्धि अनुकूल करे हैं वोही हैं वास्तव में सर्वज्ञकथितपदार्थ ही इनमें कहा गया है अत यह प्रमाणभूत है।

आरातीयश्चेति ॥ तत्र सर्वज्ञेनपरमर्षिणा परमाचिन्त्यकेवलज्ञानविभूतिविशेषेण अर्थत आगम उद्दिष्ट ॥ तस्य

च० आरातीयः १/१ इति०	= इस दूसरी गणना में गणधर जो चार ज्ञान के धारक होते हैं सम्मिलित हैं और (= च) आरातीय अर्थात् केवलज्ञानियों, गणधरों और श्रुतकेवलियों को छोड़कर अन्य आचार्य, सूत्रकार टीकाकार और भाष्यकार ऐसे हैं।
तत्र० सर्वज्ञेन ३/१ परमर्षिणा ३/१ परम-अचिन्त्य-	= वहाँ सर्वज्ञकरि (जो) उत्कृष्ट ऋषि है (और) जो उत्कर्ष या प्रधान अचिन्त्य
केवलज्ञान विभूति विशेषेण ३/१ ।	= केवलज्ञान ऐश्वर्य के विशेष सहित है।
अर्थत ० आगमः १/१ उद्दिष्टः १/१	= अर्थतें, आगम या शास्त्र उपदेशागया है अर्थात् अर्थको आश्रयकरि अभिप्राय को प्रगट करते हुए या तात्पर्य को लिये हुये उक्तसर्वज्ञने आगम को कहा है
तस्य ६/१ प्रामाण्यम् १/१(१)	= तिस (आगम) का प्रमाणपना या विश्वसनीयता (= प्रामाण्यम्) विश्वास्यता

(उत्तर) टिप्पणी पृष्ठ ५०१ से विदित है कि अक्षरात्मक श्रुतज्ञानके अठारह भेद अर्थाक्षर, पद संघात, प्रतिपत्तिक अनुयोग प्राभृतप्राभृत प्राभृत, वस्तु, पूर्व ये नव भेद और क्रम से एक एक अक्षर की वृद्धि के द्वारा उत्पन्न होनेवाले अक्षर समास आदि नव एसे सब मिलि अठारह भेद हुए अर्थात सत्रहवाँ भेद "पूर्व" है और अठारहवाँ भेद पूर्वसमास" है॥ "पूर्व" जिसका भेद भी भेदों में से उत्कृष्ट है। मेरी समझ में "पूर्वविदः" वाक्यसे 'पूर्वसमासविदः" प्रयोजन है अर्थात् श्रुतज्ञान का यह सर्व से उत्कृष्ट भेद है कि जिसके ऊपर अब किसी अक्षर की क्रम से वृद्धि नहीं हो सकती है॥ द्रव्य श्रुतज्ञान के सबसे उत्कृष्ट भेद तक के जानने वाले जो पूर्वसमासविदः है बोलते बोलते व्यवहार में समास शब्दको छोड़ दिया और पूर्व समासविदः के स्थान में पूर्व विदः कहने लगे। जब श्रुतज्ञानके सबसे उत्कृष्ट भेद के ज्ञाता हुये और श्रुत ज्ञान का इस भेद से ऊपर कोई भेद है ही नहीं पूर्वसमास श्रुतज्ञान के ऊपर कोई अक्षर श्रुतज्ञान का अवशेष रहता ही नहीं कि कोई अन्य भेद किया जाय और श्रुतकेवली वही है जो समस्त द्रव्य श्रुतज्ञान को जानता है— इसलिये पूर्व विदः (= पूर्वसमासविदः) का अर्थ सर्व द्रव्य श्रुतज्ञानयुक्त बीस प्रकार के प्रमाण ज्ञाता हुआ अर्थात श्रुतकेवली हुआ। यह अर्थ समझ के अनुकूल किया विशेष अर्थ पाठकगण विचार लें॥

(१) प्रामाण्य शब्द के दो अर्थ एक प्रमाणपना दूसरा विश्वसनीयता या विश्वास्यता है (देखो पेज कोश पृष्ठ ५८० और आप्तेकोश पृष्ठ ७२)

यथा पतत्रिणो गमनमाकाशे भवनिमित्तं न शिक्षागुणविशेषः, तथा देवनारकाणां व्रतनियमाद्यभावेऽपि जायत इति भवप्रत्यय इत्युच्यते । इतरथा हि भवः साधारण इति कृत्वा सर्वेषामविशेषः स्यात् इष्यते च तत्रावधेः प्रकर्षाप्रकर्षवृत्तिः ।

यथा॰ पतत्रिणः। गमनम्॥ आकाशे। भव
निमित्तम्॥ न॰ शिक्षागुणविशेषः॥ तथा॰
देव-नारकाणाम्॥ व्रत-नियमादि अभावे। अपि॰
जायते। इति॰ भव प्रत्ययः। इति॰ उच्यते।
इतरथा॰ हि॰

भवः। साधारणः॥ इति॰ कृत्वा॰ सर्वेषाम्॥
अविशेषः॥ स्यात्।
च॰ तत्र॰ अवधेः॥ प्रकर्ष-अप्रकर्ष-वृत्तिः॥
इष्यते।

= जैसे पक्षी का आकाश में गमन [करने को] भव या पर्याय
= कारण है न कि शिक्षा का गुण विशेष वैसे
= देव और नारकियों के व्रत नियम आदि के न होने पर भी
= (अवधिज्ञान) उत्पन्न होता है इस प्रकार भव निमित्तक है ऐसे कहा गया है
= अन्यथा (= इतरथा) तो (= हि) अर्थात्
यदि भवप्रत्यय अवधिज्ञान के होनेका कारण देव और नारकियोंका केवल भवही होवो
= भव (सब देवनारकियों को) समान है ऐसा मानकर समस्त (देवनारकियों) के
= (भव प्रत्यय अवधिज्ञान) विशेष रहित या एकसा होना चाहिये
= और वहां (देवनारकियोंमें) अवधि कीप्रवृत्ति या स्थिति (= वृत्ति) हीनाधिक
= मानी गई है अंगीकार कीगई है वहां क्षयोपशम का विशेष है। यहां सार यह है कि सर्व प्रकार के अवधिज्ञानों में अवधिज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम तो अन्तरङ्गकारण सीधर्के अवश्य ही है बिना इस अवरङ्ग कारण के अवधिज्ञान कभी किसी भी जीव के नहीं होसकता है देवनारकियों में भी अवधिज्ञान घाटि बाढि है सो हीनाधिक क्षयोपशमके हेतुसे है परन्तु क्षयोपशमका अस्तित्व सबके है।

(१) आकाश शब्द पुल्लिंग और नपुंसकलिंग दोनों है (२) जन् (= उत्पन्न होना) दिवादि चतुर्थगण का आत्मनेपदी अकर्मक धातु है। प्रयोग अथवा व्यवहार में जन् का जा आदेश होजाता है। य चतुर्थगण का विकरण है। ते अन्यपुरुष (= प्रथमपुरुष) एक वचन वर्तमान कालका आत्मनेपदी प्रत्यय है। अतः जन्+य+ते = जा+य+ते = जायते, उत्पन्न होता है।

सि॰

भव प्रतीत्य क्षयोप
तत्र क्षयोपशम निमित्तत्व प्राप्नोति । नैष दोष । तदाश्रयात्तत्सिद्धे ॥
सञ्जायत इति कृत्वाभव प्रधानकारणमित्युपदिश्यते ॥

क्षयोपशम-निमित्तत्वम् (१)प्राप्नोति,न एष-दोष	= वहां क्षयोपशम का निमित्तपना नहीं प्राप्त होता है (उत्तर) यह दूषण नहीं है
	= क्योंकि उस(देव-नारकियों के भव)के आश्रय से उस (क्षयोपशम निमित्त पना) की
—आश्रयात् ॥	= सिद्धि होती है ।भव को समर्थन करि वा प्रतिपादनकरि वा निर्णीतकरि (= प्रतीत्य)
—सिद्धे ॥ , भवम् ॥ प्रतीत्य +	= क्षयापशम साथ साथ अवधिज्ञान के उत्पन्न होता है। ऐसा करके
क्षयोपशम ॥ सञ्जायते(२) ॥ इति॰ कृत्वा	= (देव नारकियों का) (भव) उक्त अवधिज्ञान का मुख्य निमित्त है
भव ॥ प्रधान कारणम् ॥	(और अवधि ज्ञानावरणकर्म का क्षयोपशम तो भव के हेतु से होता ही है)
इति ॥ उपदिश्यते ॥	= ऐसा उपदेश किया गया है। इस प्रश्न और उत्तर का स्पष्ट सारांश यह है कि

सिद्धान्त के अनुकूल किसी प्रकार का अवधिज्ञान कहीं और कभी भी अवधिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम के बिना नहीं होता है इसी आगम के सिद्धान्त को शिष्य ने चित्त में रखकर प्रश्न कर दिया कि यदि देव और नारकियों की पर्यायवा भव ही अवधि ज्ञान को उत्पन्न करता है तो यह अवधिज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम की कुछ भी अपेक्षा न ठहरी (उत्तर) अवधिज्ञानावरण क्षयोपशम तो अंतरंग कारण है ही। सो दोऊ प्रकार की अवधि में पाईये है या बिना तो अवधिज्ञान उपजै नाहीं। तातै यहां बाह्य निमित्त की अपेक्षासे कथन है। सब भव प्रत्ययअवधि कू तो प्रधान कारण भव ही है ॥

(१) प्राप्नोति के लिये देखो पृष्ठ ११६ (२) प्रतीत्य और कृत्वा दोनों संबंधसूचकभूत कृदन्त हैं ।
(३) सम् + जायते = सम् + जायते । किसी शब्द अथवा प्रत्यय के अन्त में 'म् हो और इस म् के पश्चात् कोई व्यञ्जन आवे तो म् प्राय लेखक की इच्छानुसार अनुस्वार में परवर्तित हो जाता है और उक्त म् का स्वर भी अनुस्वार में पलट जाता है यदि म् के पीछे य्-र्-ल्-व् अथवा ह् आवे। यदि हम पहिले नियम में अनुस्वार में म् को न पलटैं तो यह म् उन वर्गों के पांचवे अक्षर में परवर्तित हो जाता है जिस वर्ग का अक्षर उस म् के पीछे आवे अतः यहां सम् का सञ् होकर सञ्जायते होगया ॥

यदि भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणाम् ।

यदि० भवप्रत्यय ॥ अवधि ॥ देवनारकाणाम् ।। = जो भवनिमित्तक अवधिज्ञान देव और नारकियों के होता है सो

भवप्रत्यय अवधिज्ञान देव नारकी तथा तीर्थंकरों के होता है और यह (भवप्रत्यय अवधिज्ञान) संपूर्ण अंग से उत्पन्न होता है अर्थात् समस्त आत्मप्रदेश से उत्पन्न होता है। और गुणप्रत्यय या क्षयोपशम निमित्तक अवधिज्ञान नाभि के ऊपर शंख पद्म वज्र स्वस्तिक कलश नंद्यावर्त आदिक शुभ चिन्हों से होता है। उक्त जगह के आत्म प्रदेशों में होने वाले अवधिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से क्षयोपशम प्राप्त होता है।

भवप्रत्यय अवधिज्ञान नियम से देशावधि ही होता है। (गोम्मट गाथा ३७ ३७१ ३७२ निरकगति में अवधि के विषय भूत क्षेत्र का प्रमाण यह है कि सातवीं भूमि में अवधिज्ञान के विषयभूत क्षेत्रका प्रमाण एक कोस है। छठवीं भूमि में डेढ़कोस पाँचवी में दो कोस, चौथी में अढ़ाई कोस, तीसरी में तीन कोस दूसरी में साढ़े तीन कोस प्रथम पृथिवी में चार कोस (अवधि के विषय भूत क्षेत्र का प्रमाण) है।

"पुनवासी और व्यन्तरों का अवधि के क्षेत्र का जघन्य प्रमाण पच्चीस योजन और जघन्य काल कुछ कम एक दिन है। और ज्योतिषी देवों का अवधि का (जघन्य क्षेत्र इस (पच्चीस योजन) से संख्यात गुणा और (जघन्य) काल इस (कुछ कम एक दिन) से बहुत अधिक है

असुरकुमारों की अवधि का उत्कृष्ट विषयक्षेत्र असंख्यात कोटि योजन है (= असुराणामसंख्येया कोटयो = असुराणाम् असंख्येयाः कोटयः) गोम्मटसार जीवकांड गाथा ४२७ मुद्रित पृष्ठ ८५ । इसी पर जीवतत्त्व प्रदीपिका टीका "असुराणां उत्कृष्ट विषय क्षेत्रं असंख्यात कोटि योजन मात्रं = असुरों का उत्कृष्ट (अवधिज्ञानका) विषय भूतक्षेत्र असंख्यात करोड़ योजन मात्र है परंतु तत्त्वार्थराजवार्तिक के कर्ता के मतानुसार अवधि "उत्कृष्ट अधोभागमें तो असुरकुमार निर्मे असंख्यात योजन कोटा कोटि पर्यंत है"(= "उत्कृष्टोऽसुराणामसंख्याता योजन कोटि कोटयोधः" पन्नालाल जी दूनी वाला अनुवादित राजवार्तिक सूत्र २१ और संस्कृत तत्त्वार्थ राजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ५१। शेष नौ प्रकारके भवनवासी, देव तथा व्यंतर और ज्योतिषी देवोंका अवधिज्ञान उत्कृष्ट विषय क्षेत्र असंख्यात सहस्र योजन है। देखो जी की गोम्मट गाथा४२७। ज्योतिषियों देवों को अवधि ऊर्ध्वभाग में अपने विमान के ऊपरि भाग पर्यंत है और तिर्यग् असंख्यात कोटा कोटीयोजन प्रमाण है" पन्नालाल जी दूनी का अनुवाद सूत्र२१ "ज्योतिषां ऊर्ध्वम् आत्मीय विमानस्य उपरि पर्यंत-तिर्यग्-असंख्याता योजन कोटी कोटयः)

असुरकुमार की अवधि के उत्कृष्ट काल का प्रमाण असंख्यात वर्ष है और शेष नौ प्रकार के भवनवासी व्यंतर ज्योतिषीयों की अवधि के उत्कृष्ट काल का प्रमाण असुरों की अवधि के उत्कृष्ट काल के प्रमाण से नियम से संख्यात में भागमात्र है।

निवाणा जगत्पमहाप वकीऽकृत पदच्छेद ... सम्यग्दृष्टीनामेव ग्रहणकृतः ? अवधि ग्रहणात् मिथ्यादृष्टीनां च
...यना कारणामित्य विशेषाभिधानेऽपि 'सम्यग्दृष्टीनामेव ग्रहणकृतः ? अवधि ग्रहणात्
विभंग इत्युच्यते ॥ प्रकर्षाप्रकर्षवृत्तिश्च आगमतो विज्ञेया

	=(भव प्रत्यय अवधिज्ञान का होना) " देवनारकाणाम् " ऐसा (इस सूत्र में)
देवनारकाणाम् । इति ॥	= विशेष रहित या भेद रहित (= अविशेष) कहने पर भी (= अभिधाने अपि)
अविशेष अभिधाने । अपि ॥	= केवल (= एव) सम्यग्दर्शनधारकोंनि (देव नारकियों) का ग्रहण कैसे (कुतः) हुआ ?
सम्यग्दृष्टीनाम् । एव ॥ ग्रहणम् ॥ कुतः ? *	प्रश्न का तात्पर्य यह है कि अवधिज्ञान सदैव सम्यग्दृष्टियों के होता है और चौथे गुणस्थान से बारह गुणस्थान तक इसका अस्तित्व है आपने 'देवनारकियों के' अभेदरूप से सूत्र में भवप्रत्ययअवधिज्ञान का होना कैसे कह दिया क्योंकि सब देवनारकी सम्यग्दृष्टी नहीं हैं इस सूत्र से अवधिज्ञान का होना केवल सम्यग्दृष्टी देवनारकियों के कैसे निकलता है सो कहिये
अवधिग्रहणात् ॥	=(उत्तर) (सूत्र में) अवधि (शब्द) के लाने से
	(स्पष्ट है कि सम्यग्दृष्टी देवनारकियों से प्रयोजन है)
च । मिथ्यादृष्टीनाम् ॥ विभङ्ग ॥	= और (= च) मिथ्यादृष्टी (देव-नारकी-मनुष्य-तिर्यंच) निके विभंग अवधिज्ञान है
इति उच्यते ॥	= ऐसा (इस अध्याय का इकतीसवां सूत्र) कहा गया है मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च
	= [मतिश्रुतअवधि- येतीन ज्ञान-विपर्य भी होते है अर्थात् मिथ्याज्ञान भी हैं]
च ॥ प्रकर्षअप्रकर्षवृत्ति ॥	= और (देव नारकियोंके) हीनाधिक अवधिकी स्थिति (वृत्तिः) या विद्यमानता (= वृत्तिः)
आगमतः ॥ विज्ञेया ॥	= (अन्य) शास्त्रसे जानो या जाननेयोग्य है। [इस पृष्ठ की पृष्ठ ४३५की टिप्पणी देखो]

(१) द्रव्य क्षेत्र काल भावकी अपेक्षा से जिसके विषय की सीमा हो उसको अवधिज्ञान अथवा सीमाज्ञान कहते हैं। देव नारक के...
... अपेक्षा से अवधिज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम होकर जो अवधिज्ञान हो उसको भवप्रत्यय अवधिज्ञान कहते हैं।

इत्यत आह ॥

इति अत • आह T	= ऐसा (प्रश्न होने पर) इसलिये (आचार्य अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

नव ग्रैवेयिक निवासी देवों के अधोभाग में उत्कृष्ट अवधिज्ञान धूम प्रभा (पाँचवीं पृथिवी)के अंत पर्यंत है। जो दश राजू से अधोभाग में अधिक है और ग्यारह राजू से न्यून है। और इन ही देवों का उत्कृष्ट अवधिज्ञान अधोभाग में तमप्रभा (छठवीं पृथिवी) के अन्त तक है सो मान में अधोभाग को ओर ग्यारह राजू है ॥ सौधर्मादिदेवाः उपरि स्वस्वस्वर्गविमानध्वजदण्ड शिखर पर्यन्त पश्यंति गोम्मटसार पृष्ठ ८१३ = सौधर्मादिवासी (देवों से नवग्रैवेयिक तक) ऊपरि अपने अपने स्वर्ग का विमान का ध्वजा दण्डका शिखर पर्यन्त देखे हैं।

"नव अनुदिशविमान अर पाँच अनुत्तर विमान के वासी सकललोकनाली जो त्रसनाली ताकों देखे हैं बहुरि नव अनुदिश पंच अनुत्तर विमान के वासी देव ऊपरि अपने विमान का शिखर पर्यन्त अर नीचें को वातवलय पर्यन्त सर्व त्रसनाली कौं देखे हैं सो अनुदिश विमानवाले तौ कछू एक अधिक तेरह राजू प्रमाण लम्बा अर अनुत्तर विमानवाले च्यारिसे पचीस धनुष घाटि इकवीस योजन करि हीन चौदह राजू प्रमाण लम्बा अर एक राजू चौड़ा अवधि का विषय भूत क्षेत्र कौं देखे हैं" ॥ चौदह राजू क्षेत्र में से इकवीस योजन और च्यारसौ पचास धनुष घटाये जो क्षेत्र शेष रहै सो अनुत्तर विमान वाले लम्बाई में अर एक राजू चौड़ाई में अवधि द्वारा देखते हैं ऐसा अर्थ "पंचविंशति उत्तर चतुः शतधनुः ऊनएकविंशति योजनैः न्यून चतुर्दश रज्ज्वायतां च रज्जु विस्तारां सर्वलोकनालिं पश्यन्ति इस संस्कृत वाक्य का ज्ञात होता है ॥ अनुदिश विमान वाले कुछ अधिक तेरह राजू प्रमाण लम्बा और एक राजू चौड़ा अवधिज्ञान द्वारा देखते हैं।

उपयुक्त जो क्षेत्रों का "परिमाण कह्या है सो स्थानकका नियमरूप जानना। क्षेत्रका परिमाण कोई नियम रूप न जानना। जातैं अच्युत स्वर्ग पर्यंत के वासी विहार करि अन्य क्षेत्र कौं जाइ अर तहां अवधि होइ तौ पूर्वोक्त स्थानक पर्यन्त ही होइ ऐसा नाहीं जो प्रथम स्वर्गवाला पहिले नरक जाइ अर तहां सेती डेढ़ राजू नीचें और जानैं। सौधर्म द्विक के प्रथम नरक पर्यंत अवधि क्षेत्र है सो तहां भी तितना तहां पर्यंत क्षेत्र ही कौं जानैं ऐसैं सर्वत्र जानना" ॥ जी० कां० गाम्मट मुद्रित पृष्ठ ८१३ ८१४ ॥

भवनवासी व्यन्तर ज्योतिषी देवों की अवधिका क्षेत्र बराबर घनरूप नहीं है। कल्पवासी देवों को अवधिका क्षेत्र आयत चतुरस्र (चौकोर) किन्तु लम्बाई में अधिक और चौड़ाई में थोड़ा) है। शेष मनुष्य तिर्यंच नारकी इनकी अवधि का विषयभूत क्षेत्र बराबर घनरूप है।

सौधर्म ईशान स्वर्गों के देवों की अवधि का काल असंख्यात कोटि वर्ष है। इसके ऊपर सनत्कुमार माहेन्द्र आदि कल्पवाले देवों का अवधि का काल यथायोग्य पल्य का असंख्यातवाँ भाग है। इसके ऊपर लांतव स्वर्ग से लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यंतवाले देवों को अवधिका काल कुछ घाटि पल्य प्रमाण है ॥

अथ क्षयोपशमहेतु केषाम्

अथ • क्षयोपशमहेतुः॥ केषाम्॥ =अब (अथ—अवधि ज्ञान के उत्पत्ति का) क्षयोपशमनिमित्त किनके है

भवनवासी व्यन्तर ज्योतिषी इनके अवधि का क्षेत्र नीचे नीचे न्यून होता है और तिर्यगूरूप से (अर्थात् इधर उधर तिरछे रूप से) अधिक होता है तथा भवनवासी देव अपने अवस्थित (नियत) स्थान से सुरगिर के (मेरु के) शिखर पर्यंत अवधि द्वारा देखते हैं

वैमानिक देवो में सौधर्म और ईशान स्वर्ग के देवों के जघन्य अवधिज्ञान ज्योतिषी देवों के उत्कृष्ट है सो है अर्थात् असंख्यात सहस्र योजन है। और उत्कृष्ट रत्नप्रभा का वा प्रथम भूमि का अन्त पर्यंत है जो नीचेका सौधर्म ईशान स्वर्ग से डेढ़ राजू है। सनत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्गों के देवों के अधोभाग में जघन्य अवधिज्ञान तो रत्नप्रभा (प्रथम भूमि) का अन्त तक है पर उत्कृष्ट अधोभाग में शर्कराप्रभा (दूसरी पृथिवी) पर्यंत जो सनत्कुमार माहेन्द्र स्वर्गों से नीचे को चार राजू है होता है। ब्रह्म ब्रह्मोत्तर लांतव कापिष्ठ स्वर्गों के देवों के अधोभाग में जघन्य अवधिज्ञान शर्कराप्रभा (दूसरी पृथिवी) के अंत तक है। ब्रह्म ब्रह्मोत्तर स्वर्गों से शर्करा प्रभा नीचे को साढ़े चार राजू है और लांतव कापिष्ठ स्वर्गों से शर्करा प्रभा [दूसरी पृथिवी] पांच राजू है। और उक्त चार स्वर्ग निवासियों का उत्कृष्ट अवधिज्ञान अधोभाग में वालुकाप्रभा (तीसरी पृथिवी) के अंत पर्यंत है। ब्रह्म ब्रह्मोत्तर स्वर्गों से वालुका प्रभा अधोभाग में साढ़े पांच राजू है और लांतव कापिष्ठ स्वर्गों से अधोभाग में उक्त तीसरी पृथिवी छह राजू है।

शुक्र महाशुक्र शतार सहस्रार स्वर्ग निवासी देवों के अधोभाग में जघन्य अवधिज्ञान वालुका प्रभा (तीसरी पृथिवी) के अंत तक है शुक्र महाशुक्र स्वर्गों से वालुका प्रभा साढ़े छह राजू नीचे को है और शतार सहस्रार स्वर्गों से उक्त तीसरी पृथिवी नीचे को सात राजू है उत्कृष्ट अवधिज्ञान शुक्र महाशुक्र शतार सहस्रार स्वर्गों के देवों के अधोभाग में पंकप्रभा (चौथी पृथिवी का अंत पर्यंत है। शुक्र महाशुक्र स्वर्गों से नीचे का पंकप्रभा साढ़े सात राजू है और शतार सहस्रार से उक्त चौथी पृथिवी अधोभाग में आठ राजू है। आनत प्राणत आरण अच्युत स्वर्गों के देवों का जघन्य अवधिज्ञान अधोभाग में पंकप्रभा (चौथी भूमि) के अन्त पर्यंत है आनत प्राणत स्वर्गों से पंकप्रभा (चौथी पृथिवी) नीचे का साढ़ेआठ राजू है और आरण अच्युत स्वर्गोंसे पंकप्रभा नौ राजू अधोभाग में है। और उत्कृष्ट अवधिज्ञान अधोभाग में आनत प्राणत आरण अच्युत स्वर्गों के देवों का धूमप्रभा (पांचवी पृथिवी) के अन्त तक है आनत प्राणत स्वर्गोंसे धूमप्रभा साढ़े नौ राजू नीचे का है और आरण अच्युत से धूमप्रभा पृथिवी दशराजू अधोभाग में है।

इत्यत आह ॥

इति ॐ अत॰ आह । = ऐसा (प्रश्न होने पर) इसलिये (आचार्यअग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

नव ग्रैवेयिक निवासी देवों का अधोभाग में उत्कृष्ट अवधिज्ञान धूम प्रभा (पांचवीं पृथिवी)के अंत पर्यंत है। सो दश राजू से अधोभाग में अधिक है और ग्यारह राजू से न्यून है। और इन ही देवों का उत्कृष्ट अवधिज्ञान अधोभाग में तमप्रभा (छठवीं पृथिवी) के अन्त तक है सो माप में अधोभाग को ओर ग्यारह राजू है॥ सौधर्मादिदेवा उपरि स्वस्वस्वर्गविमानध्वजदण्ड शिखर पर्यन्त पश्यंति गोम्मटसार पृष्ठ ८५१ = सौधर्मादिवासी (देवों से नवग्रैवेयिक तक) ऊपरि अपने अपने स्वर्ग का विमान का ध्वजा दण्डका शिखर पर्यन्त देखे हैं।

"नव अनुदिशविमान अर पांच अनुत्तर विमान के वासी सर्वलोकनाली जो त्रसनाली ताकों देखे हैं बहुरि नव अनुदिश पंच अनुत्तर विमान के वासी देव ऊपरि अपने विमान का शिखर पर्यन्त अर नीचें का वात तनुवात पर्यन्त सर्व त्रसनाली कों देखे हैं सो अनुदिश विमानवाले तौ कछू एकअधिक तेरह राजू प्रमाण लम्बा अर अनुत्तर विमानवाले च्यारिसे पचीस धनुष घाटि इकवीस योजन करि हीन चौदह राजू प्रमाण लम्बा अर एक राजू चौड़ा अवधि का विषय भूत क्षेत्र कों देखे हैं" ॥ चौदह राजू क्षेत्र में से इकवीस योजन और चारसौ पचास धनुष घटाये जो क्षेत्र शेष रहे सो अनुत्तर विमान वाले लम्बाई में अर एक राजू चौडाई में अवधि द्वारा देखते हैं ऐसा अर्थ "पंचविंशति उत्तर चतुः शतधनुः ऊनएकविंशति योजनैः न्यून चतुर्दश रज्जूायतां च रज्जु विस्तारां सर्वलोकनालिं पश्यन्ति इस संस्कृत वाक्य का भाव होता है ॥अनुदिश विमान वासे कुछ अधिक तेरह राजू प्रमाण लम्बा और एक राजू चौड़ा अवधिज्ञान द्वारा देखते हैं।

उपर्युक्त जो क्षेत्रों का "परिमाण कोया है सो स्थानकका नियमरूप जानना। क्षेत्रका परिमाण कोई नियम रूप न जानना। जातें अच्युत स्वर्ग पर्यत के वासी विहार करि अन्य क्षेत्र कौं जाइ अर तहां अवधि होइ तौ पूर्वोक्त स्थानक पर्यन्त ही होइ ऐसा नाही जो प्रथम स्वर्गवाला पहिले नरक जाइ अर तहां तेसो डेढ़ राजू नीचें और जानें। सौधर्म द्विक के प्रथम नरक पर्यंत अवधि क्षेत्र है सो तहां भी तिष्ठता वहां पर्यंत क्षेत्र ही को जाने ऐसें सपष्ट जानना ॥ जो० का० गाम्मट मुद्रित पृष्ठ ८५३ ८५४ ॥

भवनवासी व्यन्तर ज्योतिषी देवों की अवधिका क्षेत्र बराबर घनरूप नहीं है। कल्पवासी देवों की अवधिका क्षेत्र आयत चतुरस्र (चौकार) किन्तु लम्बाई में अधिक और चौड़ाई में थोड़ा) है। शेष मनुष्य तिर्यंच नारकी इनकी अवधि का विषयभूत क्षेत्र बराबर घनरूप है।

सौधर्म ईशान स्वर्गों के देवों की अवधि का काल असंख्यात कोटि पल्य है। इसके ऊपर सनत्कुमार माहेन्द्र ब्रह्म ब्रह्मोत्तर कल्पवाले देवों की अवधि का काल यथायोग्य पल्य का असंख्यातवां भाग है। इसके ऊपर लांतव स्वर्ग से लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यंतवाले देवों की अवधिकाकाल कुछ घाटि पल्य प्रमाण है॥

अथ क्षयोपशमहेतु केषाम्

अथ • क्षयोपशमहेतु॥ केषाम्॥	=अब (अथ—अवधि ज्ञान के उत्पत्ति का) क्षयोपशमनिमित्त किनके हैं

भवनवासी व्यन्तर ज्योतिषी इनकी अवधि का क्षेत्र नीचे नीचे न्यून होता है और तिर्यग्रूप से (अर्थात् इधर उधर तिरछे रूप से)
भवनवासी देव अपने अवस्थित (यामियत) स्थान से सुरगिर के (मेरु के) शिखर पर्यंत अवधि द्वारा देखते हैं
अधिक होता है तथा भवनवासी देव अपने अवस्थित अवधिज्ञान ज्योतिषी देवों के उत्कृष्ट है सो है अर्थात् असंख्यात सहस्र
वैमानिक देवों में सौधर्म और ईशान स्वर्ग के देवों के जघन्य अवधिज्ञान जो नीचेका सोधर्म ईशान स्वर्ग से डेढ़ राजू है। सनत्कुमार और माहेन्द्र
योजन है। और उत्कृष्ट रत्नप्रभा का वा प्रथम भूमि का अन्त पर्यंत है जो रत्नप्रभा (प्रथम भूमि) का अन्त तक है अर उत्कृष्ट अधोभाग में शर्करापमा
स्वर्गों के देवों के अधोभाग में जघन्य अवधिज्ञान तो रत्नप्रभा (प्रथम भूमि) राजू है होता है। ब्रह्म ब्रह्मोत्तर लांतव कापिष्ठ स्वर्गों के देवों
(दूसरी पृथिवी) पर्यंत जो सनत्कुमार महेन्द्र स्वर्गों से नीचे को चार राजू है के अंत तक है। ब्रह्म ब्रह्मोत्तर स्वर्गों से शर्करा प्रभा नीचे को साढ़े चार
के अधोभाग में जघन्य अवधिज्ञान शर्कराप्रभा (दूसरी पृथिवी) पांच राजू है। और इन चार स्वर्ग निवासियों का उत्कृष्ट अवधिज्ञान
राजू है और लांतव कापिष्ठ स्वर्गों से शर्करा प्रभा [दूसरी पृथिवी] अंत पर्यंत है। ब्रह्म ब्रह्मोत्तर स्वर्गों से बालुका प्रभा अधोभाग में साढ़े पांच राजू है
अधोभाग में बालुकाप्रभा (तीसरी पृथिवी) के अंत पर्यंत है। ब्रह्म ब्रह्मोत्तर स्वर्गों से बालुका प्रभा अधोभाग में साढ़े पांच राजू है
और लांतव कापिष्ठ स्वर्गों से अधोभाग में उक्त तीसरी पृथिवी छह राजू है।
शुक्रमहाशुक्र शतार सहस्रार स्वर्ग निवासी देवों के अधोभाग में जघन्य अवधिज्ञान बालुका प्रभा (तीसरी पृथिवी) के अंत तक
है शुक्र महाशुक्र स्वर्गों से बालुका प्रभा साढ़े छह राजू नीचे को है और शतार सहस्रार स्वर्गों से उक्त तीसरी पृथिवी नीचे को सात राजू है
उत्कृष्ट अवधिज्ञान शुक्र महाशुक्र शतार सहस्रार स्वर्गों के देवों के अधोभाग में पंकप्रभा (चौथी पृथिवी का अंत पर्यंत है। शुक्र महाशुक्र
स्वर्गों से नीचे का पंकप्रभा साढ़े सात राजू है और शतार सहस्रार से उक्त चौथी पृथिवी अधोभाग में आठ राजू है। आनत प्राणत
आरण अच्युत स्वर्गों के देवों का जघन्य अवधिज्ञान अधोभाग में पंकप्रभा (चौथी भूमि) के अन्त पर्यंत है आनत प्राणत स्वर्गों से पंकप्रभा
(चौथी पृथिवी) नीचे का साढ़े आठ राजू है और आरण अच्युत स्वर्गोंसे पंकप्रभा नौ राजू अधोभाग में है। और उत्कृष्ट अवधिज्ञान अधोभाग
में आनत प्राणत आरण अच्युत स्वर्गों के देवों का धूमप्रभा (पांचवी पृथिवी) के अन्त तक है आनत प्राणत स्वर्गोंसे धूमप्रभा साढ़े नौ राजू नीचे
का है और आरण अच्युत से धूमप्रभा पृथिवी दशराजू अधोभाग में है।

इत्यत आह ॥

इति॰ अत ॰ आह । = ऐसा (प्रश्न होने पर) इसलिये (आचार्यअग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

नव ग्रैवेयिक निवासी देवों का अधोभाग में जघन्य अवधिज्ञान धूम प्रभा (पांचवीं पृथिवी)के अंत पर्यंत है। जो कुछ राजू से अधोभाग में अधिक है और ग्यारह राजू से न्यून है। और इन ही देवों का उत्कृष्ट अवधिज्ञान अधोभाग में तमप्रभा (छठवीं पृथिवी) के अन्त तक है सो माप में अधोभाग को ओर ग्यारह राजू है॥ सौधर्मादिदेवा उपरि स्वस्वस्वर्गविमानध्वजदण्ड शिखर पर्यन्त पश्यंति गोम्मटसार पृष्ठ ८५३ = सौधर्मादिवासी (देवों से नवग्रैवेयिक तक) ऊपरि अपने अपने स्वर्ग का विमान का ध्वजा दण्डका शिखर पर्यन्त देखे हैं।

नव अनुदिशविमान अर पांच अनुत्तर विमान के वासी सकललोकनाली को त्रसनाली ताको देखे हैं बहुरि नव अनुदिश पंच अनुत्तर विमान के वासी देव ऊपरि अपनी विमान का शिखर पर्यंत अर नीचें को वाह्य तनुवात पर्यन्त सर्व त्रसनाली कौं देखे हैं सो अनुदिश विमानवासी तो कछू एक अधिक तेरह राजू प्रमाण लम्बा अर अनुत्तर विमानवाले च्यारिसे पचीस धनुष घाटि इकवीस योजन करि हीन चौदह राजू प्रमाण लम्बा अर एक राजू चौड़ा अवधि का विषय भूत क्षेत्र कौं देखें हैं" ॥ चौदह राजू क्षेत्र में से इकवीस योजन और च्यारसौ पचास धनुष घटाइये जो क्षेत्र शेष रहै सो अनुत्तर विमान वाले लम्बाई में अर एक राजू चौड़ाई में अवधि द्वारा देखते हैं ऐसा अर्थ "पंचविंशति उत्तर चतुः शतधनुः ऊनएकविंशति योजनैः न्यून चतुर्दश रज्वायतां च रज्जु विस्तारां सर्वलोकनालिं पश्यन्ति इस संस्कृत वाक्य का ज्ञात होता है। अनुदिश विमान वाले कुछ अधिक तेरह राजू प्रमाण लम्बा और एक राजू चौड़ा अवधिज्ञान द्वारा देखते हैं।

उपर्युक्त जो क्षेत्रों का परिमाण कोया है सो स्थानकका नियमरूप जानना। क्षेत्रका परिमाण लोई नियम रूप न जानना। जातें अच्युत स्वर्ग पर्यंत के वासी विहार करि अन्य क्षेत्र कौं जांइ अर तहां अवधि होइ सो पूर्वोक्त स्थानक पर्यन्त ही होइ ऐसा नाहीं जो प्रथम स्वर्गवाला पहिले नरक जाइ अर तहां सेती डेढ़ राजू नीचें और जानें। सौधर्म द्विक के प्रथम नरक पर्यंत अवधि क्षेत्र है सो तहां भी तितना तहां पर्यंत क्षेत्र ही कौं जानें ऐसें सत्य जानना ॥ जी० का० गोम्मट मुद्रित पृ॰ ८५३, ८५४ ॥

भवनवासी व्यन्तर ज्योतिषी देवों के अवधिका क्षेत्र बराबर घनरूप नहीं है। कल्पवासी देवों को अवधिका क्षेत्र आयत चतुरस्र (चौकोर) किन्तु लम्बाई म अधिक और चौड़ाई में थोड़ा) है। शेष मनुष्य तिर्यंच नारकी इनकी अवधि का विषयभूत क्षेत्र बराबर घनरूप है।

सौधर्म ईशान स्वर्गों के देवों की अवधि का काल असंख्यात कोटि वर्ष है। इसके ऊपर सनत्कुमार माहेन्द्र ब्रह्म ब्रह्मोत्तर कल्पवासी देवों की अवधि का काल यथायोग्य पल्य का असंख्यातवां भाग है। इसके ऊपर सातवें स्वर्ग से लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यंतवाले देवों की अवधिकाकाल कुछ घाटि पल्य प्रमाण है॥

॥ क्षयोपशमनिमित्त: षड्विकल्पः शेषाणाम् ॥२२॥

क्षयोपशमनिमित्त षड्विकल्प शेषाणाम् ॥२२॥

= क्षयोपशमनिमित्त (अवधि) षड्विकल्प शेषाणाम् (जीवानाम् भवति)

सूत्रार्थ—क्षयोपशमनिमित्तः। = [अवधिज्ञानावरणीय कर्म के] क्षयोपशम निमित्त [से उत्पन्न होने] वाला

अवधि। = अवधि जिसके [अनुगामी अननुगामी, वर्द्धमान, हीयमान, अवस्थित अनवस्थित]

षड्विकल्प। शेषाणाम्। जीवानाम्। भवति = छह भेद हैं सो शेष जीव [जे पर्याप्त सैनी सम्यग्दृष्टी मनुष्य तिर्यंच] तिनकें होता है सम्यग्दर्शनादि गुणोंसे क्षयोपशम होता है इससे इसको गुणप्रत्यय अवधिभी कहते हैं॥

---

(१) श्वेताम्बर आम्नाय में इस सूत्र की संख्या तेईसवीं है "यथोक्त निमित्तः षड्विकल्पः शेषाणाम् ॥२३॥ ऐसा पाठ है सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ २२ में "यथोक्त निमित्तः क्षयोपशमनिमित्त इत्यर्थः" अतः दोनों आम्नायों में इस सूत्र का अर्थ एकसा होजाता है॥

(२) शेषाणाम्।—निम्नलिखित ग्यारह सूत्रों के पाठ इस अध्याय में इस प्रकार हैं कि तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् —तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनं ॥२॥ जीवाजीवास्रवबन्धसंवर निर्जरा मोक्षास्तत्त्वम् ॥ सूत्र ४॥ जीवाजीवास्रवबन्धसंवर निर्जरामोक्षास्तत्त्वं ॥सूत्र ४॥ मतिश्रुतावधिमनःपर्यय केवलानि ज्ञानम् ॥ सूत्र ९॥ मतिश्रुतावधि मनः पर्यय केवलानि ज्ञानं ॥ सूत्र ९॥ आद्ये परोक्षम् ॥ ११॥ आद्ये परोक्षं ॥ ११॥ मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ताभिनिबोधः इत्यनर्थान्तरम् ॥ १३॥ मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ताभिनिबोध इत्यनर्थान्तरं अध्याय १ सूत्र १३॥ तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम् ॥ १४॥ तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तं ॥ अध्याय १ सूत्र १४॥ बहुबहुविधक्षिप्रानिःसृतानुक्तध्रुवाणां सेतराणाम् ॥ सूत्र १६॥ बहुबहुविधक्षिप्रानिःसृतानुक्तध्रुवाणां सेतराणाम् ॥ १६॥ न चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम् ॥ १९॥ न चक्षुरनिन्द्रियाभ्यां ॥ १९॥ श्रुतमतिपूर्वं द्व्यनेकद्वादशभेदम् ॥ २०॥ श्रुतमतिपूर्वं द्व्यनेकद्वादशभेदं ॥ भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणाम् ॥ सूत्र २१॥ भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणां ॥ अध्याय १ सूत्र २१॥ क्षयोपशम निमित्तः षड्विकल्पः शेषाणाम् ॥ सूत्र २१। क्षयोपशम निमित्तः षड्विकल्पः शेषाणाम् ॥ सूत्र २॥

इन प्रत्येक सूत्र के प्रथम पाठ के अंत में म् है और प्रत्येक सूत्र के द्वितीय पाठ में अनुस्वार है॥ म् के स्थान में जो म् पद के अंतका हो अनुस्वार हो जाता है यदि उसम् के पीछे कोई व्यंजन आये किसी भी पाठ के पश्चात् कोई व्यंजन नहीं आता इसलिये म् के स्थान में अनुस्वार नहीं हो सका है — अर्थात्

अवधिज्ञानावरणस्य देशघातिस्पर्द्धकानामुदये सति सर्वघातिस्पर्द्धकानामुदयाभावः क्षयः । तेषामेवानुदयप्राप्तानां सदवस्था उपशमः । तौ निमित्तमस्येति क्षायोपशमनिमित्तः । स शेषाणां वेदितव्यः ॥ के पुनः शेषाः ?। मनुष्यास्तिर्यञ्चश्च । तेष्वपि यत्र सामर्थ्यमस्ति तत्रैव वेदितव्यः । नह्यसंज्ञिनामपर्याप्तकानां च तत्सामर्थ्यमस्ति ॥ संज्ञिनां पर्याप्तकानां च न सर्वेषाम् ॥ केषां तर्हि

अवधिज्ञान -आवरणस्य ।।।देशघाति -स्पर्द्धकानाम्।।	= अवधिज्ञानावरणीय कर्मके देश घाति स्पर्द्धकोंके (स्पर्द्धक पुल्लिंग न पुंसक दोनों है)
उदये ।। सति ।। सर्वघातिस्पर्द्धकानाम ;। उदय—	= उदय होने पर (= सति) और सर्वघाति स्पर्द्धकों के उदय में (आकर फल न दे)
अभावः।। क्षयः '। तेषाम्;। एव •	= अभाव रूप (सो) क्षय है (और) तिन (सर्वघाति स्पर्द्धकों) के ही जो आगे उदयमें आवेंगे वर्तमान में
अन्-उदयप्राप्तानाम्;। सत्-अवस्था।।। उपशमः।।	= उदय रहित प्राप्त जो सत्ता रूप अवस्था सो उपशम है
तौ , निमित्तम्।।। अस्य । इति० क्षयोपशमनिमित्तः।।	ते दोनों (उपर्युक्त क्षय और उपशम) हैं कारण जिसके ऐसा क्षयोपशमहेतु है
सः।। शेषाणाम्;। वेदितव्यः।।के ।। पुनर् शेषाः ,। ?	= वह [क्षयोपशम निमित्त] शेष [जीव] तिनिकें जानों । पुनि कौनअवशेष हैं ?
मनुष्याः ,। तिर्यञ्चः ,। च •	= [उत्तर] मनुष्यऔरतिर्यंच हैं अर्थात् देव और नारकी पूर्व इक्कीसवें सूत्र में कहे अतः मनुष्य और तिर्यंच शेष रह गये सो इस सूत्र में कह दिये
तेषु ;। अपि • यत्र • सामर्थ्यम्।।। अस्ति । तत्र •	= तिन [मनुष्य और तिर्यंचों] में भी जहां योग्यता [= सामर्थ्य] है तहां
एव•वेदितव्य । नहि • अस्ति असंज्ञिनाम्'। च •	= ही मानना योग्य है॥ नहीं है असंज्ञियों के और [= च]
अपर्याप्तकानाम्,। तत्सामर्थ्यम्।।।	= अपर्याप्तकों के उस क्षयोपशम निमित्तक अवधिज्ञान होने की योग्यता
संज्ञिनाम् '। पर्याप्तकानाम्;। च • न• सर्वेषाम्,।	= सैनी पर्याप्तकों के भी [= च] सर्वके [अवधिज्ञान] नहीं होता है ॥ [प्रश्न]
केषाम्;। तर्हि०	= तौ [= तर्हि] किन [मनुष्य और तिर्यंचों] के (अवधिज्ञान) होता है ?

म पैक सूत्र का द्वितीय पाठ जिनमें अनुस्वार म के स्थान में पाया गया है जैनेन्द्र व्याकरण जैनेन्द्रप्रक्रिया शब्दार्णव चन्द्रिका पाणिनि मुनि कृत अष्टाध्यायी शाकटायन व्याकरण के अनुसार अशुद्ध हैं परन्तु कातन्त्र रूप माला के "विरामे वा" (= पदान्तस्य मकारस्य अनुस्वारं भवति विरामे) म् जो पदान्त हो उसको विकल्प करि (हमारी इच्छानुसार) अनुस्वार होजाता है यदि म् के पश्चात् में विराम हो जो म के पीछे कोई व्यञ्जन न आवे तो भी इस वाक्ये सूत्र के अनुकूल शुद्ध है (अवश्य देखो टिप्पणी पृष्ठ ५, ९ ५४० ५४१ ॥) सर्वार्थसिद्धि-श्लोक वार्तिक मुद्रित-इत्यादि में म् है परन्तु राजवार्तिक मुद्रित में और किसी किसी अन्य पुस्तक के पाठ में अनुस्वार भी है॥

यथोक्त सम्यग्दर्शनादिनिमित्तसान्निधाने सति शान्तक्षीणकर्मणा तस्योपलब्धिर्भवति । सर्वस्य क्षायोपशमनिमित्तत्वे क्षायोपशमग्रहण नियमार्थं क्षायोपशम एव निमित्त न भव इति ॥

यथोक्त-सम्यग्दर्शनादि-निमित्त सन्निधाने ।।।।	= जैसाकि ऊपर कहा गया है (= यथा उक्त) कि सम्यग्दर्शनादिक कारणों के निकट
सति ।।। शान्तक्षीणकर्मणाम् ।।	= होने पर (= सति) कर्मों का उपशम (= शान्त) और अभाव (= क्षीण = क्षय) होनेवालेके अर्थात् अवधिज्ञाना वरणीय कर्मका क्षयोपशम हुआ है जिसके उस (जीव) के
तस्य ।।। उपलब्धि ।।भवति ।	= तिस (गुण प्रत्यय अवधिज्ञान) की प्राप्ति होती है
	(अब सर्व प्रकार के अवधिज्ञान के उत्पन्न होने का हेतु किसी भी जीव के कोई भी अवधिज्ञान हो (अवधिज्ञानावरणीय कर्म का) क्षयोपशम निमित्त है तो इस सूत्र में 'क्षयोपशम निमित्तः' वाक्य का व्यर्थ क्यों प्रयोग किया ?)
सर्वस्य ।।क्षयोपशम-निमित्तत्वे ।।।	= (उत्तर) सब (जीवों) के अवधिज्ञानावरणीय कर्मका क्षयोपशमकारण होनेपर
क्षयोपशम-ग्रहणं ।।। नियम अर्थम् ।।।	(अवधिज्ञान होता है सो भी सूत्र में) क्षयोपशम' का प्रयोग मर्यादाके लिये है
क्षयोपशम ।। एव निमित्तम् ।।। न भवः ।। इति	= (क्योंकि) क्षयोपशम ही (मनुष्य तिर्यंचों के अवधि ज्ञान होने का) कारण होता है न कि भव

१) तीर्थकृतां भवप्रत्ययोऽपि अवधिर्भवति – तीर्थंकरों के (तीर्थकर्तां ।) भव प्रत्यय भी (= भवप्रत्ययः । अपि) अवधि होती है।

(२) नारक देव तीर्थंकरों के भवों की अपेक्षा अवधिज्ञानावरणीय कर्मका क्षयोपशम होकर जो अवधि हो उसको भवप्रत्यय अवधि कहते हैं गुण जो सम्यग्दर्शनादि कारणों की अपेक्षा से अवधिज्ञानावरणीय कर्मका क्षयोपशम होकर अवधिज्ञान होता है उसको गुण प्रत्यय अवधिज्ञान अथवा क्षयोपशम निमित्त अवधिज्ञान कहते हैं। "भव प्रत्यय अवधिज्ञान में भी सम्यग्दर्शनादि गुणों का सद्भाव है तथापि उन गुणों की अपेक्षा न करते हुये भव प्रत्यय कहा"। भव प्रत्यय अवधिज्ञान देव नारकी और तीर्थंकर की पर्याय पाते ही उत्पन्न होता है और उन भवों के साथ ही साथ अवधिज्ञानावरणीय कर्मका क्षयोपशम भी हो ही जाता है अर्थात् जैसे दीपक की ज्योति प्रकाश और अंधकार का नाश एक साथ ही होते हैं वैसे ही देव नारकी या तीर्थंकर का भव भव प्रत्यय अवधि अवधिज्ञानावरणीय

स एषोऽवधि षड्विकल्प । कुत ? अनुगाम्यननुगामिवर्द्धमानहीयमानावस्थितानवस्थितभेदात् ॥ कश्चिदवधिर्भास्करप्रकाशवद्गच्छन्तमनुगच्छति ॥ कश्चिन्नानुगच्छति तत्रैवातिपतति उन्मुग्धप्रश्नादेशिपुरुषवचनवत् ॥

स¹। एषः¹। अवधि¹।	=	सो यह (क्षयोपशमनिमित्तक वा गुणनिमित्तक, गुणप्रत्ययक, गुणहेतुक) अवधिज्ञान
षड्विकल्प¹। कुत ?॰ अनुगामिभेदात्⁵।	=	छह भेदरूप (छह भेदवाला) है। (प्रश्न) कैसे? (उत्तर) अनुगामि (आनुगामिक) भेदसे
अननुगामिभेदात्⁵। वर्द्धमानभेदात्⁵। हीयमानभेदात्⁵।	=	अननुगामि (अनानुगामिक) भेद से वर्द्धमान भेद से हीयमान भेद से
अवस्थितभेदात्⁵। अनवस्थितभेदात्⁵।	=	अवस्थित भेद से अनवस्थित भेद से (क्षयोपशमप्रत्यय-अवधिज्ञान) है
कश्चित्॰ अवधि¹। भास्करप्रकाशवत्॰ गच्छन्तम्²।	=	जो कोई अवधिज्ञान सूर्यके उजाले सदृश गमन करनेवाले (जीव) को (गच्छन्तम्)
अनुगच्छति T	=	नहीं छोड़ता है अर्थात् जीवके साथ२ जाता है। (सो अनुगामि वा अनुगामिक है)
कश्चित्॰ न॰ अनुगच्छति T तत्र॰ एव॰	=	जो कोई (अवधि गमन करने वाले जीव को) छोड़ देता है (न-अनुगच्छति) वहांही
उन्मुग्धप्रश्न-आदेशिपुरुषवचनवत्॰ अतिपतति T	=	मूर्ख प्रश्न करनेवाले मनुष्य के वचन सदृश गिर जाता है (= रह जाता है)

कर्मका क्षयोपशम ये तीनों साथ साथही तत्क्षण ही उत्पन्न होते हैं। और गुण प्रत्यय अवधि ज्ञानमें भी मनुष्य तिर्यंच भवोंका सद्भाव या अस्तित्व है तथापि उन पर्यायों की अपेक्षा नहीं करने से गुण प्रत्यय कहा है। जीव० गोम्मट मुद्रित पृष्ठ ७६८ ७६९॥

भवप्रत्यय अवधिज्ञान सम्पूर्ण अङ्ग से उत्पन्न होता है (= सम्पूर्ण आत्मप्रदेशों से होता है)। नाभि के ऊपर शंख पद्म वज्र स्वस्तिक कलश मछली आदि जो शुभ चिह्न होते हैं उस स्थानके आत्म प्रदेशोंमें रहनेवाले अवधि ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशम से गुणप्रत्यय अवधिज्ञान होता है

(१) अनुगामी अवधिज्ञान के तीन क्षेत्रानुगामी भवानुगामी उभयानुगामी भेद हैं। जो दूसरे क्षेत्रमें अपने स्वामी के साथ जावे सो क्षेत्रानुगामी है। दूसरे भव में अपने स्वामी के साथ जाय सो भवानुगामी अवधिज्ञान है। जो दूसरे क्षेत्र और भव दोनों में अपने स्वामी के साथ जाय सो उभयानुगामी अवधिज्ञान है।

अननुगामी अवधिज्ञानके भी तीन क्षेत्राननुगामी भवाननुगामी उभयाननुगामी भेद हैं। जो अपने स्वामीके साथ दूसरे क्षेत्र में न जावे सो क्षेत्राननुगामी अवधिज्ञान है। जो अपने स्वामी के साथ दूसरे भवमें न जाय सो भवाननुगामी अवधिज्ञान है। जो दूसरे भव और क्षेत्र दोनों में साथ न जाय सो उभयाननुगामी अवधिज्ञान है॥

अपरोऽवधि अरणिनिर्मथनोत्पन्नशुष्कपत्रोपचीयमानेन्धननिचयसमिद्धपावकवत्सम्यग्दर्शनादिगुणविशुद्धिपरिणामसन्निधानाद्यत्परिमाण उत्पन्नस्ततो वर्द्धते आ असंख्येयलोकेभ्य ॥ अपरोऽवधि अन्तरितपरिच्छिन्नोपादानसन्तत्यग्निशिखावत्सम्यग्दर्शनादिगुणहानिसंक्लेशपरिणामविवृद्धियोगाद्यत्परिमाण उत्पन्नस्ततो हीयते । आ अंगुलस्यासंख्येयभागात् ॥ इतरोऽवधि सम्यग्दर्शनादिगुणावस्थानाद्यत्परिमाण उत्पन्नस्तत्परिमाण एवावतिष्ठते न हीयते नापि वर्द्धते लिंगवत् । आ भवक्षयादा केवलज्ञानोत्पत्तेर्वा ॥

अपरः ।। अवधिः ।। अरणि-निर्मथन-उत्पन्न-	= अन्य अवधि (अर्थात् वर्द्धमान अवधिज्ञान) वो है जो अरणि के मथन से उपजी
शुष्क पत्र-उपचीयमान-इन्धन निचय- समिद्ध-	= तथा सूखे पत्तों के संचय हुये ईन्धन के समूह पर (फैकी हुई) वर्द्धमान = (समिद्ध)
पावकवत् ॥ सम्यग्दर्शन-आदिगुणविशुद्धपरिणाम-	= अग्नि के सदृश सम्यग्दर्शनादि गुणों से निर्मल परिमाणों की
सन्निधानात् ।।। यत्परिमाणः ।। उत्पन्नः ।। ततः ॥	= सामीपता से जो परिमाण व माप प्रमाण उत्पन्न हुआ था तिससे
वर्द्धते आ॥ असंख्यातलोकेभ्यः ।।	= असंख्यात लोक पर्यंत (= आ) बढ़ता जाय है
अपरः ।। अवधिः ।। अन्तरित-	= दूसरा अवधि (अर्थात् हीयमान अवधिज्ञान) वह है जो तिरस्कृत (= अन्तरित) और
परिच्छिन्न-उपादान-सन्तति-	= परिमित (परिच्छिन्न) उपादान कारण वाले) (= उपादान सन्तति) अर्थात् इन्धनवाले
अग्निशिखावत् ॥ सम्यग्दर्शनादि-गुणहानि-संक्लेश-	= अग्नि शिखा के समान सम्यग्दर्शनादि गुणों की हानि रूप संक्लेश
परिणाम- विवृद्धि-योगात् ।। यत्परिमाणः ।। उत्पन्नः ।।	= परिणामों के बढ़ने के योग से जो परिमाण उत्पन्न हुआ था
ततः ॥ आ ॥ अंगुलस्य ।। असंख्येय-भागात् ।। हीयते ।	= तिस (परिमाण) से अंगुल के असंख्यातवें अंश तक (= आ) घटता जाय है
इतर ।। अवधिः ।। सम्यग्दर्शन-आदि-गुण—	= दूसरा अवधि (अर्थात् अवस्थित अवधिज्ञान) यह है जो सम्यग्दर्शनादि गुणों की
अवस्थानात् ।।।। यत्-परिमाणः ।। उत्पन्नः ।।	= स्थिति से जो परिमाण (प्रमाण) उत्पन्न हुआ था
तत्-परिमाणः ।। एव ॥ अवतिष्ठते लिंगवत् ॥ न ॥ हीयते ।	= वह परिमाण ही स्थिर रहता है (शरीर के तिल मस्सा आदि) चिह्न के सदृश न घटता है
न अपि वर्द्धते । आ ॥ भवक्षयात् ॥ आ ॥ केवलज्ञान उत्पत्तेः ।।	= भवक्षय पर्यंत या केवलज्ञान (तक) या केवल ज्ञान की प्राप्ति पर्यंत नहीं है

(१) अरणि — [illegible]

अन्योऽवधि सम्यग्दर्शनादिगुणहानिवृद्धियोगाद्यत्परिमाण उत्पन्नस्ततो वर्द्धते यावदनेन वर्धितव्य, हीयते च यावदनेन ह्रातव्य वायुवेगप्रेरितजलोर्मिवत् ॥ एव षड्विकल्पोऽवधिर्भवति ॥

एव व्याख्यातमवधिज्ञान तदनन्तरमिदानीं मन पर्ययज्ञान वक्तव्य, तस्य भेदपुर सर लक्षण व्याचिख्यासुरित्याह—

अन्यः ॥ अवधि ॥ सम्यग्दर्शन-आदि—	= इतर अवधि अर्थात् अनवस्थित अवधिज्ञान वह है जो सम्यग्दर्शनादि
गुण-हानि-वृद्धि-योगात् ॥ यत्-परिमाण ॥ उत्पन्न ॥	= गुणों के घटने बढ़ने के संयोगसे जो परिमाण उत्पन्न हुआ था
ततः वर्धते T यावत् अनेन ॥ वर्धितव्यम् ॥	= जिससे जहां तक (= यावत्) इसे बढ़ना चाहिये बढ़ता है
च हीयते T यावत् अनेन ॥ ह्रातव्यम् ॥	= और (= च) जहां तक इसे घटना चाहिये घटता है
वायुवेग प्रेरित जल-ऊर्मिवत्	= जैसे पवन वेग से प्रेरा हुआ जलकी लहर (घटती भी है और बढ़ती भी है)
एवम् । षट्-विकल्प ॥ अवधि ॥ भवति । एवम्	= इस प्रकार 'छह भेद रूप अवधिज्ञान होता है। इस प्रकार
अवधिज्ञानम् ॥ व्याख्यातम् ॥ तत्-अनन्तरम् ॥	= अवधिज्ञान वर्णन किया गया है। उस (अवधिज्ञान) के लगता ही
इदानीम् मन पर्यय ज्ञानम् ॥ वक्तव्यम् ॥ तस्य	= अब मनः पर्यय ज्ञान कहना योग्य है ॥ उस (मनः पर्यय ज्ञान) के
भेदपुर सर ॥	= भेदों को (उसके लक्षण के कथन की अपेक्षा) अग्रसर या अग्रगामी कर (= पुर सर)
लक्षणं ॥ व्याचिख्यासु ॥ इति आह T	= (और पीछे उसके) लक्षण को (भी) कहने का इच्छक (आचार्य) ऐसे कहता है अर्थात् मन पर्ययज्ञानके भेद पूर्वक लक्षण को कहने के इच्छक (आचार्य) ऐसे कहते हैं भावार्थ मनःपर्यय ज्ञानके भेद" प्रथम (= अग्रसर)और पीछे उसके लक्षण को कहने के इच्छक (आचार्य) ऋजुमति और विपुलमति भेद तेईसवां सूत्र में और इन उक्त भेदों के लक्षण चौबीसवां सूत्र में ऐसे कहते हैं कि

(१) षड्विकल्पा— आगम विषैं समति पात अप्रतिपात तथा देशावधि परमावधि सर्वावधि व सर्वानुगामी आदि अनेक भेद कहे तिन न अन्तर्भूत जानने' तत्त्वार्थराजवार्तिक स० वचनिका मुद्रित पृष्ठ १७४ १७५। उक्त पंडितजीने श्लोक वार्तिककी साक्षी दी है जिसके पृष्ठ१८५में ऐसा है कि

"अनुगाम्यननुगामी वर्धमानो हीयमानोऽवस्थितो	– अनुगामी अननुगामी वर्धमान हीयमान अवस्थित
ऽनवस्थित इति षड्विकल्पोऽवधिः सप्रतिपाता	– अनवस्थित इस प्रकार छह भेदरूप अवधि (ज्ञान) है (क्योंकि) सप्रतिपात
प्रतिपातयोरत्रैवान्तर्भावात् ।	– और अप्रतिपात दोनों का यहीं (या इस स्थानमें) अन्तर्भाव या समावेश है
देशावधिः परमावधिः सर्वावधिरिति च परमागम	– और (– च) क्योंकि देशावधि परमावधि सर्वावधि ऐसे शास्त्र में
प्रसिद्धानां पूर्वोक्तयुक्त्या सम्भावितानामत्रोपसंग्रहात्"	– प्रसिद्ध या सम्भावित (– प्रसिद्ध भये) (ज्ञान) पूर्वोक्त तर्कद्वारा यहीं (इन्हीं छह ज्ञानों में) संग्रह हैं

परन्तु तत्त्वार्थ राजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ५६ और गोम्मटसार जीवकाण्ड गाथा ३७२ निम्नलिखित से प्रगट है कि

पुनरपरेऽवधेस्त्रयोभेदाः देशावधिः परमावधिः सर्वावधिश्चेति	– और अन्य अवधि के तीन भेद देशावधि परमावधि और सर्वावधि ऐसे हैं
गुणपच्चगो छद्धा अणुगावट्ठिदपवड्ढमाणिदरा, गुणप्रत्ययो षड्धा, अनुगावस्थितप्रवर्धमानेतरे,	– गुणप्रत्यय (– क्षयोपशमनिमित्तक) अवधिज्ञान छह (भेदरूप) है अनुगामी अवस्थित प्रवर्धमान तदन्यो (– इतर) अननुगामी अनवस्थित, हीयमान हैं
देसोही परमोही सव्वोहित्ति य तिधा ओही, देशावधिः परमावधिः सर्वावधिरिति त्रिधा अवधिः	– देशावधि परमावधि सर्वावधि ऐसे भी (– च) तीन प्रकार अवधि है

इसके विषय को परिमित होने से इस ज्ञान को अवधिज्ञान अथवा सीमाज्ञान कहते हैं। यद्यपि दूसरे मतिज्ञानादिक के विषय का भी सामान्य से सीमा है इसलिये दूसरे ज्ञानों को भी अवधिज्ञान कहना चाहिये तथापि समभिरूढनयकी अपेक्षा से (अर्थात् वह नय जो नाना अर्थ का उल्लंघन करि आ एक ही अर्थ में रूढ़ (– प्रसिद्ध) हो उसका जाने या कहे) ज्ञानविशेष को ही अवधिज्ञान कहते हैं।

भव प्रत्यय अवधि नियम से देशावधि ही होता है। और दर्शन विशुद्धि आदि गुणों के निमित्त से होनेवाला गुणप्रत्यय अवधिज्ञान देशावधि परमावधि सर्वावधि (ऐसे) तीनों प्रकार का होता है॥

देशावधि और परमावधि अवधिज्ञान के जघन्य मध्यम उत्कृष्ट तीन तीन भेद होते हैं। सर्वावधि अवधिज्ञान निर्विकल्पपना से एक रूप ही है। सर्वावधि में जघन्य उत्कृष्ट आदि भेद नहीं है। सर्वावधि सर्वथा निर्विकल्प (– भेदरहित) है॥

जघन्य देशावधि जो है सो उत्सेधांगुल का असंख्यातवां भाग मात्र क्षेत्र पर्यन्त है और उत्कृष्ट देशावधि सवलोक पर्यन्त है और इन दोनों क्षेत्रों के मध्य में प्रवर्तनेवाला अनेक विकल्परूप मध्यम देशावधि है॥

जघन्य परमावधि एक प्रदेश अधिक लोकक्षेत्र प्रमाण है और उत्कृष्ट असंख्यात लोकक्षेत्र प्रमाण है और मध्यम का मध्यम क्षेत्र है न जघन्य है न उत्कृष्ट है॥ सर्वावधि उत्कृष्ट परमावधि के क्षेत्र से बाह्य असंख्यात क्षेत्र प्रमाण है॥

जैसा कि ऊपर कह चुके हैं कि प्रतिपाती और अप्रतिपाती दोनों अनुगामी अननुगामी वर्धमान हीयमान अवस्थित अनवस्थित इन छहोंमें अन्तर्भूत है देशावधि इस आठ रूप होता है । परमावधि अनुगामी अननुगामी, वर्धमान अवस्थित अनवस्थित और अप्रतिपाती यह भेदरूप होता है । सर्वावधि अनुगामी वर्धमान अवस्थित और अप्रतिपाती होता है॥ बिजली के प्रकाश के समान विनाशीक प्रतिपाती है और इससे विपरीत अविनाशी अप्रतिपाती है ।

जघन्य देशावधि ज्ञान संयत तथा असंयत मनुष्य तिर्यंचों में ही होता है देव नारकियों में नहीं होता है । उत्कृष्ट देशावधि ज्ञान संयमी महाव्रती मनुष्यों में ही होता है क्योंकि अवशेष तीनि गतियों में महाव्रत का होना सम्भव नहीं है। परमावधि और सर्वावधि चरमशरीरी उसी भव से मोक्षगामी) महाव्रती के ही होता है "अन्य तीर्थंकरादिक गृहस्थ मनुष्य तिर्यंच देव नारकीनि के नहीं होई॥ इनिके देशावधि ही की योग्यता है" अर्थ प्रकाशिका पृष्ठ ६७ देखो। परमावधि और सर्वावधि वाले जीव नियम से मिथ्यात्व और अव्रत अवस्था को प्राप्त नहीं होते । सम्यक्त्व और चारित्र से च्युत होकर मिथ्यात्व असंयमको प्राप्ति का प्रतिपात कहते हैं। यह प्रतिपात देशावधि वालेका ही होता है, परमावधि सर्वावधि वाले का नहीं होता है॥

अवधिज्ञान के जघन्य भेद से लेकर उत्कृष्ट भेद पर्यंत असंख्यात लोक प्रमाण भेद हैं सो सर्व द्रव्य क्षेत्रकाल भाव की अपेक्षा से रूपी (पुद्गल) द्रव्य को ही तथा उस (पुद्गल) के संबंध से संसारी जीव द्रव्य को भी प्रत्यक्ष जानते हैं। बहुरि सर्वावधि ज्ञान है सो जघन्य मध्यम उत्कृष्ट भेद रहित अवस्थित सर्वोत्कृष्टता को प्राप्त है जातें अवधिज्ञानावरण का उत्कृष्ट क्षयोपशम तहां ही संभवै है तातें देशावधि परमावधि के जघन्य मध्यम उत्कृष्ट भेद संभवै हैं॥

ऋजुविपुलमती मनःपर्ययः ॥ २३ ॥

सूत्रम्—ऋजुविपुलमती मन पर्यय ॥ २३ ॥

= ऋजुविपुलमती। मन पर्यय (द्विविकल्प सन्त) ॥ विकल्प शब्द की अनुवृत्ति २२वा सूत्रस ले है

ऋजुविपुलमती ॥ मन पर्यय ॥ द्विविकल्प ॥सन्त T = मन पर्यय ज्ञान ऋजुमति और विपुलमति दो भेद रूप है अर्थात

मन वचन कायकी सरलता रूप पर के मन में तिष्ठे हुये रूपी पदार्थों का जानै वह ऋजुमति मन पर्ययज्ञान है और जो मन वचन कायकी सरलता रूप और मन वचन कायकी वक्रता रूप वा कुटिलता रूप पर के मन में अवस्थित रूपी पदार्थों को जानें सो विपुलमति मन पर्यय ज्ञान है ॥

(१) दिगम्बर आम्नायमें कहीं कहीं "मन पर्यय" पाठ है। और कहीं कहीं "मनःपर्यय" पाठ है। अचारहाम्यांद्य (= अचः रहाम्यांद्वेया) [illegible] सूत्र से दोनों ही पाठ ठीक हैं। (देखो टिप्पणी पृष्ठ ३२१ में) ॥ मनः पर्यय हो लिखना चाहिये क्योंकि यह सूत्र है और सूत्र ॥ लक्षण यह है कि अल्पाक्षरमसंदिग्धं सारं वद्विश्वतो मुखं अस्तोभ मनवद्य च सूत्रं सूत्रविदो विदुः

अस्य अक्षरम् असंदिग्धं सारवत् विश्वतः मुखम् — थोड़े अक्षर हो जिनका अर्थ संदेह रहित हो सार वा तत्त्व गर्भित हो सर्वतः श्रेष्ठ हो अस्तोभम् अनवद्य च सूत्रविदः। विदुः T सूत्रम् = निरर्थक शब्द (= स्तोभ) से रहित (= अ) और दूषण वर्जित हो सूत्रज्ञाता उसको सूत्र समझते हैं श्वेताम्बर आम्नाय में मनः पर्य के स्थान में "मनःपर्याय" है ऐसा पाठ एक है। अर्थ भी एक है हमारी समझ में लघु पाठ ही लेना चित है। इस सूत्र की संख्या अमाप्य० में २४ है क्योंकि द्विविधोऽवधिः सूत्र बढ़ गया है

(२) जिसका अतीत (भूत) काल में चिंतवन किया हो अथवा जिसका अनागत (भविष्यत्) काल में चिंतवन किया जायगा अथवा वर्तमानमें जिसका आधा चिंतवन किया है इत्यादि अनेक भेद लिये दूसरे के मनमें स्थित पदार्थ जिसके द्वारा जाना जाय वह ज्ञानको मनः पर्यय कहते हैं। "परकीय मनसि व्यवस्थितोऽर्थः मनः तत् पर्येति गच्छति जानातीति मनः पर्ययः": पर के मन में तिष्ठता जो पदार्थ सो मनः कहिये उस (पदार्थ) को ग्रहण करता है (= पर्येति) तिसमें प्रवेश होता है (= गच्छति) तिसको जानता है (= जानाति) ऐसा मनःपर्यय है। [illegible]

ऋज्वी निर्वर्तिता प्रगुणा च। कस्मान्निर्वर्तिता? वाक्कायमनस्कृतार्थस्य परमनोगतस्य विज्ञानात्। ऋज्वी मतिर्यस्य सोऽयं ऋजुमति ॥

वृत्त्यनुवाद –निर्वर्तिता ॥	= उत्पन्न हुई है (= निर्वर्तिता) अथवा निष्पन्न भई है (= निर्वर्तिता)
ऋज्वी ॥ च ॥ प्रगुणा ॥	= सरल [= ऋज्वी = ऋजु) और (= च) सीधी (= प्रगुणा) (मति)
कस्मात् ॥ निर्वर्तिता ॥	= किस हेतु से (= कस्मात्) उत्पन्न हुई वा निष्पन्न हुई है (= निर्वर्तिता)?
वाक्-काय-मनस्-कृत परमनोगतस्य ॥	= (उत्तर) वचन-काय-मनकरि किये हुये अन्य (जीव) के मन में प्राप्त भये
अर्थस्य ॥ विज्ञानात् ॥ ; ऋज्वी ॥	= रूपी पदार्थ के (= अर्थस्य) जानने से (= विज्ञानात्)॥ —सरल (= ऋज्वी) है
मति ॥ यस्य ॥ स ॥ अयम् ॥ ऋजुमति ॥	= मति (= ज्ञान वा बुद्धि) जिसका सो यह ऋजुमति है॥ भावार्थ सरल मनसे, सरल वचन से सरल काय से किये हुये अन्य जीव के मन में प्राप्त हुये जो रूपी पदार्थ तिसके जानने से (= विज्ञानात्) उत्पन्न हुई (= निर्वर्तिता) जो सरल मति सो ऋजुमति है

१) इस व्युत्पत्ति से प्रगट है कि ऋजुमति शब्द पुल्लिङ्ग है सामान्य की अपेक्षा से मनः पर्यय ज्ञान एक प्रकार का है और विशेष की विवक्षा से ऋजुमति मनः पर्ययज्ञान और विपुलमति मनः पर्ययज्ञान ऐसे दो भेद हैं। ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञान के तीन भेद हैं अर्थात्
(क) ऋजुमन गतार्थ विषयक (= ऋजुमनविषै प्राप्त भया अर्थ का जाननहारा) वा ऋजुमनस्कृतार्थज्ञ (= ऋजुमनकृत अर्थ का जाननेवाला)
(ख) ऋजुवचनगतार्थ विषयक (= ऋजुवचन विषै प्राप्त भया अर्थ का जाननहारा) वा ऋजुवाक्कृतार्थज्ञ (= ऋजुवचनकृत अर्थ का जाननेवाला)
(ग) ऋजुकायगतार्थ विषयक (= ऋजुकाय विषै प्राप्त भया अर्थ का जाननहारा) वा ऋजुकाय कृतार्थज्ञ (= ऋजुकाय कृत अर्थ का जाननेवाले)

(२) जैसे किसी मनुष्य ने मन से व्यक्त सरल वा प्रगटरूप पदार्थ का चिन्तवन किया। धार्मिक वा लौकिक वचनों को भी भिन्न भिन्न रूप से उच्चारण किया और दोनों लोक के फल की प्राप्ति के लिये अंग और उपांगों का पटकना सकोड़ना और फैलाना रूप काय की चेष्टा भी की किंतु उसके कुछ दिवस के पश्चात् अथवा बहुत काल पीछे उस मन से विचारे हुये या वचन से कहे हुये अथवा शरीर से किये गये काम को भूलजाने के कारण कि मैंने मन वचन काय से क्या किया था इस बात के विचारने के लिये वह समर्थ न रहा उसके उस प्रकार के मन वचन द्वारा किये गये कार्य का चाहे ऋजुमतिमनः पर्यय ज्ञान वाले से पूछो चाहे मत पूछो वह अपने ऋजुमतिमनः पर्यय ज्ञान से स्पष्ट जान लेता है कि उक्त मनुष्य ने मन से यह पदार्थ इस रूप से विचारा था, वचन से इस प्रकार कहा था और शरीर से इस प्रकार किया था।

अनिर्वर्तिता कुटिला च विपुला च । कस्मादनिर्वर्तिता? वाक्कायमनस्कृतार्थस्य परकीयमनोगतस्य विज्ञानात् । विपुला मतिर्यस्य सोऽयं विपुलमतिः ॥

च अनिर्वर्तिता ॥ कुटिला ॥ च ॥	= और (= च) नहीं निष्पन्न हुई अथवा नहीं उत्पन्न हुई वक्र (= कुटिला) और (= च
विपुला ॥	= विस्तीर्ण (= विपुला), विशाल (= विपुला) वा नानार्थक (= विपुला)
कस्मात् ॥ अनिर्वर्तिता ॥	= किस कारण से नहीं निपजाई वा नहीं निष्पन्न भई (= अनिवर्तिता)
वाक्-काय-मनः-कृत-परकीय-मनो-गतस्य ॥	= (उत्तर) वचन कायमन करि किये हुये अन्य (जीव) के मन में प्राप्त भये
अर्थस्य ॥ विज्ञानात् ॥ विपुला ॥	= रूपी पदार्थ के (= अर्थस्य) जानने से ॥ विस्तीर्ण-विशाल-नानार्थक है
मति ॥ यस्य ॥ सः ॥ अयम् ॥ विपुलमति ॥	= मति (अर्थात् ज्ञान वा बुद्धि) जिसकी सो यह विपुलमति है ॥ भावार्थ

फिर किस हेतु से उत्पन्न हुई है? (उत्तर) "स्वयमेवही भई है" (जय० वचनिका मुद्रित पृष्ठ १७५)। कैसे? भविष्यत काल में कोई जीव रूपी पदार्थ को चिंतवेगा अब तक उसके मनद्वारा वह रूपी पदार्थ विचारा नहीं गया है उसके मन में वहरूपी पदार्थ अब तक नहीं तिष्ठा है आने वाले काल में चिंतवन करेगा इसको भी विपुलमति मन पर्यय ज्ञानी जानता है। इसलिये जो पदार्थ अब तक परमनोगत नहीं हुआ है और उसका विपुल मतिमन पर्यय ज्ञानीने जान लिया ही है तो ऐसी अवस्था में कह सकते हैं कि नहीं निष्पन्न हुई है परमनोगत पदार्थद्वारा मति जिसकी वरन स्वयमेव ही भई' क्योंकि उस समय दूसरे के मन में उस रूपी पदार्थ का अस्तित्व नहीं हुआ ॥ यथार्थ में विपुल शब्द का अर्थ विस्तीर्ण, विशाल, गंभीर है जिसमें कुटिल, असरल नानार्थक, विषम सरल इत्यादि गर्भित हैं।

और जिससे यह भाव झलकता है कि विपुलमति मन पर्यय ज्ञान से पर के मन में रहने वाले ऋजु-वक्र सरल एवंसर्वप्रकार के रूपी पदार्थों का

तथा आगामी आगामी का भी जान कर अपना और परका चिंतवन जीवित मरण सुख दुःख लाभ और अलाभ आदिका भी ऋजुमतिमनःपर्यय ज्ञानी जानता है। किंतु यह नियम है कि जो मनुष्य व्यक्तमना है भले प्रकार चिंतवन कर जिन्होंने प्रगट रूप से मन से पदार्थों का निश्चय कर लिया है उन्हीं के द्वारा विचारे गये पदार्थों का ऋजुमतिमनः पर्यय ज्ञानी जानता है। परन्तु जो अव्यक्त मना है भले प्रकार चिंतवन कर जिन्हों ने प्रगट रूप से पदार्थों का निश्चय नहीं किया है उनके द्वारा मन में विचारे हुये रूपी पदार्थों को ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञानी नहीं जानता है। यह द्रव्य और भव की अपेक्षा से ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञान का विषय है। (देखो० राज० सूत्र २३ वार्तिक ३)।

ऋजुमतिश्च विपुलमतिश्च ऋजुविपुलमतो॥ एकस्य मतिशब्दस्य गतार्थत्वादप्रयोग । अथवा ऋजुश्च विपुला च ऋजुविपुले । ऋजुविपुले मती ययोस्तौ ऋजुविपुलमती । स एष मन पर्ययो-

ज्ञान होता है। अपने और परके जीवित मरण सुख दुःख लाभ और अलाभका भी ज्ञान होता है यथा जिस पदार्थका व्यक्त मनकरि चिंतवन किया गया है वा अव्यक्त मनकरि चिंतवन कियागया है अथवा नहीं चिंतवन कियागया है आगे जाकर चिंतवन होगा इन सब प्रकारके पदार्थोंका विपुल मति मन पर्यय ज्ञानी जानता है ॥ (राज० वा० वार्तिक १०) यह द्रव्य और भावकी अपेक्षासे विपुलमति मनः पर्यय ज्ञानके विषयका निरूपण है ।

(१) (१)
ऋजुमतिः १। च॰ विपुलमतिः १। च॰ ऋजुविपुलमती १। =तथा (=च) ऋजुमति और (=च) विपुलमति (मिलानेसे) ऋजुविपुलमतीहुआ अर्थात् ऋजुमतिका मतिशब्द छोड़कर और विपुलमतिका मतिशब्दलेकर दोनों मति शब्दोंको मिलानेसे "मती" ऐसा द्विवचन हुआ और ऋजुशब्दका विपुलशब्दके साथ मिलानसे ऋजुविपुल हुआ अतः "ऋजुविपुलमती" द्वंद्व समास हुआ

एकस्य १। मतिशब्दस्य १। गतार्थत्वात् ५॥ =एक मतिशब्दके अर्थकी प्राप्ति होनेसे (=गतार्थत्वात्) या तात्पर्यकी लब्धि होनेसे

अ प्रयोगः १। =(सूत्रमें दूसरे मतिशब्दका) प्रयोग अथवा व्यवहार नहीं है अर्थात् एकही मतिशब्दको दोनों ऋजु और विपुलके साथ लगानसे अर्थ या अभिप्रायकी प्राप्ति होजाती है अतः इस सूत्रमें दूसरा मतिशब्द नहीं लाये हैं ।

(२)
अथवा * ऋजुः १॥ च॰ विपुला १॥ च॰ =अथवा (ऐसा भी समास होसक्ता है कि) ऋजु और (=च) विपुला (मिलकर)

ऋजुविपुले १॥ ऋजुविपुले १॥ मती १॥ ययोः ६॥ =ऋजुविपुले(वाक्य) हुआ । ऋजु और विपुलहै बुद्धी (=मती) जिनकी (=ययोः)

तौ १। ऋजुविपुलमती १। सः १। एषः १। मनःपर्ययः१। =वे ऋजुविपुलमती हैं ॥ सो यह मनः पर्यय ज्ञान

(१) सरल या ऋजु है मति जिसकी सो ऋजुमतिहै इसलिये मतिशब्द स्त्री लिंग होने पर भी "ऋजुमति" शब्द पुल्लिङ्गहै इसलिये ऊपर पुल्लिङ्गही लिखाहै
(२) यह प्रकार वाक्य भूषणके लियेहै अर्थात् संस्कृतकी बोलचालमें लाया जाताहै परन्तु इसका अनुवाद हिंदीभाषाकी बोलचालमें नहीं होसकता है॥

अनिर्वर्तिता कुटिला च विपुला च। कस्मादनिर्वर्तिता? वाक्कायमनस्कृतार्थस्य परकीयमनोगतस्य विज्ञानात्। विपुला मतिर्यस्य सोऽयं विपुलमतिः ॥

च ॰ अनिर्वर्तिता ‡॥ कुटिला ‡॥ च ॐ	= और(= च) नहीं निष्पन्न हुई अथवा नहीं उत्पन्न हुई वक्र (= कुटिला) और (= च
विपुला ‡॥	= विस्तीर्ण (= विपुला), विशाल (= विपुला) वा नानार्थक (= विपुला)
कस्मात् ॥ अनिर्वर्तिता ‡॥	= किस कारण से नहीं निपजाई वा नहीं निष्पन्न भई (= अनिवर्तिता)
वाक्-काय-मन-कृत-परकीय-मन -गतस्य ॥	= (उत्तर) वचन कायमन करि किये हुये अन्य (जीव) के मन में प्राप्त भये
अर्थस्य ॥ विज्ञानात् ॥ विपुला ‡॥	= रूपी पदार्थ के (= अर्थस्य) जानने से ॥ विस्तीर्ण-विशाल-नानार्थक है
मतिः ‡॥ यस्य ॥ सः ‡ अयम् ‡॥ विपुलमतिः ‡॥	= मति (अर्थात् ज्ञान वा बुद्धि) जिसकी सो यह विपुलमति है ॥ भावार्थ

फिर किस हेतु से उत्पन्न हुई है? (उत्तर) "स्वयमेवही भई है" (जय० वचनिका मुद्रित पृष्ठ १७५)। कैसे? भविष्यत् काल में कोई जीव रूपी पदार्थ को चिन्तैगा अब तक उसके मनद्वारा वह रूपी पदार्थ विचारा नहीं गया है उसके मन में वहरूपी पदार्थ अब तक नहीं तिष्ठा है आने वाले काल में चिंतवन करैगा इसको भी विपुलमति मन पर्यय ज्ञानी जानता है। इसलिये जो पदार्थ अब तक परमनोगत नहीं हुआ है और उसको विपुल मतिमन पर्यय ज्ञानीने जान लिया ही है तो ऐसी अवस्था में कह सकते हैं कि नहीं निष्पन्न हुई है परमनोगत पदार्थद्वारा मति जिसकी वरन स्वयमेव ही भई क्योंकि उस समय दूसरे के मन में उस रूपी पदार्थ का अस्तित्व नहीं हुआ ॥ यथार्थ में विपुल शब्द का अर्थ विस्तीर्ण, विशाल, गंभीर है जिसमें कुटिल, असरल नानार्थक, विषम सरल इत्यादि गर्भित हैं।

और जिससे यह भाव झलकता है कि विपुलमति मन पर्यय ज्ञान से पर के मन में रहने वाले ऋजु-वक्र सरल टेढ़े सर्वप्रकार के रूपी पदार्थों का

तथा अपने आगामी भा मा को जा । कर अ भा और परका चिंतवन जीवित मरण सुख दुःख लाभ और अलाभ आदिक को ऋजुमतिमनःपर्यय ज्ञानी जानता है। किंतु यह नियम है कि जो मनुष्य व्यक्तमना है भले प्रकार चिंतवन कर जिन्होंने प्रगट रूप से मन से पदार्थों का निश्चय कर लिया है उन्हीं के द्वारा विचारे गये पदार्थों को ऋजुमतिमनः पर्यय ज्ञानी जानता है। परन्तु जो अव्यक्त मना है भले प्रकार चिंतवन कर जिन्होंने स्पष्ट रूप से पदार्थों का निश्चय नहीं किया है उनके द्वारा मन से विचारे हुये रूपी पदार्थों को ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञानी नहीं जानता है। यह द्रव्य क्षेत्र का ल भा व की अपेक्षा से ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञान का विषय है। (श्लो० राज० सूत्र २३ वार्तिक ३)।

आह उक्तो भेद, लक्षणमिदानीं वक्तव्यमित्यत्रोच्यते। वीर्यान्तरायमनःपर्ययज्ञानावरणक्षयोपशमाङ्गोपाङ्गनामलाभावष्टम्भादात्मनः परकीयमनःसम्बन्धेन लब्धवृत्तिरुपयोगो मनःपर्ययः॥ मतिज्ञानप्रसङ्ग इति चेदुक्तोत्तरं पुरस्तात्। अपेक्षाकारणं मन इति

आह	=(शिष्य या अन्यवादी आचार्यसे) प्रश्न करताहै (=आह)या पूछताहै (=आह) कि
	(मनः पर्यय ज्ञान के ऋजुमति मनः पर्ययज्ञान और विपुलमति मनःपर्ययज्ञान)
उक्त भेदः ॥ इदानीम् ॥ लक्षणम् ॥ वक्तव्यम् ॥	=भेद कहे गये अब (इनके) लक्षण या स्वरूप कहनी चाहिये ।
इति ॥ अत्र ॥ उच्यते । वीर्यान्तराय-मन पर्यय—	=ऐसे (प्रश्न करने पर) यहां कहाजाता है कि वीर्यान्तराय कर्मका और मनःपर्यय
ज्ञानावरण-क्षयोपशम-अङ्गोपाङ्गनाम	=ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशमसे और अंगोपांगनामा नामकर्म के (उदयके)
लाभ-अवष्टम्भात् ॥ आत्मनः ॥ परकीय	=लाभके अवलम्बनसे या प्राप्त होनसे (=अवष्टम्भात्) आत्माके परके (=पराये)
मनःसम्बन्धेन ॥ लब्धवृत्ति ॥ उपयोगः ॥	=मनके संयोग करि प्राप्ति हुई है (=लब्ध) जो प्रवृत्ति (ऐसा) ज्ञानोपयोग
मनः—पर्ययः ॥	=मनः पर्यय ज्ञान है अर्थात् उक्त कर्मों के क्षयोपशम से और उदय के लाभ की
	प्राप्ति होने से आत्मा ने द्रव्य-क्षेत्र-कालभावकी मर्यादा लिये हुये जो दूसरेके मनमें
	स्थित हुये रूपी पदार्थ को स्पष्टरूप से जान लिया है सो मनःपर्यय ज्ञान है ॥
मतिज्ञान—प्रसङ्गः ॥	=(यदि मनः पर्ययज्ञान मन के सम्बन्ध से है तो) मतिज्ञान का प्रसंग हुआ ।
इति॥ चेत्॥ पुरस्तात्॥	=ऐसा संदेह (करना) पर (उत्तर में कहते हैं) कि पहिले (=पुरस्तात्)
उक्त उत्तरम् ॥	=कहा हुआ उत्तरहै (जिसकेलिये देखो पृष्ठ ३२५, ३२६ जिसका संक्षेप नीचे भी है
अपेक्षाकारणम् ॥ मनः ॥ इति॥	=(अर्थात् मनः पर्यय ज्ञानमें) मन अपेक्षामात्र कारणहै (न कि उत्पत्तिका कारण है)

(१) इसका सारांश या तत्त्व यह है कि इन्द्रियों और मन द्वारा मतिज्ञान उत्पन्न होता है । यह मतिज्ञान श्रुतज्ञानके होने के लिये कारण है बिना मतिज्ञान के श्रुतज्ञान कभी भी नहीं होता मतिज्ञान कारणरूप है और श्रुतज्ञान कार्यरूप है अतः मतिज्ञान और श्रुतज्ञान का परस्पर कार्यकारण भाव है ॥ क्योंकि मतिज्ञान (इन्द्रियों और) मन के संबंध बिना नहीं होता है इसलिये शिष्यको यह प्रश्न करनेका अवसर मिला कि

द्विविध ऋजु मतिर्विपुलमतिरिति ॥

(१) (२)
द्वि विध ॥ ऋजुमतिः ॥ विपुलमतिः ॥ इति ॥ =दो प्रकार ऋजुमति और विपुलमति इस भांति (=इति) हैं ॥

(१) ऋजुमतिमनःपर्यय ज्ञानके तीन भेद ऋजुमनस्कृतार्थज्ञ ऋजुवाक्कृतार्थज्ञ ऋजुकायकृतार्थज्ञ (इनके लक्षण के लिये देखो पृष्ठ ४७७)

(२) विपुलमतिमनःपर्ययज्ञान छह प्रकार है। (क) ऋजुमनोगतार्थविषय ऋजुमनस्कृतार्थज्ञ अर्थात् ऋजुमनको प्राप्त हुये अर्थ का जानने वाला (ख) ऋजुवचनगतार्थ विषय वा ऋजुवाक्कृतार्थज्ञ अर्थात् ऋजुवचन को प्राप्त भया अर्थ का जाननहारा (ग) ऋजुकायगतार्थ विषय ऋजुकायकृतार्थज्ञ अर्थात् ऋजुकाय को प्राप्त हुये अथवा (=रूपी पदार्थ का) जाननहारा (घ) अनृजुमनोगतार्थ विषय वक्रमनस्कृतार्थज्ञ अर्थात् वक्रमनको प्राप्त भया अर्था का जाननहारा (ङ) अनृजुवचनगतार्थ विषय वक्रवाक्कृतार्थज्ञ अर्थात् वक्रवचनको प्राप्त हुआ रूपी पदार्थका जानने वाला (च) अनृजुकाय गतार्थ विषय वक्रकायकृतार्थज्ञ अर्थात् वक्रकाय को प्राप्तभया रूपी पदार्थ का जाननेवाला ॥

ऋजुमति तथा विपुलमति मनःपर्यय ज्ञान के विषय शब्दगत और अर्थगत दोनों ही प्रकार के होते हैं॥ कैसे ? सो कहते हैं कोई भी सरल मन करि निष्पन्न होत संता त्रिकाल संबंधी पदार्थनिकों चिंतवत भया वा सरल वचन करि निष्पन्न होत संता तिनकों कहत भया वा सरल काय करि निष्पन्न होत संता तिनकों करत भया पीछें भूलि करि कालांतरविषें स्मरण करनेकों समर्थ न हुवा अर आयकरि ऋजुमतिमनःपर्यय ज्ञानीकों पूछत भया वा स्मरण करने का अभिप्राय को धारि मौन हीतें खड़ा रहा तहां ऋजुमतिमनः पर्ययज्ञान स्वयमेव सर्वकों जानै है। तैसे ही सरल वा वक्र मन वचन काय करि निष्पन्न होत संता त्रिकाल सम्बन्धी पदार्थनिकों चिंतवत भया वा कहत भया वा करत भया बहुरि भूलि करि केतेक काल पीछे स्मरण करने कों समर्थ न हुवा आय करि विपुलमति मनःपर्ययज्ञानी के निकट पूछत भया वा मौन से खड़ा रहा तहां विपुल मतिमनःपर्ययज्ञान सर्वकों जानै" ऐसे इनका स्वरूप जानना ॥

त्रिकाल सम्बन्धी पुद्गल द्रव्य कों वर्तमान काल विषे कोई जीव चिंतवन करे है तिस पुद्गल द्रव्य कों ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान जानता है और त्रिकाल संबंधी पुद्गल द्रव्य कों भूतकाल में चिंतवन किया हो अथवा जिसका भविष्यत् में चिंतवन किया जायगा यद्वा वर्तमानमें जिसका चिंतवन हो रहा है ऐसे तीनों ही प्रकार के पदार्थ को विपुलमति मनःपर्ययज्ञान जानता है ॥

आह उक्तो भेद, लक्षणमिदानीं वक्तव्यमित्यत्रोच्यते । वीर्यान्तरायमनः पर्ययज्ञानावरण-क्षयोपशमागोपागनामलाभावष्टम्भादात्मन परकीयमन सम्बधेनलब्ध वृत्तिरुपयोगो मन पर्यय॥ मतिज्ञानप्रसग इति चेदुक्तोत्तर पुरस्तात् । अपेक्षाकारण मन इति

आह	=(शिष्य वा अन्यवादी आचार्यसे) प्रश्न करता है (=आह) वा पूछता है (=आह) कि (मनः पर्यय ज्ञान के ऋजुमति मनः पर्ययज्ञान और विपुलमति मनःपर्ययज्ञान)
उक्त भेदः ॥ इदानीम्* लक्षणम् ॥॥ वक्तव्यम् ॥॥	=भेद कहे गये अब (इनके) लक्षण वा स्वरूप कहने चाहिये ।
इति* अत्र* उच्यते । वीर्यान्तराय-मन पर्यय—	=ऐसे (प्रश्न करने पर) यहां कहाजाता है कि वीर्यान्तराय कर्मका और मनःपर्यय
ज्ञानावरण-क्षयोपशम-अङ्गोपाङ्गनाम	=ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशमसे और अंगोपांगनामा नामकर्म के (उदयके)
लाभ-अवष्टम्भात् ॥ आत्मनः ॥ परकीय	=लाभके अवलम्बनसे वा प्राप्त होनसे (=अवष्टम्भात्) आत्माके परके (=पराये)
मनःसम्बन्धेन ॥ लब्धवृत्तिः ॥ उपयोगः ॥	=मनके संयोग करि प्राप्त हुई है (=लब्ध) जो प्रवृत्ति (ऐसा) ज्ञानोपयोग
मनः–पर्ययः ॥	=मनः पर्यय ज्ञान है अर्थात् उक्त कर्मों के क्षयोपशम से और उदय के लाभ की प्राप्ति होने से आत्मा ने द्रव्य-क्षेत्र-कालभावकी मर्यादा लिये हुये जो दूसरेके मनमें तिष्ठते हुये रूपी पदार्थ को स्पष्टरूप से जान लिया है सो मनःपर्यय ज्ञान है ॥
मतिज्ञान–प्रसङ्गः ॥	=(यदि मनः पर्ययज्ञान मन के सम्बन्ध से है तो) मतिज्ञान का प्रसंग हुआ ।
इति* चेत्* पुरस्तात्*	=ऐसा संदेह (करम) पर (उत्तर में कहते हैं) कि पहिले (=पुरस्तात्)
उक्त उत्तरम् ॥॥	=कहा हुआ उत्तर है (जिसकेलिये देखो पृष्ठ ३२५, ३२६ जिसका संक्षेप नीचे भी है
अपेक्षाकारणम् ॥॥ मनः ॥॥ इति*	=(अर्थात् मनः पर्यय ज्ञानमें) मन अपेक्षामात्र कारण है (न कि उत्पत्तिका कारण है)

(१) इसका सारांश वा तत्व यह है कि इन्द्रियों और मन द्वारा मतिज्ञान उत्पन्न होता है । यह मतिज्ञान श्रुतज्ञानके होने के लिये कारण है बिना मतिज्ञान के श्रुतज्ञान कभी भी नहीं होता, मतिज्ञान कारणरूप है और श्रुतज्ञान कार्यरूप है अतः मतिज्ञान और श्रुतज्ञान का परस्पर कार्यकारण भाव है। क्योंकि मतिज्ञान (इन्द्रियों और) मन के संबंध बिना नहीं होता है इसलिये शिष्यको यह प्रश्न करनेका अवसर मिला कि

परकीयमनसि व्यवस्थितोऽर्थं अनेन ज्ञायते इत्येतावदत्रापेक्ष्यते ।

परकीय–मनसि ।॥ व्यवस्थितः॥ अर्थः ॥ अनेन ॥॥ ज्ञायते । इति॥ एतावत्॥ अत्र अपेक्ष्यते ।	=दूसरे के मन में तिष्ठता हुआ रूपी पदार्थ इस (मनः पर्यय ज्ञान) से =जाना जाता है इस प्रकार इतनी ही (=एतावत्) यहाँ विवक्षा की गई है।

जब मनः पर्यय ज्ञान में भी मन का सम्बन्ध है और मतिज्ञान में मन का संबंध है तो मनः पर्ययज्ञान में भी मतिज्ञान का प्रसंग आया जैसे मन और स्पर्शन रसन घ्राण चक्षु श्रोत्र इन्द्रियों के संबंध से स्पर्शन रसन घ्राण चक्षु श्रोत्ररूप ज्ञान प्रगट होते हैं सो मतिज्ञान है तैसे ही मनः पर्यय ज्ञान भी मन संबंध से पाई है वृत्ति (प्रवृत्ति) जिसने ऐसा (मनः पर्यय ज्ञान) है इस लिये (मनः पर्यय ज्ञान भी) मतिज्ञान नाम को पाता है अर्थात् मनः पर्ययज्ञान मन के निमित्तपने से मतिज्ञान को प्राप्त होता है (=मनः पर्ययज्ञानं मनो निमित्तत्वात् मतिज्ञानं प्राप्तम्) भावार्थ मनःपर्ययज्ञान भी मन द्वारा उत्पन्न होता है और मतिज्ञान भी मन द्वारा (और पांच इन्द्रियों द्वारा) उत्पन्न होता है इसलिये मनः पर्यय ज्ञानको मतिज्ञान कह सकते हैं क्योंकि ऐसो ही आर्ष वचनकी परिपाटी है (=एवम् हि आर्षी प्रक्रिया) कि अपने मनकरि पराया मनमें ठहरे हुये पदार्थ का चिंतवन करके इत्यादि (=मनसा मनः संपरिचिन्त्य+इति) ॥

(उत्तर) अपेक्षामात्रपना से (=अपेक्षामात्रत्वात्) तहां (=तत्र) मनः पर्यय ज्ञान में अपना और पर के मन की अपेक्षा मात्र करिये है (मनः पर्यय ज्ञाने—तत्र स्वपरमनोपेक्षा मात्रं क्रियते) ॥ जैसे (कोई कहै) बादल में (=अभ्रे) अथवा आकाश में (=अभ्रे) चन्द्रमा को देखो (=पश्य अभ्रे चन्द्रमसं पश्य+इति) यहाँ देखने रूप कार्य चन्द्रमा है और बादल वा आकाश शब्द अपेक्षा मात्र है। तैसे ही मनः पर्यय ज्ञान में तिष्ठे हुये वा अवस्थित रूपी पदार्थोंका जानना ही कार्य है और स्वपर मन अपेक्षा मात्र है और जैसे मनका कार्य मतिज्ञान है तैसे मन का कार्य मनः पर्यय ज्ञान नहीं है (न तत्कार्य मतिज्ञानवत्) ॥

क्योंकि इस (मनःपर्यय ज्ञान) के आत्म शुद्धि का निमित्तपना है (=एतस्य आत्मशुद्धिनिमित्तत्वात् इति इसको राजवार्तिक में वार्तिक ५ सूत्र ९ पर मनः पर्यय ज्ञान तो वीर्यान्तराय कर्म और मनः पर्ययज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम की शक्ति मात्र से और अंगोपांगनामा नामकर्म के उदय के लाभ से आत्मा के विकसित वा प्रकाशित हुआ है ॥ (देखो पृष्ठ १२१ और १२६) ॥ जीवकांड गोम्मटसार में इस संबंध में लिखा है कि "जैसे पूर्व कहा था भवप्रत्यय अवधिज्ञान सर्व अंगतै उपजै है अर गुणप्रत्यय शंखादिक चिन्हनितै उपजै है तैसे मनः पर्यय ज्ञान द्रव्य मनतैं उपजै है नियमतैं, और अंगनिकै प्रदेशनिविषैं नाहीं उपजै है" गोम्मटसार गाथा ४४२ ॥

"सो द्रव्य मन हृदय स्थानविषैं प्रफुल्लित आठ पाखुड़ी का कमल के आकार अंगोपांगनामकर्म नामकर्म के उदय तैं तैसेंही आति की पुद्गल वर्गणानि विषैं मनोवर्गणा है तिनि करि निपजै है ऐसा नियम है" गोम्मटसार गाथा ४४३ ॥

तत्र ऋजुमतिर्मनः पर्ययः कालतो

तत्र ⊛ ऋजुमतिः । मनः पर्ययः । कालतः ⊛ = तहाँ ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञान काल (की अपेक्षा) से

"तिस मनका नोइन्द्रिय ऐसा नाम है ना कहिये ईषत् किंचिन्मात्र इन्द्रिय है जैसे स्पर्शनादिक इन्द्रिय प्रकट हैं तैसे मनके प्रकटपना नाही तातैं मनका नोइन्द्रिय ऐसा नाम है सो तिस द्रव्य मन विर्षे मतिज्ञानरूप भावमन भी उपजै है अर मनः पर्यय ज्ञान भी उपजै है ।गाथा ४४७। ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञान है सो अपनै वा अन्य जीवके स्पर्शनादिक इन्द्री अर मन अर मनवचन काय योग तिनको सापेक्षतै उपजै है। ऋजुमि विपुलमतिमनः पर्यय है सो अवधि ज्ञानकी सी नाई तिनको अपेक्षा बिनाही निगमकरि जानै है" ॥ गाथा ४४६ ॥ "पर जीवके मनविर्षे सरलपनैं चिंतवनरूप तिष्ठता जो पदार्थ ताकौ पहलै तौ ईहा नाम मतिज्ञानकरि प्राप्त होइ ऐसा विचारै कि याका मनविर्षे कहा है। पीछे रिजुमति मनः पर्ययज्ञानकरि तिस अर्थकौ प्रत्यक्ष पनै करि रिजुमति मनः पर्यय ज्ञानी जानै है यह नियम है ॥ गाथा ४४८ ॥ " द्रव्य प्रति क्षेत्र प्रति वा काल प्रति वा भाव प्रति अवधारि सहित कहिए चिंतवन कीया हुवा जो रूपी पुद्गल द्रव्य वा पुद्गलके संबंध धरैं संसारी जीव द्रव्य ताकौं जघन मध्यम उत्कृष्ट भेदकार ऋजुमति वा विपुलमति मनः पर्यय ज्ञान जानै है ॥ गाथा ४५ ॥

ऋजुमति ,मनः पर्यय ज्ञान जघन्यपनै करि औदारिक शरीर का निर्जरारूप समय प्रबद्ध कौं जानै है। औदारिक शरीरविर्षे समय समय निर्जरा हो है सो एक समय विर्षे औदारिक शरीर के जितने परमाणू निर्जरैं तितने परमाणूनिका स्कंधकौं जघन्य रिजुमति मनः पर्यय ज्ञान जानै है। बहुरि उत्कृष्टपनै करि इन्द्रिय की निर्जराका द्रव्य का जानै है। सो कितना है। औदारिक शरीर की अवगाहना संख्यात घनांगुल प्रमाण है तिस विर्षे विस्रसोपचय सहित औदारिक शरीर का समय प्रबद्ध । समय प्रमाण निर्जरा रूप भये तो नेत्र इन्द्रिय की अभ्यंतर निर्वृत्ति घनांगुल के असंख्यातवे भाग प्रमाण है तिस विर्षे कितने परमाणू निर्जरा रूपभये ऐसा त्रैराशिक करि जितना परमाणू आया तितने परमाणू निका स्कंधकौं उत्कृष्ट ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञान जानै है ॥ ४५१ ॥

मेरी समझ में मनः पर्यय ज्ञान में मन का कारण केवल अपेक्षा मात्र है। न कि शक्ति अपेक्षा से ,मतिज्ञान में शक्ति अपेक्षा से है ॥ स्मरण रहे कि मतिज्ञान तो मन और इन्द्रिय दोनो की सहायता से ही होता है। और चतुर्थ गुणस्थान से बारह तक होता है। संज्ञी (=समनस्क) पंचेन्द्रिय पर्याप्त के होता है परन्तु कुमति ज्ञान सब गतियों में सब इन्द्रिय वाले जीवों के होता है संज्ञी (=समनस्क) असंज्ञी (अमनस्क) जीवों के भी होता है इसलिये केवल इन्द्रियों द्वारा मन की बिना सहायता के भी हो सका है और इन्द्रियों और मनकरि भी हो ,सक्ता है ॥ ४५१ ॥

जघन्येन जीवानात्मनश्च द्वित्रीणि भवग्रहणानि, उत्कर्षेण सप्ताष्टौ गत्यागत्यादिभि प्ररूपयति ॥ क्षेत्रतो जघन्येन गव्यूतिपृथक्त्व(३), उत्कर्षेण योजनपृथक्त्वस्याभ्यन्तर न बहि ॥ द्वितीयकालतो जघन्येन सप्ताष्टौ भवग्रहणानि उत्कर्षेणासख्येयानि गत्यागत्यादिभि प्ररूपयति ॥ क्षेत्रतो जघन्येन योजन पृथक्त्व, उत्कर्षेण

(१) जघन्येन॥ जीवानाम्॥ आत्मन॥ च॥ द्वि-त्रीणि॥	= जघन्य करि (अन्य) जीवों के और (= च) अपने आत्मा के दो तीन
भवग्रहणानि॥ उत्कर्षेण॥	= भवका ग्रहण करनेवाला है ॥ उत्कृष्ट करि (अन्य के तथा अपने)
गति-आगति-आदिभि॥ (२)सप्त-अष्टौ॥ प्ररूपयति॥	= पहले अगले आदि से सात आठ (भवों) को जानता है प्ररूपयति अर्थात् काल करि ऋजुमति मन पर्यय ज्ञान का विषय जघन्यपनें अतीत अनागत रूप दोय तीन भव हैं उत्कृष्टपनें सात-आठ भव हैं
क्षेत्रत ॥ जघन्येन॥ (३)गव्यूति-पृथक्त्व॥	= क्षेत्र (की अपेक्षा) से जघन्य करि तीन से ऊपर नौं से नीचे (= पृथक्त्व) कोश है
उत्कर्षेण॥ योजन-पृथक्त्वस्य॥ अभ्यन्तरम्॥	= उत्कृष्ट करि तीन से ऊपर नौ से नीचे (= पृथक्त्व) योजन के भीतर है
न॥ बहि॥ द्वितीय-कालत॥	= न कि बाहिर । दूसरा (विपुलमति मन पर्यय ज्ञान) काल (की अपेक्षा) से
जघन्येन॥ सप्त-अष्टौ॥ भवग्रहणानि॥ उत्कर्षेण॥	= जघन्य करि सात आठ भव का ग्रहण करनेवाला है । उत्कृष्टकरि
असख्येयानि॥ गति-आगति-आदिभि॥ प्ररूपयति॥	= असख्याते (भव) पहले अगले आदिकरि कथन करता है
क्षेत्रत ॥ जघन्येन॥	= (विपुलमति मनः पर्यय ज्ञान का विषय) क्षेत्र (की अपेक्षा) से जघन्य करि
योजन-पृथक्त्वम्॥ उत्कर्षेण॥	= तीन से ऊपर नव से न्यून (= पृथक्त्व) योजन (प्रमाण) है । उत्कृष्टकरि

(१) जघन्येन" शब्द पुलिंग और नपुंसकलिंग है। इसमें इसी लिंगों का कोई संकेत नियत नहीं किया है। अतः कहींपुलिंग कहीं नपु सकलिंग लिखा है।
(२) सप्ताष्टौ शब्द पुलिंग बहु वचन है क्योंकि इसके आगे के शब्द "भव" का अध्याहार किया गया है॥
(३) गव्यूति-गव्यूत-गव्यू पर्यायवाची हैं। इसके अर्थ (i) दो मीलकी लम्बाई का एक कोस है (ii) दो [illegible] (iii) वह भूमि जहाँ [illegible] होती है। ([illegible] कोश पृष्ठ [illegible] कोश पृष्ठ [illegible] गोम्मटसार (जीवकांड गाथा [illegible]) [illegible] [illegible]

एवं निवासो मनुष्यलोकत्व

मानुषोत्तरशैलस्याभ्यन्तर न बहि ॥ उक्तयोरनयो पुनरपि विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां तद्विशेष. ॥ २४ ॥

मानुषोत्तरशैलस्य।	=(विपुलमतिमन पर्ययज्ञान का विषय क्षेत्र की अपेक्षा से) मानुषोत्तर पर्वत के
अभ्यन्तरम् ॥ न (१)बहि ॥ उक्तयो । अनयो ।	= भीतर (भीतर) है न कि बाहिर ॥ कहे हुये दोनों (भेद मन पर्यय ज्ञान) में
पुनः अपि विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम् ॥ आह[1]	= फिर भी विशेष की प्राप्ति के लिये (आचार्य अग्रिम सूत्र) कहते हैं कि

विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्या तद्विशेष ॥ २४ ॥

विशुद्धि अप्रतिपाताभ्याम्[2]।	=(भावों या परिणामोंकी) विशुद्धि और अप्रतिपात(चारित्ररूपी पर्वतसे नहीं गिरन) हेतुओंसे
तद् विशेष ।	= उन (ऋजुमति और विपुलमतिमन पर्ययज्ञान) में भेद है अर्थात् ऋजुमतिमन पर्यय ज्ञान से विपुलमतिमन पर्ययज्ञान विशुद्धतर है वा अधिक विशुद्ध है और ऋजुमति मन पर्ययज्ञान बीचमें छूट जाता है परन्तु विपुलमतिमनः पर्ययज्ञान केवल ज्ञानहोने तक रहता है यही परस्पर दोनों में अन्तर वा भेद है ॥



(१) यह याद रहे कि मानुषोत्तर पर्वतके बाहिर मनुष्य नहीं हैं इसलिये नरलोक अर्थात् यह स्थान जहाँ मनुष्य वास करते हैं उक्त मानुषोत्तर पर्वतके भीतर ही भीतर है। त्रिलोकसार ग्रन्थकी गाथा।४१८ में क्षेत्रकी अपेक्षा इस प्रकार कहा है "नरलोक प्रमाण घन प्रतर कहा है सो यहाँ मनुष्य लोकका विष्कम्भका जो परिमाण है सो लेना और मनुष्य लोक तो गोल है अर यह विपुलमतिका विषयभूत क्षेत्र समचतुरस्र घन प्रतर कहिये समान चौकोर घन रूप प्रतर क्षेत्र कहा है सो पैंतालीस लाख योजन लम्बा जितना ही चौड़ा ऐसा परिमाण जानना। इहाँ ऊँचाई थोड़ी है तातैं घन प्रतर कहा है जाते मानुषोत्तर पर्वतके बाह्य चारों कोणनिविषै तिष्ठे देव तिर्यंच चिंतए हुए तिनको भी उत्कृष्ट विपुलमतिमनः पर्ययज्ञान जाने है "पृष्ठ ८३०"

(२) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों आम्नायोंमें एकसा है। हमारे यहाँ जो जहाँ जहाँ शुद्ध लिपि है एकसा पाठ मिलता है। श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य तत्वार्थाधिगम सूत्र (इस ग्रन्थ) में यह २४वाँ सूत्र है क्योंकि यहाँ "द्विविधोऽवधि" सूत्र अधिक है।

(३) विशुद्धिश्च अप्रतिपातश्च विशुद्ध्यप्रतिपातौ ताभ्यां विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां तयोर्विशेषस्तद्विशेषः। सूत्र रचनेवाले सब पदोंको

जघन्येन जीवानात्मनश्च द्वित्रीणि भवग्रहणानि, उत्कर्षेण सप्ताष्टौ गत्यागत्यादिभि प्ररूपयति ॥ क्षेत्रतो जघन्येन गव्यूतिपृथक्त्व(१), उत्कर्षेण योजनपृथक्त्वस्याभ्यन्तर न बहि ॥ द्वितीयकालतो जघन्येन सप्ताष्टौ भवग्रहणानि उत्कर्षेणासंख्येयानि गत्यागत्यादिभि प्ररूपयति ॥ क्षेत्रतो जघन्येन योजन पृथक्त्व, उत्कर्षेण

(१) जघन्येन।। जीवानाम्।। आत्मन।। च।। द्वि-त्रीणि।।।	= जघन्य करि (अन्य) जीवों के और (= च) अपने आत्मा के दो तीन
भवग्रहणानि।।। उत्कर्षेण।।	= भवका ग्रहण करनेवाला है ॥ उत्कृष्ट करि (अन्य के तथा अपने)
गति-आगति-आदिभि।। (२)सप्त-अष्टौ।। प्ररूपयति।	= पहले अगले आदि से सात आठ (भवों) को जानता है प्ररूपयति अर्थात् काल करि ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञान का विषय जघन्यपनें अतीत अनागत रूप दोय तीन भव हैं उत्कृष्टपनें सात आठ भव हैं
क्षेत्रत ॥ जघन्येन।। (३)गव्यूति-पृथक्त्व।।।	= क्षेत्र (की अपेक्षा) से जघन्य करि तीन से ऊपर नौ से नीचे (= पृथक्त्व) कोश है
उत्कर्षेण।। योजन-पृथक्त्वस्य।। अभ्यन्तरम्।।।	= उत्कृष्ट करि तीन से ऊपर नौ से नीचे (= पृथक्त्व) योजन के भीतर है
न॥ बहि ॥ द्वितीय-कालत ॥	= न कि बाहिर। दूसरा (विपुलमति मनः पर्यय ज्ञान) काल (की अपेक्षा) से
जघन्येन।। सप्त-अष्टौ।।। भवग्रहणानि।।। उत्कर्षेण।।	= जघन्य करि सात आठ भव का ग्रहण करनेवाला है। उत्कृष्टकरि
असंख्येयानि।।। गति-आगति-आदिभि।। प्ररूपयति।	= असंख्याते (भव) पहले अगले आदिकरि कथन करता है
क्षेत्रत ॥ जघन्येन।।	= (विपुलमति मनः पर्यय ज्ञान का विषय) क्षेत्र (की अपेक्षा) से जघन्य करि
योजन-पृथक्त्वम्।।। उत्कर्षेण।।	= तीन से ऊपर नव से न्यून (= पृथक्त्व) योजन (प्रमाण) है। उत्कृष्टकरि

(१) "जघन्येन" शब्द पुल्लिंग और नपुंसकलिंग है। हमने इनों शब्दों का कोई संकेत नियत नहीं किया है। अतः कहीं पुल्लिंग कहीं नपुंसकलिंग लिखा है।
(२) अष्टौ शब्द पुल्लिंग बहुवचन है क्योंकि इसके आगे के शब्द "भव" का अध्याहार किया गया है॥
(३) गव्यूति-गव्यूत-गव्यू एकार्थवाची हैं। इसके अर्थ (i) दो मीलकी लम्बाई का एक कोसके हैं (ii) दो कोसको कहते (iii) वह भूमि जहां ढोरे ढोरे चरा करते हैं। (देखो आप्टे संस्कृत कोश पृष्ठ ४२९, वैद्यक कोश पृष्ठ २३२॥ गोम्मटसार (जी का गाथा ४५५) जयचन्द्रजी कृत वचनिका मुद्रित पृष्ठ १७९, पन्नालालजीकृत टीका इनमें एक कोसके अर्थमें लिया है इसके हमने भी अनुवादमें एक कोस ही लिया है॥

विशुद्धिश्च अप्रतिपातश्च विशुध्यप्रतिपातौ ताभ्याम्। तयोर्विशेषस्तद्विशेष ॥

विशुद्धिः ॥ च अप्रतिपातः ॥ च विशुद्धि अप्रतिपातौ ॥ =पुरि विशुद्धि और अप्रतिपात (मिलकर) विशुद्ध्यप्रतिपातौ (ऐसा वाक्य) हुआ

ताभ्याम् ॥ (विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्याम् ॥) =ताभ्याम् (जोड़कर) विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां (यह वाक्य) हुआ

तयोः ॥ विशेष ॥ तद्विशेषः ॥ =तयोः (तिनमें) विशेष सो तद्विशेष है। यह व्युत्पत्ति इस "विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां तद्विशेष" सब सूत्रकी हुई ॥ जिसका अर्थ ऐसे है कि उज्वलता तथा न च्युत होना तिन दो हेतुओं॰ तिन (ऋजुमतिमनः पर्ययज्ञान, विपुल मतिमनः पर्ययज्ञान)में विशेष अथवा भेद है।

(१) प्रश्न- ऋजुविपुलमती मनः पर्ययः इस सूत्रसे ही ऋजुमतिमनः पर्ययज्ञान तथा विपुलमतिमनः पर्ययज्ञानमें अंतर या भेद है सो स्पष्ट है फिर "विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यांतद्विशेषः" इस सूत्रका क्यों आरंभ किया गया है (उत्तर) २३मया सूत्रमें जो ऋजुमतिमनः पर्ययज्ञान और विपुलमतिमनः पर्ययज्ञानका आपसमें विशेष बतलाया गया है यह साधारण है। सर्वमनुष्योंका उससे संतोष नहीं हो सकता है इसलिये विशेष रूपसे इन दोनों ज्ञानोंमें भेद और बतलाने के लिये यह २४वां सूत्र कहा है।

(२) प्रश्न— जिस प्रकार मन पर्ययज्ञानके ऋजुमति और विपुलमति भेद हैं उसही भांति उसके ही विशुद्धि और अप्रतिपात भी भेद हैं। यदि यही अभिप्राय है तब तो इस सूत्रमें च शब्दका प्रयोग करना चाहिये। (उत्तर) च शब्दका उल्लेख नहीं करना चाहिये क्योंकि जिस प्रकार मन पर्ययज्ञानके ऋजुमति और विपुलमति भेद हैं उसी प्रकार यदि विशुद्धि और अप्रतिपात भी मनः पर्ययज्ञानके भेद होते तब तो सूत्रमें च शब्द कहना युक्त होता। सो तो है नहीं किंतु ये (विशुद्धि और अप्रतिपात) ऋजुमति और विपुलमतिके समान भेद नहीं हैं वरन विशुद्धि और अप्रतिपात ये दोऊ ऋजुमति विपुल मतिका स्वरूप विशेष हैं। तिससे च शब्दका अप्रयोग है। सारांश इन दोनों ऋजुमति और विपुलमति मनः पर्ययज्ञानोंमें ऋजुमति विशुद्ध है और विपुलमतिमनः पर्ययज्ञान ऋजुमतिकी अपेक्षासे द्रव्य क्षेत्र काल भाव के विशेष जाननेकरि विशुद्धतर है अथवा अधिक विशुद्ध है। ऋजुमति प्रतिपाती है विपुलमति अप्रतिपाती है इसलिये स्वरूप विशेष होने से च शब्द सूत्रमें नहीं लाये हैं ॥

तदावरण क्षयोपशमे इति आत्मन प्रसादः विशुद्धि । प्रतिपतन प्रतिपात न प्रतिपात अप्रतिपात । उपशान्तकषायस्य चारित्रमोहोद्रेकात्प्रच्युतसंयमशिखरस्य प्रतिपातो भवति । क्षीणकषायस्य प्रतिपातकारणाभावादप्रतिपात ॥

(१)पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित इस सूत्र पर संस्कृत सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दश हिंदी अनुवाद।

तद् आवरण-क्षयोपशमे। सति,।	= उस (मन पर्ययज्ञानावरणीयकर्म) के आवरण के क्षयोपशम होनेपर (= सति,
आत्मन ।। प्रसाद ।। विशुद्धि ।।। प्रतिपतनम्।।।	= आत्माकी उज्ज्वलता (= प्रसाद) सो विशुद्धि है ॥ (संयमसे) गिरना या च्युत होना
प्रतिपात ।। उपशान्तकषायस्य।।	= सो प्रतिपात है। उपशान्त मोहवाले (जीव) का अर्थात् ग्यारहवेंगुणस्थानवर्तीका
चारित्रमोह-उद्रेकात्। प्रच्युतसंयमशिखरस्य।	= चारित्रमोहनीय कर्म की उत्कटतासे संयमरूपी शिखरका (से) प्रच्युत होना
(२)	गिर पड़ना, उलटा आय पड़ना, उलटा आना, भावार्थ संयमपरिणामकी घटवारी
प्रतिपात।। भवति क्षीणकषायस्य।।	= सो प्रतिपात है ॥ क्षीणकषायवाले के अर्थात् बारहवें गुणस्थानवर्तीके
प्रतिपात-कारण-अभावात्। अप्रतिपात ।।	= (संयम से) गिर पड़ने के निमित्त के अभाव से अप्रतिपात है

(१) स्मरण रहे कि यहां पर भी। जैसा कि पृष्ठ ४२१ में है), वीर्यान्तराय कर्मका और मनः पर्यय ज्ञानावरणीय कर्मका क्षयोपशमसे और अगोपांग नामानामकर्म के (उदयके) लाभकी प्राप्त होनेसे आत्माके परिणामोंकी उज्ज्वलता सो विशुद्ध या विशुद्धता है। यहां संक्षेपार्थ एक कर्मका नाम वृत्तिमें लिया है ॥

(२) पहला ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञान है सो प्रतिपाती है क्योंकि ऋजुमतिवाला उपशम तथा क्षपक दोनों श्रेणियों पर चढ़ता है उसमें यद्यपि क्षपककी अपेक्षासे ऋजुमतिका पतन नहीं होता यद्यपि उपशमक की अपेक्षासे पतन होता है और दूसरा विपुलमति मनः पर्ययज्ञाना केवल क्षपक श्रेणी ही चढ़ता है और चढ़ता है उसका पतन कदापि नहीं होता निश्चयसे केवल ज्ञान प्राप्त करता है ॥ दूसरा विपुलमति मनः पर्ययज्ञान है सो अप्रतिपाती है ॥ जिसके विशुद्ध परिणामोंकी घटवारी या न्यूनता हो सो प्रतिपाती कहलाता है जिसके विशुद्ध भावोंकी न्यूनता न हो उसका अप्रतिपाती कहते हैं। ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञान तो विशुद्ध है क्योंकि प्रतिपक्षी कर्मके क्षयोपशमसे निर्मल भया है ॥ परंतु विपुलमति मनः पर्यय ज्ञान विशुद्धतर है। क्योंकि मनः पर्यय ज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमसे अतिशयकरि निर्मल हुआ है ॥

विशुद्धिश्च अप्रतिपातश्च विशुध्यप्रतिपातौ ताभ्याम्। तयोर्विशेषस्तद्विशेष ॥

विशुद्धिः १॥ च अप्रतिपातः १। च विशुद्धि-अप्रतिपातौ १॥ =बहुरि विशुद्धि और अप्रतिपात (मिलकर) विशुद्ध्यप्रतिपातौ (ऐसा वाक्य) हुआ

ताभ्याम् ३। (विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्याम् ३।) =ताभ्याम् (जोड़कर) विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां (यह वाक्य) हुआ

तयोः ६। विशेष १। तद्विशेषः १। =तयोः (तिनमें) विशेष सो तद्विशेष है। यह व्युत्पत्ति इस "विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां तद्विशेष" सब सूत्रकी हुई ॥ जिसका अर्थ ऐसे है कि उज्वलता तथा न च्युत होना तिन दो हेतुवोंसे तिन (ऋजुमतिमनः पर्ययज्ञान, विपुल मतिमनः पर्ययज्ञान)में विशेष अथवा भेद है।

(१) प्रश्न' ऋजुविपुलमती मन पर्ययः" इस सूत्रसे ही ऋजुमतिमनः पर्ययज्ञान तथा विपुलमतिमनः पर्ययज्ञानमें अंतर या भेद है सो स्पष्ट है फिर 'विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां तद्विशेषः' इस सूत्रका क्यों आरंभ किया गया है (उत्तर) २३ स्वां सूत्रमें जो ऋजुमतिमनः पर्ययज्ञान और विपुलमतिमनः पर्ययज्ञानका आपसमें विशेष कहा गया है यह साधारण है। सर्वमनुष्योंका उससे संतोष नहीं हो सकता है इसलिये विशेष रूपसे इन दोनों ज्ञानोंमें भेद-अंतर बतलाने के लिये यह २४वां सूत्र कहा है।

(२) प्रश्न— जिस प्रकार मनः पर्ययज्ञानके ऋजुमति और विपुलमति भेद हैं उसही भांति उसके ही विशुद्धि और अप्रतिपात भी भेद हैं। यदि यही अभिप्राय है तब तो इस सूत्रमें च शब्दका प्रयोग करना चाहिये। (उत्तर) च शब्दका उल्लेख नहीं करना चाहिये क्योंकि जिस प्रकार मनः पर्ययज्ञानके ऋजुमति और विपुलमति भेद हैं उसी प्रकार यदि विशुद्धि और अप्रतिपात भी मनः पर्ययज्ञानके भेद होते तब तो सूत्रमें च शब्द कहना युक्त होता। सो तो है नहीं किंतु ये (विशुद्धि और अप्रतिपात) ऋजुमति और विपुलमतिके समान भेद नहीं हैं वरन विशुद्धि और अप्रतिपात ये दोऊ ऋजुमति विपुल मतिका स्वरूप विशेष हैं। तिससे च शब्दका अप्रयोग है। सारांश इन दोनों ऋजुमति और विपुलमति मनः पर्ययज्ञानोंमें ऋजुमति विशुद्ध है और विपुलमतिमनः पर्ययज्ञान ऋजुमतिकी अपेक्षासे द्रव्य क्षेत्र काल भाव के विशेष जाननेकरि विशुद्धतर है अथवा अधिक विशुद्ध है। ऋजुमति प्रतिपाती है विपुलमति अप्रतिपाती है इसलिये स्वरूप विशेष होने से च शब्द सूत्रमें नहीं लाये हैं॥

तत्र विशुध्या तावत्--ऋजुमतेर्विपुलमतिर्द्रव्यक्षेत्रकालभावैर्विशुद्धतर । कथमिह १ य कार्मणद्रव्यान त भागोऽन्त्य सर्वावधिना ज्ञातस्तस्य पुनरनन्तभागीकृतस्यान्त्यो भाग ऋजुमतेर्विषय. । तस्य ऋजुमतिविषयस्यानन्तभागीकृतस्यान्त्यो भागो विपुलमतेर्विषय ।अनन्तस्यानन्तभेदत्वात्॥ द्रव्यक्षेत्रकालतो विशुद्धिरुक्ता ।

तत्र विशुद्ध्या ,॥ तावत ऋजुमतेः ,।	=वहां विशुद्धताकरि तो (=तावत) ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञानसे
विपुलमति ,। द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावै ;।	=विपुलमतिमनः पर्यय ज्ञान द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव (के विशेष जानने) करि
विशुद्धतर ,। कथम् ! इह	=अधिक वा अतिशय विशुद्ध है (=विशुद्धतरः) यह (=इह) कैसे (=कथम्) ?
य ;। कार्मणद्रव्य अनन्तभाग ;। अन्त्यः ;।	=जो कार्माण द्रव्य के अन्तिम (=अन्त्य) अनंतवां भाग
सर्वावधिना ज्ञात ;। तस्य ;। पुन	=सर्वावधिज्ञान द्वारा जाना गया है तिस (अंतिम अनंतवां भाग) के फिर (=पुनः)
अनन्तभागीकृतस्य ;। अन्त्यः ;। भाग ,।	=अनंत भाग किये जावें (तो यह) अंतिम भाग वा अन्त का अंश (=अन्त्य भागः)
ऋजुमते ,। विषयः ;।	=ऋजुमतिमन पर्यय ज्ञान का विषय है अर्थात् कार्माण द्रव्य के अनन्तवें भागके अनन्तवे भाग रूपी द्रव्य को ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञान वाला जानता है
तस्य ,। ऋजुमतिविषयस्य ;। अनन्तभागीकृतस्य ;।	=तिस ऋजुमतिमनः पर्यय ज्ञान के विषय के अनन्त भाग किये जावें (तो यह)
अन्त्य ,। भाग ;। विपुलमते ,। विषयः ,।	=अंत का वा अंतिम भाग विपुलमति मनः पर्यय ज्ञानका विषय है अर्थात् जिस अनंतवें भागको ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञानने विषय किया है उसका भी अनंतवां भाग जो कि सूक्ष्म व्यवहित (=किया हुआ) और सूक्ष्म है विपुलमतिमनः पर्यय ज्ञानका विषय है
अनन्तस्य ,। अनन्त-भेदत्वात् ;॥	=क्योंकि अनन्त की (गिनती वा गणना के) अनंत भेद होते हैं (अतः अनन्त में और अनन्त के अनन्तवे भाग में अनन्त का भाग फिर फिर कहा है)
द्रव्य-क्षेत्र-कालतः विशुद्धि-उक्ता ;॥	=द्रव्य, क्षेत्र, काल (की अपेक्षा) से विशुद्धता वा उज्ज्वलता कही गई अर्थात् द्रव्यकी अपेक्षासे तो विशुद्धता यहां कही; क्षेत्र और कालकी अपेक्षाके लिये देखो पृष्ठ५५२,५५४,५५५

भावतो विशुद्धि सूक्ष्मतरद्रव्यविषयत्वादेव वेदितव्या, प्रकृष्टक्षयोपशमविशुद्धियोगात् ॥ अप्रतिपातेनापि विपुलमतिर्विशिष्टः । स्वामिना प्रवर्द्धमानचारित्रोदयत्वात् ॥ ऋजुमति पुन प्रतिपाती, स्वामिना कषायोद्रेका द्धीयमानचारित्रोदयत्वात् ॥

यद्यस्य मन पर्ययस्य प्रत्यात्ममयं विशेष, अथानयोरवधिमन पर्यययो कुतो विशेश इत्यत आह –

भावतः *	=भाव (की अपेक्षा) से (ऋजुमतिमन पर्ययज्ञानसे विपुलमति मनः पर्ययज्ञानमें)
विशुद्धिः ॥ सूक्ष्मतर	=(परिणामों की) उज्ज्वलता या विशुद्धता अधिक सूक्ष्म (सूक्ष्मतर)
द्रव्य विषयत्वात् ॥ एव* वेदितव्या ॥	=द्रव्यके जानपनेसे ही जानना योग्य है
प्रकृष्ट	=क्योंकि (ऋजुमतिमनः पर्ययज्ञान से विपुलमति मन पर्ययज्ञान में) उत्कृष्ट
क्षयोपशम-विशुद्धि-योगात् ॥	=(मन पर्ययज्ञानावरणीय कर्मके) क्षयोपशमकी उज्ज्वलताका प्रसंग है अर्थात विपुलमति मन पर्यय ज्ञान अत्यन्त सूक्ष्म द्रव्यको विषय करता है इसलिये उसका अत्यन्त सूक्ष्म रूपी पदार्थोंका विषय करनाही भावकी अपेक्षा विशुद्धि है ॥
अप्रतिपातेन , अपि *	=(संयमकी) घट घारी न होने की अपेक्षा से भी (ऋजुमति मन पर्यय ज्ञानसे)
विपुलमतिः ॥ विशिष्ट ॥ स्वामिनाम् ॥	=विपुलमतिमनः पर्ययज्ञान विशेषयुक्त या भाग्र है क्योंकि (इसके) स्वामियों के अर्थात् विपुलमतिमन पर्ययज्ञानियोंकि वा विपुल मतिज्ञान धारकोंके
प्रवर्द्धमान-चारित्र उदयत्वात् ॥	=बढ़ेहुये चारित्र का उदय होताहै (संयम बढ़ताही जाता है जबतक केवली न हो)
पुन * ऋजुमतिः ॥ प्रतिपाती ॥	=और (=पुनः) ऋजुमतिमनः पर्ययज्ञान प्रतिपाती है अर्थात् चारित्र छूटभी जाताहै
स्वामिनाम् ॥	=क्योंकि (=इसके) अधिपतियों के अर्थात् ऋजुमतिमनः पर्ययज्ञानियोंकि
कषाय-उद्रेकात् ॥ हीयमानचारित्र उदयत्वात् ॥	=कषायकी उत्कटतासे हीयमान (घटते हुए) चारित्रका उदय होता है
यदि * अस्य ॥ मन पर्ययस्य ॥ प्रत्यात्मम् ॥ अयम्	=जो इस मन पर्यय ज्ञानका अपना स्वरूप प्रति (प्रति-आत्मम्) यह
विशेष ॥ अथ * अनयो ॥ अवधिमन पर्यययो ॥	=विशेष है तो अब (अथ) इनदोनों अवधिज्ञान और मनः पर्ययज्ञानों में
कुत * विशेष ॥ इति* अतः * आह T	=क्योंकर भेदहै ऐसा (प्रश्न होने पर) इसलिये (आचार्य कहते हैं कि

तत्र विशुध्या तावत्—ऋजुमतेर्विपुलमतिर्द्रव्यक्षेत्रकालभावैर्विशुद्धतर । कथमिह ? य कार्मणद्रव्यान त भागोऽन्त्य सर्वावधिना ज्ञातस्तस्य पुनरनन्तभागीकृतस्यान्त्यो भाग ऋजुमतेर्विषय । तस्य ऋजुमतिविषयस्या नन्तभागीकृतस्या त्यो भागो विपुलमतेर्विषय । अनन्तस्यानन्तभेदत्वात् ॥ द्रव्यक्षेत्रकालतो विशुद्धिरुक्ता ।

तत्र॰ विशुद्ध्या ॥ तावत॰ ऋजुमते ५।	=वहां विशुद्धताकरि तौ (=तावत) ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञानसे
विपुलमति ॥ द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावै ३।	=विपुलमतिमनः पर्यय ज्ञान द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव (के विशेष जानने) करि
विशुद्धतर ॥ कथम् ? ॰ इह॰	=अधिक वा अतिशय विशुद्ध है (=विशुद्धतरः) यह (=इह) कैसे (=कथम्) ?
य ॥ कार्मणद्रव्य अनन्तभाग ॥ अन्त्यः ॥	=जो कार्मांण द्रव्य के अन्तिम (=अन्त्य) अनंतवां भाग
सर्वावधिना ३ ज्ञात ॥ तस्य ॥ पुन॰	=सर्वावधिज्ञान द्वारा जाना गया है तिउ (अंतिम अनंतवा भाग) के फिर (=पुनः)
अनन्तभागीकृतस्य ॥ अन्त्यः ॥ भागः ॥	=अनंत भाग किये जायें (तो यह) अंतिम भाग वा अन्त का अंश (=अन्त्यः भागः)
ऋजुमते ५। विषय ॥	=ऋजुमतिमनः पर्यय ज्ञान का विषय है अर्थात् कार्मांण द्रव्य के अनन्तवें भागके अनन्तवे भाग रूपी द्रव्य को ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञान वाला जानता है
तस्य ॥ ऋजुमतिविषयस ६। अनन्तभागीकृतस्य ६।	=तिस ऋजुमतिमनः पर्यय ज्ञान के विषय के अनन्त भाग किये जायें (तो यह)
अन्त्यः ॥ भागः ॥ विपुलमते ६। विषयः ॥	=अंत का वा अंतिम भाग विपुलमति मनः पर्यय ज्ञानका विषय है अर्थात् जिस अनंतवें भागको ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञानने विषय किया है उसका भी अनंतवां भाग जो कि दूर व्यवहित (=किया हुआ) और सूक्ष्म है विपुलमतिमनः पर्यय ज्ञानका विषय है
अनन्तस ॥ अनन्त-भेदत्वात् ॥	=क्योंकि अनन्त की (गिनती वा गणना के) अनंत भेद होते हैं (अतः अनन्त में और अनन्त के अनन्तवे भाग में अनन्त का भाग फिर फिर कहा है)
द्रव्य-क्षेत्र-कालत॰ विशुद्धि-उक्ता ॥	=द्रव्य, क्षेत्र, काल (की अपेक्षा) से विशुद्धता वा उज्ज्वलता कही गई अर्थात् द्रव्यकी अपेक्षासे तो विशुद्धता यहां कही; क्षेत्र और कालकी अपेक्षाके लिये देखो पृष्ठ४५३,४५४,४५५

भावतो विशुद्धि सूक्ष्मतरद्रव्यविषयत्वादेव वेदितव्या, प्रकृष्टक्षयोपशमविशुद्धियोगात् ॥ अप्रतिपातेनापि विपुलमतिर्विशिष्ट । स्वामिना प्रवर्द्धमानचारित्रोदयत्वात् ॥ ऋजुमति पुन प्रतिपाती, स्वामिनां कषायोद्रेकाद्धीयमानचारित्रोदयत्वात् ॥

यद्यस्य मन पर्ययस्य प्रत्यात्ममय विषेप, अथानयोरवधिमन पर्यययो कुतो विशेष इत्यत आह –

भावतः ॥	=भाव (की अपेक्षा) से (ऋजुमतिमनः पर्ययज्ञानसे विपुलमति मनः पर्ययज्ञानमें)
विशुद्धिः ॥ सूक्ष्मतर	=(परिणामों की) उज्ज्वलता या विशुद्धता अधिक सूक्ष्म (सूक्ष्मतर)
द्रव्य विषयत्वात् ॥ एव॥ वेदितव्या ॥	=द्रव्यके जानपनेसे ही जानना योग्य है
प्रकृष्ट-	=क्योंकि (ऋजुमतिमन पर्ययज्ञान से विपुलमति मन पर्ययज्ञान में) उत्कृष्ट
क्षयोपशम विशुद्धि-योगात् ॥	=(मन पर्ययज्ञानावरणीय कर्मके) क्षयोपशमकी उज्ज्वलताका प्रसंग है अर्थात् विपुलमति मनः पर्यय ज्ञान अत्यन्त सूक्ष्म द्रव्यको विषय करता है इसलिये उसका अत्यन्त सूक्ष्म रूपी पदार्थोंका विषय करनाही भावकी अपेक्षा विशुद्धि है ॥
अप्रतिपातेन ; अपि ॥	=(संयमकी) घट घाती न होने की अपेक्षा से भी (ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञानसे)
विपुलमतिः ॥ विशिष्टः ॥ स्वामिनाम् ॥	=विपुलमतिमनः पर्ययज्ञान विशेषयुक्त या श्रेष्ठ है क्योंकि (इसके) स्वामियों के अर्थात् विपुलमतिमनः पर्ययज्ञानियोंके या विपुल मतिज्ञान धारकोंके
प्रवर्द्धमान-चारित्र उदयत्वात् ॥	=बढ़ेहुये चारित्र का उदय होताहै (संयम बढ़ताही जाता है जबतक केवली न हो)
पुनः ॥ ऋजुमतिः ॥ प्रतिपाती ॥	=और (=पुनः) ऋजुमतिमनः पर्ययज्ञान प्रतिपाती है अर्थात् चारित्र छूटभी जाताहै
स्वामिनाम् ॥	=क्योंकि (=इसके) अधिपतियों के अर्थात् ऋजुमतिमनः पर्ययज्ञानियोंके
कषाय-उद्रेकात् ॥ हीयमानचारित्र उदयत्वात् ॥	=कषायकी उत्कटतासे हीयमान (घटते हुए) चारित्रका उदय होता है
यदि ॥ अस्य ॥ मन पर्ययस्य ॥ प्रत्यात्मम् ॥ अयम्	=जो इस मनः पर्यय ज्ञानका अपना स्वरूप प्रति (प्रति-आत्मम्) यह
विशेष ॥ अथ ॥ अनयो ॥ अवधिमन पर्यययोः ॥	=विशेष है तो अब (अथ) इनदोनों अवधिज्ञान और मनः पर्ययज्ञानों में
कुतः ॥ विशेषः ॥ इति॥ अतः ॥ आह ॥	=क्योंकर भेदहै ऐसा (प्रश्न होने पर) इसलिये (आचार्य कहते हैं कि

विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्योऽवधिमनःपर्ययोः ॥ सूत्र २५ ॥

विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्योऽवधिमनःपर्ययो २५

=विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्योऽवधिमनःपर्ययो (विशेष. भवति)

विशुद्धि क्षेत्र =विशुद्धता उज्ज्वलता वा निर्मलता, जहां तकके विद्यमान पदार्थोंके ज्ञानका होना

स्वामिन् विषयेभ्यः =स्वामी वा ज्ञानोंका प्रयोग करने वाला और ज्ञेय वस्तुओंके हेतुसे अर्थात् इन चारोंकी अपेक्षासे वा विलक्षणतासे

अवधिमनःपर्ययो =अवधिज्ञान और मनःपर्यय ज्ञानोंमें

विशेष (१) भवति =विशेष, भेद वा अंतर होता है भावार्थ अवधिज्ञानकी अपेक्षासे मनः पर्यय ज्ञान अधिकतर विशुद्ध है (जितने रूपी पदार्थोंको अवधिज्ञान वाला जानता है उनको मनःपर्ययज्ञानी मनोगत होने पर भी अधिकतर शुद्धता से जान लेता है अवधिज्ञानीसे मनःपर्ययज्ञानीके परिणामोंमें अधिकतर विशुद्धता है) ॥

( ) अवधिज्ञानसे मनःपर्ययज्ञान थोडे क्षेत्रवाला है। अवधिज्ञानके उत्पत्तिका क्षेत्र त्रसनाली पर्यंत है और विषयका क्षेत्र सब लोक है। मनः पर्ययज्ञान मनुष्य लोकमेंही उत्पन्न होता है और मनुष्य लोकका विष्कम्भ पैंतालीस लाख योजन चौडा और पैंतालीस लाख योजन लंबा समान चौकोर घनरूप प्रतर क्षेत्र (यहां ऊंचाई थोडी है इससे घन प्रतर कहा है) इसका विषय है क्योंकि मानुषोत्तर पर्वतके बाहिर चारों कोनोंमें तिष्ठते देव और तिर्यंच द्वारा चिंतित और स्थित पदार्थोंको भी विपुल मति मनः पर्यय ज्ञान जानता है ॥

( ) अवधिज्ञानसे मनःपर्ययज्ञानके स्वामी वा ज्ञानोंके प्रयोग करने वाले थोडे हैं संख्यामें न्यून हैं क्योंकि अवधिज्ञान चारों गतिके सैनी पंचेंद्रिय जीवोंके होता है और मनः पर्ययज्ञान गर्भज मनुष्य कर्मभूमिके पर्याप्तनिकेही प्रमत्त छठवें गुणस्थानसे क्षीणकषाय बारहवां गुणस्थान तक उपजे है इत्यादि देखो पृष्ठ ४६४ से ४६६ तक ॥

(१) इस सूत्रका हमारे यहां सर्वत्र एक पाठ है ॥ श्वेताम्बर आम्नायमें मनःपर्यय शब्दके स्थानमें 'मनःपर्याय' है दोनों पाठ दोनों संप्रदायोंमें एक है। मनःपर्यय और मनःपर्याय दोनों एकार्थवाची हैं। हमारी समझमें मन पर्यय लिखना ठीक है क्योंकि सूत्रका पाठ लघु हो जाता है ॥ दोनों सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका अर्थ भी एकसा है ॥ श्वेताम्बर आम्नायमें "द्विविधोऽवधिः" २१ सूत्रके अधिक होनेसे इस सूत्रकी गणना २६वीं है हमारे यहां पचीसवीं है ॥

विशुद्धि प्रसाद । क्षेत्र यत्रस्थान्भावान्प्रतिपद्यते । स्वामी प्रयोक्ता । विषयो ज्ञेयः ॥ तत्रावधे

(१) अवधिज्ञानसे मनः पर्यय ज्ञानका विषय सूक्ष्म है। कार्माण द्रव्य के जिस अंतिम अनंतवें भागको सर्वावधि ज्ञानने विषय कर रक्खा है उस अनंतवें भागका भी अनंतवां भाग ऋजुमतिमनः पर्यय ज्ञानका विषय है और जिस अनंतवें भागको ऋजुमतिमनः पर्ययज्ञानने विषय किया है उसका भी अनंतवां भाग जोकि दूर व्यवहित और सूक्ष्म है वह विपुलमतिमनः पर्ययज्ञानका विषय है (देखो सूत्र२७,२८) क्योंकि अनन्तके अनन्तभेद माने हैं ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित पच्चीसवां सूत्रपर संस्कृत सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दश अनुवाद

विशुद्धिः १। प्रसादः १। क्षेत्रम् १। यत्र ७ =उज्ज्वलता, निर्मलता है वह विशुद्धि वा प्रसाद है ॥ क्षेत्र वह है जहां ठहरके

स्थान् २। भावान् २। प्रतिपद्यते T =विशुद्धि भावनिकों वा रूपी पदार्थों को प्राप्त होता है अथवा जानता है

प्रयोक्ता १। स्वामी १। विषयः १। ज्ञेयः १। तत्र अवधेः ६=(ज्ञानोंकि) प्रयोग करनेवाला स्वामी है ॥ ज्ञेयवस्तु सो विषय है । तहां अवधि ज्ञानसे

[१] प्रश्नः—शास्त्रों में मनः पर्यय ज्ञान की अपेक्षा अवधिज्ञान का विषय अधिक द्रव्य बतलाया गया है और मनः पर्यय ज्ञानका विषय अल्प द्रव्य कहा है क्योंकि सर्वावधिके विषयभूत रूपीद्रव्य का अनंतवां भाग मनः पर्यय ज्ञानका द्रव्य वा विषय है (सूत्र२८) और यह बात प्रसिद्ध है कि जिसका विषय अधिक द्रव्य होता है वह अधिक विशुद्ध और जिसका विषय न्यून वा अल्प द्रव्य होता है वह अल्प विशुद्ध कहा जाता है अतः अधिक द्रव्यको विषय करने के हेतु मनः पर्ययज्ञान की अपेक्षासे अवधिज्ञान अधिक विशुद्ध है और अल्प द्रव्यको विषय करनेके कारण मनः पर्यय ज्ञान अल्प विशुद्ध है ॥ (उत्तर) संसारमें एक मनुष्य तो ऐसा है जो समस्त शास्त्रोंका व्याख्यान तो करता है परन्तु उनका एक देश रूपसेही व्याख्यान करता है, कहां क्या लिखा है, किस रूपसे लिखा है इस प्रकार समस्त रूपसे उनके अर्थका व्याख्यान नहीं करसकता-वैसा करनेमें असमर्थ है । दूसरा मनुष्य ऐसा है कि केवल एकही शास्त्रका व्याख्यान करता है परन्तु प्रत्येक अर्थ को भिन्न भिन्न दर्शा कर समस्त रूपसे अर्थ के कहनेमें समर्थ है । इन दोनों प्रकारके मनुष्योंमें पीछे का मनुष्य विशेष विशुद्ध ज्ञान का धारक समझा जाता है उसी प्रकार यद्यपि मनः पर्यय ज्ञानकी अपेक्षा अवधिज्ञान का विषय अधिक द्रव्य है परन्तु वह उसे एक देश स्थूल रूपसे जानता है और मनः पर्यय ज्ञानका विषय अवधिज्ञान के विषय का अनंतवां भाग है तो भी वह बहुत से रूप आदि पर्यायों के साथ समस्त रूपसे जानता है इसलिये अवधिज्ञान की अपेक्षा मनः पर्ययज्ञान ही अधिक विशुद्ध है॥

मनःपर्ययो विशुद्धतरः। कुतः। सूक्ष्मविषयत्वात्॥ क्षेत्रमुक्त विशेषो वक्ष्यते॥ स्वामित्व प्रत्युच्यते।

मनः पर्ययः ॥ विशुद्धतरः ॥ कुतः॥ =मनः पर्ययज्ञान अतिशय या अधिकतर विशुद्ध है। क्योंकर (विशुद्धतर है)

सूक्ष्म विषयत्वात् ॥ =क्योंकि (मनः पर्ययज्ञानका अवधिज्ञानसे) विषय या जानपना सूक्ष्म है

क्षेत्रम् ॥ उक्तम् ॥ =क्षेत्र (अवधिज्ञान और मनः पर्यय ज्ञानका) (पहिले) कहा गया है अर्थात् ऋजुमतिमनः पर्ययज्ञानका विषय क्षेत्रकी अपेक्षासे जघन्यकरि तीनसे ऊपर नौ से नीचे कोश है। उत्कृष्टकरि तीनसे ऊपर नौसे नीचे (=पृथक्त्व) योजनके भीतर है न कि बाहिर। (विपुलमतिमनः पर्यय ज्ञानका विषय) क्षेत्र (की अपेक्षा) से जघन्यकरि तीनसे ऊपर नवसे न्यून (=पृथक्त्व) योजन प्रमाण है। उत्कृष्टकरि (विपुलमति मनः पर्यय ज्ञानका विषय क्षेत्रकी अपेक्षासे) मानपोत्तर पर्वतके भीतर भीतर है नकि बाहिर (देखो पृष्ठ ४५४—४५५—टिप्पणी (१) पृष्ठ ४५५की अवश्य देखो) बहुरि "अवधिज्ञानके उत्पत्तिका क्षेत्र त्रसनाली पर्यंत है अर विषयका क्षेत्र सर्वलोक है" अर्थप्रकाशिका सूत्र २५ चारों गतियोंकी अपेक्षासे अवधिज्ञानके क्षेत्रके सम्बन्धमें (पृष्ठ ४२५, ४२६, ४२७ अवश्य देखो)

विषयः ॥ =विषय (अर्थात् अवधि मनः पर्ययज्ञानके जानपने का भेद सूत्र २७, २८)में

वक्ष्यते =कहा जायगा भावार्थ अवधिज्ञान और मनः पर्ययज्ञान रूपी पदार्थों को विषय करते हैं सर्वावधि ज्ञानके विषयसे अनंतवां भाग सूक्ष्म मनःपर्यय ज्ञानका विषय होता है (तदनन्तभागे मनःपर्ययस्य सूत्र २८) ॥

स्वामित्वम् ॥ =(अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञानमें) स्वामीपन या अधिपतिपन (का भेद)

प्रत्युच्यते =कहा जाता है।

प्रकृष्टचारित्रगुणोपेतेषु वर्ततेऽप्रमत्तादिक्षीणकषायान्तेषु। तत्र चोत्पद्यमान प्रवर्द्धमानचारित्रेषु न हीयमानचारित्रेषु।

प्रकृष्ट-चारित्रगुण-उपेतेषु ₃। प्रमत्त-आदि क्षीणकषाय-अन्तेषु ₃। वर्तते T	=उत्तम चारित्र गुणको प्राप्त होने पर प्रमत्त (छठे गुणस्थान) से =क्षीणकषाय (बारहवां गुणस्थान) पर्यन्तमें (मनः पर्ययज्ञान) होता है अर्थात् प्रमत्तसंयमी मुनिसे लेकर क्षीणकषाय संयमी मुनियों तकके उक्त ज्ञान होता है
तत्र० च० उत्पद्यमानः ,।	=वहां (छठे गुणस्थान से बारहवें तक) भी (=च) उपजने वाला या उपजाऊ (मनः पर्यय)
प्रवर्द्धमान-चारित्रेषु₃। न० हीयमान-चारित्रेषु,।	=बढते हुये या वृद्धिशील चारित्रों वालोंमें है न कि घटते हुये चारित्रों वालोंमें भावार्थ छठे गुणस्थान वर्तीनि से बारहवां गुणस्थान वर्तीनि में भी सब के मनः पर्ययज्ञान नहीं होता है वरन कषायोंकी दिनोंदिन मंदतासे बढते हुये चारित्र के ही धारक मुनियोंकेही होता है और कषायोंकी उत्कटतासे घटते हुये चारित्रवाले मुनियोंके कदापि उक्तज्ञान नहीं होता है

(१) अवधिज्ञान और मनः पर्ययज्ञानके स्वामित्वके अंतर दिखानेमें यह भेद लिखा ऐसा भी उचित है कि अवधिज्ञानका स्वामी अपर्याप्त अवस्था वाला जीव होसकता है परन्तु अपर्याप्त अवस्था वाला जीव मनः पर्ययज्ञानका स्वामी नहीं होसकता अर्थात् जीवके अवधिज्ञान अपर्याप्त अवस्थामें हो सकता है मनःपर्ययज्ञान नहीं होसकता है (सामान्यसे अवधिज्ञानके देशावधि परमावधि सर्वावधि तीन भेद होते हैं। भवप्रत्ययअवधि नियमसे देशावधि ही होता है। और दर्शनविशुद्धि आदि गुणोंके निमित्तसे होने वाला गुणप्रत्यय अवधिज्ञान देशावधि परमावधि सर्वावधि ऐसे तीनों प्रकारका होता है। जघन्य देशावधिज्ञान संयत तथा असंयत दोनोंही प्रकारके मनुष्य तथा तिर्यंचोंके होता है। उत्कृष्ट देशावधिज्ञान संयत जीवोंके ही होता है किन्तु परमावधि और सर्वावधि चरमशरीरी और महाव्रतीकेही होता है। देशावधिज्ञान प्रतिपाती होता है (=सम्यक्त्व और चारित्रसे च्युत होकर मिथ्यात्व और असंयमकी प्राप्ति) और परमावधि तथा सर्वावधि अप्रतिपाती होते हैं। देशावधि परमावधिके जघन्य मध्यम उत्कृष्ट भेद संभवे है किन्तु सर्वावधिज्ञानमें जघन्य मध्यम उत्कृष्ट भेद नहीं है – यह निर्विकल्प है॥

"भवानुगामी अवधिज्ञान अपर्याप्त अवस्थामें व्यक्तिरूपसे रहता है जैसेकि तीर्थंकरोंके पूर्व श्रुतज्ञान जन्म समयमें भी होता है। किन्तु द्रव्य क्षेत्रकी सामग्रीके न मिलनेसे अपर्याप्त अवस्थामें स्फूर्ति अल्प होती है अविभाग प्रतिच्छेद भी ध्रुवकेवलीके श्रुतज्ञानसे कम होते हैं तद्वत् सम्यग्दृष्टि देव नारकियों के अपर्याप्त अवस्थामें भी अवधिज्ञान होता है और यह स्पष्ट है" विद्वद्वर्य पं० माणिकचंद मोरेना से प्राप्त॥

प्रवर्द्धमानचारित्रेषु चोत्पद्यमान सप्तविधान्यतमर्द्धिप्राप्तेषूपजायते नेतरेषु। ऋद्धिप्राप्तेषु केषुचिन्न सर्वेष्विति॥

प्रवर्द्धमानचारित्रेषु ३। च० उत्पद्यमानः १।	=बढ़ते हुये चारित्र (वाले) निमें भी उपजने वाला या उपजाऊ (मनः पर्ययज्ञान)
सप्तविध-अन्यतम-ऋद्धि	=सात प्रकारकी (=विध) ऋद्धियोंमें से कोई एक (=अन्यतम ऋद्धि)
प्राप्त १। उपजायते न० इतरेषु ३	=प्राप्त होने (वालों) में उपजता है नकि अन्योंमें (=बिना ऋद्धि प्राप्त वालोंमें)
ऋद्धि-प्राप्तेषु ७। केषुचित० न० सर्वेषु ३ इति०	=ऋद्धप्राप्त वालोंमें केईकनि म (मनः पर्ययज्ञान) होय नकि सबमें॥

(१) अन्यतमर्द्धि = अन्यतम + ऋद्धि [देखो टिप्पणी (१) पृष्ठ ७४] (२) उपजायते — इस शब्दमें 'जन्' धातु दिवादि गणका आत्मने पदी धातु है गणका 'य' विकरण (अर्थात् वह अक्षर है जो रूप बनाने से प्रथम धातुमें जोड़ा जाता) है। 'जन्' का बिना किसी निग्रहके रूपोंके बनानेमें 'जा' होजाता है इस जा में य लगानेसे 'जाय' होजाता है। पश्चात् एक वचन अन्यपुरुष आत्मनेपदी वर्तमान कालका द्योतक 'ते' प्रत्यय लगानेसे जायते बनजाता है जब "होता है" ऐसाहि (देखो संस्कृत कोश पृष्ठ २८१) 'उप' उपसर्गके जोड़ने से 'उपजायते' (= उपजता है) बनता है। स्मरण रहे कि 'जन' धातुके जन्यते, जायते दो रूप कर्मणि प्रयोगमें बनते हैं॥ ऐसेंकि जन् जा म कर्मणि प्रयोगका 'य' जोड़ने से और पश्चात् एक, ते' आत्मनेपदी एक वचन वर्तमानकाल अन्य पुरुषका प्रत्यय लगाकर जा + य + ते' जायत जन् + य + ते = जन्यत बनजाते हैं॥ अथ उत्पन्न किया जाता है ऐसा है।

(१) जहाँ पर विशिष्ट या प्रवर्धमान संयम होगा वहीं मनःपर्ययज्ञान होगा अन्यत्र नहीं। इसकी विशेष व्याख्या इस प्रकार है कि मनः पर्यय ज्ञानकी उत्पत्ति मनुष्योंके ही होती है देव नारकी और तिर्यचोंमें नहीं होती। मनुष्योंमें भी गर्भज मनुष्योंमें ही होती है सम्मूर्छनज मनुष्यों में नहीं होती। गर्भज मनुष्योंमें भी कर्म भूमिके मनुष्योंके ही होती है भोगभूमिके मनुष्योंमें नहीं हो सकती। कर्म भूमिके मनुष्योंमें भी जो पर्याप्तक है उन्हींके होती है अपर्याप्तकों के नहीं। (राजवार्तिक पृष्ठ ५९) पर्याप्तकोंमें भी सम्यग्दृष्टियोंके ही यह उत्पन्न होताहै, मिथ्यादृष्टि सासादनसम्यग्दृष्टि सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानवर्तियों के नहीं। सम्यग्दृष्टियों में भी जो मनुष्य संयमी है उन्हीं के होता है असंयत सम्यग्दृष्टि चतुर्थ गुणस्थानवर्तियों और संयतासंयत पांचवें गुणस्थानवर्तियोंके नहीं। संयमियों में भी छठे गुणस्थान प्रमत्तसे बारहवें क्षीणकषाय गुणस्थान पर्यंत संयमियोंके ही होता है। बारहवें गुणस्थानके आगेके गुणस्थानोंमें रहने वाले संयमियों के नहीं। छठे गुणस्थान से बारहवें गुणस्थानतक होनेपरभी जिनका चारित्र कषायोंकी दिनों दिन मन्दतासे दिनोंदिन वर्धमान है उन्हींके होता है किन्तु कषायोंकी उत्कटतासे जिनका चारित्र हीयमान है मंद होता चला जाता है।

अस्य स्वामिविशेषविशिष्टसंयमग्रहणं वाक्ये कृतम् ॥

अस्य ६।॥ स्वामिविशेष-विशिष्टसंयम-	=इस (मनः पर्यय) के (अवधि से) स्वामीके भेदमें विशिष्ट संयम (=विलक्षण चारित्र) का
ग्रहणं १।॥ वाक्ये ७।॥ कृतम् १।॥	=ग्रहण वाक्य ('प्रकृष्टचारित्रगुणोपेतेषु वर्तते' इस वाक्य) में किया है (नकि सूत्रमें)
	भावार्थ मनः पर्ययज्ञान की उत्पत्तिमें विशिष्ट संयमका ग्रहण प्रधान हेतु है

उनके नहीं होता। प्रवर्धमान चारित्रवालोंमें भी सात प्रकारकी (बुद्धि-तप-वैक्रियिक-औषध-रस-बल अक्षीण) की ऋद्धियोंमें जिनके कोई एक ऋद्धि होगी उन्हींके होता है किंतु जिनके कोई प्रकारकी ऋद्धि नहीं है उनके नहीं होता है। तथा ऋद्धि धारक पुरुषोंमें भी किन्हीं किन्हींके होता है सबोंके नहीं होता। इस प्रकार मनः पर्यय ज्ञानकी उत्पत्तिमें विशिष्ट संयमका ग्रहण प्रधान कारण बतलाया है। परंतु अवधिज्ञान देव मनुष्य तिर्यंच और नारकी चारों गतियोंके जीवोंके होता है इस रूपसे अवधि और मनः पर्ययके स्वामियोंका भेद होनेसे भी दोनों ज्ञानोंमें भेद है॥

(१) अस्यार्थ स्वामिविशेषः विशिष्ट "संयमग्रहणं वा प्राक् कृतम् ॥ इत्येकः पाठ. ॥ अस्याय स्वामिविशेषः विशिष्ट संयमग्रहणं वा कृत न सूत्रे॥ इत्यन्यश्च पाठः पुस्तकान्तरे विद्यते॥

अस्य ६।॥ अयम् १।॥ स्वामी विशेषः १। विशिष्ट १।॥ वा संयम	=इस (मनः पर्ययज्ञान) के यह स्वामीका विशेष अथवा विशिष्ट संयमका
ग्रहणं १।॥ प्राक्-कृतम् १।॥	=ग्रहण पहिले (अर्थात् सर्वार्थ सिद्धिकी वृत्ति "प्रकृष्ट चारित्र गुणोपेतेषु" में) किया है
इतिएकः १। पाठः १। अस्य ६।॥ अयम् १। स्वामिविशेषः १।	=ऐसा एक पाठ है। इस मनः पर्ययज्ञानके यह स्वामीका विशेष या भेद
वाविशिष्ट संयमग्रहण १।॥ कृतम् १।॥ नसूत्रे ७।॥	=वा विशिष्ट संयमका ग्रहण(तत्त्वार्थ)सूत्रमें नहीं किया है (वाक्य या वृत्तिमें किया है)
इतिअपिअन्यः १ पाठः १। पुस्तक-अन्तरे विद्यते	=ऐसे भी दूसरा पाठ अन्य पुस्तक (सर्वार्थसिद्धिकी दूसरी प्रति) में विद्यमान है

इन तीनों वाक्योंके हिंदी अनुवादसे प्रगट है कि संस्कृतके ऊपरके वाक्य और टिप्पणीके दो वाक्योंका आशय एकसा है॥ तत्त्वार्थराजवार्तिकमें इस २५वां सूत्रकी "विशिष्टसंयमगुणैकार्थसमवायी मनःपर्ययः" दूसरी वार्तिक है॥ अर्थ—विशेष रूप संयम गुणकरि एकार्थ समवायी मनः पर्यय ज्ञान है अर्थात् मनःपर्ययज्ञानका अविनाभाव विशिष्ट संयम गुणके साथ है। इसकी वृत्ति 'विशिष्टः संयम गुणो यत्रविद्यते तत्रैव वर्तते मनः पर्ययः' है जहां विशुद्ध संयम हो वहां ही मनः पर्ययज्ञान प्रवर्ते है (अन्यत्र नहीं)॥ इसी वृत्तिमें 'विशिष्टसंयमग्रहणं वाक्ये कृतम्' का अर्थ पन्नालाल दूनी वालेने "वाक्ये विशिष्ट संयम पदका ग्रहण वाक्यमें है" यहां वाक्यका अर्थ वार्तिकमें है' अथवा 'वृत्तिमें है' होगा क्योंकि विशिष्टसंयम पद वृत्ति वार्तिक दोनोंमें आया है विशिष्टसंयम, प्रकृष्ट चारित्र, विशुद्धसंयम वा विशुद्ध चारित्र एकार्थवाची हैं। हमारी समझमें जैसा अर्थ आया वही किया

प्रवर्द्धमानचारित्रेषु चोत्पद्यमान सप्तविधान्यतमर्द्धिप्राप्तेषूपजायते नेतरेषु। ऋद्धिप्राप्तेषु केषुचिन्न सर्वेष्विति॥

प्रवर्द्धमानचारित्रेषु ७। च० उत्पद्यमान १।	=बढ़ते हुये चारित्र (वाले) निमें भी उपजने वाला या उपजाऊ (मनः पर्ययज्ञान)
सप्तविध-अन्यतम ऋद्धि	=सात प्रकारकी (=विध) ऋद्धियोंमें से कोई एक (=अन्यतम ऋद्धि)
प्राप्तेषु ७। उपजायते न० इतरेषु ७	=प्राप्त होने (वालों) में उपजता है नकि अन्योंमें (=बिना ऋद्धि प्राप्त वालोंमें)
ऋद्धि-प्राप्तेषु ७। केषुचित् न० सर्वेषु ७ इति०	=ऋद्धप्राप्त वालोंमें केईकनि म (मनः पर्ययज्ञान) होय नकि सबमें॥

(१) अन्यतमर्द्धि = अन्यतम + ऋद्धि [देखो टिप्पणी (१) पृष्ठ ७४] (२) उपजायते— इस शब्दमें 'जन्' धातु है जिसका गणका अ। मक आत्मने पदी धातु है यन्‌गणका 'य' विकरण (अर्थात् वह अक्षर है जो रूप बनाने से प्रथम धातुमें जोड़ा जाता) है। 'जन्' का बिना किसी नियमके क्योंकि बनानेमें 'जा' होजाता है इस जा में य लगानेसे 'जाय' होजाता है। पश्चात् एक वचन अन्यपुरुष आत्मनेपदी वर्तमान कालका द्योतक 'ते' प्रत्यय लगानेसे जायते बनजाता है अर्थ "होता है" ऐसा है (देख संस्कृत कोश पृष्ठ २८३) 'उप' उपसर्गके जोड़ने से 'उपजायते' (= उपजता है) बनता है। स्मरण रहे कि 'जन' धातुके जन्यते, जायते दो रूप कर्मणि प्रयोगमें बनते हैं॥ ऐसेंकि जन् का म कर्मणि प्रयोगका 'य' जोड़ने से और पश्चात् वर्त, ते' आत्मनेपदी एक वचन वर्तमानकाल अन्य पुरुषका प्रत्यय लगाकर 'जा+य+ते' जायते जन्+य+ते = जन्यते बनजाते हैं॥ अर्थ उत्पन्न किया जाता है ऐसा है॥

(१) जहां पर विशिष्ट वा प्रवर्द्धमान संयम होगा वहीं मनःपर्ययज्ञान होगा अन्यत्र नहीं। इसकी विशेष व्याख्या इस प्रकार है कि मनः पर्यय ज्ञानकी उत्पत्ति मनुष्योंके ही होती है देव नारकी और तिर्यचोंमें नहीं होती। मनुष्योंमें भी गर्भज मनुष्योंमें ही होती है सम्मूर्छन मनुष्यों में नहीं होती। (राजवार्तिक पृष्ठ ५९) गर्भज मनुष्योंमें भी कर्म भूमिके मनुष्योंके ही होती है भोगभूमिके मनुष्योंमें नहीं हो सकती। कर्म भूमिके मनुष्योंमें भी छहों पर्याप्ति पूर्ण होने से जो पर्याप्तक हैं उन्हींके होती है अपर्याप्तकों के नहीं। पर्याप्तकोंमें भी सम्यग्दृष्टियोंके ही यह उत्पन्न होताहै, मिथ्यादृष्टि सासादनसम्यग्दृष्टि सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानवर्तियों के नहीं। सम्यग्दृष्टियों में भी जो मनुष्य संयमी है उन्हीं के होता है असंयत सम्यग्दृष्टि चतुर्थ गुणस्थानवर्तियों और संयतासंयत पांचवें गुणस्थानवर्तियोंके नहीं। संयमियों में भी छठे गुणस्थान प्रमत्तसे बारहवें क्षीणकषाय गुणस्थान पर्यंत संयमियोंके ही होता है। बारहवें गुणस्थानके आगेके गुणस्थानोंमें रहने वाले संयमियों के नहीं। छठे गुणस्थान से बारहवें गुणस्थानतक रहनेपरभी जिनका चारित्र कषायोंकी दिनों दिन मंदतासे दिनोंदिन वर्धमान है उन्हींके होता है किन्तु कषायोंकी उत्कटतासे जिनका चारित्र हीयमान है मंद होता चला जाता है।

मतिश्रुतयोर्निबन्धो द्रव्येष्वसर्वपर्यायेषु ॥ २६ ॥

अन्वय— मतिश्रुतयोर्निबन्धो द्रव्येष्वसर्वपर्यायेषु	=मतिश्रुतयोः विषयस्यनिबन्धः द्रव्येषु असर्व-पर्यायेषु भवति
सूत्रार्थः मतिश्रुतयोः॥ विषयस्य॥ निबन्धः१।	=मतिज्ञान और श्रुतज्ञानके विषयका सम्बन्ध या नियम (=निबन्ध)
द्रव्येषु ७॥	=द्रव्य (जीव-अजीव-धर्म-अधर्म-आकाश-काल) निकेविषैं
असर्व-पर्यायेषु ७॥ भवति T	=कुछ एक, कतिपय, कितनेक, (न कि सब) पर्यायोंमें होता है अर्थात् मतिज्ञान और श्रुतज्ञानके जानने (=विषय) का संबन्ध सब (छहों) द्रव्योंकि कुछ पर्यायों में होता है—छहों द्रव्यों को तो जानते हैं परंतु उनकी थोडी सी पर्यायोंको ही जान सक्ते हैं ॥

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें 'द्रव्येष्व' के स्थानमें 'सर्वद्रव्येष्व' है। शेष पाठ एक है अर्थ भी एकसा है क्योंकि हमारे यहां 'द्रव्येषु' का अर्थ सर्वद्रव्येषु किया है॥ उक्त सभाष्य०में इस सूत्रकी संख्या सत्ताईसवीं है क्योंकि हमारे यहांके इक्कीसवां सूत्रके सभाष्य०में दो सूत्र कर दिये हैं॥

(२) हमारे यहांकी बहुधा पुस्तकोंमें 'निबन्ध' शब्दका उल्लेख है किसी किसी प्रतिमें 'निबंध' है। अष्टाध्यायीके निम्न सूत्रोंसे निबंध भी ठीक है॥ पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ२१४में "निबन्ध (पु०) नि+बन्ध्+घञ्" ऐसा उल्लेख है अब प्रश्न यह है कि इस अपदान्त 'न्'का अनुस्वारमें कैसे परिवर्तन हुआ॥ अपदान्त म्-न्॥ "नश्चापदान्तस्य झलि" यह अष्टाध्यायीके आठवां अध्यायका तीसरे पादका चौबीसवां सूत्र है। इस सूत्रसे पहिलेका सूत्र "मोऽनुस्वारः" तेईसवां है। इससे अनुस्वारकी अनुवृत्ति चौबीसवां सूत्रमें आती है। तब चौबीसवां सूत्रका रूप इसप्रकार होजाता है कि "नः च अपदान्तस्य झलि (अनुस्वारः)। च से तेईसवां सूत्रके मो (=मः) का आकर्षण होता है। इसलिये ऐसा रूप हुआ कि "मः१ नः१ + अपदान्तस्य६ झलि७ अनुस्वारः१ झलि प्रत्याहार है और उसमें झम्के मध्यके अक्षर झ सहित सर्व आजाते हैं। अर्थात् क् ख् ग् घ्। च् छ् ज् झ्। ट् ठ् ड् ढ्। त् थ् द् ध्। प् फ् ब् भ्। श् ष् स् ह्—झलिका अर्थ है इन चौबीस अक्षरोंके पहिले आने वाला। अपदान्त=विभक्ति या कारक जिसके अंतमें नहो। सूत्रका अर्थ यह हुआ कि अपदान्त म् अथवा अपदान्त न् के स्थानमें अनुस्वार होवे यदि म् अथवा न् पूर्वोक्त चौबीस अक्षरोंमेंसे किसी अक्षरके पहिले हो। इसलिये निबन्धके न् का अनुस्वार होकर 'निबंध' होगया क्योंकि न् के पीछे ध है॥ अन्य उदाहरण, जैसे पयान्+सि=प॰ ांसि, यह पयांसि, पयः नपुंसक लिंगीका बहुवचन है यहां अपदान्त न् का अनुस्वार होगया, पयांसि का अर्थ है बहुत पय॥ आ+क्रम्+स्यते, क्रम धातुके म् का अनुस्वार होकर आक्रंस्यते (=वह पकडेगा विजय, करेगा, जीतेगा) होगया॥ देखो टिप्पणी पृष्ठ ५ और ६, पृष्ठ ५४०, ५४१)

अवधिः पुनश्चातुर्गतिकेष्विति स्वामिभेदादप्यनयोर्विशेष ॥ इदानीं केवलज्ञानलक्षणाभिधान प्राप्तकाल तदुल्लंघ्य ज्ञानाना विषयनिबन्ध परीक्ष्यते ॥ कुत ? । तस्य मोहक्षयात ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयाच्च केवलमित्यत्र वक्ष्यमाण त्वात् ॥ यद्येवमाद्ययोरेव तावन्मतिश्रुतयोर्विषयनिबन्ध उच्यतामित्यत आह

पुनः॰ अवधिः ;। चातुर्गतिकेषु ७ इति॰	=परंतु (=पुनः) अवधिज्ञान चारों गतिवालोंमें है इस प्रकार
स्वामिभेदात् ,। अपि॰ अनयोः ६॥ विशेषः ;।	=स्वामी विशेषसे भी दोनों (अवधिज्ञान तथा मनः पर्ययज्ञान) में भेद है अर्थात् मनः पर्ययज्ञान तो केवल विशिष्ट संयम धारक मुनियों के ही होता है परंतु अवधिज्ञान देव मनुष्य तिर्यंच और नारकी चारों गतियों के जीवों के होता है इस प्रकार अवधि और मनः पर्ययके स्वामियोंका भेद होनेसे भी दोनों ज्ञानोंमें भेद है
इदानीं॰ केवलज्ञान-लक्षण-अभिधानं;॥ प्राप्तकालं;॥	=अब (=इदानीम्) केवलज्ञानके स्वरूपके कथनका अवसर प्राप्त है
तत्-उल्लंघ्य + ज्ञानानां;॥ विषयनिबन्धः;। परीक्ष्यते T	=उसको छोड़कर (=उल्लंघ्य) ज्ञानोंके विषयोंकी सीमा या नियम परखा जाय है
कुतः ॰	=(केवल ज्ञानके स्वरूपके कथनको छोड़कर ज्ञानोंके विषय नियम) क्यों (करते हैं)
तस्य ;॥ मोह	=(उत्तर) क्योंकि तिस (केवलज्ञान) के (लक्षण अभिधानको) मोहनीय कर्मके
क्षयात् ;। च॰ ज्ञानदर्शन-आवरण-	=नाश होने (के हेतु) से और (=च) उसके पश्चात् ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय
अन्तराय-क्षयात् ;। केवलम् ;॥ इति॰	=अन्तराय कर्मोंके क्षय होने (के निमित्त) से केवलज्ञान होता है इस प्रकार
अत्र॰ वक्ष्यमाणत्वात् ५॥	=यहां (अर्थात् दशवां अध्यायके प्रथम सूत्रमें) कहा जायगा
यदि॰ एवम्॰ आद्ययोः ६॥ एव॰ तावत्॰	=जो ऐसे है तो (=तावत्) आदिके दोही (=एव)
मतिश्रुतयो ६॥ विषय निबन्धः ;। उच्यताम् T इति	=मतिज्ञान, श्रुतज्ञानके विषयका नियम (=निबन्ध) कहा जाना चाहिये
अतः॰ आह T	=इस लिये (आचार्य) कहते हैं कि

(१) पुनः = परंतु – किंतु (" पुनरप्रथमे भेदे तथा पक्षान्तरेऽपि च " इत्यमरः सारः ॥ पुनर् अप्रथमे भेदे पक्षान्तरे अपि च ॥

मतिश्रुतयोर्निबन्धो द्रव्येष्वसर्वपर्यायेषु ॥ २६ ॥

सूत्रम्— मतिश्रुतयोर्निबन्धो द्रव्येष्वसर्वपर्यायेषु =मतिश्रुतयोः विषयस्यनिबन्धः द्रव्येषु असर्व-पर्यायेषु भवति

सूत्रार्थः मतिश्रुतयोः॥ विषयस्य॥ निबन्ध॥ =मतिज्ञान और श्रुतज्ञानके विषयका सम्बन्ध या नियम (=निबन्ध)

द्रव्येषु ॥ =द्रव्य (जीव-अजीव-धर्म-अधर्म-आकाश-काल) निकेविषैं

असर्व-पर्यायेषु ॥ भवति =कुछ एक, कतिपय, कितनेक, (न कि सब) पर्यायोंमें होता है अर्थात् मतिज्ञान और श्रुत ज्ञानके जानने (=विषय) का संबन्ध सब (छहों) द्रव्योंकि कुछ पर्यायों में होता है—छहों द्रव्यों को तो जानते हैं परंतु उनकी थोडी सी पर्यायोंको ही जान सकते हैं ॥

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें 'द्रव्येष्व' के स्थानमें 'सर्वद्रव्येष्व' है। शेष पाठ एक है अर्थ भी एकसा है क्योंकि हमारे यहां 'द्रव्येषु' का अर्थ सर्वद्रव्येषु किया है॥ उक्त सभाष्यमें इस सूत्रकी संख्या सत्ताईसवीं है क्योंकि हमारे यहांके इक्कीसवां सूत्रके सभाष्यमें दो सूत्र कर दिये हैं॥

(२) हमारे यहांकी बहुधा पुस्तकोंमें 'निबन्ध' शब्दका उल्लेख है किसी किसी प्रतिमें 'निबंध' है। अष्टाध्यायीके निम्न सूत्रोंसे निबंध भी ठीक है॥ पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ२१४में "निबन्ध, (पु॰) नि+बन्ध्+घञ्" ऐसा उल्लेख है अब प्रश्न यह है कि इस अपदान्त 'न्'का अनुस्वारमें कैसे परिवर्तन हुआ॥ अपदान्त म्-न्॥ "नश्चापदान्तस्य झलि" यह अष्टाध्यायीके आठवां अध्यायका तीसरे पादका चौबीसवां सूत्र है। इस सूत्रसे पहिलेका सूत्र 'मोऽनुस्वारः" तेईसवां है। इससे अनुस्वारकी अनुवृत्ति चौबीसवां सूत्रमें आती है। तब चौबीसवां सूत्रका रूप इसप्रकार होजाता है कि "नः च अपदान्तस्य झलि (अनुस्वारः)। च से तेईसवां सूत्रके मो (=मः) का आकर्षण होता है। इसलिये ऐसा रूप हुआ कि "नः॥ मः ॥ अपदान्तस्य ॥ झलि॥ अनुस्वारः॥ झलि प्रत्याहार है और उसमें झम्के मध्यके अक्षर झ सहित सर्व आजाते हैं। अर्थात् क् ख् ग् घ्। च् छ् ज् झ्। ट् ठ् ड् ढ्। त् थ् द् ध्। प् फ् ब् भ्। श् ष् स् ह्—झलिका अर्थ है इन चौबीस अक्षरोंके पहिले आने वाला। अपदान्त=विभक्ति या कारक जिसके अन्तमें नहो। सूत्रका अर्थ यह हुआ कि अपदान्त न् अथवा अपदान्त म् के स्थानमें अनुस्वार होवे यदि न् अथवा म् पूर्वोक्त चौबीस अक्षरोंमेंसे किसी अक्षरके पहिले हो। इसलिये निबन्धके न् का अनुस्वार होकर निबंध' होगया क्योंकि न् के पीछे ध् है॥ अन्य उदाहरण, जैसे यशान्स्+इ यशांसि, यह यशांसि, यश नपुंसक लिंगीका बहुवचन है यहां अपदान्त न् का अनुस्वार होगया, यशांसि का अर्थ है बहुत यश॥ आ+क्रम्+स्यते, क्रम धातुके म् का अनुस्वार होकर आक्रंस्यते (=वह पछाड़ेगा विजय, करेगा, जीतेगा) होगया॥ देखो टिप्पणी पृष्ठ ५ और ६, पृष्ठ ५४०, ५४१)

निबन्धन निबन्धः । कस्य विषयस्य । तद्विषयग्रहणं कर्तव्यम् । न कर्तव्यम् ॥ प्रकृतं विषयग्रहणं । क प्रकृतं ? विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्य इत्यतस्तस्यार्थवशाद्विभक्तिपरिणामो भवतीति विषयस्येत्यभिसम्बध्यते ॥ द्रव्येष्विति बहुवचननिर्देशः सर्वेषां जीवधर्माधर्माकाशकालपुद्गलानां संग्रहार्थः । तद्विशेषणार्थमसर्वपर्याय—

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित छब्बीसवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः अनुवाद

नम ,।। निबन्धः ।।	=लगाव (=निबन्धन, जो) है सो निबन्ध है अर्थात् विषयभूत सम्बन्ध है भावार्थ सूत्रमें निबन्ध शब्द है उसका अर्थ संबन्ध है और 'निबन्धनं निबन्ध' उस निबन्ध शब्दकी व्युत्पत्ति या व्याकरण की रीति से उत्पत्ति है या निकास है।
कस्य ।। विषयस्य ।।	=(प्रश्न) किसका (निबन्ध) (उत्तर) विषयका (निबन्ध) ॥ (प्रश्न) उस
विषय-ग्रहणं,।।। कर्तव्यम्।।।। तद् न॰ कर्तव्यम्,।।।	=विषय (शब्द) का ग्रहण (इस सूत्रमें) करना योग्य था। (उत्तर) नहीं करना योग्य था
विषय-ग्रहणं ।।। प्रकृतं ।।।	=विषय (शब्द) का ग्रहण (इस सूत्रमें) प्रकरण प्राप्त (=प्रकृतं) है
प्रकृतं ।।। क ? विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्य ।।	=(प्रश्न) प्रकरण प्राप्त कहां है। (उत्तर) 'विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्यः'
इति॰ अत॰ तस ।।	=ऐसा (वाक्य पचीसवां सूत्रमें) है। इस लिये तिस (विषय शब्द) के
अर्थ-वशात् ।।	=आशय या तात्पर्य के आश्रय से (अर्थात् जहां जैसा अर्थ लिया जाता है वहां वैसाही)
विभक्तिपरिणाम ।। भवति । इति॰	=विभक्तिका परिवर्तन या विपरिणाम या परिणमन होजाता है। ऐसे
विषयस्य ।।	=(इस सूत्रके मतिश्रुतयोः और निबन्ध शब्दोंके बीचमें) विषयस्य
इति॰ अभिसम्बध्यते । द्रव्येषु ।।। इति॰	=ऐसा (पद) लगाया गया है या जोड़ा गया है। द्रव्येषु (=द्रव्योंके विषै) ऐसा
बहुवचन निर्देश ,। सर्वेषाम् ।।	=बहुवचनका बतलाने वाला या बहुवचनका निर्देशक (वाक्य) सब
जीव-धर्म-अधर्म आकाश-काल-पुद्गलानाम्।। संग्रह	=जीवद्रव्य, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, कालद्रव्य पुद्गलोंके समुच्चयके
अर्थः ।। तद्-विशेषण-अर्थम् ।।। असर्वपर्याय—	=अर्थ है। उन (द्रव्यों) के विशेषणके लिये असर्वपर्याय (वाक्य) का

ग्रहणम् ॥ तानि द्रव्याणि मतिश्रुतयोर्विषयभावमापद्यमानानि कतिपयैरेव पर्यायैर्विषयभावमास्कन्दन्ति न सर्वपर्यायैरनन्तैरपीति ॥ अत्राह–धर्मास्तिकायादीन्यतीन्द्रियाणि तेषु मतिज्ञानं न प्रवर्तते । अत• सर्वद्रव्येषु मतिज्ञान वर्तत इत्युक्तम् ॥ नैष दोषः । अनिन्द्रियाख्यं करणमस्ति तदालम्बनो नोइन्द्रियावरणक्षयोपशमलब्धि पूर्वक उपयोगोऽवग्रहादिरूप प्रागेव–

ग्रहणम् ;॥	=ग्रहण है अर्थात् द्रव्येषु शब्द विशेष्य है और असर्वपर्यायेषु विशेषण है
तानि;॥ द्रव्याणि;॥ मतिश्रुतयोः;॥ विषयभावम्॰।	=वे द्रव्य मति श्रुतज्ञानके विषय भावको
आपद्यमानानि ;॥ कतिपयैः ;॥ एव॰ पर्यायैः ;॥	=प्राप्त हुये (अपने अपने) कितनेकही पर्यायोंकरि
विषयभावम् ;॥ आस्कन्दन्ति T न॰	=विषयभावकों प्राप्त होवे हैं न कि
सर्वपर्यायैः ;॥ अनन्तैः ;॥ अपि॰ इति॰	=अनन्त सब पर्यायों सहित ही (=अपि) (मतिश्रुतज्ञानके विषय भावको प्राप्त होवे हैं)
	सारांश–मतिज्ञान श्रुतज्ञान सब द्रव्यों की कुछ ही पर्यायोंको विषय करते हैं सर्व था अनंत पर्यायोंको विषय नहीं करते हैं ॥
अत्र॰ आह T धर्मास्तिकायादीनि ;॥	=यहां प्रश्न करता है (=आह) कि धर्मास्तिकाय आदिक (अधर्म आकाश काल मोक्षजीव)
अतीन्द्रियाणि ;॥	=अतीन्द्रिय (पदार्थ) हैं अर्थात् इन पदार्थोंको इन्द्रियें ग्रहण नहीं कर सकती हैं
तेषु ,॥ मतिज्ञानम् ;॥ न॰ प्रवर्तते T	=तिन (धर्मास्तिकायादिक) में मतिज्ञान (जो इन्द्रियों द्वारा होता है) नहीं प्रवर्तता है
अतः॰ सर्वद्रव्येषु ;॥ मतिज्ञानम् ;॥ वर्तते T	=इसलिये सब (छहो) द्रव्योंमें मतिज्ञान प्रवर्तता है
इति॰ अयुक्तम् ;॥ न॰ एषः ;॥ दोषः ;॥ अनिन्द्रिय-	=ऐसा (कथन) ठीक नहीं है। (उत्तर) यह दूषण नहीं है। (क्योंकि) मन (अनिन्द्रिय)
आख्यम् ;॥ करणम् ;॥ अस्ति T तद्	=नामा (=आख्य) (अंतरंग) करण वा इन्द्रिय है (द्रव्यमन है) उस (मन) के
आलम्बनः ;॥	=निमित्तक वा कारणक (तद्-आलम्बन अर्थात् मन है निमित्त वा हेतु जिसको ऐसा)
नो-इन्द्रिय-आवरण-क्षयोपशम-लब्धि-पूर्वकः ;॥	=मन(नोइन्द्रिय)ज्ञानावरणकर्मके क्षयोपशमकी प्राप्तिपूर्वक(लब्धिहै निमित्त जिसको ऐसा)
उपयोगः ;॥ अवग्रह-आदिरूपः ;॥ प्राक्॰ एव॰	=उपयोग (है सो) अवग्रह-ईहा-आवाय-धारणा (चतुष्टय) स्वरूप पहिले ही

निबन्धन निबन्ध । कस्य विषयस्य। तद्विषयग्रहणं कर्तव्यम्। न कर्तव्यम् ॥ प्रकृतं विषयग्रहण। क प्रकृतं ? विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्य इत्यतस्तस्यार्थवशाद्विभक्तिपरिणामो भवतीति विषयस्येत्यभिसम्बध्यते ॥ द्रव्येष्विति बहुवचननिर्देश सर्वेषा जीवधर्माधर्माकाशपुद्गलाना सग्रहार्थ. । तद्विशेषणार्थमसर्वपर्याय—

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित छव्वीसवा सूत्रपर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः अनुवाद

निबन्धनम् ,।। निबन्धः ,।	=लगाव (=निबन्धन, जो) है सो निबन्ध है अर्थात् विषयभूत सम्बन्ध है भावार्थ सूत्रमें निबन्ध शब्द है उसका अर्थ संबन्ध है और 'निबन्धनं निबन्ध' उस निबन्ध शब्दकी व्युत्पत्ति या व्याकरण की रीति से उत्पत्ति है या निकास है।
कस्य ,। विषयस्य ,।	=(प्रश्न) किसका (निबन्ध) (उत्तर) विषयका (निबन्ध) ॥ (प्रश्न) उस
विषय-ग्रहणं,।। कर्तव्यम्,।। तत् न॰ कर्तव्यम्,।।।	=विषय (शब्द) का ग्रहण (इस सूत्रमें) करना योग्य था। (उत्तर) नहीं करना योग्य था
विषय-ग्रहणं ,।। प्रकृतं ,।।	=विषय (शब्द) का ग्रहण (इस सूत्रमें) प्रकरण प्राप्त (=प्रकृतं) है
प्रकृतं ,।। क ? विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्यः ,।	=(प्रश्न) प्रकरण प्राप्त कहां है। (उत्तर) 'विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्यः'
इति॰ अतः॰ तस्य ,।	=ऐसा (वाक्य पचीसवां सूत्रमें) है। इस लिये तिस (विषय शब्द) के
अर्थ-वशात् ,।	=आशय या तात्पर्य के आश्रय से (अर्थात् जहां जैसा अर्थ लिया जाता है वहां वैसाही)
विभक्तिपरिणाम ,। भवति T इति॰	=विभक्तिका परिवर्तन या विपरिणाम या परिणमन होजाता है। ऐसे
विषयस्य ,।	=(इस सूत्रके मतिश्रुतयोः और निबन्ध शब्दोंके बीचमें) विषयस्य
इति॰ अभिसम्बध्यते T द्रव्येषु ,।। इति॰	=ऐसा (पद) लगाया गया है या जोड़ा गया है। द्रव्येषु (=द्रव्योंके विषें) ऐसा
बहुवचन-निर्देश ,। सर्वेषाम् ,।	=बहुवचनका बतलाने वाला या बहुवचनका निर्देशक (वाक्य) सब
जीव-धर्म-अधर्म-आकाश-काल-पुद्गलानाम्,। संग्रह	=जीवद्रव्य, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, कालद्रव्य पुद्गलोंके समुच्चयके
अर्थः ,। तत्-विशेषण-अर्थम् ,।। असर्वपर्याय—	=अर्थ है। उन (द्रव्यों) के विशेषणके लिये असर्वपर्याय (वाक्य) का

ग्रहणम् ॥ तानि द्रव्याणि मतिश्रुतयोर्विषयभावमापद्यमानानि कतिपयैरेव पर्यायैर्विषयभावमास्कन्दन्ति न सर्वपर्यायैरनन्तैरपीति ॥ अत्राह–धर्मास्तिकायादीन्यतीन्द्रियाणि तेषु मतिज्ञानं न प्रवर्तते । अतः सर्वद्रव्येषु मतिज्ञानं वर्तत इत्युक्तम् ॥ नैष दोषः । अनिन्द्रियाख्यं करणमस्ति तदालम्बनो नोइन्द्रियावरणक्षयोपशमलब्धिपूर्वक उपयोगोऽवग्रहादिरूप प्रागेव–

ग्रहणम् ॥	=ग्रहण है अर्थात् द्रव्येषु शब्द विशेष्य है और असर्वपर्यायेषु विशेषण है
तानि ॥ द्रव्याणि ॥ मतिश्रुतयोः ॥ विषयभावम् ।	=वे द्रव्य मति श्रुतज्ञानके विषय भावको
आपद्यमानानि ॥ कतिपयैः ॥ एव पर्यायैः ॥	=प्राप्त हुये (अपने अपने) कितनेकही पर्यायोंकरि
विषयभावम् ॥ आस्कन्दन्ति । न	=विषयभावको प्राप्त होते हैं न कि
सर्वपर्यायैः ॥ अनन्तैः ॥ अपि इति	=अनन्त सब पर्यायों सहित ही (=अपि) (मतिश्रुतज्ञानके विषय भावको प्राप्त होते हैं)
	सारांश—मतिज्ञान श्रुतज्ञान सब द्रव्यों की कुछ ही पर्यायोंको विषय करते हैं सर्व या अनंत पर्यायोंको विषय नहीं करते हैं ॥
अत्र आह । धर्मास्तिकायादीनि ॥	=यहां प्रश्न करता है (=आह) कि धर्मास्तिकाय आदिक (अधर्म आकाश काल मोक्षजीव)
अतीन्द्रियाणि ॥	=अतीन्द्रिय (पदार्थ) हैं अर्थात् इन पदार्थोंको इन्द्रियें ग्रहण नहीं कर सकती हैं
तेषु ॥ मतिज्ञानम् ॥ न प्रवर्त्तते ।	=तिन (धर्मास्तिकायादिक) में मतिज्ञान (जो इन्द्रियों द्वारा होता है) नहीं प्रवर्त्तता है
अतः सर्वद्रव्येषु ॥ मतिज्ञानम् ॥ वर्तते ।	=इसलिये सब (छहो) द्रव्योंमें मतिज्ञान प्रवर्त्तता है
इति अयुक्तम् ॥ न एषः ॥ दोषः ॥ अनिन्द्रिय-	=ऐसा (कथन) ठीक नहीं है । (उत्तर) यह दूषण नहीं है । (क्योंकि) मन (अनिन्द्रिय)
आख्यम् ॥ करणम् ॥ अस्ति । तत्	=नामा (=आख्यं) (अंतरंग) करण या इन्द्रिय है (द्रव्यमन है) उस (मन) के
आलम्बनः ॥	=निमित्तक या कारणक (तत्-आलम्बन अर्थात् मन है निमित्त या हेतु जिसको ऐसा)
नोइन्द्रिय आवरण-क्षयोपशम-लब्धि-पूर्वकः ॥	=भाव(नोइन्द्रिय)ज्ञानावरणकर्मके क्षयोपशमकी प्राप्तिपूर्वक(लब्धिहै निमित्त जिसको ऐसा)
उपयोगः ॥ अवग्रह-आदिरूपः ॥ प्राक् एव	=उपयोग (है सो) अवग्रह-ईहा-आवाय-धारणा (चतुष्टय) स्वरूप पहिले ही

उपजायते ततस्तत्पूर्वं श्रुतज्ञानं तद्विषयेषु स्वयोग्येषु व्याप्रियते ॥ अथ मतिश्रुतयोरनन्तरनिर्देशार्हस्यावधेः को विषयनिबन्ध इत्यत आह -

उपजायते ७ ततः० तत्	=उपजता है । पश्चात् (ततःदेखो वैद्य कोश पृष्ठ ३००) उस (अवग्रह आदिरूप उपयोग) के
पूर्वम् १।१	=निमित्तक (अर्थात् अवग्रह-ईहा अवाय-धारणारूप उपयोग है कारण जिसको ऐसा)
श्रुतज्ञानम् १।१ स्वयोग्येषु ७।३ तद्	=श्रुतज्ञान अपने योग्य उन धर्मास्तिकाय अतीन्द्रिय पदार्थों) के
विषयेषु ७।३ व्याप्रियते ७	=विषयोंमें (अर्थात् ग्रहण करनेमें) प्रवर्तता है ॥ सारांश यह है — प्रश्न करनेपर कि धर्मास्तिकाय पदार्थ इन्द्रिय गोचर नहीं है इन्द्रियोंकी अपेक्षा रखने वाले मतिज्ञानकी उनके जानने में प्रवृत्ति नहीं हो सक्ती इसलिये सब द्रव्यों को मतिज्ञान जानता है, यह कहना ठीक नहीं है उत्तरमें कहते हैं कि धर्मास्तिकाय आदि पदार्थोंके ज्ञानमें मन कारण है श्रुतज्ञानावरण (=नोइन्द्रियज्ञानावरण) कर्मकी क्षयोपशम लब्धिरूप विशुद्धिके रहनेपर उससे धर्मास्तिकाय आदि अतीन्द्रिय पदार्थों का अवग्रह ईहा अवाय धारणा स्वरूप उपयोग प्रथम ही होलेता है उसके पीछे श्रुतज्ञान की अपने योग्य धर्मास्तिकाय अतीन्द्रिय विषयोंमें प्रवृत्ति होती है इसलिये धर्मास्तिकाय आदि अतीन्द्रिय पदार्थोंका ज्ञान जब मनसे होता है तब यह मतिज्ञान नहीं है क्योंकि मनसे भी मतिज्ञान होता है ॥
अथ० मतिश्रुतयोः ६।२ अनन्तर	=अब मतिज्ञान और श्रुतज्ञानके निकट अथवा लगताही
निर्देश-अर्हस्य ६।१ अवधेः ६।१ कः १।१	=निरूपण या कथन करने (=निर्देश) योग्य (=अर्हस्य) अवधिज्ञानके क्या
विषयनिबन्धः १।१ इति० अतः० आह ७	=विषयका नियम है ऐसा (प्रश्न) है ॥ इसलिये कहते हैं कि

(१) "तत्पूर्वं" समासमें 'पूर्व'शब्दका प्रयोग उसही भांति है जैसेकि 'श्रुतमति पूर्व द्व्यनेक द्वादश भेदम्' सूत्रमें अर्थात् पूर्वम् — पूर्वकम्.
(२) व्याप्रियते – पृ तुदादि छठे गणका यहां पर अकर्मक आत्मने पदी धातु है इसके साथ क्रमशः वि, आ (अर्थात् व्या) उपसर्ग आते हैं पृ का प्रिय् हो जाता है व्या और छठे गणका 'अ' विकरण जोड़नेसे 'व्याप्रिय' हो जाता है पश्चात् एकवचन अन्य पुरुष आत्मने पदी वर्तमान कालका 'ते' प्रत्यय लगाकर कर्तरिप्रयोगमें "व्याप्रियते" बनता है । कर्मणिप्रयोग में 'पृ' का 'प्रि' होजाता है 'य' कर्मणिप्रयोगका प्रत्यय जोड़ो, व्या+प्रिय, पीछे क्रम 'ते' जोड़ो व्याप्रियते हो जाता है । यहां वृत्ति में कर्तरि प्रयोग में इस शब्द का काम है ।

रूपिष्ववधेः ॥ २७ ॥

विषयनिबन्ध इत्यनुवर्तते ।

रूपिष्ववधेः =रूपिषु (असर्व-पर्यायेषु) अवधे (विषय निबन्ध भवति)

रूपिषु ,। असर्व-पर्यायेषु ,। =मूर्तीक (पदार्थ) निके (थिंयें) कितनेक या थोड़े (नकि सब) पर्यायों में,

अवधेः ।। विषय निबन्धः ,। भवति T =अवधि ज्ञानके विषयका सम्बन्ध होता है सारांश यह है कि, पुद्गल द्रव्यके अनंते पर्याय, अवधिज्ञानके विषयभूत नहींहैं किन्तु उसके कतिपय पर्यायोंको और जीवके औदयिक औपशमिक क्षायोपशमिक परिणामोंको ही (अवधिज्ञान) विषय करताहै क्योंकि रूप रस गंध स्पर्श विशिष्टही पदार्थ अवधिज्ञानके विषय होते हैं अतः, जीवके क्षायिक और, पारिणामिक भाव तथा धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, आकाशद्रव्य, कालद्रव्य अरूपीपदार्थ होनेके, निमित्त अवधिज्ञान के विषयभूत नहीं होसकते

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सत्ताईसवा सूत्र पर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः हिन्दी, अनुवाद,

विषयनिबन्ध' ;। इति* अनुवर्तते T =विषयका निबन्ध, ऐसी अनुवृत्ति (इस सूत्रमें) पच्चीसवां और। छबीसवा सूत्रसे यथासंख्य आतीहै तबसूत्र "रूपिष्ववधेः विषयनिबन्धः" ऐसा हुआ

(१) रूपमें रूप रस गंध स्पर्शका ग्रहण समझना चारोंही अविनाभावी हैं, अत एकके ग्रहणसे चारोंका ग्रहण होता है। तल-पितर के भांति शब्द है।
(२) इस सूत्रका का पाठ हमारे यहां सर्वत्र और श्वेताम्बर अम्नायके समान्य तत्त्वार्थअधिगमसूत्रमें एकही और अथमी दोनों सम्प्रदायमें एकसा है।
(३) 'रूपिष्ववधेः' सूत्रमें रूपशब्द उपलक्षण है। इसलिये रूप शब्दके कहनेसे उसके अविनाभावी (=जुदे न रह सकने वाले) रस गंध स्पर्शका भी ग्रहण है। "अजहत्स्वार्थलक्षणयाऽन्यग्राहकम्", उपलक्षणम्। अजहत्स्वार्थलक्षणया (=अपने अर्थका न छोड़कर), जा दूसरे पदार्थों का ग्रहण करावै उसका नाम उपलक्षणहै जिस प्रकार 'काकेभ्यो दधि रक्ष्यतां' कागोंसे दहीकी रक्षा करो। यहां पर काक शब्द उपलक्षण है इसलिये जितने भी जीव दहीके विघातक है, उन सबका काक शब्दसे ग्रहण है, उसी प्रकार प्रकृतमें रूप शब्दको उपलक्षण माननेसे। जितने उस रूपके अविनाभावी रस गंध स्पर्श गुणहैं उन सबका रूप शब्दसे ग्रहण है ॥

उपजायते ततस्तत्पूर्वं श्रुतज्ञान तद्विषयेषु स्वयोग्येषु व्याप्रियते ॥ अथ मतिश्रुतयोरनन्तरनिर्देशार्हस्यावधेः को विषयनिबन्ध इत्यत आह -

उपजायते ॥ ततः॥ तत् =उपजता है। पश्चात् (ततःदेखो जैन कोश पृष्ठ ३००) उस (अवग्रह आदिरूप उपयोग) के

पूर्वम् ॥ =निमित्तक (अर्थात अवग्रह-ईहा अवाय-धारणारूप उपयोग है कारण जिसको ऐसा)

श्रुतज्ञानम् ॥ स्वयोग्येषु ॥ तद् =श्रुतज्ञान अपने योग्य उन धर्मास्तिकाय अतीन्द्रिय पदार्थों) के

विषयेषु ॥ व्याप्रियते ॥ =विषयोंमें (अर्थात ग्रहण करनेमें) प्रवर्तता है ॥ सारांश यह है :— प्रश्न करनेपर कि धर्मास्तिकाय पदार्थ इन्द्रिय गोचर नहीं है इन्द्रयोंकी अपेक्षा रखने वाले मतिज्ञानकी उनके जानने में प्रवृत्ति नहीं हो सकती इसलिये सब द्रव्यों को मतिज्ञान जानता है, यह कहना ठीक नहीं है उत्तरमें कहतेहैं कि धर्मास्तिकाय आदि पदार्थोंके ज्ञानमें मन कारण है श्रुतज्ञानावरण (=नोइन्द्रियज्ञानावरण) कर्मकी क्षयोपशम लब्धिरूप विशुद्धिके रहनेपर उससे धर्मास्तिकाय आदि अतीन्द्रिय पदार्थों का अवग्रह ईहा अवाय धारणा स्वरूप उपयोग प्रथम ही होलेता है उसके पीछे श्रुतज्ञान की अपने योग्य धर्मास्तिकाय अतीन्द्रिय विषयोंमें प्रवृत्ति होती है इसलिये धर्मास्तिकाय आदि अतीन्द्रिय पदार्थोंका ज्ञान जब मनसे होता है तब यह मतिज्ञान नहीं है क्योंकि मनसे भी मतिज्ञान होता है ॥

अथ॥ मतिश्रुतयोः ॥ अनन्तर =अब मतिज्ञान और श्रुतज्ञानके निकट अथवा लगातार

निर्देश-अर्हस्य ॥ अवधेः ॥ कः ॥ =निरूपण या कथन करने (=निर्देश) योग्य (=अर्हस्य) अवधिज्ञानके क्या

विषयनिबन्धः ॥ इति॥ अतः॥ आह ॥ =विषयका नियम है ऐसा (प्रश्न) है ॥ इसलिये कहते हैं कि

(१) "तत्पूर्वं" शब्दमें 'पूर्व'शब्दका प्रयोग उसकी भांति है जैसाकि 'श्रुतमति पूर्वं द्व्यनेक द्वादश भेदम्' सूत्रमें अर्थात् पूर्वम् = पूर्वकम्

(२) व्याप्रियते— पृ तुदादि छठे गणका यहां पर अकर्मक आत्मने पदी धातु है इसके साथ पहुंचा वि आ (अर्थात् व्या) उपसर्ग आते हैं पृ का प्रियृ हो जाता है व्या और छठे गणका 'अ' विकरण जोड़नेसे 'व्याप्रिय' होजाता है पश्चात् एकवचन अन्य पुरुष आत्मने पदी वर्तमान कालका 'ते' प्रत्यय लगाकर कर्तृक्रियामें "व्याप्रियते" बनता है। कर्मणिप्रयोग में 'पृ' का 'प्रि' होजाता है 'य' कर्मणिप्रयोगका प्रत्यय जोड़ो व्या+प्रिय, पीछे तप 'ते' जोड़ो व्याप्रियते हो जाता है ॥ यहां वृत्ति में कर्तरि प्रयोग में इस शब्द को काम में लिया है।

तदनन्तभागे मनःपर्ययस्य ॥ २८ ॥

* यदेतद्रूपिद्रव्यं सर्वावधिज्ञानविषयत्वेन समर्थितं तस्यानन्तभागीकृतस्यैकस्मिन्भागे मनःपर्ययः प्रवर्तते ॥ *

अथान्ते यन्निर्दिष्टं केवलज्ञानं तस्य को विषयनिबन्ध इत्यत आह—

सूत्रम्—तदनन्तभागे मनःपर्ययस्य =तदनन्तभागे मनःपर्ययस्य (विषयस्य निबन्धः भवति)

तद् अनन्तभागे ,। मनःपर्ययस्य ;। =उस (सर्वावधिज्ञेय) के अनंतवां अंश (सूक्ष्मतर) में मनः पर्यय ज्ञानके विषयस्य ;। निबन्धः ;। भवति T =विषयका सम्बन्ध है भावार्थ जो परमावधिज्ञानके विषयभूत पुद्गल स्कन्धमें अनन्तका भाग दीजिये तो एक परमाणु मात्र सर्वावधिका विषय होय है बहुरि तिसमें अनन्तका भाग दीजिये तब ऋजुमति मनः पर्ययज्ञानका विषय होवाहै तिसमेंभी अनन्तका भाग दें तब विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानका विषय होता है (पं० जयचंद जी)

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित अट्ठाईसवा सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दश अनुवाद

(२)यद् ।॥ एतद्,।॥ रूपिद्रव्यम् सर्वावधिज्ञानविषयत्वेन;।॥ =जो यह रूपी पदार्थ सर्वावधिज्ञानका विषय होने से

समर्थितम् ;॥ तस्य ;॥ =समर्थन किया है या सिद्ध किया है। तिस (सर्वावधिके विषयभूतरूपी पदार्थ) के

अनन्तभागीकृतस्य ;॥ एकस्मिन् ,। भागे ,। =अनन्त भाग किये जायं तो उसके एक अंश में

मनः पर्ययः ;। प्रवर्तते T ॥ अथ* अन्ते ;। =मनः पर्यय (ज्ञान) प्रवर्तता है। अब अन्त में

यत् ;॥ निर्दिष्टम् ,॥ केवलज्ञानम् ,॥ तस्य ;॥ =कथित (=निर्दिष्ट) जो (=यत्) केवलज्ञान है तिस (केवलज्ञान) के

विषय-निबन्धः ,। कः ;। इति* अतः* आह T =विषयका नियम क्या है। इस लिये (आचार्य) कहते हैं कि

---

(१) श्वेताम्बर आम्नायके समा०१०में 'मनःपर्ययस्य'के स्थानमें 'मनःपर्यायस्य' है। शब्द पाठ और अर्थभी दोनों आम्नायोंमें एकसा है ॥ मनःपर्ययस्य;।

(२) अवधर्मेन। पर्ययस्य सूक्ष्मविषयत्वदर्शनार्थं सूत्रमिदं न तु विषयनिबन्धनार्थम्। यतो मनःपर्ययस्यावधिविषयानन्तभागेऽप्यन्यत्रापि वृत्तिरस्ति प्रवर्तते इति पाठान्तरम् ॥ सर्वार्थसिद्धिकी छिती गाटुसिमें "इति पाठान्तरम्" के स्थानमें "इत्यप्यधिकः पाठः" ऐसा वाक्य है ॥ ऐसा अधिक पाठ भी है ॥

अवधेः ;। मनः पर्ययस्य ;। सूक्ष्मविषयत्व दर्शन- =अवधि (ज्ञान) से मनः पर्यय (ज्ञान) का सूक्ष्म विषयताके समझानेके या बताने के

अर्थम् ;॥ सूत्रम् ।॥ इदम् ।॥ न* तु* विषयनिबन्ध-अर्थम् ;॥ =लिये (अर्थम्) यह सूत्र है किन्तु (=तु) विषयकी हदता या सीमाके लिये नहीं है

रूपिष्वित्यनेन पुद्गलाः पुद्गलद्रव्यसम्बन्धाश्च जीवाः परिगृह्यन्ते । रूपिष्वेवावधेर्विषयनिबन्धो नारूपेष्विति नियमः क्रियते । रूपिष्वपि भवन्न सर्वपर्यायेषु स्वयोग्येष्वेवेत्यवधारणार्थमसर्वपर्यायेष्वित्यभिसम्बध्यते ॥ अथ तदनन्तरनिर्देशभाजो मनःपर्ययस्य को विषयनिबन्ध इत्यत आह—

रूपिषु ,। इति॰ अनेन ।। पुद्गलाः ,। च॰ पुद्गलद्रव्य-सम्बन्धाः ,। जीवाः ,। परिगृह्यन्ते T रूपिषु ,। एव॰ अवधेः ,। विषयनिबन्धः ,। न॰ अरूपिषु ।।	=रूपी (पदार्थ) निमें ऐसे इस (शब्द) करि पुद्गल और पुद्गल द्रव्यके =संयोगी जीव लिये गये हैं या ग्रहण किये गये हैं । रूपी (पदार्थ) निमें ही =अवधिज्ञानके विषयका (सम्बन्ध) है न कि अमूर्तियों में
इति॰ नियमः ।। क्रियते T रूपिषु ।। अपि॰ भवत्।। न॰ सर्वपर्यायेषु ।। स्वयोग्येषु ,। एव॰	=ऐसा नियम कियागया है। रूपी (पदार्थ) निमेंभी (अवधिज्ञानका विषय) होता हुआ =असमस्त (कितनेक) पर्यायोंमें अपने योग्यही है अर्थात् पुद्गल द्रव्यके कतेकपर्यायों में और पुद्गल संयोगी जीवके औदयिक औपशमिक क्षायोपशमिक परिणामों को ही अवधिज्ञान को विषय करनेकी योग्यता है (देखो सूत्रार्थ पृष्ठ ४७१)
इति॰ अवधारण-अर्थम् ।।। असर्वपर्यायेषु ।।	=ऐसा निश्चय करने के लिये (=अवधारण-अर्थम्) असर्वपर्यायेषु
इति॰ अभिसम्बध्यते T	=ऐसा (वाक्य सूत्रमें) लगाया गया है अर्थात् विषय शब्दकी अनुवृत्ति पचीसवां और 'निबन्ध' शब्दकी और 'असर्वपर्यायेषु' वाक्यकी अनुवृत्ति छब्बीसवां सूत्रसे लीगई तब सूत्र ऐसा हुआ कि 'असर्वपर्यायेषुरूपिष्ववधेः विषयस्तनिबन्धः'
अथ॰ तद् अनन्तर निर्देशभाजः ।।	=अब उस (अवधिज्ञान) के लगता ही (=अनन्तर) कहने योग्य (=निर्देशभाजः)
मनः पर्ययस्य ,। विषयनिबन्धः ।। कः।। इति अतः आह	=मनः पर्यय (ज्ञान) के विषयका नियम क्या है इसलिये कहते हैं कि

(१) 'भवत्'-'भू' धातुका वर्तमान कृदन्त है। बहुधा वर्तमान कृदन्त ऐसे बनाये जाते हैं कि धातुका वह रूप लेओ जो अन्यपुरुष बहुवचन वर्तमान कालके प्रत्यय लगने से पहिले बन जाता है। इसके पश्चात् वर्तमान कृदन्तका अत् यदि धातु परस्मैपदमें हो और (वर्तमान कृदन्तका) मान प्रत्यय यदि धातु आत्मने पदमें हो जोड़ा जाय। अब भू को गुणसंज्ञा भो हुआ भव् हुआ प्रथम गणका अ विकरण लगाने से भव हुआ अत् जोड़ने से भव+अत् हुआ, यदि प्रत्यय के आरम्भमें अ हो तो उससे पहला 'अ' गिरा देते हैं अतः भवत् हुआ ॥

सर्वेषु द्रव्येषु सर्वेषु पर्यायेष्विति ॥ जीवद्रव्याणि तावदनन्तानन्तानि, पुद्गलद्रव्याणि च ततोऽप्यनन्तानन्तानि अणुस्कन्धभेदेन भिन्नानि, धर्माधर्माकाशानि त्रीणि, कालश्चासंख्येयः

इति॰ सर्वेषु ॥॥ द्रव्येषु ॥॥ सर्वेषु ॥ पर्यायेषु ॥ =इस प्रकार समस्त द्रव्यों की ॥ पर्यायोंमें (केवलज्ञानके विषयका नियम) है

तावत्॰ जीव द्रव्याणि ॥॥ अनन्तानन्तानि ॥ च॰ =प्रथम (=तावत्) जीव द्रव्य ... त नन्त हैं और (=च)

पुद्गलद्रव्याणि ॥॥ ततः॰ अपि॰ अनन्तानन्तानि॥॥=पुद्गलद्रव्यों उन (जीवों) से भी (=ततः अपि) अनन्तानन्तगुणे

अणुस्कन्धभेदेन ॥ भिन्नानि ॥॥ धर्म-अधर्म- =अणु स्कन्धके भेदकरि जुदे जुदे या पृथक् पृथक् हैं । धर्म द्रव्य, अधर्मद्रव्य

आकाशानि॥॥ त्रीणि॥॥ च॰ कालः॥ असंख्येयः॥ =और आकाशद्रव्य तीन हैं अर्थात् ये तीन एक एक द्रव्य हैं और काल असंख्यात हैं

अर्थात् "कालद्रव्यके कालाणु असंख्यात द्रव्य हैं" ये गिने जाने योग्य नहीं हैं

(१) लोगागासपदेसे एक्केक्के जे ठिया हु एक्केक्का ॥ रयणाणं रासी इव ते कालाणू मुणेयव्वा ॥१॥ इति गाथोक्त प्रकारेण कालद्रव्यस्याणुरूपत्वमात्रत्वं धर्माधर्माकाशानामनेकप्रदेशत्वेऽपि लक्षणात्मकत्वाभावादेकैकत्वमवबोद्धव्यम्

लोगागास-पदेसे ॥ एक्केक्के ॥ जे ॥ (=लोकाकाश-प्रदेशे॥ एकैकस्मिन्॥ ये॥) =लोकाकाशके एक एक प्रदेशामें जे

ठिया ॥ हु॰ एक्केक्का ॥ रयणाणं ॥॥ (स्थिताः ॥ हि॰ एकैकाः ॥ रत्नानाम् ॥॥) =एक एक ही (हु=खलु) स्थित हैं । रत्नोंकी

रासी ॥ इव॰ (राशिः ॥ इव॰) =राशि या समूहके सदृश (परस्पर भिन्न भिन्न)

ते कालाणू मुणेयव्वा (ते ॥ काल-अणवः ॥ मन्तव्याः ॥) =ये कालके अणू समझना चाहिये ॥ ये असंख्यद्रव्य हैं

इति॰ गाथा-उक्त-प्रकारेण ॥ कालद्रव्यस्य ॥॥ अणुरूपत्वात् ॥॥ =ऐसे गाथा में कहे हुये भेद करि कालद्रव्य के अणुरूप होने से

मात्रत्वम् ॥॥ धर्म-अधर्म-आकाशानाम् ॥ अनेक-प्रदेशत्वे ॥॥ =अनेकता है । (परन्तु धर्म अधर्म आकाशद्रव्यों के बहुत प्रदेश होने पर

अपि लक्षणात्मक-अभावात् ॥ एकैकत्वम् ॥॥ अवबोद्धव्यम् ॥ =भी लक्षण नहोने (के हेतु) से पृथक् पृथक् पना जानना चाहिये ।

भावार्थ—जिस प्रकार रत्नोंका ढेर एकत्र होनेपर भी उसमें प्रत्येक रत्न जुदाही वैसेही कालके अणु जुदे जुदे एकके पश्चात् एक लोकाकाशके के प्रत्येक प्रदेश पर एक एक कर क्रमसे तिष्ठे हुए परन्तु धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य और आकाशद्रव्य के असंख्यात असंख्यात प्रदेशहैं ये प्रदेश ऐसें मिले हुये हैं कि कभी जुदे जुदे नहीं होसकते हैं इससे ये तीनों एक एक द्रव्य ही हैं । धर्म द्रव्य अधर्म द्रव्य सम्पूर्ण लोकमें तिलमें तेल की भांति व्यापते और आकाशके जिन प्रदेशोंमें स्थित है उनहीं प्रदेशोंमें स्थितरहते हैं इसके प्रदेश अकम्प हैं ॥ देखो सर्वार्थसिद्धि टीका अध्याय ५ सूत्र १९ पर

सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य ॥ २९ ॥

द्रव्याणि च पर्यायाश्च द्रव्यपर्याया इति इतरेतरयोगलक्षणो द्वन्द्वः ॥ तद्विशेषणं सर्वग्रहणं प्रत्येकमभिसम्बध्यते

सूत्रम्–सर्वद्रव्यपर्यायेषुकेवलस्य	=सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य (विषयस्य निबन्धः भवति)
सर्वद्रव्यपर्यायेषु ;। केवलस्य ;॥ विषयस्य ;।	=सम्पूर्ण द्रव्योंकी सम्पूर्ण पर्यायोंमें केवलज्ञानके विषयका
निबन्धः ;। भवति T	=नियम है भावार्थ एक एक द्रव्यकी त्रिकालवर्ती अनन्तानंत पर्यायें हैं सो छहों द्रव्योंकी समस्त अवस्थाओंको केवलज्ञान युगपत् एक साथ जानता है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित उनतीसवा सूत्र पर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दश अनुवाद

द्रव्याणि,॥ च॰ पर्यायाः,। च॰ द्रव्यपर्याया ;। इति॰	=द्रव्यें और पर्यायें (मिलकर) 'द्रव्य पर्यायाः' ऐसा वाक्य
इतरेतरयोगलक्षणः,। द्वन्द्वः ।।	=परस्पर (इतरेतर) योगलक्षणवाला या अन्योन्ययोग नामका द्वन्द्व समास है
तद्-विशेषणम् ,।॥ सर्वग्रहणम् ,।॥	=उस (द्रव्यपर्याया द्वन्द्व समास) का विशेषण "सर्व" (ऐसे शब्द) का ग्रहण
प्रत्येकम्॰ अभिसम्बध्यते T	=प्रत्येक (द्रव्य शब्द और पर्याय शब्द) पर लगाया गया है (=अभिसम्बध्यते)

यतः॰ मनः पर्ययस्य।। अवधि विषय अनन्त-	=क्योंकि (=यतः) मनः पर्यय ज्ञानका (विषय) अवधिके विषयसे अनन्तवां
भागे।। अन्यत्र॰ अपि॰ दर्शिता।।॥ वृत्ति।॥	=भागमें है । दूसरे स्थानमें भी (इस संस्कृत सर्वार्थसिद्धिकी) प्रकाशित वृत्ति में
प्रवर्तते T इति॰ पाठ अन्तरम्।॥इत्यधिक पाठः	=प्रवर्तता है या विद्यमान है (देखा पृष्ठ ५८में वृत्तिसूत्र२४की) ऐसा अन्य पाठ है ॥ (अन्य अर्थ) क्योंकि मनः पर्ययज्ञानकी प्रवृत्ति (=वृत्ति) अवधिज्ञानके ज्ञेयके अनन्तवां भागमें तथा (=अपि) अवधिज्ञानके ज्ञेयसे भिन्न वस्तुओंमें भी (अन्यत्र) (आगम में) बताई गई है (=दर्शिता)। ऐसा अन्य पाठ है। ऐसा अधिक पाठ भी है

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों सम्प्रदायोंमें एक है ॥ (२) द्रव्यके अवस्था विशेष धर्मोंका नाम पर्याय है द्रव्यकी अवस्था विशेष जो हैं सो पर्याय है। स्वपर्यायान् द्रवति द्रूयते वा तैः इति द्रव्यम्=(जो) अपनी पर्यायोंको प्राप्त हो या तिन (पर्यायों)करि (=तैः) प्राप्ति की जाय ऐसा द्रव्य है । द्रु धातुसे यत् प्रत्यय करनेपर (द्रु–द्रो–द्रव्य) द्रव्य शब्दकी सिद्धि हुई है। (३) दो तीन आदि पद अपनी अपनी विभक्ति त्यागकर जो शब्द बनावें उस शब्दको समास कहते है। "और" से जो पहले दो पद समुच्चित तथा पीछेका शब्द समुच्चय कराता है जो समुच्चित तथा समुच्चेय मिलकर बना हो उसको द्वन्द्व समास कहते है ॥

सर्वेषु द्रव्येषु सर्वेषु पर्यायेष्विति ॥ जीवद्रव्याणि तावदनन्तानन्तानि, पुद्गलद्रव्याणि च ततोऽप्यनन्तानन्तानि अणुस्कन्धभेदेन भिन्नानि, धर्माधर्माकाशानि त्रीणि, कालश्चासंख्येय

इति सर्वेषु ॥ द्रव्येषु ॥ सर्वेषु ॥ पर्यायेषु ॥	=इस प्रकार समस्त द्रव्यों की समस्त पर्यायोंमें (केवलज्ञानके विषयका नियम) है
तावत् जीव द्रव्याणि ॥ अनन्तानन्तानि ॥ च	=प्रथम (=तावत्) जीवद्रव्य अनन्तानन्त हैं और (=च)
पुद्गलद्रव्याणि ॥ ततः अपि अनन्तानन्तानि ॥	=पुद्गलद्रव्य उन (जीवों) से भी (=ततः अपि) अनन्तानन्तगुणे
अणुस्कन्धभेदेन ॥ भिन्नानि ॥ धर्म-अधर्म-	=अणु स्कन्धके भेदकरि जुदे जुदे वा पृथक् पृथक् हैं। धर्म द्रव्य, अधर्मद्रव्य
आकाशानि ॥ त्रीणि ॥ च काल ॥ असंख्येयः ॥	=और आकाशद्रव्य तीन हैं अर्थात् ये तीन एक एक द्रव्य हैं और काल असंख्यात हैं अर्थात् "कालद्रव्यके कालाणु असंख्यात द्रव्य हैं" वे गिने जाने योग्य नहीं हैं

(१) लोगागासपदेसे एक्केक्के जे ट्ठिया हु एक्केक्का ॥ रयणाणं रासी इव ते कालाणू मुणेयव्वा ॥१॥ इति गाथोक्त प्रकारेण कालद्रव्यस्याणुरूपत्वामानत्वं धर्माधर्माकाशानामनेकप्रदेशत्वेऽपि अखण्डात्मकत्वाभावादेकैकत्वमवबोद्धव्यम्

लोगागास-पदेसे ॥ एक्केक्के ॥ जे ॥	(=लोकाकाश-प्रदेशे ॥ एकैकस्मिन् ॥ ये ॥)	=लोकाकाशके एक एक प्रदेशमें जे
ट्ठिया ॥ हु एक्केक्का ॥ रयणाण ॥	(स्थिता ॥ हि एकैकाः ॥ रत्नानाम् ॥)	=एक एक ही (हु=खलु) स्थित हैं। रत्नोंकी
रासी ॥ इव	(राशिः ॥ इव)	=राशि या समूहके सदृश (परस्पर भिन्न भिन्न)
ते कालाणू मुणेयव्वा	(ते ॥ काल-अणवः ॥ मन्तव्याः ॥)	=वे कालके अणू समझना चाहिये ॥ ये असंख्यद्रव्य हैं
इति गाथा-उक्त-प्रकारेण ॥ कालद्रव्यस्य ॥ अणुरूपत्वात् ॥		=ऐसे गाथा में कहे हुये भेद करि कालद्रव्य के अणुरूप होने से
मानत्वम् ॥ धर्म-अधर्म आकाशानाम् ॥ अनेक-प्रदेशत्वे ॥		=अनेकता है। (परन्तु धर्म अधर्म आकाशद्रव्यों के बहुत प्रदेश होने पर
अपि खण्डात्मक अभावात् ॥ एकैकत्वम् ॥ अवबोद्धव्यम् ॥		=भी खण्डरूप नहोने (के हेतु) से पृथक् पृथक् एक जानना चाहिये।

भावार्थ—जिस प्रकार रत्नोंका ढेर एकत्र होनेपर भी उसमें प्रत्येक रत्न जुदाई वैसेही कालके अणु जुदे जुदे एकके पश्चात् एक लोकाकाशके के प्रत्येक प्रदेश पर एक एक कर क्रमसे तिष्ठे हुये परन्तु धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य और आकाशद्रव्य के असंख्यात असंख्यात प्रदेशहैं ये प्रदेश ऐसे मिले हुये हैं कि कभी जुदे जुदे नहीं होसकते हैं इससे ये तीनों एक एक द्रव्य ही हैं। धर्म द्रव्य अधर्म द्रव्य सम्पूर्ण लोकमें तिलमें तैल की भाँति व्यापहैं और आकाशके जिन प्रदेशोंमें स्थित है उनहीं प्रदेशोंमें स्थितरहते हैं इनके प्रदेश अकम्प हैं॥ देखो सर्वार्थसिद्धि वृत्ति अध्याय ५ सूत्र १९ पर

सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य॥ २९॥

द्रव्याणि च पर्यायाश्च द्रव्यपर्याया इति इतरेतरयोगलक्षणो द्वन्द्वः॥ तद्विशेषणं सर्वग्रहणं प्रत्येकमभिसम्बध्यते

सूत्रम्–सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य	=सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य (विषयस्य निबन्ध भवति)
सर्वद्रव्यपर्यायेषु ;। केवलस्य ;।।। विषयस्य ;।	=सम्पूर्ण द्रव्योंकी सम्पूर्ण पर्यायोंमें केवलज्ञानके विषयका
निबन्धः ;। भवति T	=नियम है भावार्थ एक एक द्रव्यकी त्रिकालवर्ती अनन्तानंत पर्यायें हैं सो छहों द्रव्योंकी समस्त अवस्थाओंको केवलज्ञान युगपत् एक साथ जानता है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित उनतीसवां सूत्र पर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दश अनुवाद

द्रव्याणि,। च॰ पर्याया,। च॰ द्रव्यपर्यायाः;। इति॰	=द्रव्यें और पर्यायें (मिलकर) 'द्रव्य पर्यायाः' ऐसा वाक्य
इतरेतरयोगलक्षण';। द्वन्द्व' ;।	=परस्पर (इतरेतर) योगलक्षणवाला या अन्योन्ययोग नामका द्वन्द्व समास है
तद् विशेषणम् ;।।। सर्वग्रहणम् ;।।।	=उस (द्रव्यपर्याया द्वन्द्व समास) का विशेषण "सर्व" (ऐसे शब्द) का ग्रहण
प्रत्येकम्॰ अभिसम्बध्यते T	=प्रत्येक (द्रव्य शब्द और पर्याय शब्द) पर लगाया गया है (=अभिसम्बध्यते)

यतः॰ मनः पर्ययस्य। अवधि विषय-अनन्त-भागे। अन्यत्र॰ अपि॰ दर्शिता;।। वृत्ति;।।	=क्योंकि (=यतः) मनः पर्यय ज्ञानका (विषय) अवधिके विषयसे अनन्तवां भागमें है। दूसरे स्थानमें भी (इस संस्कृत सर्वार्थसिद्धिकी) प्रकाशित वृत्ति में
प्रवर्तते T इति॰ पाठ-अन्तरम्।।इत्यधिक पाठः	=प्रवर्तता है या विद्यमान है (ऐसो पृष्ठ५८में वृत्तिसूत्र२४की) ऐसा अन्य पाठ है। (अन्य अर्थ) क्योंकि मनः पर्ययज्ञानकी प्रवृत्ति (=वृत्ति) अवधिज्ञानके ज्ञेयके अनन्तवां भागमें तथा (=अपि) अवधिज्ञानके ज्ञेयसे भिन्न वस्तुओंमें भी (अन्यत्र) (आगम में) बताई गई है (=दर्शिता)। ऐसा अन्य पाठ है। ऐसा अधिक पाठ भी है

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों सम्प्रदायोंमें एक है॥ (२) द्रव्यके अवस्था विशेष धर्मोंका नाम पर्याय है द्रव्यकी अवस्था विशेष जो हैं सो पर्याय है। स्वपर्यायान् द्रवति द्रूयते वा तैः इति द्रव्यम्=(जो) अपनी पर्यायोंको प्राप्त हो या तिन (पर्यायों)करि (=तैः) प्राप्ति की जाय ऐसा द्रव्य है। द्रु धातुसे यत् प्रत्यय करनेपर (द्रु=द्रो=द्रव्) द्रव्य शब्दकी सिद्धि हुई है। (३) दो तीन आदि पद अपनी अपनी विभक्ति त्यागकर जो शब्द बनाते हैं उस शब्दको समास कहते हैं। "और" से जो पहले दो पद समुच्चित तथा पीछेका शब्द समुच्चय कहाता है जो समुच्चित तथा समुच्चेय मिलकर बना हो उसको द्वन्द्व समास कहते हैं।

सर्वेषु द्रव्येषु सर्वेषु पर्यायेष्विति ॥ जीवद्रव्याणि तावदनन्तानन्तानि, पुद्गलद्रव्याणि च ततोऽप्यनन्तानन्तानि अणुस्कन्धभेदेन भिन्नानि, धर्माधर्माकाशानि त्रीणि, कालश्चासंख्येयः

इति॰ सर्वेषु ॥॥ द्रव्येषु ॥॥ सर्वेषु ॥ पर्यायेषु ॥ =इस प्रकार समस्त द्रव्यों और समस्त पर्यायोंमें (केवलज्ञानके विषयका नियम) है
तावत्॰ जीव द्रव्याणि ॥॥ अनन्तानन्तानि ॥ च॰ =प्रथम (=तावत्) जीव द्रव्य अनन्तानन्त हैं और (=च)
पुद्गलद्रव्याणि ॥॥ ततः॰ अपि॰ अनन्तानन्तानि ॥ =पुद्गलद्रव्य उन (जीवों) से भी (=ततः अपि) अनन्तानन्तगुणे
अणुस्कन्धभेदेन ॥ भिन्नानि ॥॥ धर्म-अधर्म- =अणु स्कन्धके भेदकरि जुदे जुदे वा पृथक् पृथक् हैं। धर्म द्रव्य, अधर्मद्रव्य
आकाशानि ॥॥ त्रीणि ॥॥ च॰ कालः ॥ असंख्येयः ॥ =और आकाशद्रव्य तीन हैं अर्थात् ये तीन एक एक द्रव्य हैं और काल असंख्यात हैं अर्थात् "कालद्रव्यके कालाणु असंख्यात द्रव्य हैं" वे गिने जाने योग्य नहीं हैं

(१) लोगागासपदेसे एक्केक्के जे ट्ठिया हु एक्केक्का ॥ रयणाणं रासी इव ते कालाणू मुणेयव्वा ॥१॥ इति गाथोक्त प्रकारेण कालद्रव्यस्याणुरूपत्वान्नानात्वं धर्माधर्माकाशानामनेकप्रदेशत्वेऽपि अखण्डात्मकत्वाभावादेकैकत्वमवगन्तव्यम्

लोगागास-पदेसे ॥ एक्केक्के ॥ जे ॥ (=लोकाकाश-प्रदेशे॥ एकैकस्मिन्॥ ये॥)=लोकाकाशके एक एक प्रदेशमें जे
ट्ठिया ॥ हु॰ एक्केक्का ॥ रयणाणं ॥॥ (स्थिता॥ हि॰ एकैकाः ॥ रत्नानाम् ॥॥) =एक एक ही (हु=खलु) स्थित हैं। रत्नोंकी
रासी ॥ इव॰ (राशिः ॥ इव॰) =राशि वा समूहके सदृश (परस्पर भिन्न भिन्न)
ते कालाणू मुणेयव्वा (ते ॥ काल-अणवः ॥ मन्तव्याः ॥) =वे कालके अणू समझना चाहिये ॥ वे असंख्यद्रव्य हैं
इति॰ गाथा-उक्त-प्रकारेण ॥ कालद्रव्यस्य ॥॥ अणुरूपत्वात् ॥॥ =ऐसे गाथा में कहे हुये भेद करि कालद्रव्य के अणुरूप होने से
नानात्वम् ॥॥ धर्म-अधर्म-आकाशानाम् ॥ अनेक-प्रदेशत्वे ॥॥ =अनेकता है। (परन्तु धर्म अधर्म आकाशद्रव्यों के बहुत प्रदेश होने पर
अपि अखण्डात्मक अभावात् ॥ एकैकत्वम् ॥॥ अवगन्तव्यम् ॥ =भी अखण्डरूप न होने (के हेतु) से पृथक् पृथक् पना जानना चाहिये।

भावार्थः—जिस प्रकार रत्नोंका ढेर एकत्र होनेपर भी उसमें प्रत्येक रत्न जुदाही वैसेही कालके अणु जुदे जुदे एकके पश्चात् एक लोकाकाशके के प्रत्येक प्रदेश पर एक एक कर क्रमसे तिष्ठे हुये परन्तु धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य और आकाशद्रव्य के असंख्यात असंख्यात प्रदेशोंके ये प्रदेश ऐसे मिले हुये हैं कि कभी जुदे जुदे नहीं होसकते हैं इससे ये तीनों एक एक द्रव्य ही हैं। धर्म द्रव्य अधर्म द्रव्य सम्पूर्ण लोकमें तिलमें तेल की भांति व्यापते और आकाशके जिन प्रदेशोंमें स्थित हैं उन्हीं प्रदेशोंमें स्थितरहते हैं इनके प्रदेश अकम्प हैं॥ देखो सर्वार्थसिद्धि वृत्ति अध्याय ५ सूत्र ३९ पर

तेषां पर्यायाश्च त्रिकालभुवः प्रत्येकमनन्तानन्तास्तेषु द्रव्यं पर्यायजातं वा न किञ्चित्केवलज्ञानस्य विषयभावमतिक्रान्तमस्ति ॥ अपरिमितमाहात्म्यं हि तदिति ज्ञापनार्थं सर्वद्रव्यपर्यायेष्वित्युच्यते ॥

आह विषयनिबन्धोऽवधृतो मत्यादीनां, इदं तु न निर्ज्ञातमेकस्मिन्नात्मनि स्वनिमित्तसन्निधानोपजनितवृत्तीनि ज्ञानानि यौगपद्येन कति भवन्तीत्यत उच्यते—

च॰ तेषाम् ६ा॰ त्रिकालभुवः १।	=और तिन (सर्वद्रव्यनि) के (अतीत अनागत वर्तमान) तीन कालमें होने वाले
प्रत्येकम्॰ अनन्तानन्ताः १। पर्यायाः १। तेषु ७ा॰	=प्रत्येकके अनन्तानन्त पर्याय हैं। उन (द्रव्यों) में
वा द्रव्यं पर्यायजातं १॥ केवलज्ञानस्य ६ विषय भावम् २।	=वा द्रव्य पर्यायों का समूह केवल ज्ञान के विषय भाव को
अतिक्रान्तम् १। न॰ किञ्चित्॰ अस्ति T हि॰ तत् १॥	=उल्लंघन करनेको किंचित भी समर्थ नहीं है क्योंकि (=हि) पूर्वोक्त (=तत्) केवलज्ञान
अपरिमित माहात्म्यं १॥ इति॰ ज्ञापन अर्थम् २॥	=अपरिच्छिन्न या असीम महत्वरूप है। ऐसा (=इति) जनावने के लिये
सर्व पर्यायेषु ७। इति॰ उच्यते T	=समस्तद्रव्योंकी समस्तपर्यायों में (केवल ज्ञानके विषयका नियम) है ऐसा कहागया है
आह T विषयनिबंधः १। अवधृतः १। मतिआदीनाम् ६॥	=(शिष्य-अब) पूछता है कि मति (ज्ञान) आदिकनिके विषयोंके नियम कहगये
इदम् १॥ तु॰ न॰ निर्ज्ञातम् १॥ एकस्मिन् ७।	=परंतु यह (=इदम्) ज्ञात नहीं हुआ (कि) एक
आत्मनि ७। स्व-निमित्तसन्निधान-उपजनितवृत्तीनि १॥	=जीवमें अपने अपने कारणों क निकट होते (=उपजनित) प्रवर्तनेवाले
ज्ञानानि १॥ यौगपद्येन ३॥ कति १। भवन्ति T इति॰	=ज्ञान एक काल अथवा एक बार करि कितने होते हैं ऐसे (प्रश्न पर)
अत॰ उच्यते T	=इसलिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

१ स्पष्ट यह शब्द संस्कृत अङ्कमाला कोष पृष्ठ ४६२ में अव्यय लिखा है। इसलिये हमने भी इसको अव्यय लिखा है॥

२ अवधृतः — विवृतः १। इति॰ अपि॰ पाठान्तरम् १॥ — विवृतः (=व्याख्यात) ऐसा भी अन्य पाठ है

३ मति + आदीनाम् = मत्यादीनाम्–आदि समासोंके अंतिम अवयववत् इस सदृश' 'और अन्य' 'और अन्य वैसे ही' इन अर्थोंमें आता है। स्वभावतः यहां पर आदय' शब्द बहुवचन पुल्लिंगमें है ऐसे ही मत्यादीनाम् का षष्ठी विभक्ति बहुवचन पुल्लिंगमें लिखा है (देखो उक्त कोष पृष्ठ ९९)

४ यौगपद्य या यौगपद्य-नपुंसक लिंग है (येष भाग पृष्ठ ९०१) दोनों समकालता एककालता अर्थमें हैं अतः हमने नपुंसक लिखा है।

५ कति सर्वनाम सदा बहुवचनमें आता है और पुल्लिंगमें इसका यहां प्रयोग हुआ है।

एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः॥३०॥

एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः =एकादीनि (ज्ञानानि) भाज्यानि युगपदेकस्मिन् (जीवे) आ चतुर्भ्य (ज्ञानेभ्यः) सम्भवन्ति

एकादीनि ,॥ ज्ञानानि ,॥ भाज्यानि ;॥ =एक ज्ञानको आदि लेकर (=एकादीनि)भाज्यरूप या विभाग किये (=भाज्यानि)

युगपत् एकस्मिन् ; जीवे ; आ चतुर्भ्यः ;॥ ज्ञानेभ्य =एक साथ (=युगपत्) एक जीवमें चारज्ञान तक (=आ)

सम्भवन्ति T =सम्भवहैं, अर्थात् यदि एक ज्ञान होगा तो केवलज्ञान, दो होंगे तो मतिज्ञान श्रुतज्ञान, तीन होंगे तो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान या मतिज्ञान श्रुतज्ञान मनः पर्ययज्ञान होंगे यदि चार होंगे तो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान होंगे

---

१ इस सूत्रका पाठ दोनों सम्प्रदायों में एक है और अर्थ भी दोनों आम्नायोंमें एक है जैसाकि अगली टिप्पणियोंसे प्रगट होगा।

२ वार्तिक—सङ्ख्या वचनोऽयमेकशब्दः =(वृत्ति) अथवा सङ्ख्या वचनोऽयमेकशब्दः = अथवा(सूत्रमें)यह एक शब्द सङ्ख्यावाचीहै॥ एक =एकस्यसंख्या।

एकम् आदिः येषाम् तानि इमानि एकादीनि कथम् ?॥ =एक है आदि जिनके ते ये एकादि हैं। (प्रश्न) कैसे ?

एकस्मिन् ॥ आत्मनि ॥ मतिज्ञानम् ;॥ एकम् ;॥ =(उत्तर) एक आत्मामें एक (ज्ञान) मतिज्ञान होय है

(श्रुतज्ञान दो प्रकार है एक अक्षरात्मक श्रुतज्ञान दूसरा अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान)

यत् अक्षर श्रुतम् ;॥ द्वि+अनेक+द्वादशभेदम् ,॥ =जो अक्षरात्मक श्रुतज्ञान है सो दो अनेक द्वादश भेदरूप है

उपदेशपूर्वकम् ;॥ =(वह अक्षरात्मक श्रुतज्ञान) उपदेश द्वारा होता है (जैसाकि इस अध्यायका बीसवां सूत्र है)

तत् भजनीयम् ;॥ स्यात् T वा =वह (अक्षरात्मक श्रुतज्ञान) भजनीय है या भाज्य रूप है किन्हीं जीवोंके होता है

न ॥ वा ॥ इति ॥ =किन्हींके नहीं(अक्षरात्मक श्रुतज्ञानकी अपेक्षा एक आत्मामें अकेला मतिज्ञान भी हो सक्ता है)

इतरत् ;॥ पूर्ववत् ॥ =अन्य पूर्व (पहिले) सदृश होय है अर्थात् दो ज्ञान हों तो मतिज्ञान श्रुतज्ञान हों तीन ज्ञान हों तो मतिज्ञान श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान हों अथवा मतिज्ञान, श्रुतज्ञान मनःपर्ययज्ञान हों, चार हों तो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनः पर्ययज्ञान हों

तेषा पर्यायाश्च त्रिकालभुव प्रत्येकमनन्तानन्तास्तेषु द्रव्यं पर्यायजात वा न किञ्चित्केवलज्ञानस्य विषयभावमतिक्रान्तमस्ति ॥ अपरिमितमहात्म्यं हि तदिति ज्ञापनार्थं सर्वद्रव्यपर्यायेष्वित्युच्यते ॥

आह विषयनिबन्धोऽवधृतो मत्यादीनां, इदं तु न निर्ज्ञातमेकस्मिन्नात्मनि स्वनिमित्तसन्निधानोपजनित वृत्तीनि ज्ञानानि यौगपद्येन कति भवन्तीत्यत उच्यते—

च॰ तेषाम् ६॥ त्रिकालभुवः १।	=और तिन (सर्वद्रव्यनि) के (अतीव अनागत वर्तमान) तीन कालमें होने वाले
प्रत्येकम्॰ अनन्तानन्ताः १। पर्यायाः १। तेषु ७।	=प्रत्येकके अनन्तानन्त पर्याय हैं। उन (द्रव्यों) में
वा द्रव्यं पर्यायजातं १॥ केवलज्ञानस्य[1]॰ विषय-भावम् २।	=वा द्रव्य पर्यायों का समूह केवल ज्ञान के विषय भाव को
अतिक्रान्तम् १। न॰ किञ्चित्॰ अस्ति T हि॰ तत् १॥	=उल्लघन करनेको किञ्चित भी समर्थ नहीं है क्योंकि (=हि) पूर्वोक्त (=तत्) केवलज्ञान
अपरिमित-माहात्म्य १॥ इति॰ ज्ञापन-अर्थम् १॥	=अपरिच्छिन्न वा असीम महत्वरूप है। ऐसा (=इति) जनावने के लिये
सर्वद्र पपर्यायेषु ७। इति॰ उच्यते T	=समस्तद्रव्योंकी समस्तपर्यायों में (केवल ज्ञानके विषयका नियम) है ऐसा कहागया है
आह T विषयनिबंधः १। अवधृतः[2] १। मतिआदीनाम्[3] ६॥	=(शिष्य-अब) पूछता है कि मति (ज्ञान) आदिकनिके विषयोंके नियम कहेगये
इदम् १॥ तु॰ न॰ निर्ज्ञातम् १॥ एकस्मिन् ७।	=परंतु यह (=इदम्) ज्ञात नहीं हुआ (कि) एक
आत्मनि ७। स्व-निमित्तसन्निधान-उपजनितवृत्तीनि १॥	=जीवमें अपने अपने कारणों क निकट होते (=उपजनित) प्रवर्तनेवाले
ज्ञानानि १॥ यौगपद्येन[4] ३॥ कति[5] १। भवन्ति T इति॰	=ज्ञान एक काल अथवा एक बार करि कितने होते हैं ऐसे (प्रश्न पर)
अत॰ उच्यते T	=इसलिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहतेहैं कि

१ प्रत्येकम् यह वैद्य संस्कृत अङ्गरेजी कोष पृष्ठ ४६१ में अव्यय लिखा है। इसलिये हमने भी इसका अव्यय लिखा है॥

२ अवधृत — निश्चित। १॥ इति॰ अपि॰ पाठान्तरम् १॥ — विधृतः (=व्याख्यात) ऐसा भी अन्य पाठ है

३ मति+आदीनाम्—मत्यादीनाम्—आदि समासोंके अंतिम अवयववत् इस सदृश' और अन्य' 'और अन्य वैसे ही' इन अर्थोंमें आता है। व्याकरण पातञ्जल यहां पर आदय शब्द बहुवचन पुल्लिंगमें है ऐसे ही मत्यादीनाम् को षष्ठी विभक्ति बहुवचन पुल्लिंगमें लिखा है (देखो उक्त कोश पृष्ठ ९९)

४ यौगपद्य वा यौगपद्य-नपुंसक लिंग है (वैद्य कोश पृष्ठ ८०१) दोनों समकालता एककालता अर्थमें है अतः हमने नपुंसक लिखा है।

५ कति सर्वनाम सदा बहुवचनमें आता है और पुल्लिंगमें इसका यहां प्रयोग हुआ है।

एकशब्द संख्यावाची, आदिशब्दोऽवयववचन

पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित तसवा सूत्र पर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दश हिंदी अनुवाद

एकशब्दः॥ संख्यावाची,॥ आदिशब्दः॥ अवयववचनः॥ =(सूत्रमें) 'एक' शब्द गणनाका वाचक है आदि शब्द टुकड़ा (=टूक) के अर्थमें है

[१] पृष्ठ ४७७ की दूसरी टिप्पणीमें हम दिखाचुके हैं कि तत्त्वार्थराजवार्तिक के कर्ता के मतानुसार एक शब्द संख्यावाचक भी है और अन्य आचार्योंके मतमें यहाँ 'एक' शब्दअसंख्या असहाय प्रधान अर्थ का वाचक है अब तत्त्वार्थ राजवार्तिकके अनुकूल अनेक अर्थ सम्भव होने पर (भी) यहाँकी इच्छासे (= विवक्षात) प्रथमकावाची 'एक' शब्दहै (= अनेकार्थ सम्भवे विवक्षात प्राथम्यवचनः एकशब्दः) अनेकार्थ ये हैं कि कहीं संख्या (अर्थ) में प्रवर्तता है जैसे 'एको द्वौ बहव' एक दो बहुत ॥ कहीं अन्य (अर्थ) में जैसे 'एके आचार्या' = अन्ये आचार्याः = दूसरे आचार्यः कहीं असहाय (अर्थ) में जैसे 'एकाकिनस्ते विचरन्ति वीराः' वे शूरवीर अकेले विचरतेहैं। कहीं प्रधान अर्थ में जैसे एकहतां सेनां करोमि = प्रधानहतां सेनां करोमि इति अर्थ = प्रधान द्वारा सैनाको नष्ट करता हूं ऐसा अर्थ है और कहीं पर प्रथम अर्थ में जैसे:—एकमागमम = प्रथममागमनम् इति = पहिला आना हुआ ॥ सूत्रमें 'प्रथम वा पहिले' के अर्थमें 'एक' शब्द आये है और नवमां सूत्र 'मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानिज्ञानम्' है तब एकादीनि" वाक्य का अर्थ 'प्रथम वा पहिले ज्ञानको आदि लेकर" हुआ अर्थात् मतिज्ञान आदि लेकर विकल्परूपसे वा सामान्यरूप से एक आत्मा में एक साथ चार ज्ञान तक विवक्षित हैं ॥

[२] तत्त्वार्थराजवार्तिक के रचयिताने 'आदि" शब्दके अनेक अर्थ होने पर भी'अवयव' और सामीप अर्थ में लियाहै "आदि शब्दस्यावयववचनः" "सामीप्यवचनो वा" = आदि शब्द (इस सूत्रमें) टुकड़े का वाची है अथवा निकटता का वाचक है ॥ कहीं पर व्यवस्था (अर्थ) में (आदि शब्द) वर्तता है जैसे ब्राह्मणादयश्चत्वारो वर्णाः (= ब्राह्मणादिक चार वर्ण हैं) ब्राह्मणव्यवस्थाः (= कि ब्राह्मणकी व्यवस्था है) ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राः इत्यर्थः कि ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र है ऐसा अर्थ है) अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णोंकी ब्राह्मण वर्णके आधीन व्यवस्था या रचना है। कहीं पर (आदि शब्द) प्रकार (अर्थ) में प्रवर्तता है जैसे भुजंगादयः परिहर्तव्याः (भुजंगादिक परिहार करने योग्य हैं) भुजंगप्रकाराः विषवत इत्यर्थः (= भुजगका प्रकार कहिये भुजंग सदृश विषवान सर्वजीव त्यागने योग्य हैं) ऐसा अर्थ है भावार्थ सर्पआदि विषवाले (सब) जीवोंको दूरसे ही छोड़ देना चाहिये ॥ कहींपर (आदि शब्द) अवयव, टुकड़ा, टूक, या भाग अर्थ में वर्तताहै जैसेकि कण्ठादिमधीते कण्ठावयवमधीते इति अर्थ = कण्ठेसके (= कण्ठ) कुछ भाग को (= अवयवम्) पढ़ता है (= अधीते) ऐसा अर्थ है ॥

परः ।। आह T असहायसहाय — दूसरा कहता है (अर्थात् अन्य अन्य आचार्योंका मत है) कि असहाय असहाय

प्रधानवचने । एकशब्दे । सति । एकादीनि ।।। — प्रधान अथवा वाचक (इस सूत्रमें आये हुये) 'एक' शब्दके होते एकादीनि' है

केवलादीनि।।। इति अर्थः एकस्मिन् आत्मनि क्षायिकत्वात् — जो केवल (ज्ञान) आदीनि ऐसे अर्थमें है कि एक आत्मामें क्षायिकपनासे

एकम् ।।। केवलज्ञानम् ।।। मतिश्रुते ।।। — एक केवल ज्ञान होता है। (दो होय हैं तहां) मतिज्ञान श्रुतज्ञान होते हैं

इत्यादिपूर्ववत् ॥ — इत्यादि पहिले (कथित) सदृश है भावार्थ ऐसा है कि और और आचार्य कहते हैं कि इस सूत्रमें 'एक' शब्दका असहाय असहाय और प्रधान अर्थमें प्रयोग कियागया है अतः इस (एक शब्द) का अर्थ केवल ज्ञान है क्योंकि अन्य चार ज्ञान असहाय और प्रधान नहीं होसकते हैं ये चारों क्षायोपशमिक ज्ञान हैं इस रीतिसे एक जीवके एक साथ केवलज्ञानको आदि लेकर चार ज्ञान तक होना संभव है यदि एक ज्ञान होगा तो केवलज्ञान होगा (अथवा अक्षरात्मक श्रुतज्ञानकी अपेक्षासे एक आत्मामें अकेला मतिज्ञान भी हो सकता है)। यदि दो एक साथ होंगे तो मतिज्ञान और श्रुतज्ञान होंगे, यदि तीन एक कालमें होंगे तो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान या मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, मनःपर्ययज्ञान होंगे यदि चार ज्ञान होंगे तो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान होंगे ॥ (देखो तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ ६३)॥ श्वेताम्बर आम्नायमें भी यही है कि मतिज्ञान भी अकेला होसक्ता है और केवलज्ञान भी अकेला होसक्ता है जैसा कि निम्न लिखितसे प्रगट है (देखो सभाष्य तत्त्वार्थाधिगम सूत्र पृष्ठ १८)

श्रुतज्ञानस्य ।।। तु मतिज्ञानेन ।।। नियतः ।। सहभावः । — किन्तु (यह अवश्य जानना उचित है) श्रुतज्ञानका मतिज्ञानसे सहभाव अवश्य है (अर्थात् जहां जहां श्रुतज्ञान है वहां वहां मतिज्ञानका अस्तित्व अवश्य ही है)

तत् पूर्वकत्वात् ।।। — क्योंकि इस (मतिज्ञान) द्वारा (श्रुतज्ञान) होता है श्रुतज्ञानके होनेको मतिज्ञान कारण है।

यस्य ।। तु मतिज्ञानं तस्य श्रुतज्ञानं स्यात् T वा न वा इति — परंतु जिसके मतिज्ञान है तिसके अक्षरात्मक श्रुतज्ञान हो अथवा (=वा) न हो ऐसा है

अत्राह आह T केवलज्ञानस्य ।।। पूर्वैः ।।। मतिज्ञानादिभिः — यहां प्रश्न करता है कि केवलज्ञानके पहिले होने वाले मतिज्ञान आदिकसे

किम् ।।। सहभावः ।। भवति T न इति उच्यते T — क्या सहभाव होता है ? (उत्तर) नहीं ऐसा कहागया है अर्थात् जहां केवलज्ञान है वहां पर मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञानका अस्तित्व नहीं है

एकशब्दः संख्यावाची, आदिशब्दोऽवयववचनः

पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित तीसवां सूत्र पर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दश हिंदी अनुवाद

एकशब्दः₁ संख्यावाची,₁ आदिशब्दः₁ अवयववचनः₁ =(सूत्रमें) 'एक' शब्द गणनाका वाचक है आदि शब्द टुकडा (=टूक) के अर्थमें है

---

[१] पृष्ठ ४७० की दूसरी टिप्पणीमें हम लिखचुके है कि तत्त्वार्थराजवार्तिक के कर्ता के मतानुसार एक शब्द संख्यावाचक भी है और अन्य आचार्योंके मतमें यहाँ एक' शब्द असंख्या असहाय प्रधान अर्थ का वाचक है अब तत्त्वार्थ राजवार्तिकके अनुकूल अनेक अर्थ संभव होने पर (भी) वक्ताकी इच्छासे (= विवक्षात') प्रथमअर्थवाची 'एक' शब्द है (= अनेकार्थ सम्भवे विवक्षात' प्राथम्यवचनः एकशब्दः) अनेकार्थ ये हैं कि कहीं संख्या (अर्थ) में प्रवर्तता है जैसे 'एको द्वौ बहव' एक दो बहुत॥ कहीं अन्य (अर्थ) में जैसे 'एके आचार्या = अन्ये आचार्याः = दूसरे आचार्यः कहीं असहाय (अर्थ) में जैसे 'एकाकिनस्तो विचरन्ति वीराः' वे शूरवीर अकेले विचरते हैं। कहीं प्रधान अर्थ में जैसे एकहस्तो सेनां करोमि = प्रधानहस्तो सेनां करोमि इति अर्थः =प्रधान हाथ सेनाको नष्ट करता हूं ऐसा अर्थ है और कहीं पर प्रथम अर्थ में जैसे:—एकमागमनं — प्रथमागमनम् इति = पहिला आना हुआ॥ सूत्रमें 'प्रथम या पहिले' के अर्थमें 'एक' शब्द आये है और नवमां सूत्र 'मतिश्रुतावधिमनः पर्ययकेवलानिज्ञानम्' " है तब एकादीनि" वाक्य का अर्थ 'प्रथम या पहिले ज्ञानको आदि लेकर" हुआ अर्थात् मतिज्ञान आदि लेकर विकल्परूपसे या भाज्यरूप से एक आत्मा में एक साथ चार ज्ञान तक विवक्षित है॥

[२] तत्त्वार्थराजवार्तिक के रचयिताने 'आदि" शब्दके अनेक अर्थ होने पर भी'अवयव' और सामीप अर्थ में लियाहै "आदि शब्दस्यावयववचनः" "सामीप्यवचनो वा" = आदि शब्द (इस सूत्रमें) टुकडे का वाची है अथवा निकटता का वाचक है॥ कहीं पर व्यवस्था (अर्थ) में (आदि शब्द) वर्तता है जैसे ब्राह्मणादयश्चत्वारो वर्णाः (=ब्राह्मणादिक चार वर्ण है) ब्राह्मणव्यवस्थाः (=कि ब्राह्मणमें व्यवस्था है) ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राः इत्यर्थः कि ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र है ऐसा अर्थ है) अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णोंकी ब्राह्मण वर्णके आधीन व्यवस्था या रचना है। कहीं पर (आदि शब्द) प्रकार (अर्थ) में प्रवर्तता है जैसे भुजंगादयः परिहर्तव्या (भुजंगादिक परिहार करने योग्य है) भुजंगप्रकाराः विषधर इत्यर्थः (= भुजगका प्रकार कहिये भुजंग सदृश विषधर सर्वजीव त्यागने योग्य है) ऐसा अर्थ है भावार्थ सर्पआदि विषवाले (सब) जीवोंको दूरसे ही छोड देना चाहिये॥ कहींपर (आदि शब्द) अवयव, टुकडा, टूक, या भाग अर्थ में वर्तता है जैसेकि ग्रन्थमादिमधीते ग्रन्थावयव-मधीते इति अर्थ = ग्रन्थके (= का) कुछ भाग को (= अवयवम्) पढता है (=अधीते) ऐसा अर्थ है॥

परः ।। आह T असख्यासहाय — दूसरा कहता है (अर्थात् अन्य अन्य आचार्योंका मत है) कि असख्या असहाय

प्रधान्यवचनेः। एकशब्दे।। सति। एकादीनि।।।। — प्रधान अथवा वाचक (इस सूत्रमें आये हुये) 'एक' शब्दके होते 'एकादीनि' है

केवलादीनि।।।। इति अपः एकस्मिन् आत्मनि क्षायिकत्वात् — सो केवल (ज्ञान) आदीनि ऐसे अर्थमें है कि एक आत्मामें क्षायिकपनासे

एकम् ।।।। केवलज्ञानम् ।।।। मतिश्रुते ।।।। — एक केवल ज्ञान होता है। (जो होय हैं तहां) मतिज्ञान श्रुतज्ञान होते हैं

इत्यादिपूर्ववत् ॥ — इत्यादि पहिले (कथित) सदृश है भावार्थ ऐसा है कि और और आचाय कहते हैं कि इस सूत्रमें 'एक' शब्दका असंख्या असहाय और प्रधान अर्थमें प्रयोग कियागया है अतः इस (एक शब्द) का अर्थ केवल ज्ञान है क्योंकि अन्य चार ज्ञान असहाय और प्रधान नहीं होसकते हैं ये चारों क्षायोपशमिक ज्ञान हैं इस रीतिसे एक जीवके एक साथ केवलज्ञानको आदि लेकर चार ज्ञान तक होना समझो यदि एक ज्ञान होगा तो केवलज्ञान होगा (अथवा अक्षरात्मक श्रुतज्ञानकी अपेक्षासे एक आत्मामें अकेला मतिज्ञान भी हो सकता है)। यदि दो एक साथ होंगे तो मतिज्ञान और श्रुतज्ञान होंगे, यदि तीन एक कालमें होंगे तो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान या मतिज्ञान श्रुतज्ञान, मनः पर्ययज्ञान होंगे, यदि चार ज्ञान होंगे तो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनः पर्ययज्ञान होंगे॥ (देखो तत्त्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ ६१)॥ श्वेताम्बर आम्नायमें भी यही है कि मतिज्ञान भी अकेला होसकता है और केवलज्ञान भी अकेला होसकता है जैसा कि निम्न लिखितसे प्रगट है (देखो सभाष्य तत्वार्थाधिगम सूत्र पृष्ठ २८)

श्रुतज्ञानस्य।।।। तु मतिज्ञानेन।।।। नियतः।। सहभावः।। — किन्तु (यह अवश्य जानना उचित है) श्रुतज्ञानका मतिज्ञानसे सहभाव अवश्य है (अर्थात् जहां जहां श्रुतज्ञान है वहां वहां मतिज्ञानका अस्तित्व अवश्य ही है)

तद् पूर्वकत्वात् ।।।। — क्योंकि उस (मतिज्ञान) द्वारा (श्रुतज्ञान) होता है श्रुतज्ञानके होनेका मतिज्ञान कारण है॥

यस्य ।। तु मतिज्ञानं तस्य श्रुतज्ञानं स्यात् T वा न वा इति — परंतु जिसके मतिज्ञान है तिसके अक्षरात्मक श्रुतज्ञान हो अथवा (=वा) न हो ऐसा है

अत्र आहT केवलज्ञानस्य।।।। पूर्वैः।।।। मतिज्ञानादिभि: — यहां प्रश्न करता है कि केवलज्ञानके पहिले होने वाले मतिज्ञान आदिकसे

किम् ।।।। सहभावः ।। भवति T न इति उच्यतेT — क्या सहभाव होता है? (उत्तर) नहीं ऐसा कहागया है अर्थात् जहां केवलज्ञान है वहां पर मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान, मनः पर्ययज्ञानका अस्तित्व नहीं है

युगपदवतिष्ठन्ते । द्वे मतिश्रुते । त्रीणि मतिश्रुतावधिज्ञानानि, मतिश्रुतमनःपर्ययज्ञानानि वा । चत्वारि मतिश्रुतावधिमनःपर्ययज्ञानानि । न पञ्च सन्ति केवलस्यासहायत्वात् ॥

युगपत्॥ अवतिष्ठन्ते ॥ द्वे ॥ मतिश्रुते ॥	=एक काल में तिष्ठते हैं। दो हों तो मतिज्ञान श्रुतज्ञान हों।
त्रीणि॥ मतिश्रुत-अवधिज्ञानानि॥ वा॥ मति-श्रुत-मनःपर्ययज्ञानानि॥	=तीन हों तो मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान हों। अथवा (=वा) मतिज्ञान श्रुतज्ञान =मनःपर्ययज्ञान हों।
चत्वारि॥ मति-श्रुत-अवधि-मनःपर्ययज्ञानानि॥	चार हों तो मतिज्ञान-श्रुतज्ञान-अवधिज्ञान =मनःपर्ययज्ञान हो॥
न॥ पञ्च॥ सन्ति॥	नहीं होवे हैं (एक काल में) पांच ज्ञान
केवलस्य॥ असहायत्वात्॥	=क्योंकि केवल ज्ञान असहाय रूप है अर्थात् अन्य चार ज्ञान तो ज्ञानावरणीयकर्मके क्षयोपशम से होवे हैं केवल ज्ञान उक्त कर्म के क्षय से ही होता है

(१) मतिज्ञान, श्रुतज्ञान अवधिज्ञान मनःपर्ययज्ञान क्षायोपशमिक ज्ञान है अर्थात् ये चारों ज्ञान ज्ञानावरणीय कर्मकी प्रकृतियों के क्षयोपशम से होते हैं। (प्रश्न) ये क्षायोपशमिकज्ञान तो एक काल एकही प्रवर्तता कहा है। यहां च्यारी कैसें कहे? ताका उत्तर जो ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम होतें च्यारी ज्ञानकी जानन शक्तिरूप लब्धि एक काल होय है। बहुरि उपयोग इनिका एक काल एकही होय है। ताको एक ज्ञेयतें उपयुक्त होनेकी अपेक्षा स्थितिभी अन्तर्मुहूर्तकी कही है। पीछे ज्ञेयांतर उपयुक्त होयजाय है क्षयोपशम जिनिका होय है ते लब्धिरूप एककालही है। यहां कोई कहे उपयोग अपेक्षाभी सांकलीके (=कचौरी) भक्षण करतें स्पर्शादिक पांचूंका ज्ञान एककालही दीखे है पर्यसांकलीका दीसे है स्वाद लेही है। गंध वाका आवे ही है ॥ ... भी सवाकरणा आदि आवे ही है भक्षण करतें शब्द होय है ऐसें पांचूंका ज्ञान एक काल भी देखिये है। ताकूं कहिये, जो यहां उपयोगका फिरना की शीघ्रता हुवे काल भेद न जाण्या जाय है। जैसे कमलका पत्र सोय व्यारि में सुईका प्रवेश होते काल भेद जाण्या न जाय सब काल भेद है ही। तैसे यहां भी जानना ॥ पं० जयचंद्रजी की वचनिका मुद्रित पृष्ठ १८५, १८६ ॥

(२) उक्त पांचों ज्ञानोंमेंसे केवलज्ञान असहायज्ञान है यह कर्मोंके क्षयोपशमकी अपेक्षा नहीं रखता है मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान और मनःपर्यय ज्ञानों को कर्मोंके क्षयोपशमकी अपेक्षा रहती है इस लिये ये चार ज्ञान असहाय नहीं हैं ॥ इस भांति उक्त चार ज्ञानोंमें और केवलज्ञान में विरोध रहनेके हेतुसे पांचों ज्ञानोंका एक साथ होना असम्भव है ॥ (प्रश्न) जैसे जिस काल सूर्यका प्रकाश पृथ्वी मंडल पर पड़ता है उस समय नक्षत्रों का प्रकाश दब जाता है। यहांपर यह नहीं कहा जासकता कि नक्षत्रोंकी विद्यमानताही नहीं है वैसेही जिस समय आत्मामें अत्यन्त आजाज्वल्यमान केवलज्ञानका प्रकाश होगा उस समय मति-श्रुत-अवधि मनःपर्ययज्ञानका प्रभाव दब जायगा नकि उक्त चार ज्ञानोंका अस्तित्वही नष्ट होजावेगा फिर यह कहना कि

एकआदिर्येषां तानि इमान्येकादीनि भाज्यानि विभक्तव्यानि यौगपद्येनैकस्मिन्नात्मनि ॥ आ कुत १ आ चतुर्भ्यः ॥ तद्यथाएकं तावत्केवलज्ञानं न तेन सहान्यानि क्षायोपशमिकानि

एक१। आदि१। येषाम्६। तानि१॥। इमानि१॥। एकादीनि	=एक है आदि जिनके (=येषाम्) वे (=तानि) इतने (=इमानि) एकादीनि हैं
भाज्यानि १॥। विभक्तव्यानि १॥।	=सो भाज्यानि (कहिये) है भेदरूप करने पर या विकल्परूप करने पर(=विभक्तव्यानि) अर्थात् एक ज्ञानको आदिलेकर(=एकादीनि)भाज्यरूप वा विकल्परूप(=विभक्तव्यानि)
यौगपद्येन३। एकस्मिन् । आत्मनि७ आ० चतुर्भ्यः५॥।	=एक कालविषैं एक (=एकस्मिन्) आत्मामें चार (ज्ञान) तक हो (सके) वे हैं
आ० कुतः १ ०	=(प्रश्न) (सूत्रमें) आ (अव्यय) क्योंकर (=कुत) है (उत्तर-सीमा वा अभिविधिके लिये है कि एक साथ एक आत्मामें चार पर्यंत ही ज्ञान होसक्ते हैं सब पांचो नहीं होते)
तद्यथा० एकं १॥। तावत्० केवलज्ञानं १॥। न तेन ३॥।	=जैसे (=तद्यथा) एक हो तो (=तावत्) केवलज्ञान हो । नहीं तिस (केवलज्ञान) करि
सह० अन्यानि १॥। क्षायोपशमिकानि ,॥।	=सहित (=सह) अन्य (चार) क्षायोपशमिकज्ञान

अब 'एक' शब्दका प्रथम अर्थ और 'आदि' शब्दका अवयव अर्थ लेकर "प्रथमका अवयव" यह अर्थ "एकादि" वाक्यका हुआ ॥ (प्रश्न) किस (प्रथम) का (अवयव या भाग) । (उत्तर) परोक्षज्ञानका (प्रथम अवयव) अर्थात् मतिज्ञान ॥ अतः एकादिका अर्थ मतिज्ञान हुआ यहां पर स्मरण रहै कि सूत्रमें 'एकादीनि' वाक्य है सो "एकादिरादीनि" (=एकादिका आदि लेकर जो ज्ञान हैं व एकादीनि कहेजाते हैं) इस अर्थमें है क्योंकि— वार्तिक—"अन्योन्य पदार्थे वृत्तावेकस्यादिशब्दस्य निवृत्तिरुष्ट्रमुखवत्=अतः अन्यपदार्थे वृत्तौ एकस्यादिशब्दस्य निवृत्तिःउष्ट्रमुखवत्" =अन्यपदार्थ वृत्तिमें (=समासमें) एक"आदि"शब्दकी निवृत्ति या निषेध "उष्ट्रमुख" (बहुव्रीहि समासरूप वाक्यके) समान है अर्थात् जैसे जिसका मुख ऊंट सरीखा हो वह उष्ट्रमुख (पुरुष) कहा जाता है और जिसका मुख ऊंटके मुख समान पुरुष सरीखा हो वहभी उष्ट्रमुखही कहा जाता है यहांपर जैसे उष्ट्रमुख शब्दका बहुव्रीहि समास करते समय दो मुखशब्दोंका उल्लेख रहताहै और समासमें एकही मुखशब्द रह जाताहै एक मुखशब्दकी निवृत्ति होजातीहै अर्थात् एक मुखशब्द न्यून हो जाता है वैसेही एकादीनि यहां परभी दो "आदि" शब्दोंमें एकही "आदि" शब्द रह जाता है एक 'आदि' शब्दका लोप होजाता है ॥ आदि शब्दका अर्थ समीप भी है मतिज्ञानके समीप श्रुतज्ञान है अतः 'एक' शब्द जो सूत्रमें है उससे मतिज्ञान और आदि शब्दके उल्लेखसे श्रुतज्ञानका ग्रहण हुआ ॥ मतिज्ञान श्रुतज्ञानको आदि लेकर ऐसा अर्थ "एकादीनि" वाक्यका हुआ ॥ एक+आदि+आदि=एकादि+आदीनि=एकादीनि

युगपदवतिष्ठन्ते । द्वे मतिश्रुते । त्रीणि मतिश्रुतावधिज्ञानानि, मतिश्रुतमनःपर्ययज्ञानानि वा । चत्वारि मतिश्रुतावधिमनःपर्ययज्ञानानि । न पञ्च सन्ति केवलस्यासहायत्वात् ॥

युगपत् अवतिष्ठन्ते ७ द्वे ,॥ मतिश्रुते १॥	=एक काल में तिष्ठते हैं । दो हों तो मतिज्ञान श्रुतज्ञान हों ।
त्रीणि१॥ मतिश्रुत-अवधिज्ञानानि १॥ वा मति-श्रुत-	=तीन हों तो मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान हों । अथवा (=वा) मतिज्ञान श्रुतज्ञान
मनःपर्ययज्ञानानि१॥ चत्वारि १॥ मति श्रुत अवधि-	=मनःपर्ययज्ञान हों । चार हों तो मतिज्ञान-श्रुतज्ञान-अवधिज्ञान
मनःपर्ययज्ञानानि ,॥ न पञ्च १॥ सन्ति ७	=मनःपर्ययज्ञान हो ॥ नहीं होते हैं (एक काल में) पांच ज्ञान
केवलस्य ६॥ असहायत्वात् ५॥	=क्योंकि केवल ज्ञान असहाय रूप है अर्थात् अन्य चार ज्ञान तो ज्ञानावरणीयकर्मके क्षयोपशम से होते हैं केवल ज्ञान उक्त कर्म के क्षय से ही होता है

(१) मतिज्ञान, श्रुतज्ञान अवधिज्ञान मनःपर्ययज्ञान क्षायोपशमिक ज्ञान है अर्थात् ये चारों ज्ञान ज्ञानावरणीय कर्मकी प्रकृतियों के क्षयोपशम से होते हैं । (प्रश्न) ये क्षायोपशमिकज्ञान तो एक काल एकही प्रवर्तता कहा है । इहां च्यारी कैसें कहे ? ताका उत्तर जो ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम होतें च्यारी ज्ञानकी जानन शक्तिरूप लब्धि एक काल होय है । बहुरि उपयोग इनिका एक काल एकही होय है । ताकी एक ज्ञेयतें उपयुक्त होनेकी अपेक्षा स्थितिभी अन्तर्मुहूर्तकी कही है । पीछे ज्ञेयांतर उपयुक्त होयजाय है क्षयोपशम इनिका होनेतें लब्धिरूप एककालही है । इहां कोई कहे उपयोग अपेक्षाभी सांकलीके (=जलेबी) भक्षण करतें स्पर्शादिक पांचका ज्ञान एककालही दीखै है धर्मसांकलीका दीखे है स्वाद लेही है । गंध जाका आवे ही है ? ताका भी सवाल करे जाकि शब्द हो है भक्षण करतें शब्द होय है ऐसें पांचका ज्ञान एक काल भी देखिये है । ताकूं कहिये जो इहां उपयोगका फिरना की शीघ्रता हातें काल भेद न जान्या जाय है । जैसे कमलका पत्र दोय च्यारि में सुईका प्रवेश होते काल भेद जान्या न जाय अर काल भेद है ही । तैसे इहां भी जानना ॥ पं० जयचंदजी की वचनिका मुद्रित पृष्ठ १८५, १८६ ॥

(२) उक्त पांचो ज्ञानोंमेंसे केवलज्ञान असहायज्ञान है यह कर्मोंके क्षयोपशमकी अपेक्षा नहीं रखता है मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान और मनःपर्यय ज्ञानों का कर्मोंके क्षयोपशमकी अपेक्षा रहती है इस लिये ये चार ज्ञान असहाय नहीं हैं ॥ इस भांति उक्त चार ज्ञानोंमें और केवलज्ञान में विरोध रहनेके हेतुसे पांचो ज्ञानोंका एक साथ होना असम्भव है ॥ (प्रश्न) जैसे जिस काल सूर्यका प्रकाश पृथ्वी मंडल पर पड़ता है उस समय नक्षत्रों का प्रकाश दब जाता है । यहांपर यह नहीं कहा जासकता कि नक्षत्रोंकी विद्यमानताही नहीं है वैसेही जिस समय आत्मामें अत्यन्त उज्ज्वलमान केवलज्ञानका प्रकाश होगा उस समय मति-श्रुत-अवधि-मनःपर्ययज्ञानका प्रभाव दब जायगा नकि उक्त चार ज्ञानोंका अस्तित्वही नष्ट होजावेगा फिर यह कहना कि

और इसको कर्मोंके क्षयोपशमकी सहायताकी अपेक्षा नहीं रहती है अतः केवल ज्ञानीके मति-श्रुत-अवधि-मनःपर्यय ज्ञान नहीं होवे हैं

केवलज्ञान क्षायिकज्ञान है और असहायज्ञान है इससे पांचों ज्ञान नहीं होते हैं ठीक नहीं है ? ।(उत्तर)जैसे जब कोई स्थान सर्वथा और सर्व प्रकारसे शुद्ध होचुका है और आगामी उस स्थानको अशुद्ध नहीं कहा जासकता है वैसेही जब सर्व ज्ञानावरणीयकर्मकी प्रकृतियोंका सब प्रकार नाश होचुका है तब उन कर्मोंकी प्रकृतियोंका क्षयोपशम कहना और अत्यन्त नाश होनाभी कहना ये एक दूसरेके विरुद्ध हैं और नहीं कहे जासकते हैं इसलिये एक साथ आत्मामें मतिज्ञानको आदि लेकर चार तक ज्ञानोंका जो नियम है यह निर्बाध और निर्दोष है ॥

इस विषयमें अब हम श्वेताम्बर आम्नायका मत लिखते हैं ॥ (प्रश्न) केवलज्ञानका मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञानके साथ सह भाव है कि नहीं है ? (उत्तर) "केवलज्ञानके साथ मतिज्ञानादिका सहभाव नहीं है। परंतु कोई कोई आचार्य कहते हैं कि केवलज्ञानकी सत्ता दशामें मतिज्ञानादि ज्ञानोंका अभाव नहीं है किन्तु केवलज्ञानसे वे मत्यादिज्ञान अभिभूत (पराजित) होनेसे ऐसे अकिंचित्कर हैं जैसकि मेघादि इन्द्रियां। केवलज्ञानकी दशामें मतिश्रुतादि अन्यज्ञान अभिभूत होकर ऐसे अकिंचित्कर हैं जैसे मेघरहित आकाशमें सूर्यके उदित होनेपर अधिक तेजके कारण सूर्यसे अभिभूत अग्नि मणि चन्द्रमा तथा नक्षत्रादिके तेज, प्रकाश करनेमें अकिंचित्कर हैं। और कोई ऐसा कहते हैं कि अपाय सद्द्रव्यता अर्थात् श्रोत्रादि इन्द्रियोंसे उपलब्ध पदार्थके निश्चयसे मतिज्ञानकी प्रवृत्ति होती है। श्रुतज्ञान मतिज्ञान पूर्वक है। अवधिज्ञान तथा मनःपर्ययज्ञान भी रूपी द्रव्यके विषयमें अपाय सद्द्रव्यतासेही प्रवृत्त होता है अतः उनकी सत्ता में मतिज्ञान रह सकता है और केवलज्ञानी का इन्द्री द्वारा पदार्थोपलब्धि नहीं होती, इस कारणसे केवलज्ञानीको मतिज्ञानादि ज्ञान नहीं हैं॥ किं चान्यत्। औरभी यह बात है कि मतिज्ञानादि चारों ज्ञानोंमें पर्याय वा क्रमसे उपयोग होता है न कि एक ही कालमें और मिश्रित है ज्ञानदर्शन जिसका ऐसे भगवान केवली का तो एकही कालमें सर्वभावके ज्ञापक वा भासक और अन्य ज्ञाननिरपेक्ष केवलज्ञान तथा केवलदर्शन होते हैं और प्रतिक्षण वा प्रति समय ज्ञानोपयोग तथा दर्शनोपयोग होता है। और यहभी है कि पूर्व मतिज्ञानादि चार ज्ञान तो ज्ञानावरणके क्षयोपशमसे उत्पन्न होते हैं। और केवलज्ञान क्षयसेही उत्पन्न होता है। इसलियेभी केवलज्ञानीको मति ज्ञानादि शेष चार ज्ञान नहीं होते।" समाप्य० पृष्ठ १८, १९॥ हमारा हृदय भी इस बातको स्वीकार नहीं करता कि केवलज्ञान की विद्यमानतामें

यथोक्तानि मत्यादीनि ज्ञानव्यपदेशमेव लभन्ते, उतान्यथापीत्यत आह—

यथोक्तानि॥ मत्यादीनि॥ ज्ञानव्यपदेशम्॥ एव॰	=कथनानुसार (=यथोक्त) मति आदिक ज्ञान ज्ञान नामको
लभन्ते । उत॰ अन्यथा॰ अपि॰	=पाते हैं । अथवा (=उत) अन्यथा भी हैं अर्थात् मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान ये ज्ञान संज्ञा से ही जाने जाते हैं कि ये किसी और
इति॰ अतः॰ आह ।	=नाम से भी कहे जाते हैं ॥ ऐसा (प्रश्न होने पर) इस लिये कहते हैं कि

ज्ञान चार ज्ञानका अकिंचित्कर रूपमें भी अस्तित्व रहता है क्योंकि यदि हम ऐसा मानें तो इस सूत्रका "आचतुर्भ्यः" वाक्य व्यर्थ हुआ जाता है । और पांचों ज्ञानका अस्तित्व युगपत् हुआ जाता है ॥

(प्रश्न) असंज्ञी पंचेंद्रियसे लेकर अयोगकेवली पर्यंत सब जीव पंचेन्द्रिय हैं । जिनके केवलज्ञान है वे भी जीव जब पंचेन्द्रिय हैं और पांचों इन्द्रियें उनके विद्यमान हैं तब इन्द्रियोंके कार्य मतिज्ञान आदि क्षायोपशमिकज्ञान होने चाहिये क्योंकि समर्थकारण इन्द्रियोंके रहते कार्य ज्ञान अवश्य मानी है । अतः यह कहना कि केवलज्ञानके अस्तित्व समयमें मतिज्ञान आदि नहीं होसकते यह कथन निर्मूल है (उत्तर) सयोगकेवली और अयोगकेवली को जो पंचेन्द्रिय बतलाया है वह द्रव्येन्द्रियकी अपेक्षासे है भावेंद्रियकी अपेक्षासे नहीं है क्योंकि भावेन्द्रियकी विद्यमानता में समस्त ज्ञानावरणीय कर्मका क्षय नहीं होसकता है और ज्ञानावरणकर्मके निर्मूल क्षयके बिना सर्वज्ञपना भी नहीं होसकता है यदि सयोगकेवली और अयोगकेवलीके भावें न्द्रियकी सत्ता मानी जायगी तो उनके ज्ञानावरणकर्मका क्षय निर्मूल न होसकेगा अतः वे सर्वज्ञ नहीं कहे जासकेंगे । जहां पर भावेन्द्रिय है वहीं पर मतिज्ञानादिक क्षायोपशमिकज्ञानोंका आविर्भाव होता है केवल द्रव्येन्द्रियके अस्तित्व कालमें नहीं क्योंकि द्रव्येन्द्रियकी सत्ताको निन्द्राचित्क माना है वह ज्ञानोंकी उत्पत्तिमें कारण नहीं है । इस लिये जब केवलज्ञानके उदय रहने पर भावेन्द्रियका अस्तित्व नहीं रहता तब केवलज्ञानके साथ, कारण भावेन्द्रियके अभावमें कार्य मतिज्ञानादि नहीं हो सकते । अतः एक आत्मामें भाज्य रूप मतिज्ञान से लेकर चार ज्ञान तक एक साथ हो सकते हैं यह निर्बाध है किन्तु पांचों ज्ञान एक साथ नहीं हो सकते हैं ॥

॥ मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च ॥३१॥

विपर्ययो ¹मिथ्येत्यर्थः । कुतः ? । सम्यगधिकारात् ॥ चशब्द समुच्चयार्थे । विपर्ययश्च सम्यक्चेति ॥

सूत्रम्-मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च =मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च (भवति ज्ञानम्)

मति-श्रुत-अवधयः ,। विपर्ययः ,। च भवति ज्ञानम् =मति-श्रुत अवधि विपर्यय, उलटे वा मिथ्याज्ञान भी (=च) होते हैं ॥

अर्थात् मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान ये तीन ज्ञान विपरीत भी होते हैं मति आदि पांचों ज्ञानोंको जिनको सम्यग् ज्ञान कह आये हैं उनमें आदि के तीन ज्ञान मिथ्या, वा विपरीत ज्ञान भी होते हैं और सम्यग् ज्ञान भी होते हैं ।

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इकतीसवा सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दश हिंदी अनुवाद

विपर्ययः ,। मिथ्या॰ इति॰ अर्थः ,। =(इस सूत्रमें) विपर्यय (शब्द) अयथार्थ अन्यथा वा मिथ्या ऐसा अर्थ (में) है

कुतः ?॰ सम्यग्-अधिकारात् ५। =(प्रश्न) क्योंकर (विपर्यय शब्द मिथ्या अर्थ में है) (उत्तर) सम्यक् अधिकारसे अर्थात् इस सूत्र में सम्यक् शब्दकी अनुवृत्ति "सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्राणिसे आरही है"

चशब्दः ,। समुच्चय अर्थे ,। =(सूत्र में) चशब्द या अ० च समुच्चय के लिये अथवा समुदाय के लिये है

विपर्ययः ,। च॰ सम्यक्॰ च॰ इति॰ =अयथार्थ अन्यथा (विपर्यय) भी (=च) है यथार्थ (=सम्यक्) भी (=च) है

(१) इस सूत्रका श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों आम्नायोंमें पाठ और अर्थ एक है । ज्ञान शब्दकी अनुवृत्ति प्रथम सूत्रसे आतीहै ॥ (२)च अव्ययके चारुसे अर्थ हैं उनमें से यह समुच्चयके लिये ग्रहण किया है इसलिये मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान सम्यग् ज्ञान भी होते हैं और मिथ्याज्ञान भी होते हैं ऐसा अर्थ है। तत्त्वार्थ श्लोक वार्तिकमें 'चशब्द समुच्चयार्थ'से यह अभिप्राय लिया है कि उससे सूत्रमें मुख्य और व्यवहार दोनों प्रकार के सम्यक्त्वोंका ग्रहण है यदि सूत्रमें च अव्यय न होता तो 'मतिश्रुतावधयो विपर्ययः' ऐसा सूत्र होता और इसका अर्थ यह होता कि मति-श्रुत-अवधि मिथ्या (ज्ञान) होते हैं ॥ (प्रश्न) 'मतिश्रुत अवधि मिथ्या ज्ञान होते हैं' इससे यह बात नहीं निकलती कि 'मतिश्रुतावधि' सम्यग्ज्ञान नहीं हो सकते हैं फिर चशब्द सूत्रमें व्यर्थ है । (उत्तर) श्लोक वार्तिक के रचयिता कहते हैं कि यदि सूत्रका अर्थ किया न जा सके यह मानलें कि इनसे मिथ्याज्ञान और सम्यग्ज्ञान दोनों प्रगट होते हैं तब सूत्रमें विपर्ययका अर्थ मिथ्याज्ञान है चशब्दसे संशय और अनध्यवसायका ग्रहण है अर्थात्

कुत पुनरेषांविपर्यय ?

	अर्थात् मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान मिथ्याज्ञान भी हैं और सम्यग्ज्ञान भी हैं
कुतः * पुनः * एषाम् ॥॥ विपर्ययः ,। ?	=(प्रश्न) फहुरि इन (ज्ञानों) के विपरीतता (=विपर्यय) क्योंकर है ?

मतिज्ञानादि संशय अनध्यवसाय स्वरूप भी हैं इस अर्थके करनेमें 'च शब्द' का सूत्रमें लाना व्यर्थ नहीं है। श्लोक वा० पृष्ठ २५५ श्लोक ९,१० ११ देखो ॥ यहां पर स्मरण रहे कि मतिज्ञान इन्द्रिय और मनसे होता है अतः उसके विपरिणाम संशय विपर्यय और अनध्यवसाय तीनों मिथ्याज्ञान हैं और श्रुतज्ञान मनकी सहायतासे होता है इसलिये उस के भी विपरिणाम संशय विपर्यय और अनध्यवसाय तीनों मिथ्याज्ञान हैं किन्तु अवधि- ज्ञानके विपरिणाम विपर्यय और अनध्यवसाय ही हैं संशय नहीं क्योंकि यह 'स्थाणु है या पुरुष है ?' ऐसे अनेक कोटियोंको स्पर्श करनेवाले ज्ञान का नाम संशय है और जहां पर अंधकार रहनेसे दूरमें स्थित पदार्थ स्थाणु है या पुरुष है ऐसा स्पष्ट ज्ञान न होनेसे उन दोनोंमें रहने वाले ऊर्ध्वता सामान्यका प्रत्यक्ष है वक्र कोटर आदि स्थाणुके विशेष एवं शिर हाथ आदि पुरुषके विशेषों का प्रत्यक्ष नहीं किन्तु पहले उनका ज्ञान हो चुका है इसलिये मनके द्वारा उनका स्मरण है इस रीतिसे सामान्यप्रत्यक्ष विशेषाप्रत्यक्ष और विशेष स्मरण है वहीं पर संशयज्ञान होनेके कारण इन्द्रियों के आधीन इसकी उत्पत्ति मानी है परन्तु अवधिज्ञानमें इन्द्रियोंकि व्यापारकी कोई अपेक्षा नहीं न मनके व्यापारकी कोई अपेक्षा है क्योंकि अवधि- ज्ञानको इन्द्रिय और मनसे अजन्य माना है किन्तु अवधिज्ञानावरणके क्षयोपशमकी विशुद्धता रहने पर यह सामान्य विशेष स्वरूप अपने विषयभूत पदार्थोंका जानता है इसलिये अवधिज्ञानका विपरिणमन संशय स्वरूप नहीं होसकता कभिन हो। मिथ्यात्व नाम कर्मके विपरीत श्रद्धान स्वरूप मिथ्यादर्शनके साथ अवधिज्ञान रहता है इसलिये वह विपरीत स्वरूप है तथा जिस पदार्थकी ओर अवधिज्ञानका उपयोग लगा हुआ है कारण वश उसका पूरा ज्ञान नहोनेके पहिले ही दूसरे किसी ज्ञानके विषयभूत दूसरही पदार्थकी ओर उपयोग लग जाय उस समय मार्गमें जाते हुये पुरुष को तृण स्पर्शके ज्ञानके समान अनिश्चयात्मक अवधिज्ञान होजाता है इसलिये अवधिज्ञानका विपरिणमन अनध्यवसाय स्वरूप भी है किंतु जिस समय जिस पदार्थ का अवधिज्ञान विषय कर रहा है उस समय यदि वह उपयोग दृढ़ होगा तो अवधि ज्ञानका अनध्यवसाय स्वरूप विपरिणमन नहीं हो सकता ॥ (देखो श्लोक वार्तिक श्लोक १२, और १३ पृष्ठ २५६)

(१) सामान्यरूपसे विपर्ययका अर्थ मिथ्याज्ञान है तो भी संशय विपर्यय और अनध्यवसाय इन तीनों प्रकारके ज्ञानोंका यहां ग्रहण है परन्तु स्मरण रहे कि मतिज्ञान श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान येही तीनों ज्ञान विपरीत या मिथ्याज्ञान होसके हैं न कि मनःपर्यय और केवलज्ञान (प्रश्न) क्यों ?

मिथ्यादर्शनेन सहैकार्थसमवायात सरजस्ककटुकालाबुगतदुग्धवत् ॥

मिथ्यादर्शनेन सह = (उत्तर) मिथ्यात्व (के उदयकरि) सहित (=सह) (आत्मा और मतिज्ञानादिक का)

एकार्थ-समवायात् = एकमेकतारूप (=एकार्थ) ममघ, सम्मेलन, वा सश्लेष (के हेतु) से (=समवायात)
(मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान के विपरीतता होजाती है)

सरजस्क-कटुक-आलाबु-गत-दुग्धवत् = जैसेकि गिरी वा रज सहित कडुवी (=कटुक) तुम्बीमें (=अलाबु) क्षेपा हुआ (=गत) दूध

अर्थात् जैसे गिरी सहित वा रज सहित (=सरजस्क) कडुवी तुम्बीमें दूध रखनेसे कडुवा होजाता है वैसेही दर्शन मोहनीय कर्म के उदयसे आत्माका जो मिथ्यादर्शन परिणाम होता है उसके साथ मति आदि ज्ञान भी एक स्थानमें रहते हैं — दोनों (मिथ्यादर्शन परिणाम और मति आदि ज्ञान) एक साथ आत्मामें रहते हैं इस लिये मिथ्यात्व के संबंधसे मति आदि ज्ञान मिथ्या ज्ञान कहे जाते हैं ॥

(उत्तर) क्योंकि दर्शन मोहनीय कर्मके उदयसे जो आत्माका मिथ्यादर्शन परिणाम होता है उसके साथ मतिज्ञान श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान भी एक स्थानमें रहते हैं । उक्त मत्यादिज्ञान और आत्माका मिथ्यादर्शन परिणाम दोनों एकसाथ आत्मामें रहते हैं इसलिये मिथ्यात्वके संबंधसे मतिज्ञान आदि मिथ्याज्ञान कहे जाते हैं । परन्तु मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञानका आत्मामें मिथ्यादर्शनके कारणोंके सर्वथा नष्ट होजाने पर सम्यक्त्व गुणकी प्रगटता से जिस समय आत्मा विशुद्ध होजाता है उस समय उदय होता है । बिना सम्यक्त्वगुणके उदय नहीं होसकता इस वास्ते मिथ्यात्वके संबंधसे सर्वथा दूर रहनेके कारण मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान कभी मिथ्या नहीं होसकते । उन दोनों ज्ञानोंमें जिस समय दर्शन मोहनीय कर्मका सर्वथा क्षय हो जाता है और चारित्र मोहनीय कर्मका उपशम (अर्थात् मनःपर्ययज्ञान छठ गुणस्थानमें भी होजाता है अतः यह प्रत्याख्यानादिके उपशमकी अपेक्षा कथन है) होजाता है उस समय आत्मामें मनःपर्ययज्ञानका उदय होता है इसलिये मिथ्यात्वके साथ संबंध न रहनेके कारण यह मिथ्याज्ञान नहीं होसकता तथा ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय मोहनीय और अन्तराय इन चार घातिया कर्मों के सर्वथा नष्ट होजाने पर आत्मामें केवलज्ञान का उदय होता है । उस समय परिपूर्ण विशुद्धता केवलज्ञानमें प्रगट होजाती है इसलिये यह भी मिथ्याज्ञान नहीं कहा जा सकता ॥

नन्वपि च तत्राधारदोषात् दुग्धस्य रसविपर्ययो भवति, न च तथा मत्यज्ञानादीनां विषयग्रहणे विपर्ययः ॥ तथाहि, सम्यग्दृष्टिर्यथा चक्षुरादिभि रूपादीनुपलभते, तथा मिथ्यादृष्टिरपि मत्यज्ञानेन ॥ यथा च सम्यग्दृष्टिः श्रुतेन रूपादीनि जानाति निरूपयति च तथा मिथ्यादृष्टिरपि श्रुताज्ञानेन ॥ यथा चावधिज्ञानेन सम्यग्दृष्टि रूपिणोऽर्थानवगच्छति तथा मिथ्यादृष्टिर्विभङ्गज्ञानेनेति ॥ अत्रोच्यते—

ननु च तत्र आधार-दोषात् दुग्धस्य	=फिर (=च) प्रश्न (=ननु) वहां (तुंबीमें) आधारके दूषणसे दूधका
रस-विपर्ययः । भवति न च तथा	=स्वाद उलटा हो जाता है (अर्थात् कडुआ होजाता है) परंतु (=च) नहीं है तैसे
मति-अज्ञान-आदीनां विषय-ग्रहणे विपर्ययः ।	=मतिअज्ञानादिकोंके विषय ग्रहण (करने) में विपरीतता अर्थात् ज्ञानमें जो विषय का ग्रहण सम्यक्त्वमें और मिथ्यात्वमें समान होता है
तथाहि सम्यग्दृष्टिः यथा चक्षुरादिभिः	=उदाहरण (=तथाहि) सम्यग्दर्शनवाला जैसे नेत्र आदिक इन्द्रियोंसे
रूपादीन् उपलभते तथा मिथ्यादृष्टिः अपि	=रूपादिकों को जानता है (=उपलभते) तैसे मिथ्यादर्शनवाला भी
मति-अज्ञानेन ॥ यथा च सम्यग्दृष्टिः श्रुतेन	=कुमतिज्ञानकरि (जानता है) और (=च) जैसे सम्यग्दर्शनवाला श्रुतज्ञानकरि
रूपादीनि जानाति निरूपयति च तथा	=रूपादिकों को जानता है तथा (=च) कथन करता है तैसे
मिथ्यादृष्टिः अपि श्रुत अज्ञानेन ॥ यथा च	=मिथ्यादृष्टि भी कुश्रुतज्ञान द्वारा (जानता है और व्याख्यान करता है) और जैसे
अवधिज्ञानेन सम्यग्दृष्टिः रूपिणः अर्थान्	=अवधिज्ञानकरि सम्यग्दर्शनवाला रूपी या मूर्तीक वस्तुओं को
अवगच्छति तथा मिथ्यादृष्टिः विभंगज्ञानेन ॥	=जानता है (=अवगच्छति) तैसे मिथ्यादर्शनवाला कुअवधिज्ञानकरि (जानता है)
इति अत्र उच्यते	=ऐसा (प्रश्न होने पर) यहां कहते हैं कि

(१) जानाति निरूपयति इति अपि पाठान्तरम् ॥ =जानता है कथन करता है ऐसा भी अन्य पाठ है

संदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ॥ ३२ ॥

'सद्विद्यमानमसदविद्यमानमित्यर्थ । तयोरविशेषेण यदृच्छया उपलब्धेर्विपर्ययो भवति ॥

सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् =सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् (विपर्ययो भवति ज्ञानम्)

सत् असतोः ।। =विद्यमान और अविद्यमान (पदार्थों) का वा प्रशस्त (भले) अप्रशस्त (बुरे) का

अविशेषात् ५। =विशेषरूप वा प्रभेदरूप ज्ञान वा ज्योंका त्यों विवेक न होने (के हेतु) से

यदृच्छ-उपलब्धेः ।। उन्मत्तवत् =अपनी मनमानी इच्छा द्वारा ग्रहण करने से उन्मत्त (पुरुष) के समान

विपर्ययः ।। भवति ज्ञानम् ।।। =विपरीत वा मिथ्याज्ञान होता है भावार्थ जिस प्रकार मदमाता वा उन्मत्त पुरुष भार्याको माता और माता को भार्या समझता है यह उसका ज्ञान मिथ्याज्ञान है परंतु किसी समय वह भार्याको भार्या और माताको माता कहता है तो भी उसका यह जानना सम्यग्ज्ञान नहीं कहलाता क्योंकि उसको भार्या और माताके भेदका यथार्थ विवेक वा ज्योंका त्यों ज्ञान और विचार नहीं उसी प्रकार मिथ्यात्वके उदयसे सत् और असत् पदार्थोंका यथार्थ ज्ञान न होनेके हेतु से कुमतिज्ञान कुश्रुतज्ञान कुअवधिज्ञान (विभङ्ग अवधिज्ञान) भी मिथ्या ज्ञान है ॥

-पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित बत्तीसवा सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दश. हिन्दी अनुवाद ॥

सत् ।।। विद्यमानम् ।।। असत् ।।। अविद्यमानम् ।।। =सत् विद्यमान वा वर्तमान (वस्तु) है असत् अविद्यमान वा अनछती (वस्तु) है

इति अर्थः ।। तयोः[२] ।।। अविशेषेण ।। =ऐसा तात्पर्य है इन दोनों (सत् असत्) का यथार्थ विवेक न होने से

यदृच्छया ।। उपलब्धेः ।।। विपर्ययः ।। भवति T =अपनी मनमानी इच्छाकरि (=यदृच्छया) ग्रहण करनेसे विपरीत वा मिथ्या (ज्ञान) है

(१) इस सूत्रका ताबों श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदायोंमें पाठ और अर्थ एक है ॥ ज्ञान शब्दकी मोर्ता और विपर्ययकी ३१वां सूत्रस अनुवृत्ति लीन है

(२) तयोः शब्द सत् और असत् शब्दके लिये है और सत् असत् विद्यमान अविद्यमानके कारण नपुंसकलिंगी हैं अत तयो नपुंसकलिंगी है ॥

(३) सत्=प्रशस्त=प्रशस्त लक्षण (वा) विद्यमान । असत्=अप्रशस्त अर्थात् अप्रशस्त लक्षण (वा) अविद्यमान (देखो तत्त्वार्थ राज वार्तिक पृष्ठ ५४)

कदाचिद्रूपादि सदप्यसदिति प्रतिपद्यते, असदपि सदिति, कदाचित्सत्सदेव, असदप्यसदेवेति मिथ्यादर्शनोदयादध्यवस्यति ॥ यथा पित्तोदयाकुलितबुद्धिर्मातरं भार्येति, भार्यामपि मातेति मन्यते । यदृच्छया मातरं मातैवेति भार्यामपि भार्यैवेति च ॥ तदपि न तत्सम्यग्ज्ञानम् ॥ एवं मत्यादीनामपि रूपादिषु विपर्ययो वेदितव्य ॥ तथा हि कश्चिन्मिथ्यादर्शनपरिणाम आत्मन्यवस्थित रूपाद्युपलब्धौ सत्यामपि कारणविपर्यास भेदाभेदविपर्यास स्वरूपविपर्यास च जनयति ।

कदाचित्॰ रूपादि ;॥ सत ,॥ अपि॰ असत ;॥	=क.ा (=कदाचित्) रूपादिक छती वा विद्यमान (वस्तु) को भी अविद्यमान है
इति॰ प्रतिपद्यते T असत ;॥	=ऐसा कहता है(=प्रतिपद्यते)वा अंगीकार करता है(=प्रतिपद्यते)अविद्यमान(वस्तु) को
अपि॰ सत;॥ इति॰ कदाचित्॰ सत;॥ सत;॥ एव॰	=भी विद्यमान है ऐसा (कहता है) कभी विद्यमान को विद्यमानही
असत॰॥ अपि॰ असत;॥ एव॰ इति॰ मिथ्या-	=अविद्यमान को भी अविद्यमान ही ऐसा मिथ्या-
दर्शन-उदयात् ;। अध्यवसातिT यथा॰ पित्त-उदय-	=दर्शनके उदयसे वा उदयसे निश्चय करता है (=अध्यवस्यति) जैसे पित्तके उदयसे
आकुलितबुद्धिः। मातरम्;॰ भार्या;॥ इति॰ भार्याम्;॥	=घबराई हुई है बुद्धि जिसकी (ऐसा पुरुष) जननीको भार्या वा पत्नी ऐसा पत्नीको
अपि॰ माता ;॥ इति॰ मन्यतेT यदृच्छया ;॥	=भी जननी ऐसा मानता वा जानता है अपनी मनमानी इच्छा। से
मातरम् ;॥ माता ,॥ एव॰ इति च भार्याम् ॰॥ अपि॰	=माताको माता ही ऐसा और (=च) भार्या को भी
भार्या,॥ एव॰इति॰तदपि॰न॰ तत्सम्यग्ज्ञान,॥ एवं॰	=भार्याही (मानता है) वहभी (=तदपि) उसक (=तद्) सम्यग्ज्ञान नहीं है इस प्रकार
मति-आदीनां॥अपि॰रूपादिषु॰॥विपर्ययः;।वेदितव्यः;।	=मतिज्ञान आदिकोंका भी रूपादिकमें विपरीतता जानना योग्य है (सो ही कहते हैं कि)
तथाहि॰कश्चित॰मिथ्यादर्शन-परिणामः;।आत्मनि,।अवस्थितः	=जैसे (=तथा हि) किसी आत्मामें ठहरा हुआ मिथ्यात्वपरिणाम
रूपादि-उपलब्धौ ;॥	=(नेत्रादि करि) रूपादिकों के जानने में (सम्यग्दृष्टि मिथ्यादृष्टि के)
सत्याम् ;॥ अपि॰	=जैसाका तैसा(=सत्याम्)यथार्थ वा समान(=सत्याम्)(ज्ञान)होने परभी(=अपि)
कारणविपर्यासम् ;। भेदाभेदविपर्यासम् ;।	=कारण विपर्यास को भेदाभेद विपर्यासको
च॰ स्वरूप-विपर्यासम् ;। जनयति T	=और (=च) स्वरूप विपर्यास को उपजाता है ।

कारणविपर्यासस्तावत्- रूपादीनामेकं कारणममूर्त्तं नित्यमिति केचित्कल्पयन्ति ॥ अपरे पृथिव्यादिजातीभिन्ना परमाणवश्चतुस्त्रिद्व्येकगुणास्तुल्यजातीयाना कार्याणामारम्भका इति ॥

तावत् कारणविपर्यास ।। रूपादीनाम् ।। एकम् ।।। =प्रथम कारण विपर्यास (कहा जाता) है । रूपादिकों का एक (ही)

कारणम् ।।। अमूर्तम् ।।। नित्यम् ।।। इति केचित् कल्पयन्ति =कारण अमूर्तीक नित्य है ऐसी कितनेक (वादी) कल्पना करते हैं अर्थात् ब्रह्माद्वैतवादी मानते हैं कि रूपादिकोंका कारण एक अमूर्तीक नित्य ब्रह्मही है ब्रह्महीसे हुये हैं । सांख्यमती कहते हैं कि रूपादिकों का कारण अमूर्तीक नित्य प्रकृति है प्रकृतिसे ही ये रूपादिक उपजे हैं ॥ (यद्यपि नेत्रोंको ये जैसे हैं तैसे ही दीखे हैं)

अपरे ।। पृथिवी-आदि =दूसरे अर्थात् नैयायिक और वैशेषिक मानते हैं कि पृथिवी जलअग्निवायुकी (=आदि)

जातिभिन्नाः ।। परमाणवः ।। चतुर् =जातिरूप जुदी जुदी (=भिन्नाः) परमाणु (यथाक्रम या क्रमसे) गंधरसरूपस्पर्श चार

त्रि-द्वि-एक-गुणाः ।। =रस रूप स्पर्श तीन (गुणवाली) रूप स्पर्श (दो गुणवाली) स्पर्श एक गुणवाली है

तुल्य-जातीयानां ।। कार्याणाम् ।।। आरम्भकाः ।। इति =(सो अपने अपने)समान जातियोंके (स्कंधरूप) कार्योंको आरम्भ करनेवाली हैं अर्थात् पृथवी आदि चारों अपनी अपनी जातिके भिन्न भिन्न स्कंधरूप कार्योंको उपजाते हैं

---

(१) पार्थिवपरमाणुषु गन्धरसरूपस्पर्शाः । आप्येषु रसरूपस्पर्शाः । तैजसेषु रूपस्पर्शौ । वायवीयेषु स्पर्शः ॥

पार्थिवपरमाणुषु ।। गन्धरसरूपस्पर्शाः ।। —पृथिवी से होने वाले परमाणुओं में गन्ध-रस-वर्ण-स्पर्श (ये चार गुण) है

आप्येषु ।। रस-रूप-स्पर्शाः ।। —जल से होने वाले (परमाणु) नि में रस, वर्ण और स्पर्श (ये तीन गुण) होते हैं ॥

तैजसेषु ।।। रूप-स्पर्शौ ।। —अग्नि से होने वाले (परमाणु) नि में रूप और स्पर्श (ये दो गुण) होते हैं (तो)

वायुवीयेषु ।। स्पर्शः ।। —पवन से होने वाले (परमाणु) नि में स्पर्श (एक गुण) होता है ॥

आप्येषु और वायुवीयेषु पुल्लिंगी नपुंसकलिंगी दोनों हैं ॥

अन्ये वर्णयन्ति—पृथिव्यादीनि चत्वारि भूतानि, भौतिकधर्मा वर्णगन्धरसस्पर्शाः, एतेषा समुदायो रूपपरमाणुरष्टक इत्यादि॥ इतरे वर्णयन्ति—पृथिव्यप्तेजोवायव काठिन्यादिद्रवत्वाद्युष्णत्वादीरणत्वादिगुणा जातिभिन्नाः परमाणव कार्यस्यारभकाः॥ भेदाभेदविपर्यास कारणात्कार्यमर्थान्तरभूतमेवेति

अन्ये ।। वर्णयन्ति ॥ पृथिवी-आदीनि ।।।।	=दूसरे (अर्थात् बौद्धमती) वर्णन करते हैं कि पृथिवी जल-तेज-वायु (=आदि)
चत्वारि ।। भूतानि ।।। भौतिकधर्माः ।।	=चार विशेष गुणवाले द्रव्य हैं (=भूतानि) इन विशेष द्रव्योंके स्वभाव और धर्म
वर्णगन्धरसस्पर्शाः ।। एतेषाम् ।।	=रूप, गंध, रस, स्पर्श हैं इन (पृथिवी, जल, तेज, वायु, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श) का
समुदायः ।। रूपपरमाणुः ।। अष्टकः ।। इत्यादि ।।।।	=समूह रूप परमाणु अष्टक है ऐसे और (बातें भी मानते) हैं
इतरे ।। वर्णयन्ति ॥ पृथिवी-अप्-तेजस्-वायवः ।।	=अन्य (अर्थात् चार्वाक मती) कहते हैं कि भूमि, जल, अग्नि, पवन, (क्रमसे)
काठिन्यादि-द्रवत्वादि-उष्णत्वादि-ईरणत्वादि	=कठोरतादि, बहनापनादि, उष्णादि, प्रेरणत्वादि (=ईरणत्वादि)
गुणाः ।। जातिभिन्नाः ।। परमाणवः ।।	=गुण वाले भिन्न भिन्न जातिवाले परमाणु हैं।
कार्यस्य ।।। आरम्भकाः ।।	=(वे भिन्न भिन्न जाति वाले परमाणु पृथिवी आदिक स्कंध रूप) कार्य के
	=आरम्भ करने वाले हैं। (इस सबका भावार्थ यह है कि) भूमि के परमाणु के

काठिन्यादिगुण और जलके परमाणुओंके द्रवत्वादिगुण और अग्निके परमाणुओंके उष्णत्वादिगुण और पवनके परमाणुओं के ईरणत्वादिगुण हैं वे भिन्न भिन्न परमाणु पृथिवी आदिक भिन्न भिन्न स्कन्ध अपनी अपनी जातिरूप उत्पन्न करते हैं। (इस प्रकार वो पृथिवी आदिक पदार्थों के कारण में विपर्यय मानते हैं)

भेदाभेदविपर्यासः ।। कारणात् ॥ कार्यम् ।।।।	=भेदाभेद विपर्यासः जैसे कारणसे कार्य
अर्थान्तरभूतम् ।।।। एव ॥ इति ॥	=भिन्न पदार्थ (=अर्थान्तर) ही होता है अर्थात् पृथिवी आदिक परमाणु नित्य हैं जिन से स्कन्धरूप जो कार्य उत्पन्न होते हैं वे उन परमाणुओंसे भिन्न हैं वा गुणसे गुणी भिन्न ही है वा द्रव्यसे गुण पृथक् ही है

अनर्थान्तरभूतमेवेति च परिकल्पना ॥ स्वरूपाविपर्यास रूपादयो निर्विकल्पा सन्ति न सन्त्येव वा। तदाकारपरिणतं विज्ञानमेव। न तदालम्बनं वस्तु बाह्यमिति ॥ एवमन्यानपि परिकल्पनाभेदान् दृष्टेष्टविरुद्धान्मिथ्यादर्शनोदयात्कल्पयन्ति तत्र च श्रद्धानमुत्पादयन्ति। ततस्तन्मत्यज्ञानं श्रुताज्ञानं अवध्यज्ञानं च भवति ॥ सम्यग्दर्शनं पुनस्तत्त्वार्थाधिगमे श्रद्धानमुत्पादयति। ततस्तन्मतिज्ञानं श्रुतज्ञानमवधिज्ञानं भवति आह प्रमाणं

अनर्थान्तरम् ।। भूतम् ।।। एव● इति● च● परिकल्पना ।।।	=और (=च)(कारणसे कार्य) अभिन्न पदार्थ ही होवाहै इस प्रकार (किसी किसीकी) कल्पना या मानना है। जैसे घट पटादिक और ग्राम वन पर्वतादिक ब्रह्मसे उत्पन्न हुये हैं वा ब्रह्मही हैं जुदे नहीं हैं॥ (इत्यादि भेदाभेद विपर्यास है जहां भेद होय तहां अभेदही कल्पना जहां अभेद होय तहां भेदही कल्पना, ऐसे विपर्यय योगियोंकी है)
स्वरूपविपर्यासः।। रूपादयः।। निर्विकल्पाः।। सन्ति	=स्वरूप विपर्यास जैसे रूपादिक निर्विकल्प हैं अर्थात् इनकी कल्पना नहीं होसक्तीहै (ऐसी वैभाष्यक मतवालों की कल्पना है)
न● सन्ति एव● वा●	=अथवा रूपादिक कोई पदार्थ नहीं हैं
तद्-आकार-परिणतम् ।।। विज्ञानम् ।।। एव●	=उन (रूपादिक) के आकारपरिणया विज्ञान ही है
न● तद्-आलम्बनम् ।।। वस्तु ।।। बाह्यम् ।।। इति●	=तिस (विज्ञान) के आश्रयभूत या अवलम्बनरूप बाह्यद्रव्य (रूपादिक) नहीं हैं (विज्ञान अद्वैतवादियोंका जो बौद्धमतका एक भेद है ऐसी ऊपर कही हुई कल्पना है)
एवम्● अन्यान् ।। अपि● परिकल्पनाभेदान् ।।	=इस प्रकार भिन्न भिन्न बहुत (=परि) कल्पना के भेदों को भी
दृष्टेष्टविरुद्धान् ।। मिथ्यादर्शनउदयात् ।।	=जो प्रत्यक्ष अनुमान प्रमाण से विरुद्ध हैं मिथ्यात्व के उदय से
कल्पयन्ति तत्र● च● श्रद्धानम् ।।। उत्पादयन्ति	=मानते हैं। और (=च) तहां प्रतीति या रुचि (=श्रद्धान) को उत्पन्न करते हैं
ततः● तत् ।।। मतिअज्ञानम् ।।। श्रुत-अज्ञानम् ।।।	=तिससे वह (=तत्) कुमतिज्ञान (वह) कुश्रुतज्ञान
च● अवधिअज्ञानम् ।।। भवति पुनः● सम्यग्दर्शनम् ।।।	=और (वह) कुअवधिज्ञान या विभंग अवधिज्ञान होता है॥ और सम्यक्त्व
तत्त्व-अर्थ अधिगमे ।। श्रद्धानम् ।।। उत्पादयति	=यथार्थ या यथावस्थित (=तत्त्व) वस्तु या पदार्थके (=अर्थ) जाननेपर प्रतीति उपजाता है
ततः● तत् ।।। मतिज्ञानम् ।।। श्रुतज्ञानम् ।।।	=तिससे सो मतिज्ञान (वह) श्रुतज्ञान
अवधिज्ञानम् ।।। भवति आह प्रमाणम् ।।।	=(वह) अवधिज्ञान होता है। पूछता है कि प्रमाण (प्रत्यक्ष और परोक्ष)

द्विप्रकारं वर्णितम् । प्रमाणैकदेशाश्च नयास्तदनन्तरोद्देशभाजो निर्देष्टव्या इत्यतआह ॥

नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्र शब्दसमभिरूढैवम्भूता नयाः ॥३३॥

द्विप्रकारम्,॥। वर्णितम्,॥। प्रमाण-एक-देशाः,। च नयाः,।	=दो प्रकार वर्णन किया गया है और (=च) प्रमाणके एकदेश (जे) नय (ते)
तत्-अनन्तर	=(प्रमाणनयैरधिगमः इस सूत्र में) उस (प्रमाण) के अत्यन्तसमीप (=अनन्तर)
उद्देश भाजः ¦। निर्देष्टव्याः ,। इति॰ अतः॰ आह T	=नाममात्र कहे (=उद्देशभाज) (अब) कथन किये जाने योग्यहैं । इसलिये कहतेहैं कि

नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्द समभिरूढैवम्भूता नया ॥३३॥

=नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्दसमभिरूढैवम्भूता (सप्त) नयाः : (भवन्ति) ॥३३॥

नैगम-संग्रह व्यवहार ऋजुसूत्र-शब्द	=नैगम संग्रह (=समूह), व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द,
समभिरूढ एवम्भूताः ,। सप्त ,। नयाः ,। भवन्ति T	=समभिरूढ, और एवम्भूत सात नय विद्यमान हैं (=भवन्ति) अर्थात

(१) व्यवहारर्जुसूत्र =व्यवहार+ऋजुसूत्र (दोनों पाठ ठीक हैं देखो टिप्पणी पृष्ठ ७४)॥ (२) एवम्भूत = एवमूत (देखो टिप्पणी पृष्ठ ५ और नीचे की टि०)। म् पदान्त हो वा किसी प्रत्यय के अन्तमें हो और इस म् के पश्चात् कोई व्यञ्जन आवे तो म् का विकल्पकरि अनुस्वारमें परिवर्तन होजाता है यदि इस म् के पश्चात् श्-ष्-स्-ह्-र् आवे तो म अवश्य ही अनुस्वार में पलट जायेगा। यदि हम इस म् को अनुस्वार में न पलटें तो उस अनुनासिक ङ्-ञ्-ण्-न्-म् म परिवर्तन होगा जिस वर्ग का व्यञ्जन इस म् के पीछे आवे और यदि इस म् के पश्चात् य्-ल्-व् म से कोई आवे तो म् अनुनासिक य्-ल्-व् में क्रमानुसार वा यथायोग्य पलट जायेगा। अतः एवम्+भूतानया' शब्द का म् अनुस्वार में पलटकर एवं भूतानया: ऐसा शब्द बना। इसलिए एवम्भूतानया और एवंभूतानया दोनों पाठ ठीक हैं॥ (भाण्डारकर मार्गोपदेशिका पृष्ठ १३) (३) श्वेताम्बर आम्नायके समाप्य में हमारे यहां के तेतीसवां सूत्रके स्थान में "नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्दा नयाः" चौंतीसवां सूत्र है। इस चौंतीसवां सूत्रके आगे ही "आद्यशब्दौ द्वित्रिभेदौ" (=आदिकी नैगमनय) के दो (भेद। शब्द (नय) के तीन भेद हैं) ऐसा समाप्य० में पेंतीसवां सूत्र है॥ (देखो पृष्ठ ४९४)॥

नय (देखो प० जयचन्द की वचनिका मुद्रित पृष्ठ १९५) इनकी अस्मायों की य वंशावली मिलतीसी है। नय
- अर्थ नय
  - नैगम
  - संग्रह
  - व्यवहार
  - ऋजुसूत्र
- शब्द नय
  - शब्द
  - समभिरूढ
  - एवम्भूत

नय (देखो सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रम् पृष्ठ २१)
नय
- नैगम
  - देश परिक्षेपी
  - सकल परिक्षेपी
- संग्रह
- व्यवहार
- ऋजुसूत्र
- शब्द
  - साम्प्रत
  - समभिरूढ
  - एवम्भूत

वस्तुमें अनेक धर्म (=स्वभाव) होते हैं उनमेंसे किसी एक धर्मकी मुख्यता लेकर

नय (इन नयोंकी परिभाषा और व्याख्याके लिये देखो टिप्पणी पृष्ठ ४९५-४९८)

- निश्चय नय
  - अशुद्ध निश्चयनय
    - द्रव्यार्थिक नय
      - नैगम
        - द्रव्य नैगम
          - शुद्धद्रव्य नैगम
          - अशुद्धद्रव्य नैगम
        - पर्याय नैगम
          - अर्थपर्याय नैगम
          - व्यंजनपर्याय नैगम
          - अर्थव्यंजन प० नैगम
        - द्रव्यपर्याय नैगम
          - शुद्ध द्रव्यार्थ पर्याय नैगम
          - अशुद्ध द्रव्यार्थ पर्याय नैगम
          - शुद्धद्रव्य व्यंजन पर्याय नैगम
          - अशुद्धद्रव्य व्यं० पर्याय नैगम
      - संग्रह
      - व्यवहार
    - पर्यायार्थिक नय
      - ऋजुसूत्र
      - शब्द
      - समभिरूढ
      - एवंभूत
  - शुद्ध निश्चयनय
- व्यवहार नय, उपनय, उपचार नय (आप०पद्ध० पृ० २१३-२१५)
  - सद्भूत व्यवहारनय
    - शुद्धसद्भूत व्यवहारनय
    - अशुद्ध सद्भूत व्यवहारनय
  - असद्भूत व्यवहारनय
    - समानजातीय असद्भूत व्यवहारनय
    - असमानजातीय असद्भूत व्यवहारनय
    - मिश्र असद्भूत व्यवहारनय
  - उपचरित व्यवहारनय
    - समानजातीय उपचारका उपचार
    - विजातीय उपचारका उपचार
    - मिश्र उपचारका उपचार

पदार्थका व्यवहार भेद और उपचार दोनोंका ग्रहण करने वाला उपनय या उपचारनय है अर्थात् यह व्यवहार नय है जहां नयके 'निश्चय नय और व्यवहार नय' दो भेद किये हैं सूत्र (३३)में वर्णित व्यवहारनय वह है जो संग्रह नयके द्वारा ग्रहणकिये हुये पदार्थके भेद प्रभेद करती है ॥

अविरोधरूप साध्य पदार्थ को जाने सो नय है। उसके उपर्युक्त सातभेद हैं ॥

(१) नय—वस्तुके एक देश को जानने वाले ज्ञान को नय कहते हैं ॥ (२) वस्तु के किसी सत्य या यथार्थ अंशके ग्रहण करने वाले ज्ञानको निश्चय नय कहते हैं। जैसे मिट्टीके घड़को मिट्टीका घट कहना ॥ (३) किसी निमित्तके वशसे एक पदार्थको दूसरे पदार्थरूप जाननेवाले ज्ञानको व्यवहारनय कहते हैं। जैसे मिट्टी के घड़े को घीके रहने के निमित्तसे घी का घड़ा कहना ॥ (४) "माण क्रोध आदिक रागादिक भय अशुद्ध निश्चै परवान" धानतरायजी अनुवादित द्रव्य संग्रह ॥ 'तहां जीवकूं मतिज्ञानादिक का कर्ता कहिए सो अशुद्ध निश्चयनय है" अर्थ प्रकाशिका ॥ जीवको क्षयोपशमरूप मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान मनःपर्ययज्ञान चार ज्ञानों का कर्ता कहना सो तो अशुद्धनिश्चय नय है और (५) शुद्ध दर्शन ज्ञानका अर्थात् केवल दर्शन और केवलज्ञानका कर्ता कहना सो शुद्ध निश्चयनय है ॥ "निहचै (नयसे) शुद्ध शुद्ध निजगुनमें केवल दर्शन ज्ञान सरूप" ॥ द्रव्य संग्रह ॥ (६) जो द्रव्य अर्थात् सामान्य को ग्रहण करे सो द्रव्यार्थिक नय है (७) जो विशेष अर्थात् गुण अथवा पर्याय का विषय करे सो पर्यायार्थिक नय है(८) नैगम, संग्रह, व्यवहार, द्रव्यार्थिक नय हैं और ऋजुसूत्र शब्द, समभिरूढ, एवंभूत ये पर्यायार्थिक नय हैं इनकी परिभाषा इसके सूत्रार्थ में ही हैं यहां पर केवल इतना दिखाना है कि व्यवहार शब्द जो इनसात नयके अंतर्गत है उसका अर्थ "संग्रहनयसे ग्रहण किये हुए पदार्थोंका विधि पूर्वक भेद प्रभेद अतिक्रम करे" "फिर किसी प्रकारका विभाग न हो सके" "सो यहां ऋजुसूत्रका विषय है तातें पहले तहँ संग्रह व्यवहार आठ नय चले जात हैं" पत्र है अर्थ० पृष्ठ २०१ परन्तु नयचक्रग्रन्थोंमें (पृष्ठ ५६५) निश्चयनयके विरुद्ध जो व्यवहार नय दीखे जिसको उपनय और उपचार नय भी कहते हैं और जिसके आठ भेद कहे हैं वह "किसी निमित्तके वशसे एक पदार्थको दूसरे पदार्थ रूप जाननेवाले ज्ञानका नाम है" जैसाकि इस पृष्ठकी संख्या (३)में बताई इसका विशेष ऐसे है कि "जहां अन्य पदार्थके भावको अन्य पदार्थविषैं आरोपण करें तथा परनिमित्तते भय जो नैमित्तिक भाव ताहू ही वस्तु का निजभाव कहे। तथा आधार आधेयभाव आदि प्रयोजनके वशतें आरोपण कीजिए तथा एक देशमें सर्वदेश का उपचार करे तथा कारणविषैं कार्यका उपचार करे इत्यादि सर्वही व्यवहार (नय) कहावै है, अर्थ प्रकाशिका पृष्ठ ८६। हमारी समझमें व्यवहारनय जो सातनयोंमें गर्भित है और उपचारनय, उपनय या व्यवहारनय जो निश्चय नयके विरुद्ध ग्रंथावलीमें दी है इन दोनोंमें यही उपर्युक्त लिया हुआ अंतर है यदि हम विचारें कि संग्रहनयसे ग्रहण किये हुये पदार्थ का भेद प्रभेद व्यवहारनयसे न करें तो व्यवहार नहीं चल सकता। और उपचार नय उपनय (या निश्चयनयके विरुद्धरूप वाली व्यवहारनय) से भी व्यवहार चलता है तो इस अवस्था में दोनों नय व्यवहार की चलाने वाली सामान्यरूप से एकसी कही जा सकती हैं॥

(१) जितने द्रव्य हैं—वे अपनी भूत, भविष्यत, वर्तमान काल की समस्त पर्यायों से

( ) एक अखंडद्रव्यको भेदरूप विषय करनेवाले ज्ञानको सद्भूत व्यवहार नय कहते हैं। जैसे–जीवके केवलज्ञानादिक वा मतिज्ञानादिक गुण हैं॥ (जन सिद्धान्त प्रवेशिका पृष्ठ ४३) इस नयके शुद्धसद्भूत व्यवहार और अशुद्धसद्भूत व्यवहार ये दो भेद हैं॥

( ) शुद्धगुण और शुद्धगुणीका भेद कहना जिस प्रकार जीवके केवलज्ञानादि गुण हैं अथवा शुद्ध पर्याय और शुद्ध पर्यायीका भेद कहना जिस प्रकार सिद्ध जीवकी सिद्ध पर्याय है यह शुद्ध सद्भूत व्यवहार है॥ () अशुद्धगुण और अशुद्ध गुणीका भेद कहना जैसे जीवके मतिज्ञानादिक गुण हैं अथवा अशुद्ध पर्याय और अशुद्ध पर्यायीका भेद कहना जैसे संसारी जीवकी देव आदि पर्याय है यह अशुद्ध सद्भूत व्यवहारनय है॥

( ) 'अन्य वस्तुका गुण अन्यके करे सो असद्भूत व्यवहार है" जय॰ पृष्ठ ४१४ जिसके द्वारा स्वजाति संबंधी असत् व्यवहार होता हो वह स्वजात्य सद्भूतव्यवहारनय है जैसे परमाणु बहु प्रदेशी है। यहां पर बहुप्रदेशी पुद्गल द्रव्य परमाणुका सजातीय है परन्तु परमाणु बहु प्रदेशी नहीं वह एक प्रदेशीही है इसलिये एक प्रदेशीके स्थानमें बहु प्रदेशी कहनेसे "परमाणुको बहु प्रदेशी कहना" समान जातीय असद्भूत व्यवहारनयका विषय है। ( ) जिस नयके द्वारा विजाति संबंधी असत् व्यवहार होता हो वह विजात्यसद्भूत व्यवहार है जैसे जहां पंचेन्द्रियादिक देह सो पुद्गल स्कंध हैं उनको जीव कहना सो असमान जातीय असद्भूत व्यवहारनयका विषय है॥

( ) जिस नयके द्वारा स्वजाति विजाति संबंधी असत् व्यवहार हो वह स्वजाति विजात्यसद्भूत व्यवहारनय है जैसे जहां मतिज्ञानको मूर्तीक कहना क्योंकि मूर्तीकसे उपजे है तथा रुके है। यहां मतिज्ञान तो अमूर्तीक जीवका धर्म है और मूर्तीकपना पुद्गलका धर्म है यह मिश्र असद्भूत व्यवहार हुआ॥ (अन्य उदाहरण) जैसे ज्ञान ज्ञेयमें रहता है यहां पर ज्ञेयमें जीव अजीव दोनों प्रकारके ज्ञेय पदार्थोंका ग्रहण है उनमें जीव पदार्थ ज्ञानका सजातीय है और अजीव पदार्थ ज्ञानका विजातीय है दोनोंको ज्ञानका आधार कहना स्वजातिविजात्यसद्भूत व्यवहारनयका विषय है॥

( ) अत्यन्त भिन्न पदार्थोंको जो अभेदरूप ग्रहण करे उसको उपचरित व्यवहारनय अथवा उपचरित असद्भूत व्यवहारनय कहते हैं। जैसे हाथी घोड़ा, यह मेरे हैं इत्यादि। इसके भी तीन भेद (१) स्वजात्युपचरितासद्भूत व्यवहार वा समान जातीय उपचारका उपचार (२) विजात्युपचरिता सद्भूत व्यवहार वा विजातीय उपचारका उपचार (३) स्वजाति विजात्युपचरितासद्भूत व्यवहार वा मिश्र उपचारका उपचार है॥ जिस नयके द्वारा स्वजाति संबंधी आरोपित असत् व्यवहार है जैसे स्त्री, पुत्र, पुत्री, माता, पिता आदि मेरे हैं यहां पर स्त्री पुत्र, पुत्री, माता पिता आत्मा की

अन्वयरूप (=ओघरूप) हैं अपनी किसी भी पर्याय से कोई द्रव्य भिन्न नहीं है। सो,

अपेक्षा से स्वजातीय हैं। उनको मेरा कहना स्वजातीय आरोपित असत् है इसलिये यह स्वजात्युपचरितासद्भूत व्यवहार नयका विषय है अथवा समान जातीय उपचारका उपचार है ॥ ( ) जिसके द्वारा विजाति संबंधी आरोपित असत् व्यवहार हो वह विजात्युपचरितासद्भूत व्यवहार नय है। जैसे वस्त्र आभरण आदि मेरे हैं। यहांपर वस्त्र आभरण आदि अचेतन पदार्थ आत्माके विजातीय हैं। उनको मेरा कहना विजातीय आरोपित असत् है इसलिये यह विजात्युपचरितासद्भूत व्यवहार नय का विषय है अथवा विजातीय उपचारका उपचार है ( ) जिस नयके द्वारा स्वजाति विजाति दोनों संबंधी आरोपित असत् व्यवहार हो वह स्वजाति विजात्युपचरितासद्भूत व्यवहार नय है जैसे देश, राज्य, गढ आदि मेरे हैं यहां पर देश आदिके कहनेसे उनमें रहने वाले मनुष्य तिर्यच आदि जीव और गढ कूप आदि अजीव दोनों प्रकारके पदार्थों का ग्रहण है। उनमें मनुष्य आदि आत्माके स्वजातीय और गढ कूप आदि विजातीय हैं अतः राज्य पुर देश गढ आदि मेरे हैं इस स्थान पर स्वजातीय विजातीय दोनों प्रकार के पदार्थों को मेरा कहना स्वजाति विजात्युपचरितासद्भूत व्यवहारनय का विषय है अथवा मिश्र उपचार का उपचार है। ऐसे व्यवहार नय अनेक प्रकार कहे हैं ॥

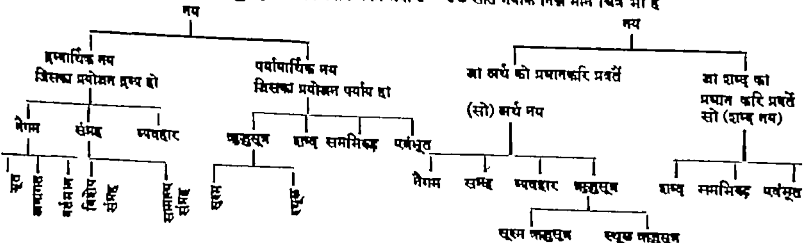
"या नैगमके भेद तीन हैं। द्रव्यनैगम, पर्यायनैगम द्रव्यपर्यायनैगम। तहां द्रव्य नैगमके दोय भेद हैं। शुद्धद्रव्यनैगम, अशुद्धद्रव्यनैगम। बहुरि पर्यायनैगमके तीन भेद अर्थपर्यायनैगम, व्यंजनपर्यायनैगम अर्थव्यंजनपर्यायनैगम। बहुरि द्रव्यपर्यायनैगमके च्यारि भेद शुद्धद्रव्यार्थपर्याय नैगम अशुद्धद्रव्यार्थपर्यायनैगम शुद्धद्रव्यव्यंजनपर्यायनैगम, अशुद्धद्रव्यव्यंजनपर्यायनैगम ऐसे नैगमनयके नवभेद भये। तहां उदाहरण जो, संग्रह नय का विषय सत्मात्र (= सत् मात्र) शुद्धद्रव्य है ताका यहु नैगमनय संकल्प करे है जो सत्मात्र द्रव्य समस्तवस्तु है, ऐसे कहै तहां सत् सो विशेषण भया तातें गौण है। बहुरि द्रव्य विशेष्य भया तातें मुख्य है यहु शुद्धद्रव्यनैगम है। बहुरि जो पर्यायवान् है सो द्रव्य है तथा गुणवान् है सो द्रव्य है ऐसा व्यवहारनय भेद करि कहै है। ताका यहु नैगमनय संकल्प करै है। तहां पर्यायवान् तथा गुणवान् यहतौ विशेषण भया तातें गौण है बहुरि द्रव्य विशेष्य भया तातें मुख्य है। ऐसैं अशुद्ध द्रव्य नैगमनय भया" ॥

( ) बहुरि प्राणीके सुखसंवेदन है सो क्षण ध्वंसी है ऐसे क्षणध्वंसी ऐसा तौ सत्ताका अर्थ पर्याय है सो विशेषण है बहुरि सुख है सो संवेदनका अर्थपर्याय है सो विशेष्य भया तातें मुख्य है। तातें यहु अर्थपर्याय नैगम भया ॥

अतीत पर्यायोंको को, भविष्यत पर्यायोंको तथा वर्तमान पर्यायों को वर्तमानकालमें संकल्प करै ऐसे ज्ञानको तथा वचनको नैगमनय कहते हैं। उसके तीनभेद हैं (१) भूत नैगमनय (२) भावी या भविष्यत नैगमनय (३) वर्तमान नैगमनय। जहांपर अतीतकालमें वर्तमानका आरोपण किया जाता है उसको भूत नैगमनय कहते हैं। जैसे "अद्य दीपोत्सव दिने श्री वर्द्धमान स्वामी मोक्ष गता"

( ) बहुरि पुरुषविषै चैतन्य है सो सत है यहां सत् नामा व्यंजन पर्याय है सो विशेषणहै बहुरि चैतन्य नामा व्यंजन पर्याय है सो विशेष्यहै तातें मुख्य है। यहु व्यंजन पर्याय नैगमहै॥ ( ) बहुरि धर्माधर्मविषै सुख जीवीपणां है। यहां सुख तो अर्थपर्याय है सो विशेषणहै। बहुरि जीवित व्यंजन पर्याय है सो विशेष्य है तातें मुख्य है। यहु अर्थव्यंजनपर्याय नैगम है॥

( ) बहुरि संसार विषै सत् विद्यमान सुख है सो क्षणमात्रहै। यहां सत् शुद्ध द्रव्य है सो विशेषण है। सुखहै सो अर्थ पर्याय है सो विशेष्य है, तातें मुख्य है। यह शुद्धद्रव्य अर्थ पर्याय नैगम भया॥ ( ) बहुरि विषयी जीव है सो एक क्षण सुखीहै यहां जीव है सो अशुद्ध द्रव्य है सो विशेष्य है। सुख है सो अर्थ पर्याय है सो विशेषण है तातें गौण है यहु अशुद्धद्रव्य अर्थपर्यायनैगम भया॥ ( ) बहुरि चित् सामान्य है सो सत् है यहां सत् ऐसा शुद्धद्रव्य है सोतो विशेष्य है तातें गौण है। चित् है सो व्यंजन पर्याय है सो विशेष्य है तातें मुख्य है। ताका यहु शुद्धद्रव्य व्यंजन पर्याय नैगम भया ( ) बहुरि जीव है सो गुणी है यहां जीव है सो अशुद्धद्रव्य है, सो विशेष्य है सो मुख्य है। बहुरि गुण है सो व्यंजन पर्याय है सो विशेषण तातें गौण है। यह अशुद्धद्रव्य व्यंजन पर्याय नैगम भया॥" इन सात नयोंके भिन्न भिन्न चित्र भी हैं



मान दिवालीके दिन ही वर्द्धमान भगवान् मोक्षको गये। यद्यपि भगवान् को मोक्ष गये सहस्रों वर्ष बीत गये परंतु संसारमें ऐसा व्यवहार होता है अर्थात् उस सहस्रों वर्ष पहलेके दिनका संकल्प आजके दिनमें किया जाता है। भूत नैगम नयकी अपेक्षासे ही उसका वाक्य ठीक समझा जाता है (२) जहां पर होनेवाले पदार्थमें होचुकनेके समान संकल्प किया जाता है वा कथन किया जाता है उसको भावी या भविष्यत् नैगम कहते हैं। जैसे अर्हन् सिद्ध एव अर्थात् अरहंत भगवान सिद्ध ही हैं। यद्यपि अरहंत आगे सिद्ध होंगे अभी सिद्ध हुये नहीं हैं होने वाले हैं तथापि होचुकनेके समान कथन किया गया है इसलिये इसको भावि नैगम कहते हैं॥ (३) जहांपर कोई काम करना आरंभ कर दिया हो चाहे वह थोड़ा बना हो चाहे थोड़ा भी न बना हो तथापि उसको बने हुयेके समान कहना यह वर्तमान नैगमनय है। जैसे कोई पुरुष रोटी बनानेकी सामग्री इकट्ठी कर रहा है और उसे किसीने पूछा क्या करते हो? वह उत्तर देता है कि रोटी बनाता हूं किन्तु यहां रोटी बनानेरूप पर्याय अभीतक प्रगट नहीं हुई केवलमात्र लकड़ियें जल और अन्य सामान रख रहा है तथापि वर्तमान नैगम नयसे ऐसा वचन कह सकता है कि 'रोटी बना रहा हूं'।

(२) जो एक वस्तुकी समस्त जातियों और उसकी सब पर्यायोंको संग्रहरूप करके एक स्वरूप कहै, उसको संग्रहनय कहते हैं जैसे 'घट' कहनेसे सब घटोंको समझना अथवा द्रव्य कहनेसे जीव अजीवादि तथा उनके भेद प्रभेदादि सबको समझना सो है॥

(३) जो संग्रहनयसे ग्रहण किये पदार्थोंका विधि पूर्वक (व्यवहारके अनुकूल) व्यपहरण अर्थात् भेद प्रभेद करै सो व्यवहारनय है। जैसे संग्रहनयसे 'द्रव्य' कहनेसे समस्त भेद प्रभेदरूप द्रव्योंका सामान्यतासे ग्रहण होता है। परन्तु द्रव्य दो प्रकारके हैं जीव और अजीव। जीव देव नारकी मनुष्य तिर्यंच चारप्रकारके हैं। अजीव पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल, आकाश ये पांच प्रकारके हैं। इसप्रकार व्यवहारके साधक जितने भेद प्रभेद होसकें उनको जाने सो व्यवहारनय है। सारांश—संग्रहनयसे ग्रहण किये हुये पदार्थोंको लोकव्यवहारके अनुसार विधिसे भेद प्रभेद यहांतक करै कि फिर किसी प्रकारका विभाग न होसके। सो जहां ऋजु सूत्रका विषय है उससे पहलेतक संग्रह और व्यवहार दोनों नय चले जाते हैं॥

(४) अतीत अनागत दोनों पर्यायोंको छोड़कर वर्तमान पर्याय मात्रको ग्रहण करै सो ऋजुसूत्रनय है॥ अर्थात् द्रव्यकी पर्याय समय समय (=कालका सबसे छोटा भाग) में परिणमती (पलटती) रहती है। सो एक समयवर्ती पर्याय को अर्थ पर्याय कहते हैं। अर्थ पर्याय ही ऋजुसूत्रनयका विषय है। ऋजुसूत्रनय वर्तमान एक समय मात्रकी पर्यायको कहता वा ग्रहण करता है। अतीत अनागत समयकी पर्यायको ग्रहण नहीं करता। जैसे कोई पुरुष कहींसे आकर बैठा है किसी दूसरे ने पूछा कहो भाई कहांसे आरहे हो? उस समय उसका यह कहना कि कहींसे नहीं आरहा हूं क्योंकि उस समय गमन क्रियाका सर्वथा अभाव है अतः शुद्ध वर्तमानकी अपेक्षा 'इस समय कहींसे नहीं आरहा हूं' यह ऋजुसूत्रनय का विषय है और ठीक है।

(५) जो व्याकरण संबंधी लिंग, संख्या (वचन), साधन (पुरुष), काल, पुरुष, उपसर्ग, उपग्रह (=परस्मैपद, आत्मनेपद) आदिक के व्यभिचारोंको (=दोषोंको) दूर करके जाने वा कहै उसे शब्दनय कहते हैं (इसके उदाहरण वृत्तिके अनुवादमें बहुत दिये हैं)

(६) अनेक अर्थोंको छोड़कर प्रधानतासे जो एकही अर्थमें रूढ (=प्रसिद्ध) हो उसी अर्थको विषय करने वाला हो अर्थात् उसी अर्थको जाने वा कहै सो समभिरूढनय है। जैसे—गो शब्दके वाणी पृथिवी गमन आदि अनेक अर्थ होते हैं तथापि मुख्यता से गो नाम गाय नामा पशुका ही ग्रहण किया जाता है। यहां पर यह अवश्य समझ लेना चाहिये कि सोती, उठती, बैठती, चलती, फिरती, किसी भी अवस्था में वह क्यों न हो सब लोग उसको गायही कहते हैं। सो यह समभिरूढनय है।

(७) जिस कालमें जो क्रिया करता हो उसको उस कालमें उसही नामसे जाने वा कहै उसको एवं भूत नय कहते हैं॥ जैसे देवों के पतिको परम ऐश्वर्य सहित हो, उसी अवस्थामें इन्द्र कहना पूजन, अभिषेकादि करते हुये इन्द्र नहीं कहना तथा जिस कालमें वह शक्तिरूप क्रियाको करे उसी समय 'शक्र' कहना अन्य समयमें शक्र नहीं कहना॥ यहां पर "एवंभूयत"=ऐसा होना इस एवंभूत नय के अर्थ की प्रतीति (=निश्चय) शब्द से होती है इस लिये शब्द ही एवंभूत नय माना है कारणमें कार्य का उपचार है अर्थात् एवंभूत नय के अर्थकी प्रतीति में कारण शब्द है और कार्य एवंभूतनय है॥

(१) समभिरूढ और एवंभूत नयोंमें यह भेद वा अंतर है कि व्युत्पत्ति सिद्ध अर्थ क्या है (अर्थात् व्याकरणकी रीतिसे शब्दके साधनमें क्या अर्थ होता है) इस बातका कुछ भी विचार न कर प्रसिद्ध अर्थका ग्रहण करना समभिरूढनयका विषय है 'गो' शब्दका व्युत्पत्तिसिद्ध अर्थ 'जो गमन करे सो गाय है' यह है इसका तो विचार न करना किंतु उसके स्वर्ग, किरण, वज्र अक्ष मयंक, वायु, सूर्य, दृष्टि, वाणी, दिशा माता वाणी, भूमि इत्यादि अनेक अर्थोंमें प्रसिद्ध अर्थ 'गाय' लेना और सब अर्थोंको छोड़ कर उस गायको सोती उठती, फिरती चलती सब अवस्थाओंमें गाय कहना यह समभिरूढनयका विषय है। ऐसेही इन्द्र शब्दका व्युत्पत्तिसिद्ध अर्थ परमैश्वर्यका भोगना है इसका तो विचार न करना किंतु शक्तिमान होना पुरोंका विदारण करना इत्यादि अनेक अर्थोंको छोड़कर प्रसिद्ध अर्थ परमैश्वर्यका भोगनाही लेना, यदि उस इन्द्रको परमैश्वर्यका भोग कर रहा हो, वा न कर रहा हो पूजा करते समय, अभिषेक करते समय इत्यादि सब अवस्थाओंमें इन्द्र कहना यह समभिरूढनयका विषय है। परंतु जहांपर केवल व्युत्पत्ति सिद्ध ही अर्थ विषय हो वा ग्रहण हो वह एवंभूत नय है जैसे गमन करने वालीको ही गाय कहना खड़ी रहने वाली वा सोने वालीको गाय न कहना वा जिस समय इन्द्र परमैश्वर्यका भोग कर रहा था उसी समय इन्द्र कहना अन्य समय इन्द्र न कहना यह एवंभूत नयका विषय है॥

एतेषां सामान्यविशेषलक्षणं वक्तव्यम् । सामान्यलक्षणं तावद्वस्तुन्यनेकान्तात्मन्यविरोधेन हेत्वर्पणात्साध्यविशेषस्य याथात्म्यप्रापणप्रवणप्रयोगो नयः । स द्वेधा द्रव्यार्थिकः पर्यायार्थिकश्चेति

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित तेतीसवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद ॥

एतेषाम् ६। सामान्य-विशेष-लक्षणम् १।१। वक्तव्यम् १।१।	=इन (नयों) का संक्षेपस्वरूप और ब्योरा वार (=विशेष) स्वरूप कहने योग्य है
तावत्* सामान्य-लक्षणम् १।१। अनेकान्त-आत्मनि ,	=प्रथम (=तावत्) सामान्य स्वरूप (यह है कि) अनेक धर्म स्वरूप या स्वभाव वाला
वस्तुनि ७। अविरोधेन ३। हेतु-अर्पणात् ५।१	=वस्तुमें अविरोधकरि (=निर्दोषतासे) अविरुद्धतासे हेतुरूप समर्पण करनेसे
साध्य	=साध्य (पदार्थ) के (जिस पदार्थ को सिद्ध करना चाहते हैं उसका वा साधनीय वस्तुके)
विशेषस्य ६। याथात्म्य-प्रापण-	=विशेषका वा ब्योरेवारका यथार्थ स्वरूप (=याथात्म्य) प्राप्त करने को
प्रवण-प्रयोगः १। नयः १	=व्यापाररूप प्रयोग सो नय है भावार्थ वस्तुमें अनेक धर्म वा स्वभाव होते हैं उनमेंसे किसी एक धर्मकी मुख्यताकरि अविरोधरूप (=बिना किसी दोषके) जिसकरि साध्य (साधनीय वा सिद्ध किये जाने योग्य पदार्थ) जाना जाय सो नय है
सः १। द्वेधा* द्रव्यार्थिकः १। च पर्यायार्थिकः १। इति*	=वह (नय) दो प्रकार द्रव्यार्थिक और (=च) पर्यायार्थिक ऐसे हैं

(१) नयकी परिभाषा भले प्रकार समझ में आवें अतः तत्त्वार्थ राज वार्तिक मे देते हैं "प्रमाण प्रकाशितार्थ विशेष प्ररूपको नयः" प्रमाणकरि प्रकाशित किये पदार्थका विशेष प्ररूपण करने वाला (=निर्दोष ब्योरावार कथन करने वाला) जो ज्ञान है सो नय है भावार्थ प्रमाण के द्वारा प्रकाशित अस्तित्व नास्तित्व, नित्यत्व, अनित्यत्व आदि अनंत धर्म स्वरूप वा अनंत स्वभाव वाले जीव अजीव आदि पदार्थों को एक देश रूप से निरूपण करने वाला है उसको नय कहते हैं ॥ व्याख्या ॥ सकलग्राही वा प्रकृष्ट ज्ञानको प्रमाण कहते हैं । नय एक धर्म द्वारा पदार्थके सब धर्मोंको ग्रहण लेता है इसलिये सकलको जाननेके हेतुसे उसका अर्थ सकलादेश है ॥ "प्रमाण प्रकाशितार्थेत्यादि" नयके लक्षणमें जो 'प्रमाण प्रकाशित' पदका उल्लेख है उसका यह तात्पर्य है कि जो पदार्थ प्रमाण के द्वारा प्रकाशित है उसीके एकदेश को भेद प्रभेद रूपसे निर्दोष कथन करने वाला नय है किन्तु जिन पदार्थों का प्रकाश प्रमाणाभास से है (=सदोष ज्ञान द्वारा है) उनका प्रकाशक नय नहीं है मिथ्यानय (प्रकाशक) है तथा नय के लक्षण में कथक शब्दके स्थान में जो प्ररूपक शब्दका उल्लेख किया है उसका तात्पर्य यह है कि प्रमाण प्रकाशित अनंत धर्मस्वरूप

(५) जो व्याकरण संबंधी लिंग, संख्या (वचन), साधन (पुरुष), काल, पुरुष, उपसर्ग, उपग्रह (=परस्मैपद, आत्मनेपद) आदिक के व्यभिचारोंको (=दोषोंको) दूर करके जाने या कहे उसे शब्दनय कहते हैं (इसके उदाहरण वृत्तिके अनुवादमें बहुत दिये हैं)

(६) अनेक अर्थोंको छोड़कर प्रधानतासे जो एकही अर्थमें रूढ (=प्रसिद्ध) हो उसी अर्थको विषय करने वाला हो अर्थात् उसी अर्थको जाने या कहे सो समभिरूढनय है। जैसे—गो शब्दके वाणी पृथिवी गमन आदि अनेक अर्थ होते हैं तथापि मुख्यता से गो नाम गाय नामा पशुका ही ग्रहण किया जाता है। यहां पर यह अवश्य समझ लेना चाहिये कि सोती, उठती, बैठती, चलती, फिरती, किसी भी अवस्था में वह क्यों न हो सब लोग उसको गायही कहते हैं। सो यह समभिरूढनय है।

(७) जिस कालमें जो क्रिया करता हो उसको उस कालमें उसही नामसे जाने या कहै उसको एवंभूत नय कहते हैं॥ जैसे देवों के पतिको परम ऐश्वर्य सहित हो, उसी अवस्थामें इंद्र कहना पूजन, अभिषेकादि करते हुये इन्द्र नहीं कहना तथा जिस कालमें वह शक्तिरूप क्रियाको करे उसी समय 'शक्र' कहना अन्य समयमें शक्र नहीं कहना॥ यहां पर "एवंभूतत्व"=ऐसा होना इस एवंभूत नय के अर्थ की प्रतीति (=निश्चय) शब्द से होती है इस लिये शब्द ही एवंभूत नय माना है कारणमें कार्य का उपचार है अर्थात् एवंभूत नय के अर्थकी प्रतीति में कारण शब्द है और कार्य एवंभूतनय है॥

(१) समभिरूढ और एवंभूत नयोंमें यह भेद वा अंतर है कि व्युत्पत्ति सिद्ध अर्थ क्या है (अर्थात् व्याकरणकी रीतिसे शब्दके साधनमें क्या अर्थ होता है) इस बातका कुछ भी विचार न कर प्रसिद्ध अर्थका ज्ञान होना समभिरूढनयका विषय है 'गो' शब्दका व्युत्पत्तिसिद्ध अर्थ 'जो गमन करे सो गाय है यह है इसका तो विचार न करना किंतु उसके स्वर्ग, किरण, वज्र जल, मर्यादा, वायु, सूर्य्य दृष्टि, वाणी, दिशा माता वाणी भूमि इत्यादि अनेक अर्थोंमें प्रसिद्ध अर्थ 'गाय' लेना और सब अर्थोंको छोड़ कर उस गायका सोती उठती बैठती चलती सब अवस्थाओंमें गाय कहना यह समभिरूढ नयका विषय है। ऐसेही इन्द्र शब्दका व्युत्पत्तिसिद्ध अर्थ परमैश्वर्यका भोगना है इसका तो विचार न करना किंतु शक्तिमान होना पुरोंका विदारण करना इत्यादि अनेक अर्थोंको छोड़कर प्रसिद्ध अर्थ परमैश्वर्यका भोगनावाही लेना, एवं उस इन्द्रको परमैश्वर्यका भोग कर रहा हो, वा न कर रहा हो पूजा करते समय, अभिषेक करते समय इत्यादि सब अवस्थाओंमें इन्द्र कहना यह समभिरूढनयका विषय है। परंतु जहांपर केवल व्युत्पत्ति सिद्ध ही अर्थ विषय हो वा ग्रहण हो वह एवंभूत नय है जैसे गमन करने वालीको ही गाय कहना खड़ी रहने वाली वा सोने वालीको गाय न कहना वा जिस समय इन्द्र परमैश्वर्यका भोग कर रहा हो उसी समय इन्द्र कहना अन्य समय इन्द्र न कहना यह एवंभूत नयका विषय है॥

एतेषां सामान्यविशेषलक्षणं वक्तव्यम्। सामान्यलक्षणं तावद्वस्तुन्यनेकान्तात्मन्यविरोधेन हेत्वर्पणात्साध्यविशेषस्य याथात्म्यप्रापणप्रवणप्रयोगो नय। स द्वेधा द्रव्यार्थिकः पर्यायार्थिकश्चेति

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित तेतीसवां सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद ॥

एतेषाम् ६। सामान्य-विशेष-लक्षणम् १।। वक्तव्यम् १।।	(=इन नयों) का संक्षेपस्वरूप और ब्योरा वार (=विशेष) स्वरूप कहने योग्य है
तावत्* सामान्य-लक्षणम् १।। अनेकान्त-आत्मनि ,	=प्रथम (=तावत) सामान्य स्वरूप (यह है कि) अनेक धर्म स्वरूप वा स्वभाव वाला
वस्तुनि ७। अविरोधेन ३। हेतु अर्पणात् ५।।	=वस्तुमें अविरोधकरि (=निर्दोषतासे) अविरुद्धतासे हेतुरूप समर्पण करनेसे
साध्य-	=साध्य (पदार्थ) के (जिस पदार्थ को सिद्ध करना चाहते हैं उसका वा साधनीय वस्तुके)
विशेषस्य ६। याथात्म्य-प्रापण-	=विशेषका वा ब्योरेवारका यथार्थ स्वरूप (=याथात्म्य) प्राप्त करने को
प्रवण-प्रयोगः १। नयः १।	=व्यापाररूप प्रयोग सो नय है अर्थात् वस्तुमें अनेक धर्म वा स्वभाव होते हैं उनमेंसे किसी एक धर्मकी मुख्यताकरि अविरोधरूप (=बिना किसी दोषके) जिसकरि साध्य (साधनीय वा सिद्ध किये जाने योग्य पदार्थ) जाना जाय सो नय है
सः १। द्वेधा* द्रव्यार्थिकः १। च पर्यायार्थिकः १। इति*	=वह (नय) दो प्रकार द्रव्यार्थिक और (=च) पर्यायार्थिक ऐसे हैं

(१) नयकी परिभाषा भले प्रकार समझ में आवे अतः तत्त्वार्थ राज वार्तिक मे ऐसे है "प्रमाण प्रकाशितार्थ विशेष प्ररूपको नयः" प्रमाणकरि प्रकाश रूप किये पदार्थ॰। विशेष प्ररूपण करने वाला (=निर्दोष ब्योरावार कथन करने वाला) जो ज्ञान है सो नय है भावार्थ प्रमाण के द्वारा प्रकाशित अस्तित्व नास्तित्व, नित्यत्व, अनित्यत्व आदि अनन्त धर्म स्वरूप वा अनंत स्वभाव वाले जीव अजीव आदि पदार्थों को एक देश रूप से निरूपण करने वाला है उसको नय कहते हैं ॥ व्याख्या ॥ सकलमात्र का प्रकट ज्ञानको प्रमाण कहते हैं। वह एक धर्म द्वारा पदार्थके सब धर्मोंको जान लेता है इसलिये सकलको जाननेके हेतुसे उसका अर्थ सकलादेश है ॥ "प्रमाण प्रकाशितार्थेत्यादि" नयके लक्षणमें जो 'प्रमाण प्रकाशित' पदका उल्लेख है उसका यह तात्पर्य है कि जो पदार्थ प्रमाण के द्वारा प्रकाशित है उसीके एकदेश को भेद अभेद रूपसे निर्दोष कथन करने वाला नय है किन्तु जिन पदार्थों का प्रकाश प्रमाणाभास से है (=सदोष ज्ञान द्वारा है) उनका प्रकाशक नय नहीं है मिथ्यानय (प्रकाशक) है तथा जो नयके लक्षण में रूपक शब्दके स्थान में जो प्ररूपक शब्दका उल्लेख किया है उसका तात्पर्य यह है कि प्रमाण प्रकाशित अनंत धर्मस्वरूप

द्रव्यं सामान्यमुत्सर्ग अनुवृत्तिरित्यर्थ । तद्विषयो द्रव्यार्थिक ॥ पर्यायो विशेषोऽपवादो व्यावृत्तिरित्यर्थ । तद्विषयः पर्यायार्थिकः ।

द्रव्यम् ॥। सामान्यम् ॥। उत्सर्गः ॥ अनुवृत्तिः ॥ इतिअर्थः ॥ =द्रव्य, सामान्य, उत्सर्ग, और अनुवृत्ति ये एकार्थ हैं (=अर्थ)

तद्विषयः ॥ द्रव्यार्थिकः ॥ =द्रव्य है विषय जिसका सो द्रव्यार्थिक है अर्थात् यह द्रव्यार्थिकनय केवल द्रव्यका ही विषय करती है । पदार्थोंके विकार (=पर्याय) और अभाव को विषय नहीं करती क्योंकि द्रव्य से अन्य पर्याय और अभाव कोई पदार्थ नहीं

पर्यायः ॥ विशेषः ॥ अपवादः ॥ व्यावृत्तिः ॥ इतिअर्थः ॥ =पर्याय, विशेष, अपवाद और व्यावृत्ति ये एकार्थ हैं

तद्विषयः ॥ पर्यायार्थिकः ॥ =पर्याय है विषय जिसका सो पर्यायार्थिक है अर्थात् यह नय केवल जन्म मरण आदि पर्यायों को ही विषय करती है द्रव्यको विषय नहीं करती है क्योंकि पर्यायों से भिन्न कोई द्रव्य पदार्थ नहीं ॥

पदार्थोंके एक देश का भेद अभेदरूप कथन है यह संशय आदि सब प्रकार के दोषों से रहित है । इसरूप से नयका यह सामान्य लक्षण निर्दोष है ॥

(१) यह नयका प्रकरण बहुत महत्वका और कार्यकारी है, अतः उचित है कि तत्त्वार्थ राजवार्तिक से इसकी निरुक्ति भाषा अनुवाद सहित दी जावे । द्रव्यम् अस्ति इति मतिः अस्य सः द्रव्यास्तिकः द्रव्य-भवनम्=द्रव्यहै ऐसी है बुद्धि(=मति) जिसकी सो द्रव्यास्तिक है (अर्थात् द्रव्यका होना एव न भवः अन्ये ॥ भावविकाराः ॥ अपि अभावः ॥ =ही है इस (द्रव्य) से अन्य पदार्थके विकार (=भावविकार) कहिये पर्याय नहीं है और अभाव भी (कोई पदार्थ)

न तद् व्यतिरेकेण ॥ अनुपलब्धेः ॥ इति द्रव्यास्तिकः ॥ =नहीं है क्योंकि द्रव्य बिना (=तद्-व्यतिरेकेण) पर्यायकी प्राप्ति नहीं है ऐसे द्रव्यास्तिकके पर्यायः एव अस्ति इति मतिः ॥ अस्य सः पर्यायास्तिकः । जन्मादि =पर्याय ही है ऐसी है मति जिसकी सो पर्यायास्तिक है । जन्म मरण आदि भावविकारमात्रम् ॥ एव भवनम् ॥ न ततः अन्य द्रव्यम् ॥ =पर्यायमात्र (=भावविकारमात्र) ही होना (भवन) है तिस (पर्यायमात्र) से अन्यद्रव्य नहीं अस्ति तद्-व्यतिरेकेण ॥ अनुपलब्धेः ॥ इति पर्यायास्तिकः ॥ =है । क्योंकि उस (पर्याय) बिना (=व्यतिरेकेण)(द्रव्यकी) अनुपलब्धि है ऐसे पर्यायास्तिकके

तयोर्भेदा नैगमादयः ।

तयोः ;। भेदाः ;। नैगम-	=उन दोनों (द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयों) के भेद नैगम
आदयः ;।	=संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ, एवंभूत हैं अर्थात्

अथवा॰ द्रव्यम् ;।। एव॰ अर्थः ;। अस्य ;। न गुणकर्मणी ;।।	=या द्रव्यही है प्रयोजन जिसका गुण कर्म जो हैं सो (प्रयोजनरूप) नहीं है
तद् अवस्थारूपात् ;।। इति॰ द्रव्यार्थिकः ;।	=क्योंकि वे (=तद् =गुण और कर्म) (द्रव्य की) अवस्थारूप हैं ऐसा द्रव्यार्थिक है
पर्यायः ;। एव॰ अर्थः ;। अस्य ;। (सः पर्यायार्थिकः) रूपादि	=पर्याय ही है प्रयोजन (=अर्थ) जिसका सो पर्यायार्थिक है क्योंकि रूपादिगुण
उत्क्षेपण-आदि लक्षणः ,।	=और उत्क्षेपण या ऊपर को फैंकना आदि कर्मरूप (पर्याय ही है)
न॰ ततः॰ अन्यत्॰ द्रव्यम् ,।। इति॰ पर्यायार्थिकः ;।	=तिन (पर्यायों) से (भिन्न) अन्य द्रव्य (कोई पदार्थ) नहीं है ऐसा पर्यायार्थिक है
अथवा॰ अर्यते T गम्यते T निष्पद्यते T	=अथवा प्राप्त किया जाय (=अर्यते) जाना जाय (=गम्यते) बनाया जाय (निष्पद्यते)
इति॰ अर्थ ,।, कार्यं ;।। द्रवति T गच्छति T	=ऐसा अर्थ है । कार्य को प्राप्त करै (=द्रवति) कार्यरूप परिणमै (=गच्छति)
इति द्रव्यम् कारणम् ,।। द्रव्यम् एव अर्थः अस्य ;। कारणम् एव	=ऐसा द्रव्य वही कारण है । द्रव्य ही है अर्थ जिसका (अर्थात्) कारण ही
कार्यम् न अर्थान्तरम् न च कार्य कारणयोः ;।। कश्चित् रूप भेदः	=कार्य है । कोई दूसरी वस्तु नहीं है । और कार्य कारणमें कुछ स्वरूपभेद नहीं है अर्थात् कार्य और कारण दोनों एक ही स्वरूप हैं भिन्न नहीं हैं
तद् उभयम् ,।। एकाकारम् ,।। एव॰पर्वांगुलि	=वे दोनों (कार्य और कारण एक आकार होवें जैसे अंगुली और उसकी गांठें (=पर्व)
द्रव्यवत्॰ इति॰ द्रव्यार्थिकः ;। परि	=एकद्रव्य (=द्रव्य) है । ऐसा द्रव्यार्थिक (नय) है ।(जिसका) चारों ओर से (=परि)
समन्तात्॰ आयः ;। पर्यायः ;। पर्यायः ,। एव॰	=सब ओर से (=समन्तात् =पार) उत्पत्ति हो सो पर्याय है । पर्याय ही है
अर्थः ;। कार्यम् ;।। अस्य ;। न ॰ द्रव्यम् ;।।	=प्रयोजन (=अर्थ) कहिये कार्य जिसका न कि द्रव्य है (अर्थात् द्रव्य प्रयोजन नहीं है)
अतीतानागतयोः ;। विनिष्टानुत्पन्नत्वेन ;।।।	=क्योंकि अतीतकालका द्रव्यांश नष्ट हो चुका आगामी कालका द्रव्यांश अभी उत्पन्न नहीं
व्यवहार अभावात् ;। सः ,। एव॰ एकः ;।	=(अतः) उसका व्यवहार नहीं होसकता । सो ही एक (वर्तमानकाल की पर्याय)
कार्यकारणव्यपदेशभाग् ;।	=कार्यकारण (दोनों नामको) धारण करने वाली है अर्थात् कारण और कार्य दोनों नामोंको धारण करने वाली उस वर्तमान कालीन पर्याय हीको पर्यायार्थिकनय विषय करसकता है द्रव्यको नहीं ॥

तेपा विशेषलक्षणमुच्यते

नैगम, संग्रह, व्यवहार ये द्रव्यार्थिक नयके भेद हैं और ऋजुसूत्र शब्द समभिरूढ, एवंभूत ये पर्यायार्थिक नयके भेद हैं ॥ नीचे की टिप्पणी देखो ॥

तेषाम् ;। विशेष-लक्षणम् '॥ उच्यते T =उन (नैगमादि सातों नयों) का विस्तारसे (=विशेषण) लक्षण कहा जाता है

इति पर्यायार्थिकः ॥ अथवा अर्थनयः ॥ अर्थः ।
प्रयोजनम् ॥ द्रव्यं एव अर्थः, अस्य इति द्रव्यार्थिकः ।
प्रत्यय अभिधान
अनुप्रवृत्ति लिङ्ग-दर्शनस्य
निह्नोतुम् अशक्यत्वात् ॥

— ऐसा पर्यायार्थिक है। अथवा अर्थ शब्दका (= अर्थनय) अभिप्राय (= अर्थ)
— प्रयोजन है। द्रव्य ही है प्रयोजन जिस (नय) का वह द्रव्यार्थिक है
— क्योंकि (द्रव्यकी) प्रतीति (= प्रत्यय = विश्वास, निश्चय ज्ञान,) नाम (= अभिधान)
— (द्रव्य के अनुकूल) प्रवर्तन रूप (इन) चिन्होंने (= लिङ्ग) देखे जाने वाले (द्रव्य) के
— छिपाने को असमर्थ है अर्थात् संसार में जो द्रव्यकी प्रतीति होती है, जो संज्ञा है। एवं द्रव्यके अनुकूल प्रवृत्ति रूप चिन्ह हैं उनका लोप नहीं हो सकता—तात्पर्य द्रव्यका ज्ञान, द्रव्यका नाम और द्रव्योंमें प्रवृत्ति इन चिन्होंसे देखे जाने वाले द्रव्य का अपलाप या अभाव नहीं कहा जा सकता है।

पर्यायः ॥ अर्थः ॥ प्रयोजनम् ॥ अस्य इति पर्यायार्थिकः ॥
वाक् +
विज्ञान-व्यावृत्ति-
निबन्धन-व्यवहार-नियमः ॥

— पर्याय है अर्थ कहिये प्रयोजन जिस (नय) का ऐसो पर्यायार्थिक है
— क्योंकि (यह नय केवल पर्याय को विषय करती है इस कारण से) शब्द (= वाक्)
— और ज्ञान नाम (= विज्ञान) या ज्ञानकी निवृत्ति और प्रवृत्ति (= व्यावृत्ति) के
— आधीन (= निबन्ध) या कारणभूत (= निबन्ध) जो व्यवहार है उसकी प्रसिद्धि है अर्थात् मृत् पिंडसे घट पर्यायकी उत्पत्ति होती है तहां मृत् शब्दकी और मृत्ज्ञान की निवृत्ति है और घट शब्दके और उसके ज्ञानकी प्रवृत्तिरूप जो व्यवहार है वह होता है। यदि पर्यायको विषय करने वाला पर्यायार्थिक नय न होता तो संसारसे घट, पट, मठ पुत्र पिता आदि व्यवहारों का लोप ही होजाय ॥

(१) अथवा अर्थनय और शब्दनय ऐसे भी दो भेद होते हैं अर्थात् नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र ये चार अर्थ या प्रयोजनको प्रधानकरि प्रवर्तती हैं इससे इनको अर्थनय कहते हैं और शब्द, समभिरूढ, एवंभूत शब्दको प्रधान करि प्रवर्तती हैं अतः इनको शब्दनय कहते हैं ॥

अनभिनिवृत्तार्थसङ्कल्पमात्रग्राही नैगमः ॥

अन्-अभिनिर्वृत्त-अर्थ-संकल्पमात्र ग्राही ,। =अनिष्पन्न या अपूर्ण (=अन्-अभिनिर्वृत्त) पदार्थ को संकल्पमात्र ग्रहण करने वाली
नैगमः ।। =नैगमनय है अर्थात् संसार में जितने द्रव्य हैं वे अपनी भूतभविष्यत्

(१) गम् (म्वादि प्रथमगणके) धातुमें 'नि' उपसर्ग और अप् (=अ) प्रत्यय लगाने पर निगम (शब्द) बनजाता है। यहां निगम (शब्द) का अर्थ संकल्प है जैसे-" संकल्पो निगमस्तत्र भवोऽयं तत्प्रयोजन" श्लोक वार्तिक श्लोक १८ पृष्ठ २६९, तत्र संकल्प मात्रस्य ग्राहको नैगमो नयः (=तहां पदार्थ का संकल्पमात्र का ग्रहण करने वाला नैगम नय है) तत्त्वार्थ श्लोक वार्तिक श्लोक १७। निगम शब्दसे इसमें अर्थमें अण् प्रत्यय करने पर अथवा निगम शब्द से स्वअर्थ में अण् प्रत्यय करने पर नैगम शब्द की सिद्धि हुई है। "निगच्छन्त्यस्मिन्निति निगमनमात्रं वा निगमः" =निगच्छन्ति अस्मिन् इति वा निगमन मात्रं निगम =(पदार्थ) जिसमें प्राप्त हों सो निगम है अथवा जो प्राप्त होना मात्र है सो निगम है॥ "निगमे कुशलो भवो वा नैगमः" (राज० वा०) निगमे कुशलो नैगम वा निगमे भवो नैगमः =निगम (संकल्प) में (जो) कुशल हो सो नैगम है वा निगम में होय सो नैगम है अतः संकल्पमें जो कुशल हो अथवा जो संकल्प में होने वाला हो वह नैगम है। ऐसा नैगम शब्द का अर्थ है।

"अर्थ संकल्प मात्रग्राही नैगमः" (=पदार्थ को संकल्पमात्र ग्रहण करने वाला या विषय करने वाला है सो नैगम नय है) तत्त्वार्थ राज वार्तिकपृष्ठ ९५। " नैकं गच्छतीति निगमो विकल्पस्तत्र भवो नैगमः " =अनेक (=नैक=न-एकं) (पदार्थ जिसमें) प्राप्त हों सो निगम अर्थात् विकल्प है तहां (विकल्प या निगम में) प्राप्ति (=भव) सो नैगम है। (नयचक्र संग्रह में गर्भित आलाप पद्धति पृष्ठ १४९)। विकल्प =संकल्प के अर्थ में भी यहां हो सकता है। विकल्प =विविधकल्पना। देखो वैद्य कोष पृष्ठ ६६८, ७७९। उपर्युक्त नैगम की परिभाषायें जो राज वार्तिक श्लोक वार्तिक, आलापपद्धतिसे दी हैं ये यथार्थ भावोंहैं। पूज्यपाद स्वामीकी परिभाषामें 'अनभिनिर्वृत्त" शब्द अधिक है शेष भाव उक्त तीनों परिभाषाओं से लगभग मिलता हुआ है अब प्रश्न यह है कि 'अनभिनिर्वृत्त' का परिभाषा पर क्या प्रभाव है॥ (उत्तर) सीमा बद्ध होने से नैगमनयके वर्तमानकालनैगम और भविष्यत्कालनैगम दो भेदों को गर्भित करती है भूतकालनैगम का भेद छूटजाता है क्योंकि अर्थ प्रकाशिका और हिंदीअनुवाद तत्त्वार्थ राजवार्तिक और आलापपद्धति इत्यादि ग्रन्थोंमें नैगमनयके भूतकाल नैगम, वर्तमानकाल नैगम और भावीकाल नैगम तीन भेद कहे हैं अब इन तीनों भेदोंकी परिभाषा और उदाहरण देकर हमको यह दिखलाना है कि सर्वार्थसिद्धि में दीहुई परिभाषा नैगमनयकी औरों की अपेक्षा सीमाबद्ध है।

वर्तमान काल की समस्त पर्यायों से अन्वय रूप (=जोड़रूप) है अपनी किसी भी

( ) जो अतीत पर्यायोंमें वर्तमानवत् आरोपण करे वा संकल्प करे सो भूतनैगमनय है जैसे "अद्य दीपोत्सवदिने श्रीवर्धमानस्वामी मोक्षं गतः" आज दिवालीके दिन पर श्री महावीर स्वामी मोक्ष पधारे हैं यहां पर यद्यपि भगवानको मोक्ष गये हुये सहस्रों वर्ष व्यतीत होगये अर्थात् २४०० वर्ष करीब बीत गये परंतु संसारमें ऐसा व्यवहार होता है अतः नैगमनय की अपेक्षा ऐसा कथन बाधित नहीं परन्तु ठीकही समझा जाता है॥

( ) जो आगामी पर्यायों को वर्तमानवत् संकल्प करै सो भविष्यत् नैगमनय है जैसे एक मनुष्य काठसे इन्द्रकी प्रतिमा बनाना चाहता है अभी वह केवल इन्द्रकी प्रतिमा बनानेकी योजना कर रहा है यदि उससे पूछा जाय है भाई क्या कर रहे हो? तो उत्तर मिलता है कि मैं इन्द्र बना रहा हूं यद्यपि अभी इन्द्रकी प्रतिमा उपस्थित नहीं है किंतु इन्द्रकी मूर्ति बनानेका संकल्प है तोभी मैं इन्द्र बनारहा हूं यह वचन नैगमनयकी अपेक्षा ठीक है॥

( ) "कर्तुमारब्धमीषन्निष्पन्नमनिष्पन्नं वा वस्तु निष्पन्नवत् कथ्यते" = कर्तुं आरब्धम् ईषत् निष्पन्न वा अनिष्पन्नं वस्तु निष्पन्नवत् कथ्यते = (वर्तमानमें पर्याय या) वस्तु आरम्भ करने पर कुछ पूर्ण भया कुछ पूर्ण नहीं हुआ (लगभग परिपूर्ण होने वाली है) उसको परिपूर्ण कहा जाय सो वर्तमान नैगमनय है (" जैसे ओदनः पच्यते " = भात पक गया है) देखो आलाप पद्धति॥ अर्थात् वर्तमान में जो कार्य करने के लिये हाथमें लिया है सो पूर्ण भया तथा परिपूर्ण नहीं हुआ अत्यन्त निकट समयमें परिसमाप्त होना उसको परिपूर्ण रूप संकल्प कर लेना वर्तमान नैगमनय का विषय है अथवा यों भी कह सकते हैं कि जो कार्य वर्तमान कालमें हाथमें लेलिया है वह होते होते ऐसी अवस्था में पहुंच गया है कि उसको व्यवहारमें कहते हैं कि यह पूर्ण है यद्यपि उसकी परिपूर्णतामें अत्यन्त न्यूनता अवशेष है जैसे एक समाज यात्राको गई हुई है सबकी सैमिलित रसोई में दाल भात हो रहा है दाल भात ऐसे पक्के हैं कि केवल एक दो पलमें वह अग्निसे नीचे उतारे जाने को ही है रसोईया पुकारता है कि चलो भाइयो आओ दाल भात निष्पन्न है अब कुछ भी देरी वा विलम्ब नहीं है (वास्तविकमें केवल सड़सी या कपड़ा द्वारा आग से पृथिवी पर उतारने की देरी है क्योंकि रसोईया ने सड़सी कपड़ा कर दाल वा भातको अग्निसे पृथक किया) बस इतनेही में दाल भात पूर्णरूपा परिपक्व होगये और नैगमनयका विषय आता रहा॥ हमारी समझमें वर्तमान नैगमनय भी सूक्ष्म दृष्टिसे भविष्यत नैगमनय में ही गर्भित हो जाती है यह दोनों भेद इस वृत्ति की परिभाषा में अन्तर्गत होजाते हैं केवल भूतनैगमनय अन्तर्गत नहीं होती अतः इतिकार की परिभाषा सीमाबद्ध है जैसा हमारी समझ में आया है सो लिखा।

कञ्चित्पुरुषं परिगृहीतपरशुं गच्छन्तमवलोक्य कश्चित्पृच्छति किमर्थं भवान्गच्छतीति। स आह प्रस्थमानेतुमिति। नासौ तदा प्रस्थपर्याय सन्निहित। तदभिनिर्वृत्तये संकल्पमात्रे प्रस्थव्यवहारः॥ तथा एधोदकाद्याहरणे व्याप्रियमाणं कञ्चित्पृच्छति किं करोति भवानिति। स आह ओदनं पचामीति। न तदोदनपर्यायः सन्निहितः। तदर्थे व्यापारे स प्रयुज्यते॥ एवम्प्रकारो लोकसंव्यवहार अनभिनिर्वृत्तार्थ

पर्याय से कोई द्रव्य भिन्न नहीं है सो भविष्यत् पर्यायोंका, उन पर्यायों का जो अभी परिपूर्ण नहीं हुई हैं वर्तमानकालमें संकल्प करे ऐसा ज्ञान तथा वचन नैगमनय है॥ इसमें भूतनैगम अन्तर्गत नहीं हुई। देखो टिप्पणी ५०६, ४९९। पृष्ठ

कञ्चित् ॥ पुरुषम् ॥ परिगृहीत परशुम् ॥ =किसी मनुष्य को कुल्हाड़ा लिये हुये

गच्छन्तम् ॥ अवलोक्य + कश्चित् ॥ पृच्छति ॥ किम् ॥ =जाते हुए देख कर कोई पूछता है किस-

अर्थम् ॥ भवान् ॥ गच्छति ॥ इति ॥ सः आह प्रस्थम् ॥ =लिये आप जाते हो। वह कहता है धान्यमापनेका लकड़ीका परिमाण (=प्रस्थ)

आनेतुम् इति ॥ असौ ॥ तदा ॥ प्रस्थपर्यायः ॥ =लेनेको (लाना)। उस समय वह (=तदा) प्रस्थ पर्याय

सन्निहितः ॥ न ॥ तद्-अभि- =निकटस्थ नहीं है। उस (प्रस्थ) को आगे या भविष्यत् में (=अभि)

निर्वृत्तये ॥ संकल्पमात्रे ॥ =निष्पन्न करनेके लिये अर्थात् लकड़ी काटकर बनानेके लिये केवलमनकी इच्छामें

प्रस्थव्यवहारः ॥ तथा एधस्-उदक-आदि =प्रस्थका उपयोग या व्यवहार है। वैसे ही (=तथा) लकड़ी जल आदिक

आहरणे ॥ व्याप्रियमाणम् ॥ कञ्चित् ॥ पृच्छति ॥ =लाने में (=आहरण) लगेहुयेको कोई पूछता है

किम् ॥ करोति ॥ भवान् ॥ इति ॥ सः ॥ आह ॥ ओदनम् ॥ =आप क्या करते हो। वह कहता है भातको

पचामि ॥ इति तदा ॥ ओदन पर्यायः ॥ सन्निहितः ॥ न ॥ =पकाता हूं। उस समय भातका पर्याय निकटस्थ नहीं है

तद्-अर्थे ॥ व्यापारे ॥ सः ॥ प्रयुज्यते ॥ एवम् ॥ =उस (भात) के लिये व्यवहार या उपयोगमें वह (पुरुष) लगा हुआहै इसी (=एवम्)

प्रकारः ॥ लोक संव्यवहारः ॥ अभिनिर्वृत्त-अर्थ- =प्रकार संसारका व्यवहार है। अनुपस्थित (=अनभिनिर्वृत्त) पदार्थ को

संकल्पमात्रविषयो नैगमस्य गोचरः ॥१॥ स्वजात्यविरोधेनैकध्यमुपनीय पर्यायानाक्रान्तभेदानविशेषेण समस्तग्रहणात्संग्रहः ॥

संकल्पमात्रविषयः ॥ नैगमस्य ॥ गोचरः ॥	=संकल्पमात्र ग्रहण करने वाला नैगम (नय) का विषय है
स्वजाति-अविरोधेन ॥ एकध्यम् ॥ उपनीय-	=अपनी जातिके वस्तुओं को अविरोधकरि एक प्रकारपनाको प्राप्तकर
पर्यायान् ॥ आक्रान्तभेदान् ॥ अविशेषेण ॥	=पर्यायोंको वा प्राप्त होने वाले भेदोंको सामान्य रूपसे (=अविशेषेण)
समस्तग्रहणात् ॥	=समस्तको ग्रहण करनेके हेतुसे वा समस्तको विषय करनेके कारणसे
संग्रहः ॥	=संग्रह (नय कही जाती) है अर्थात् अपनी जातिके सब पदार्थोंको बिना किसी विरोधताके (एक जातिके कितने ही पदार्थोंमें भी विरोध नहीं होता परंतु उसका भिन्न जातिके पदार्थों से विरोध होता है)

(१) बुद्धि, नाम, अनुकूल प्रवृत्ति इन चिन्होंकी समानता रखने वाला जो स्वरूप है वही जाति है अर्थात् जिन पदार्थोंकी प्रतीति समान होगी नाम भी समान होगा, अनुकूल प्रवृत्ति भी समान होगी ऐसे पदार्थोंके समूहका नाम जाति है अथवा जहां स्वरूपका अनुगम है (=ग्रहण) है जिस प्रकार गोत्व स्वरूप समस्त संसारकी गौओंमें रहता है इस लिये वह जाति है वह जाति चेतन अचेतन आदि पदार्थ स्वरूप है चेतन आदि पदार्थों से भिन्न नहीं। तथा उसकी प्रवृत्तिमें कारण गोत्व, घटत्व पृथ्वत्व,सत्व आदि अनेक शब्द हैं इस लिये जहां जो शब्द होगा उसीके अनुसार उसका नाम भी भिन्न होगा तथा प्रवृत्ति भी उसी नियत शब्द के अनुसार होगी।

(२) उक्त संस्कृत वृत्तिमें जो अविरोध शब्द है उसका अर्थ स्वरूपसे नहिं गिरना है वा स्वरूपसे न प्रच्यवन होना है ॥ अपनी जाति है सो स्वजाति है। नहीं गिरना है वा नहीं डिगना है सो अविरोध है, अपनी जातिसे नहीं गिरना (जो) है सो स्वजात्यविरोध है। अपनी जातिसे नहीं गिरने द्वारा एक प्रकारपनाको प्राप्त होना है सो "स्वजात्यविरोधेनैकध्यमुपनीय" है। ऐसे सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें आये हुये "स्वजात्यविरोधेनैकध्यमुपनीय" वाक्यकी निरुक्ति है। (=प्रकृति धातु प्रत्यय आदि अवयवोंके अर्थ को कह कर समास के अर्थ को जतलाना) सो निरुक्ति है।

(३) तत्वार्थ राजवार्तिकमें संग्रहनयका लक्षण ऐसें कहा है "स्वजात्यविरोधेनैकत्वोपनयात्समस्त ग्रहण संग्रहः" उपर्युक्त वृत्तिमें दी हुई संग्रह नयकी परिभाषा से जब इस परिभाषा की तुलना करते हैं तो "पर्यायान् आक्रान्तभेदान् अविशेषेण" वाक्य राजवार्तिक से अधिक पाते हैं शेष पाठ दोनोंका लगभग एकसा है परंतु तात्पर्य दोनों परिभाषाओं का एकसा है क्योंकि अधिक वाक्यका अर्थ "पर्यायोंको अविरोधकरि" ऐसा है ॥

सत् द्रव्यं घट इत्यादि । सदित्युक्ते सदिति वाग्विज्ञानानुप्रवृत्तिलिङ्गानुमितसत्ताधारभूतानामविशेषेण सर्वेषां संग्रहः । द्रव्यमित्युक्तेऽपि द्रवति गच्छति तांस्तान्पर्यायानित्युपलक्षितानां जीवाजीवतद्भेदप्रभेदानां संग्रहः । तथा घट इत्युक्तेऽपि घटबुद्ध्य

एक रूपसे पर्यायोंके भेदोंको व्यक्तकर समस्त भेदोंका ग्रहण करने वाला ऐसा संग्रहनय है । सारांश यह है कि अपनी जाति को प्रगट करके पर्यायका भेद न करके समस्तका समुदाय रूप ग्रहण करने वाला संग्रहनय है ॥

सत् ॥ द्रव्यम् ॥ घटः ॥ इत्यादि ॥	=सत्, द्रव्य, घट इत्यादिक (संग्रहनयके उदाहरण) हैं ॥
सत् ॥ इति॰ उक्ते ॥ सत् ॥ इति॰ वाग्-विज्ञान-	=सत् ऐसा कहने में सत् ऐसा वचनकरि तथा ज्ञानकरि
अनुप्रवृत्तिलिङ्ग-	=अन्वयरूप चिन्हसे (=अनुप्रवृत्तिलिंग) वा ओड़रूप चिन्हसे (=अनुप्रवृत्तिलिंग)
अनुमित-सत्ता-आधारभूतानाम् ॥ सर्वेषाम् ॥	=अनुमान किये हुये (=अनुमित) सत्ताको आश्रयभूत सब (वस्तु) तिनका
अविशेषेण ॥ संग्रहः ॥	=सामान्य रूपसे (=अविशेषेण) संग्रह है अर्थात् ऐसे सब वस्तुयें सत्ता रूप हैं तात्पर्यः—सत् ऐसा उच्चारण करने पर द्रव्य, पर्याय और उसके भेद प्रभेद सब सत्तासे अभिन्न हैं अतः एक सत्व धर्मसे उन सबका ग्रहण होजाता है
द्रव्यम् ॥ इति उक्ते ॥ अपि तान् तान् पर्यायान् ॥ द्रवति ।	=द्रव्य ऐसा कहनेमें भी (जो) भिन्न भिन्न पर्यायोंको प्राप्त होता है (=द्रवति)
गच्छति । इति उपलक्षितानां ॥ जीव-अजीव	=अथवा (भिन्न भिन्न पर्यायोंको) पाता है ऐसे उपलक्षित जीव और जड़
तद् भेद-प्रभेदानाम् ॥ संग्रहः ॥	=तथा उन (जीव अजीव) के भेद और प्रभेदोंका संग्रह है अर्थात् द्रव्य कहने में गुण पर्यायों सहित जीव अजीव उनके भेद प्रभेद सबको समझ लेना चाहिये
तथा॰ घटः ॥ इति॰ उक्ते ॥ अपि॰ घटबुद्धि	=वैसेही (=तथा) घट (=घड़ा) ऐसा उच्चारण करने में भी घड़ाका ज्ञान तथा

भिधानानुगमलिंगानुमितसकलार्थसंग्रहः । एवम्प्रकारोऽन्योऽपि संग्रहनय ॥२॥ संग्रहनयाक्षिप्तानामर्थानां विधिपूर्वकमवहरण व्यवहार' ॥ को विधि' ?। य. संग्रहगृहीतोऽर्थस्तदानुपूर्व्येणैव व्यवहार. प्रवर्तत इत्यय विधिः।

अभिधान अनुगमलिंग-	=नामके अन्वयरूपचिन्हकरि (=अनुगमलिंग) वा जोड़रूप चिन्ह करि (=अनुप्रवृत्तिलिंग)
अनुमित-सकल-अर्थ-संग्रहः ।।	=अनुमान कियेहुये (=अनुमित) सब घटरूप पदार्थका (=अर्थ) संग्रह होता है
एवम् प्रकारः ।। अन्यः ।। अपि	=इसप्रकार अन्य भी (अर्थात् उपर्युक्त कहे हुये उदाहरणोंके अतिरिक्त) और भी (जैसे मठ, पट, गृह, इत्यादि एक जातिकी सब वस्तुओं का कथन करने वाला)
संग्रहनयः ।।	=संग्रह नय है ॥ (संग्रह नयके सामान्यसंग्रह विशेषसंग्रह दो भेद हैं (देखो निम्नटिप्पणी)
(२) संग्रहनय-आक्षिप्तानाम् ।। अर्थानाम् ।।	=संग्रहनय से विषय कियेगये वा ग्रहण किये गये (=आक्षिप्तानाम्) पदार्थों का
विधिपूर्वकम् ।।। अवहरणम् ।।।। व्यवहारः ।।	=क्रमानुसार वा अनुक्रमसे वा विधिपूर्वक भेद करना सो व्यवहार (नय) है
कः ।। विधिः ।। यः ।। संग्रह-गृहीतः ।। अर्थः ।। तत्-	=विधि क्या है ? जो संग्रह (नय) द्वारा ग्रहण किया हुआ पदार्थ है उसका (=तत्)
आनुपूर्व्येण ।।। एव व्यवहारः ।। प्रवर्तते ।	=मूलसे लेकर क्रम पूर्वक (=आनुपूर्व्येण) ही व्यवहरण होता है वा भेद किया जाता है
इति अयम् ।। विधिः ।।	=ऐसी यह विधि (=संग्रहनयसे ग्रहे पदार्थको आदिसे लेकर भेद करे सो) है ॥

(१) संग्रहो द्विविधः ।। सामान्य संग्रहो यथा सर्वाणि ।।। द्रव्याणि —संग्रह (नय) दो प्रकार है । सामान्यसंग्रह जैसे सब द्रव्यें परस्परमविरोधीनि । विशेष संग्रहो यथा —आपसमें (स्वरूपसे) विरोध वाली नहीं हैं (=अविरोधीनि)। (और) विशेष संग्रह जैसे सर्वेजीवाः परस्परमविरोधिनः" आलाप पद्धतिसे लिया है। —समस्त जीव परस्पर अविरोधी हैं अर्थात् (अपने स्वरूपसे) प्रच्यवन होनेवाले नहीं

(२) 'अतो विधिपूर्वकमवहरणं व्यवहार" इस (संग्रहनय) से (ग्रहण किये हुये पदार्थका) अनुक्रमसे (=विधिपूर्वक) भेद करना (=अवहरण) सो व्यवहार है यह परिभाषा व्यवहारनयका तत्वार्थ राजवार्तिकमें से लियाहै और "उपर्युक्त संग्रहनयाक्षिप्तानामर्थानां"का यही तात्पर्य है जो इसकाहै

(३) विधिपूर्वक—आनुपूर्वीकरि, आनुपूर्व्यकरि, आनुपूर्वकरि अर्थात् क्रमानुसार, क्रमानुकूल अनुक्रमसे क्रमपूर्वक ॥ मूलसे लेकर क्रमपूर्वक —आनुपूर्व्येण) देखो पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ ५०) (४) अवहरण —व्यवहरण—भेद किया जाना, देखो पं॰जयचंदजी कृत।सर्वार्थसिद्धि वचनिका पृष्ठ१०१

तद्यथा–सर्वसंग्रहेण यत्संगृहीतं तच्चानपेक्षितविशेषं नालं संव्यवहारायेति व्यवहारनय आश्रीयते। यत्सत्तत् द्रव्यं गुणो वेति। द्रव्येणापि संग्रहाक्षिप्तेन जीवाजीवविशेषानपेक्षेण न शक्यः संव्यवहार इति जीवद्रव्यमजीवद्रव्यमिति वा व्यवहार आश्रीयते।

तद्यथा॰ सर्वसंग्रहेण ;। सत्संगृहीतम् ;।	=सो (=तत्) ऐसें है (=यथा) कि सर्वका संग्रहकरि सत् ग्रहण किया गया है
च॰ तत् ;। अन्-अपेक्षितविशेषम् ;।	=और (=च) वह (=तत्) अर्थात् सत् विशेषकी विवक्षा रहित है
संव्यवहाराय ;। न॰ अलम्॰	=सो योग्य व्यवहार (प्रवर्तावने)के लिये समर्थ (=अलं) वा योग्य (=अलं) नहीं है
इति॰ व्यवहारनयः ;। आश्रीयते T	=ऐसें व्यवहारनय अवलंबन कीगई है वा आश्रय कीजाती है (तब कहैं हैं कि)
यत् ;। सत् ;। तत् ;। द्रव्यम् ;। वा॰ गुणः ;। इति॰	=जो सार (=सत्) है सो द्रव्य है और गुण है भावार्थ यह है कि जैसे (=तद्यथा) संग्रहनयका विषय सत् पदार्थ है किंतु सत् शब्दसे संसारका व्यवहार हो नहीं सकता अतः जो सत् है वह द्रव्य और गुण है यह व्यवहार नयसे मानना पड़ता है ऐसे सत् विषैं भेद करैं तब संसार का व्यवहार चलता है ॥
द्रव्येण ;। अपि॰ संग्रह-आक्षिप्तेन ;। जीव-अजीव-	=(और यहां) द्रव्य (शब्द) करि भी संग्रहनयसे ग्रहण किये हुये जीव अजीव के
विशेष-अन्-अपेक्षेण ;। संव्यवहारः ;। न॰ शक्यः ;।	=भेदकी (=विशेष) अपेक्षा न होने से योग्य व्यवहार नहीं होसकता है
इति॰ जीवद्रव्यम् ;। वा॰ अजीवद्रव्यम् ;। इति॰	=ऐसें जीव द्रव्य है और (=वा) अजीव द्रव्य है ऐसे
व्यवहारः ;। आश्रीयते T	=व्यवहारनय आश्रय कीगई है अर्थात् जब हमने सत्के दो भेद किये तो यहां पर भी संग्रहनयका विषय द्रव्य हुआ उसके जीव और अजीव भेद माने विना

ससारका व्यवहार नहीं होसकता है इसलिये वह द्रव्य जीव और अजीव है यह व्यवहारसे कहना पड़ता है

(१) सर्वार्थ सिद्धि की दोनों आवृत्तियोंमें 'यत्संगृहीतम्' है अर्थ यह होगा कि सर्वका समहकरि जो (सत्) ग्रहण किया गया है परंतु सत् तत्त्वार्थ राजवार्तिक में है तथा जयचंद रायजीने और अन्य भाषा अनुवादकों ने 'यत्' के स्थानमें सत् मानकरि अनुवाद किया है इस लिये हमने 'सत्संगृहीतम्' पाठ दिया है यद्यपि 'यत्' से भी वही अर्थ निकल सकता है जो सत् से परंतु हमने प्रतिमें 'यत्संगृहीतं' ही पाठ रक्खा है ॥

भिधानानुगमलिंगानुमितसकलार्थसंग्रहः । एवंप्रकारोऽन्योऽपि संग्रहनय ॥२॥ संग्रहनयाक्षिप्तानामर्थानां विधिपूर्वकमवहरणं व्यवहार. ॥ को विधि. ? । य' संग्रहगृहीतोऽर्थस्तदानुपूर्व्येणैव व्यवहार प्रवर्तत इत्यय विधिः।

अभिधान अनुगमलिंग-	=नामके अन्वयरूपचिन्हकरि (=अनुगमलिंग) वा बोधरूप चिन्ह करि (=अनुप्रवृत्तिलिंग)
अनुमित-सकल-अर्थ-संग्रह' ॥	=अनुमान कियेहुये (=अनुमित) सब घटरूप पदार्थका (=अर्थ) संग्रह होता है
एवम्* प्रकारः ॥ अन्यः ॥ अपि *	=इसप्रकार अन्य भी (अर्थात उपर्युक्त कहे हुये उदाहरणोंके अतिरिक्त) और भी (जैसे मठ, पट, गृह, इत्यादि एक जातिकी सब वस्तुओं का कथन करने वाला)
संग्रहनय ॥	=संग्रह नय है ॥ (संग्रह नयके सामान्यसंग्रह विशेषसंग्रह दो भेद हैं (देखो निम्नटिप्पणी)
(२) संग्रहनय आक्षिप्तानाम् ॥ अर्थानाम् ॥	=संग्रहनय से विषय कियेगये वा ग्रहण किये गये (=आक्षिप्तानाम्) पदार्थों का
विधिपूर्वकम् ॥॥ अवहरणम्॥॥ व्यवहारः ॥	=क्रमानुसार वा अनुक्रमसे वा विधिपूर्वक भेद करना सो व्यवहार (नय) है
कः ॥ विधिः॥ यः॥ संग्रह-गृहीतः॥ अर्थः ॥ तत्-	=विधि क्या है ? जो संग्रह (नय) द्वारा ग्रहण किया हुआ पदार्थ है उसका (=तत्)
आनुपूर्व्येण ॥॥ एव * व्यवहारः ॥ प्रवर्तते ॥	=मूलसे लेकर क्रम पूर्वक (=आनुपूर्व्येण) ही व्यवहरण होता है वा भेद किया जाता है
इति* अयम् ॥ विधिः ॥	=ऐसी यह विधि (=संग्रहनयसे गहे पदार्थको आदिसे लेकर भेद करे सो) है ॥

(१) संग्रहो द्विविधः ॥ सामान्य संग्रहो यथा सर्वाणि ॥॥ द्रव्याणि – संग्रह (नय) दो प्रकार है। सामान्यसंग्रह जैसे सब द्रव्य परस्परमविरोधीनि। विशेष संग्रहो यथा – आपसमें (स्वरूपसे) किसीसे बाधी नहीं (=अविरोधीनि)। (और) विशेष संग्रह जैसे सर्वेजीवाः परस्परमविरोधिनः" आलाप पद्धतिसे लिया है। – समस्त जीव परस्पर अविरोधी हैं अर्थात् (अपने स्वरूपसे) प्रत्यक्ष होनेवाले नहीं
(२) 'अतो विधिपूर्वकमवहरणं व्यवहारः" इस (संग्रहनय) से (ग्रहण किये हुये पदार्थका) अनुक्रमसे (–विधिपूर्वक) भेद करना (–अवहरण) सो व्यवहार है यह परिभाषा व्यवहारनयकी तत्वार्थ राजवार्तिकमें से लियाहै और "उपर्युक्त संग्रहनयाक्षिप्तानामर्थानां" का यही तात्पर्य्य है जो इसका है
(३) विधिपूर्वक – आनुपूर्वीकरि, आनुपूर्व्यकरि आनुपूर्वकरि अर्थात् क्रमानुसार, क्रमानुकूल, अनुक्रमसे क्रमपूर्वक ॥ मूलसे लेकर क्रमपूर्वक –आनुपूर्व्येण) देखो पाणिनम्म कोश पृष्ठ ७) (४) अवहरण – व्यवहरण – भेद किया जाना, देखो पं० जयचंद्रजी कृत सर्वार्थसिद्धि वचनिका पृष्ठ ७१

॥३॥ ऋजु प्रगुणं सूत्रयति तन्त्रयत इति ऋजुसूत्र । पूर्वान्परास्त्रिकालविषयानतिशय्य वर्तमानकाल-विषयानादत्ते अतीतानागतयोर्विनष्टानुत्पन्नत्वेन व्यवहाराभावात्। तच्च वर्तमान समयमात्र तद्विषयपर्यायमात्र ग्राह्योऽयमृजुसूत्रः ॥

पहिले पहिले संग्रहनय और व्यवहारनय दोनों चले आये हैं

ऋजुम् ॥ प्रगुणम् ॥ सूत्रयति ॥	=सीधे (=ऋजु) और सरल (=प्रगुण) (विषय या वस्तु) को सूचित करता है (सूत्रयति)
तन्त्रयते ॥ इति ऋजुसूत्रः ॥	=फैलाता है (तन्त्रयते) ऐसा ऋजुसूत्रनय है (तंत्रयति भी आता है, देखो राजवा० पृ० ६६)
त्रिकालविषयान् ॥ पूर्वान् ॥ परान् ॥	=तीन कालके विषय (अर्थात् पर्याय वा भाव) तिनमें से अतीत—अनागत (विषयों) को
अतिशय्य ॥ वर्तमान-काल-विषयान् ॥ आदत्ते ॥	=उल्लंघकरि या छोड़कर विद्यमान कालके विषयों को (ऋजुसूत्रनय) ग्रहण करता है
अतीत-अनागतयोः ॥ विनष्ट-	=क्योंकि भूत और भविष्यत् (विषयों) को (यथासंख्य) विनाश होनेसे और
अनुत्पन्नत्वेन ॥ व्यवहार-अभावात् ॥ तत्*	=न उत्पन्न होनेसे व्यवहार नहीं होता है। तात्कालिक (=तत्त्व-वैद्यकोश पृ० २०१)
वर्तमानम् ॥ समयमात्रम् ॥ तद्-विषय	=विद्यमान केवल एक समयवर्ती उस (ऋजुसूत्रनय) का विषय
पर्यायमात्र-ग्राह्यः ॥ अयम् ॥ ऋजुसूत्रः ॥	=पर्यायमात्रका ग्रहण करनेवाला है सो यह ऋजुसूत्रनय है अर्थात् द्रव्यकी पर्याय समय समय में परिणमती (पलटती) रहती है

सो एक समयवर्ती पर्यायको अर्थपर्याय कहते हैं। अर्थपर्याय ही ऋजुसूत्रनयका विषय है। ऋजुसूत्रनय वर्तमान एक समयमात्र की पर्याय को कहता है या ग्रहण करता है अतीत अनागत समयकी पर्यायको ग्रहण नहीं करता है ॥

(१) ऋजुम् ॥ —यह ऋजुशब्द त्रिलिंगी है (ऋज्+कु) इस लिंग में विकल्प से लोप होता है जैसे ऋज्वी ॥ ऋजुः ॥ ॥ द्वितिया पुल्लिंग नपुंसक लिंग में यहां आया है

(२) प्रगुणम्-यह त्रिलिंगी है ॥ प्रगुणा ॥ रूपस्त्रीलिंगमें है ॥ यहांपर द्वितीया एकवचन पुल्लिंग अथवा नपुंसकलिंगमें ऋजु शब्दवत् जानना चाहिये

जीवाजीवावपि संग्रहाक्षिप्तौ नालं संव्यवहारायेति प्रत्येक देवनारकादिर्घटादिश्च व्यवहारेणाश्रीयते । एवमयं नयस्तावद्वर्तते यावत्पुनर्नास्ति विभागः

जीव-अजीवौ ;। अपि॰	=(और इस अवस्था में) जीव और अजीव भी
संग्रह-आक्षिप्तौ ,।	=जो संग्रहनयके विषयभूत हैं संग्रहनय गोचर हैं वा ग्रहण संग्रहनयसे कियेगये हैं
संव्यवहाराय ;। अलम्॰ न॰ इति॰ प्रत्येकम् ;॥	=व्यवहार (प्रवर्तावने) के लिये समर्थ नहीं है । प्रत्येक (जीव और अजीव)
देवनारकादिः ;। घ॰ घटादिः ;। व्यवहारेण ;।	=(यथा संख्य वा क्रमसे) देवनारकादिक तथा घट आदिक व्यवहारनय करि
आश्रीयते T	=आश्रय किये गये हैं अर्थात् यहां संग्रहनय का विषय जीव और अजीव माने गयेहैं परंतु जीवके देव, नारक, मनुष्य, तिर्यंच, सिद्ध भेद माने बिना संसारका व्यवहार नहीं चल सकता इसलिये लोक व्यवहारकी सिद्धि के लिये जीव द्रव्यके देव नारक आदि भेद व्यवहार से मानने पड़ते हैं । और अजीव के घट, पट, मठ, गृह इत्यादि भेद मानें बिनाभी संसार का व्यवहार नहीं हो सक्ता है इसलिये अजीव के घट, पट, मठ, गृह आदि भेद व्यवहार नय से मानते हैं
एवम्॰ अयम् ;। नयः ;। तावत् ॰ वर्तते T	=इसप्रकार यह व्यवहार नय तबतक चला जाता है
यावत् ॰ पुनः ॰ न ॰ अस्ति T विभागः ;। ॥२॥	=जबतक फिर विभाग नहीं हो (सक) ता है अर्थात् ऋजुसूत्र नय के विषयके

(१) "व्यवहारोऽपि द्वेधा । सामान्यसंग्रह भेदको व्यवहारो — व्यवहारनय भी दो प्रकार है सामान्य संग्रहभेदक व्यवहार अर्थात् सामान्य संग्रह नय की भेद करने वाली व्यवहारनय

यथा-द्रव्याणि जीवाजीवाः । विशेषसंग्रह भेदको व्यवहारो — जैसे द्रव्यहैं सो जीवरूप और अजीवरूप हैं । विशेषसंग्रहभेदकव्यवहार अर्थात् विशेषरूप संग्रहनयके भेद करने वाली व्यवहारनय

यथा-जीवाः संसारिणो मुक्ताश्च " — जैसे जीव हैं सो संसारी और मुक्तरूप हैं ॥ (आलापपद्धति से उद्धृत)

(२) नाम स्थापना द्रव्य ये तीन निक्षेप संग्रहात्मक हैं उनसे संग्रहात्मक वस्तुका ग्रहण होताहै उनसे भिन्न भिन्न व्यवहार नहीं होसक्ता क्योंकि ये तीनोंही जाति वाचक हैं व्यक्तिवाचक नहीं है । इसलिये व्यवहारके लिये वर्तमान पर्याय भाव निक्षेप ही समर्थ है उसीका यहां ग्रहण है । इस रीतिसे इस व्यवहार नयका वर्तिसक विभाग सम्भव जहांतक फिर किसी प्रकार का भी विभाग नहींसके ॥

(ख) ऋजुसूत्र नय का विषय प्रस्थ भी है परन्तु जिस समय अन्न आदि पदार्थ सेर आदि द्वारा तुल रहा है उसी समय प्रस्थ ऋजुसूत्र नय का विषय हो सकता है परन्तु जिस से धान्य तुल चुका अथवा आगे आकर तुलेगा वह ऋजुसूत्र नय का विषय नहीं हो सकता क्योंकि जो तुल चुका वह भूतकाल का विषय है जो आगे तुलेगा वह भविष्यत् कालका विषय है भूतकाल की पर्याय और भविष्यत् कालकी पर्याय ऋजुसूत्र नयका विषय है नहीं किन्तु वर्तमानकाल की एक समय वर्ती पर्याय ही उसका विषय है इसलिये भूतकाल वा भविष्यत् काल की अपेक्षा होनेवाला प्रस्थकर ऋजुसूत्र नयका विषय होना असम्भव है॥

(ग) कुम्भकारका अभाव ऋजुसूत्र नयका विषय है क्योंकि कुम्भको करने वाला कुम्भकार कहा जाता है। जिस समय कुम्भकार पुरुष कुम्भ-घड़ा न बनाकर उसकी शिविक छत्रक आदि पर्याय बना रहा है उस समय वह ऋजुसूत्र नयकी अपेक्षा घड़ेका बनाने वाला नहीं कहा जा सकता क्योंकि शिविक छत्रक आदि पर्यायोंकि आगे आकर घट पर्याय बनने वाली है इसीलिये भविष्यत् कालका विषय है वर्तमान काल का नहीं पर जिस समय घड़ घड़ा बना रहा है उस समय घट की उत्पत्ति उसके विशेष अवयवोंसे हो रही है और यही शुद्ध वर्तमान काल ऋजुसूत्र नयका विषय है किन्तु उस समय कुम्भकार कुछ नहीं कर रहा है इसलिये ऋजुसूत्र नयका विषय कुम्भकार नहीं हो सकता किन्तु कुम्भकार का अभाव उसका विषय है। तथा —

(घ) कोई पुरुष कहीं से आकर बैठा है किसी दूसरे ने पूछा — कहो भाई कहां से आ रहे हो? उस समय उसका यह कहना कि कहींसे नहीं आरहा हूं क्योंकि उस समय सर्वथा गमन क्रिया का अभाव है इसलिये शुद्धवर्तमान की अपेक्षा 'इस समय कहींसे नहीं आ रहाहूं' यह ऋजुसूत्र नयका विषय है॥

(ङ) किसी एक आदमी को देखकर यह पूछना कि भाई! इस समय तुम किस स्थान पर हो? उस समय वर्तमान में वह जितने जितने आकाशके प्रदेशों में विद्यमान है उतने ही प्रदेशोंका नाम लेकर कहे कि मैं यहां पर हूं, किसी पुरी ग्राम घर आदिका नाम नहीं ले, यह शुद्ध वर्तमान कालकी अपेक्षा कथन होनेसे ऋजुसूत्रनय का विषय है। अथवा उस समय जितने आत्मप्रदेशोंके आकारमें उसका रहना हो उतने ही प्रमाण आत्म प्रदेशों का उल्लेख कर वह यह कहे कि मैं यहां पर हूं यह ऋजुसूत्र नयका विषय है क्योंकि उसकी स्थिति का शुद्ध वर्तमान समयमें यही आकार है, अन्य नहीं॥

नन्वेवं संव्यवहारलोपप्रसंग इति चेन्नास्य नयस्य विषयमात्रप्रदर्शनं क्रियते । सर्वनयसमूहसाध्यो हि लोकसंव्यवहारः ॥

ननु संव्यवहारलोप-प्रसंगः ॥	=प्रश्न (=ननु) लोकव्यवहार के अभावका प्रसंग आता है अर्थात् लोकमें अतीत अनागत का व्योपार भी प्रवर्तता है सो किस प्रकार चलेगा जो ऋजु सूत्रनय केवल वर्तमान पर्याय मात्र को ही ग्रहण करैगी
इति चेत् न	=ऐसी शंका (=चेत्-होने पर उत्तर में कहते हैं कि) (यह बात) नहीं है
अस्य नयस्य विषयमात्र-प्रदर्शनम् क्रियते	=इस (ऋजुसूत्रनय) का केवल विषय (=विषयमात्र) दिखाया गया है
हि लोकसंव्यवहारः सर्वनयसमूहसाध्यः ॥	=क्योंकि (=हि) लोकका व्यवहार वा कार्य सबनयोंके समूह द्वारा साधने योग्य है अर्थात लोक व्यवहार में जिस नयका जो कार्य है उसी नयको काममें लाना चाहिये

(१) ऋजुसूत्रो द्विविधः सूक्ष्मऋजुसूत्रो यथा एक समयावस्थायी पर्यायः स्थूलऋजुसूत्रो यथा मनुष्यादि पर्यायास्तदायुः प्रमाणकालं तिष्ठन्ति — ऋजुसूत्र (नय) दो प्रकार है सूक्ष्म ऋजुसूत्रनय जैसे एक समय तक ठहरने वाली पर्याय और स्थूलऋजुसूत्रनय जैसे मनुष्य आदि पर्याय हैं वे (=तत्) आयुपरिमाणकाल तक रहती हैं ॥

आलाप पद्धतिसे उद्धृत

( ) जिस प्रकार सूतका गिरमा सरल होता है उसी प्रकार जो सरल विषयको सूचित करता है उसका नाम ऋजुसूत्रनय है ॥ यह नय त्रिकाल संबंधी विषयोंमें से वर्तमान कालीन विषयोंका ग्रहण करता है क्योंकि जो पर्याय बीत चुकी अथवा जो पर्याय अभी उपस्थित नहीं हुई आगे आकर उपस्थित होगी उन दोनों पर्यायोंसे व्यवहार नहीं चल सकता है इसलिये शुद्ध एक समय मात्र ही ऋजुसूत्र नयका विषय माना गया है ॥ ऋजुसूत्र नयके कुछ अच्छे अच्छे उदाहरण ऐसे हैं कि (क) 'कषायो भैषज्य' काढा औषध है यहां पर जिन पदार्थोंका काढा है उन पदार्थोंका रस निकाल कर जिस समय साक्षात् औषध स्वरूप काढा बन जाता है वही शुद्ध वर्तमान कालीन एक समयवर्ती ऋजुसूत्रनयका विषय है किन्तु पहिले ही पहिले जिसका रस अभी तक प्रगट नहीं हुआ आगे आकर प्रगट होने वाला है अतः जो साक्षात् औषध नहीं है वह ऋजुसूत्रनयका विषय नहीं है क्योंकि वह वर्तमान एक समयवर्ती नहीं भविष्यत् कालको अपेक्षा रखता है ॥

॥ ४ ॥ लिङ्गसंख्यासाधनादिव्यभिचारनिवृत्तिपर शब्दनय ॥ तत्र लिङ्गव्यभिचार — पुष्यस्तारका नक्षत्रमिति ॥ संख्याव्यभिचारः — जलमापो वर्षा ऋतु

लिङ्ग-संख्या-साधन-आदि-व्यभिचार-निवृत्ति =लिंग, वचन (=संख्या) साधनादि अन्याय वा दोषोंके (=व्यभिचार) दूर करनेमें (=निवृत्ति) परः ३। शब्दनयः ३। =लगा हुआ (=परः) वा तत्पर (=पर[1]) है सो शब्दनय है अर्थात् लिंग, वचन, साधन, कारक काल, उपग्रह 'आदि व्यवहारनयसे माना हुआ दोष है उसके दूर करनेको यह शब्दनय है' । पुल्लिंग स्त्रीलिंग और नपुंसक लिंगके भेदसे लिंग तीन प्रकार है । एकवचन, द्विवचन और बहुवचनसे संख्या तीन प्रकार है ॥ साधनका अर्थ (पद्म चन्द्र कोश पृष्ठ ४१९ और वैद्य संस्कृतांगल कोष पृष्ठ ७७१ के अनुसार) करण तृतीया विभक्ति का है परंतु यहां पर (तत्त्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ ६७ और श्लोक वार्तिक पृष्ठ २७३ और सर्वार्थसिद्धि वृत्तिके अनुसार) प्रथम पुरुष, मध्यम पुरुष और उत्तम पुरुष अथवा युष्मद् और अस्मद् शब्द साधन माने गये हैं । साधन व्यभिचार को पुरुष व्यभिचार भी कहते हैं वा मानते हैं जैसा कि आगे जाकर (टिप्पणी संख्या दो पृष्ठ ५१८ से ५२१ तक में) सिद्ध करेंगे कारक संस्कृतमें कर्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान, अधिकरण माने हैं संबंधको कारक नहीं माना है क्योंकि संज्ञा और क्रियामें परस्पर यह किसी प्रकारके संबंधका प्रादुर्भाव नहीं करता है । भूतकाल, भविष्यत्काल, वर्तमानकाल ये तीन काल हैं "उपग्रह का अर्थ परस्मैपद वा आत्मनेपद है परस्मैपदके स्थानमें आत्मनेपद कह देना और आत्मनेपदके स्थानमें परस्मैपद कह देना उपग्रह व्यभिचार है "उपग्रह" व्यभिचार "कहिये उत्सर्ग व्यभिचार है" पं० पन्नालालजी दूनी० अनुवादित तत्त्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ २६४ और पं० गजाधर लालजी अनुवादित तत्त्वा० राजवार्तिक मुद्रित पृष्ट ४८० की टिप्पणी देखो ।

तत्र लिंग व्यभिचारः १। पुष्यः १। तारका १॥ =यहां लिंगदूषण —(जैसे) पुष्य पुल्लिंग है उसको तारका स्त्रीलिंग

नक्षत्रम् १॥ इति संख्याव्यभिचारः १। =(वा) नक्षत्र नपुंसकलिंग ऐसा कहना । वचन दूषण —(जैसे)

जलम् १। आपः १॥ वर्षाः १॥ ऋतुः १। =जलम् एकवचन को आप् बहुवचन वर्षा बहुवचन को ऋतु एकवचन

(१) "स च लिंगसंख्यासाधनादि व्यभिचार निवृत्ति परः" तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ ६७ ॥ मः=शब्दनय । सर्वार्थसिद्धि की परिभाषा से यह परिभाषा शब्दशः मिलती है (१) वर्षा' स्त्रीलिंग, नित्य बहुवचन है (२) आपस् —'आपस्' शब्द प्रथमा बहुवचन स्त्रीलिंग अप् शब्दका है । 'अप्' शब्द भी सदा बहुवचन और स्त्रीलिंग होता है (वैद्य संस्कृतांगल कोष पृष्ठ ३५, पद्मचन्द्र कोष पृष्ठ ४०) ॥ आपः स्त्री' इत्यमरः ॥ 'तत्र आपः'

(ख) पच्यमान— जो रंध रहा है और पक्व— जो रंधचुका है यह ऋजुसूत्र नय का विषय है। यहां पच्यमान और पक्वका अर्थ कथंचित् पच्यमान और कथंचित् पक्व यह समझ लेना चाहिये। (प्रश्न) पच्यमान यह वर्तमान पर्याय और पक्व यह अतीत पर्याय है, इन दोनों का एक स्थान में कैसे समावेश होगा ? (उत्तर) पहिले ही पहिले जब समयका और विभाग नहीं है उस समय भातका कुछ अंश रंधाई सीझा है, या नहीं रंधा है नहीं सीझा है यदि नहीं सीझा है तब द्वितीयादि समयोंमें भी वह नहीं सीझ सकता इसलिये पाकका अभाव ही कहना होगा। परन्तु प्रति क्षण वह सीझता अवश्य है इसलिये बरतनों में रक्खे हुये चावलोंमें सीझे और वे सीझे की अपेक्षा ऋजुसूत्र नयका कथंचित् पच्यमान और कथंचित् पक्व यह विषय बाधित नहीं यदि यहांपर यह अपेक्षा न मानी जायगी और पच्यमान अवस्था और पक्व अवस्था का सर्वथा विरोध माना जायगा तो पच्यमान (मिश्रित) कथंचित् पच्यमान और पक्व इस प्रकारसे विपर्यादि तीन भेद होजानेसे समय भी तीन प्रकार का मानना होगा परन्तु तीन भेदों का सर्वथा विरुद्ध मानने से एक समय में वे तीनों भेद नहीं रहसक्ते हैं इसलिये कथंचित् पच्यमान और कथंचित् पक्वमें सर्वथा विरोध नहीं माना जासकता। इसलिये यहां यह बात समझलेनी चाहिये। किसी रसोईयाका यह अभिप्राय हो कि जो चावल भली प्रकार से सीझ गये हैं कोई भी कणा शेष नहीं रहा है उस (रसोइया) की अपेक्षा तो भलेप्रकार रंधे हुये चावल ही पक्व हैं। और जिस रांधने वाले का यह अभिप्राय हो कि यह कुछ सीझे और कुछ न सीझे कथंचित् पच्यमान और कथंचित् पक्व ऐसे पच्यमान चावलों को ही पक्व कहना चाहता है उसकी अपेक्षा पच्यमान ही पक्व है। क्योंकि वह पच्यमानों का ही पक्व मानना निर्भय समझता है इसलिये यह बात निश्चित हो चुकी कि ऋजुसूत्र नयका पच्यमान अर्थात् कथंचित् पच्यमान कथंचित् पक्व उदाहरण निर्दोष है तथा पक्व रंध चुकने के पश्चात् एक समय वर्ती पदार्थ भी ऋजुसूत्र नयका विषय है। ऐसेही क्रियमाण कृत (कथंचित् क्रियमाण कथंचित् कृत), भुज्यमान भुक्त (कथंचित् भुज्यमान कथंचित् भुक्त) बध्यमान बद्ध (कथंचित् बध्यमान कथंचित् बद्ध) और सिध्यत् सिद्ध (कथंचित् सिध्यत् कथंचित् सिद्ध) आदि भी ऋजुसूत्र नयके उदाहरण समझलेने चाहियें। अर्थात् जो किया जारहा है और जो किया जा चुका है और जो भोगा जारहा है और जो भोगा जाचुका है जो सिद्ध किया जारहा है और जो सिद्ध किया जाचुका है ये सब ही ऋजुसूत्र नयके विषय पड़ते हैं क्योंकि इन सबों में भी कुछ अंशोंमें वर्तमान पर्यायका ग्रहण होता है, जितने अंशों में वर्तमान पर्यायका ग्रहण है उतने ही अंशों में ऋजुसूत्र नयकी विषयता है इसलिये कथंचित् इनसे कहागया है। यहां पर विरोधादि दोषों का विस्तार और समाधान पच्यमान पक्व समान है तत्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ १० से अनुसन्धेय ॥

अर्थात पुरुष दूषण यह कि उत्तम पुरुष के स्थानमें मध्यम पुरुष लाना,

तथा तत्त्वार्थ श्लोक वार्तिक के कर्ताओं का मत पूज्यपाद स्वामीसे मिलता है न कि साधन व्यभिचार को कारक व्यभिचार माना है क्योंकि सौर्तोंका भ्रम है। इस सर्वार्थसिद्धिवृत्तिके दो संस्करण मुद्रित हुये हैं प्रथम आवृत्तिमें छापे की इतनी अशुद्धियां हैं कि दो बार शुद्धपत्र दे पर भी बहुतसी अशुद्धियां रह गई हैं जिनको हमने शुद्ध करके अनुवाद यथाशक्य किया है और स्थान स्थान पर उनका उल्लेख भी किया है॥ दोनों आवृत्तियों का क्रमसे पाठ ऐसे हैं कि "संख्याव्यभिचार—अम्मापो वर्षा नक्षत्राणां पुनर्वसू इति॥ दारा नराः॥ साधन व्यभिचारः॥ कारक व्यभिचारः—सेना पर्वतमधिवसति॥ पुरुष व्यभिचारः—एहि " इत्यादि पृष्ठ १३८॥ "संख्याव्यभिचारः—अम्मापो वर्षा नक्षत्राणां पुनर्वसू इति॥ दारा नराः इति॥ साधन व्यभिचारः— (कारक व्यभिचार) सेना पर्वतमधिवसति॥ पुरुष व्यभिचारः—एहि मन्ये रथेन यास्यसि, न हि यास्यसि, यातस्ते पितेति"॥ उपर्युक्त दोनों पाठों की तुलना करने से ज्ञात होता है कि प्रथम संस्करणमें वनमिति॥ दारा नराः" अशुद्ध था उसको द्वितीय संस्करणमें "वर्ष दारा नराःमिति" करके इतना पाठ शुद्ध कर दिया। परन्तु पश्चात् साधन व्यभिचार' वाक्य लिख कर "(कारक व्यभिचारः)" इसके विरुद्ध कोष्ठकमें कर दिया यह ठीक नहीं किया, 'सेना पर्वतमधिवसति' वाक्यके पश्चात् और "पुरुष व्यभिचारः" के प्रथम "साधन व्यभिचारः" लिखना ठीक होता जैसा कि हमने शुद्धिका पाठ पृष्ठ ५१में लिखा है। क्योंकि ( ) पं० जयचंदजीने वचनिका पृष्ठ २०१ में यह प्रकट किया है "बहुरि साधन व्यभिचार तहां पुरुष व्यभिचार भी कहिये—एहि मन्ये रथेन यास्यसि। नहि यास्यसि न यातस्ते पिता" ऐसा ही लेख इस लिखित वचनिका में है। दूसरा हेतु यह है कि 'साधन' का अर्थ तत्त्वार्थ राजवार्तिकके तथा तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक के कर्ताओंने अस्मद्–युष्मद्, प्रथम पुरुष, मध्यम पुरुष और उत्तम पुरुष ऐसा किया है और अन्य वैयाकरणों ने साधन" का अर्थ करण कारक या तृतीया विभक्ति किया है (देखो वैद्यकोश पृष्ठ ७७१ पद्य० कोश पृष्ठ ४१९) और कारक छह (कर्ता-कर्म-करण-संप्रदान-अपादान-अधिकरण) हैं इसलिए साधन कारक व्यभिचार, करण कारक व्यभिचार हो सकते हैं। परन्तु "सेना पर्वतमधिवसति" (=सेना पर्वत को बसती है) इस उदाहरण में साधन कारक व्यभिचार नहीं है वरन अधिकरण कारक के स्थानमें कर्म कारक है ऐसा व्यभिचार है अर्थात् जहां छठा कारक (अधिकरण कारक) का प्रयोग होना था वहां द्वितीय कारक या कर्मकारक का प्रयोग किया है भावार्थ ऐसा है कि "सेना पर्वतेऽधिवसति" (=सेना पर्वतमें बसती है के स्थान में "सेना पर्वतमधिवसति" ऐसा है॥ यदि करण कारक व्यभिचार या साधन कारक व्यभिचार का उपयुक्त उदाहरण होता तो हम एक प्रकार से इस पाठ को मान लेते कि "साधन व्यभिचारः—(कारक व्यभिचारः)" एक है क्योंकि साधन व्यभिचार कारक व्यभिचारोंमें से एक है इस अवस्था में

आम्रा वनं वरणा नगरमिति ॥ कारकव्यभिचार सेना पर्वतमधिवसति ॥ साधनव्यभिचार पुरुषव्यभिचारः

आम्राः ,। वनम् ,॥ =आम्रा (=आमके वृक्ष) बहुवचनको वनम् एकवचन (कहना और)
वरणाः ,। नगरम् ,॥ इति० =वरणा (प्राकार या कोट) बहुवचनको नगर एकवचन ऐसे (कहना)
कारकव्यभिचारः ,। सेना ,॥ पर्वतम् । अधिवसति =कारक व्यभिचार—जैसे सेना पर्वतको (=पर्वतमें या पर्वत पर) बसे है
साधनव्यभिचारः ३। पुरुषव्यभिचारः ,। ="साधनव्यभिचार ताकूं पुरुषव्यभिचार भी कहिये" प० जय० वचनिका पृष्ठ २०३

(=आपस) "स्त्रियाम् बहुत्वे च 'आपः' तहां आपस्' शब्द स्त्रीलिंगमें और बहुवचन में सदैव आता है ॥ इस अप् शब्द का एकवचन और द्विवचन नहीं होते हैं इसकी सब विभक्त्यां बहुवचन में येव है कि आपः (=आपस् प्रथमा विभक्ति), अपः (द्वितिया विभक्ति), अद्भिः (तृ०वि०), अद्भ्यः (च०वि०), अद्भ्यः (पं० व०), अपाम् (ष०वि०), अप्सु (स०वि० ॥

(१) कारक व्यभिचारका अन्य उदाहरण तत्त्वार्थ श्लोक वार्तिक पृष्ठ २७३ में इस प्रकार दिया है "तथा करोति क्रियते इति कारकयोः कर्तृकर्मणोर्भेदेऽप्यभिन्नमर्थं प्रतिपद्यते। स एव करोति किंचित् स एव क्रियते केनचिदिति प्रतीतेरिति तदपि न श्रेयः परीक्षायां। देवदत्तः कटं करोतीत्यत्रापि कर्तृकर्मणोर्देवदत्त कटयोरभेद प्रसंगात ॥"

तथा० करोति ,। क्रियते ,। इति० कारकयोः ॥॥ कर्तृकर्मणोः ॥॥ भेदे । अपि० अभिन्नम् ॥॥ अर्थम्० एव० क्रियते =और करोति (=करता है) क्रियते (=किया जाता है) ऐसे कर्ता और कर्म कारकोंमें भेद होनेपर भी अभिन्न अर्थसे ही (वैयाकरणों द्वारा) आदर किये जाते हैं अर्थात् करोति कर्तामें प्रत्यय है और क्रियते यह कर्ममें प्रत्यय है इन कर्ता और कर्म कारकोंमें भेद है तो भी व्याकरणवाले उनको एक मानकर कहते हैं कि

सः ।० एव० करोति किंचित्० सः एव० क्रियते केनचित्० इति० प्रतीतेः ॥ इति० =जो ही कुछ करता है और जो ही किसीसे (=केन चत्) किया जाता है ऐसी ॥ =क्योंकि (संसारमें) ऐसी प्रतीति है। (इसलिये कर्ता कर्म दोनों एक ही हैं। परस्पर एक दूसरेकी पर्याय हो सकते हैं ऐसे कारक दोष आता रहता है)

तत् ।॥ अपि० न० श्रेयम् ,॥ परीक्षयाम् ,। देवदत्तः ।। कटं ,। करोति इति० अत्र० अपि० कर्तृ-कर्मणोः ॥॥ देवदत्त कटयोः ३। अभेद-प्रसंगात् ,। =तो भी परीक्षा करने पर (यह) श्रेष्ठ नहीं है। (यदि कर्ता कर्मका अभेद माने तो) ="देवदत्त कटं करोति' देवदत्त चटाई बनाता है ऐसे यहां पर भी =कर्ता देवदत्त और कर्म चटाई में अभेदता या एकत्वका संप्राप्त आता है (अतः कर्ता कर्मको एक मानकर कारक दोषको दूर करना उचित और अयुक्त है)

(२) इस टिप्पणीसे हमको यह बात सिद्ध करनी है कि साधन व्यभिचारका और पुरुष व्यभिचारको एक ही माना है और तत्त्वार्थ राजवार्तिक

इस शब्दनय की परिभाषा के क्रमानुकूल प्रथम लिंगव्यभिचार का उदाहरण सहित कहा पश्चात् संख्याव्यभिचार का दृष्टान्त सहित कहा तत्पश्चात् साधनव्यभिचार क्रमानुकूल अवश्य ही कहना चाहिये। यह बात कितनी क्रम विरुद्ध है कि लिंगव्यभिचार और संख्याव्यभिचार को कहकर और साधनव्यभिचार को छोड़ कर "आदि" शब्द में अन्तर्गत व्यभिचारोंमेंसे कारकव्यभिचार का ग्रहण करना पश्चात "आदि" शब्द में अन्तर्गत कालव्यभिचार और उपग्रहव्यभिचार को भी छोड़ कर फिर साधनव्यभिचार का कथन आरम्भ कर देना। "आदि" शब्द में अन्तर्गत व्यभिचारों को स्पष्ट कहे हुये व्यभिचारों से पीछे ही कहना पड़ता है क्योंकि सम्भव है कि आदि शब्द में कारक व्यभिचार कालव्यभिचार और उपग्रहव्यभिचार के अतिरिक्त अन्य अन्य व्यभिचार भी सम्मिलित हों जैसा कि तत्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ ६७, ६८ में आदि शब्द कर कालव्यभिचार और उपग्रहव्यभिचार को लेते हुए "एवमादयो: व्यभिचारा अयुक्ताः (=ऐसे काल उपग्रह आदिक व्यभिचार अयुक्त हैं) कथन किया है। ( ) उपर्युक्त वार्तिक के पृष्ठ ६७ ६८ में लिंगसंख्या साधनादि" वाक्य के पीछे क्रमसे लिंगव्यभिचार, संख्याव्यभिचार साधन व्यभिचार का कथन दृष्टान्तों सहित किया है और "आदि" शब्द में कालव्यभिचार और उपग्रहव्यभिचार का उदाहरणों सहित निर्देश कर प्रकट किया है कि ऐसे आदि' शब्द में और और व्यभिचार भी हैं वे सर्व अयुक्त हैं। तत्वार्थश्लोकवार्तिक पत्र २७२, २७३ में कालकारक लिंगसंख्या ·साधनोपग्रहभेदाद्भिन्नमर्थं शपतीति शब्दो नय यह वाक्य देकर इसही क्रम से शब्द नय की अपेक्षा से इन सबका कथन उदाहरणों और तर्क वितर्क सहित दिया है। यही क्रम तत्वार्थराजवार्तिक के दोनों अनुवादकों ने ग्रहण किया है॥ पं० गजाधरजी ने २७२ २७३ तक पृष्ठों का अनुवाद दिया है उसमें भी यही क्रम रक्खा है (देखो पृष्ठ ४८३ से ४८८ तक)॥ पं० जयचन्द जी ने वचनिका पृष्ठ २०२ से २०५ तक में लिंगव्यभिचार संख्याव्यभिचार, "साधनव्यभिचार याकू पुरुष व्यभिचार भी कहिये "कालव्यभिचार उपग्रहव्यभिचार कारक व्यभिचार इस क्रम से उक्त व्यभिचार देकर उनकी व्याख्या उदाहरणों सहित अनुक्रम से की है॥ पं० सदासुख जी ने अर्थ प्रकाशिका पृष्ठ ८४ ८५ में पं० जयचन्द जी के सदृश उक्त व्यभिचारों का उदाहरण सहित उल्लेख किया है परन्तु उनमें कारकव्यभिचारका कथन छोड़दिया है। पृष्ठ ४८० से पं० पन्नालाल न्यायदिवाकर लिंग संख्या के व्यभिचारों के पीछे साधनव्यभिचार याकू पुरुषव्यभिचार भी कहिये इसका कथन करते हैं फिर कालव्यभिचार इत्यादिका। हमने पाठ तो सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शुद्ध कर दिया है परन्तु कारकव्यभिचार को संख्याव्यभिचार और साधनव्यभिचार के (=पुरुष व्यभिचार के) मध्य में ही रक्खा है क्योंकि हमारे निकट कोई ऐसी प्राचीन प्रति नहीं है जिसके आधार पर हम कारकव्यभिचार को साधन व्यभिचार (=पुरुष व्यभिचार) के पश्चात् रक्खें॥ विचार में आया यही लिखा आगे पाठक महाशय भूल चूक सम्हार लेवें॥

और मध्यम पुरुष के स्थान में उत्तम पुरुष लाना, अस्मद् (=मैं) के स्थान में युष्मद् लाना और युष्मद् (=तू) के स्थानमें अस्मद् लाना (जैसा कि नीचे के दृष्टान्तसे ज्ञात है)

साधनकारकव्यभिचारः—(साधनकारकव्यभिचार) ये दोनों वाक्य, वाक्यदाय पूरा कर देने से अर्थात् 'साधन व्यभिचारमें कारक शब्द जोड़ने से और कारक व्यभिचारमें साधन शब्द लगानेसे एक होजाते हैं। परंतु उक्त उदाहरण (सेनापर्वत मधिवसति)में तो साधनकारक व्यभिचारका कुछ भी पता नहीं है॥ हमारी समझमें साधनकारक व्यभिचारके दो अर्थ हैं ( ) साधन (तृतीया करण) कारक द्वारा जो दोष उत्पन्न हो सो साधन व्यभिचार है अर्थात् अन्य कारकका प्रयोग होना ठीक होता उसके स्थानमें करण कारक (=तृतीया विभक्तिका) प्रयोग पाया जाना। ( ) साधन कारकमें (का) दोष अर्थात् करण कारक (=तृतीया विभक्ति) के स्थानमें अन्य कारकका प्रयोग पाया जाना सो साधनकारक व्यभिचार या करण कारक व्यभिचार हो सकता है॥ इसलिए हमारी समझमें संस्था द्वारा प्रकाशित तत्त्वार्थराजवार्तिकके अनुवाद पृष्ठ १७८ के नीचे जो निम्न टिप्पणी दी है वह असावधानीसे लिखी है "१ सर्वार्थसिद्धिमें साधनव्यभिचारः (कारकव्यभिचारः) सेनापर्वतमधिवसति। पुरुषव्यभिचारः एहि मन्ये रथेन यास्यसि नहि यास्यसि यातस्ते पिता अर्थात् साधनका अन्य कारक माना है और साधन व्यभिचार मेना पर्वत में रहती है यह उदाहरण दिया है। पुरुषव्यभिचार एक भिन्न व्यभिचार माना है और उसका एहि मन्ये रथेनेत्यादि उदाहरण दिया है॥

सर्वार्थसिद्धिवृत्ति, तत्त्वार्थ राजवार्तिक, तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक, श्रुतसागरी वृत्त पंचिका और अर्थ प्रकाशिका में जिस क्रमसे उक्त व्यभिचारोंके नाम दिये हैं उसी क्रमसे उनकी भिन्न भिन्न व्याख्या की है और क्रमानुसार ही उदाहरण दिये हैं इससे यह बात झलकती है कि "कारकव्यभिचारः सेनापर्वतमधिवसति॥" इस वाक्यका स्थान "एहि मन्ये रथेन यास्यसि न हि यास्यसि यातस्ते पितेति" के पश्चात् होना चाहिये और 'कारकव्यभिचारः इत्यादि वाक्यके पहिले होना चाहिये अर्थात् "कारक व्यभिचारः—सेना पर्वतमधिवसति॥ साधनव्यभिचारः, पुरुषव्यभिचारः—एहि मन्ये रथेन यास्यसि न हि यास्यसि यातस्ते पितेति॥ कालव्यभिचारः" इनमें लेखके स्थानमें "कारकव्यभिचारः— सेना पर्वतमधिवसति" इस क्रमसे लेखके स्थानका परिवर्तन करते हुये ऐसा पाठ होना चाहिये "साधन व्यभिचारः पुरुषव्यभिचार—एहि मन्ये रथेन यास्यसि न हि यास्यसि यातस्ते पितेति॥ कारकव्यभिचारः सेना पर्वतमधिवसति॥ कालव्यभिचारः इत्यादि क्योंकि सर्वार्थसिद्धिमें "लिङ्गसंख्यासाधनादिव्यभिचार निवृत्तिपरः" ऐसी परिभाषा उपलब्ध की है। इसके 'आदि' शब्दमें कारकव्यभिचार कालव्यभिचार और उपग्रह व्यभिचार गर्भित हैं॥

उक्त शब्दनय की परिभाषा के क्रमानुकूल प्रथम लिंगव्यभिचार को उदाहरण सहित कहा पश्चात् संख्याव्यभिचार को दृष्टान्त सहित कहा तत्पश्चात् साधनव्यभिचार क्रमानुकूल अवश्य ही कहना चाहिये। यह बात कितनी क्रम विरुद्ध है कि लिंगव्यभिचार और संख्याव्यभिचार को कहकर और साधनव्यभिचार को छोड़ कर "आदि" शब्द में अन्तर्गत व्यभिचारोंमेंसे कारकव्यभिचार का ग्रहण करना पश्चात "आदि" शब्द में अन्तर्गत कालव्यभिचार और उपग्रहव्यभिचार को भी छोड़ कर फिर साधनव्यभिचार का कथन प्रारम्भ कर देना। आदि शब्द में अन्तर्गत व्यभिचारों को स्पष्ट कहे हुये व्यभिचारों से पीछे ही कहना पड़ता है क्योंकि सभव है कि आदि शब्द में कारक व्यभिचार कालव्यभिचार और उपग्रहव्यभिचार के अतिरिक्त अन्य अन्य व्यभिचार भी सम्मिलित हो जैसा कि तत्त्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ ९७ ९८ में आदि' शब्द करि कालव्यभिचार और उपग्रहव्यभिचार को लेते हुए 'एवमादयो। व्यभिचारा अयुक्ता। (=ऐसे काल उपग्रह आदिक व्यभिचार अयुक्त हैं) कथन किया है। ( ) उपर्युक्त वार्तिक के पृष्ठ ९७ ९८ में लिंगसख्या साधनादि' वाक्य के पीछे क्रमसे लिंगव्यभिचार, सख्याव्यभिचार साधन व्यभिचार का कथन दृष्टान्तों सहित किया है और 'आदि शब्द में कालव्यभिचार और उपग्रहव्यभिचार को उदाहरणों सहित निर्देश कर प्रकट किया है कि ऐसे आदि' शब्द में और और व्यभिचार भी हैं वे सर्व अयुक्त हैं। तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृष्ठ २७२, २७१ में कालकारक लिंगसख्या साधनोपग्रहभेदाद्भिन्नमर्थं शपतीति शब्दो नय यह वाक्य देकर इसही क्रम से शब्द नय की अपेक्षा से इन सबका कथन उदाहरणों और तर्क वितर्क सहित दिया है। यही क्रम तत्त्वार्थराजवार्तिक के दोनों अनुवादकों ने ग्रहण किया है॥ प० गजाधरजी ने २७२ २७३ तक पृष्ठों का अनुवाद दिया है उसमें भी यही क्रम रक्खा है (देखो पृष्ठ ४८१ से ४८८ तक)॥ पं० जयचन्द जी ने वचनिका पृष्ठ २०२ से २०५ तक में लिंगव्यभिचार संख्याव्यभिचार, 'साधनव्यभिचार ताकूं पुरुष व्यभिचार भी कहिये "कालव्यभिचार उपग्रहव्यभिचार कारक व्यभिचार इस क्रम से उक्त व्यभिचार देकर उनकी व्याख्या उदाहरणों सहित अनुक्रम से की है॥ पं० सदासुख जी ने अर्थ प्रकाशिका पृष्ठ ८४ ८५ में प० जयचन्द जी के सदृश उक्त व्यभिचारों का उदाहरण सहित उल्लेख किया है परन्तु उनने कारकव्यभिचारका कथन छोड़दिया है। पृष्ठ ४८० से प० पन्नालाल न्यायदिवाकर लिंग सख्या के व्यभिचारों के पीछे साधनव्यभिचार याकूं पुरुषव्यभिचार भी कहिये इसका कथन करते हैं फिर कालव्यभिचार इत्यादिका। हमने पाठ तो सर्वार्थसिद्धियुक्तिका शुद्ध कर दिया है परन्तु कारकव्यभिचार को संख्याव्यभिचार और साधनव्यभिचार के (=पुरुष व्यभिचार के) मध्य में ही रक्खा है क्योंकि हमारे निकट कोई ऐसी प्राचीन प्रति नहीं है जिसके आधार पर हम 'कारकव्यभिचार' को 'साधन व्यभिचार (=पुरुष व्यभिचार) के पश्चात् रक्खें॥ विचार में आया यही लिखा आगे पाठक महाशय शुद्ध मूल सम्हार लेवें॥

[२]एहि मन्ये रथेन यास्यसि, न हि यास्यसि, यातस्ते पितेति[१] ॥

एहि T मन्ये T रथेन ³। यास्यसि T =(तू) आउ, (मैं) मानता हूं या समझता हूं, (तू) रथ (पर) चढ़ करि आयगा, (सो)
न॰हि ॰ यास्यसि T यातः ³। ते ⁶। पिता ¹। इति =(तू) नहीं जायगा, इस प्रकार (=इति) तेरा पिता (चला) गया ॥

(सभ्य शब्दों में उक्त वाक्य का अनुवाद ऐसे होगा कि) तुम आओ मैं मानता हूं या समझता हूं तुम रथ चढ़ करि आवोगे सो नहीं आवोगे, इस प्रकार (सो) तुम्हारे पिता चले गये ॥ उपर्युक्त संस्कृतवाक्य में और तदनुसार शब्दार्थ हिंदी अनुवाद में भी 'एमि' उत्तम पुरुष एक वचन के स्थान में "एहि" मध्यम पुरुष एकवचन लाया गया है। "मन्यसे" मध्यम पुरुष एक वचन के स्थान में "मन्ये" उत्तम पुरुष एकवचन लाया गया है और "यास्यामि" उत्तम पुरुष एकवचन के स्थान में "यास्यसि" मध्यम पुरुष एकवचन लाया गया है ॥ (मैं) के स्थान में "तू" और "तू" के स्थान में "मैं" फिर 'मैं' के स्थान में 'तू' लाया गया है हिन्दी अनुवाद में इन तीनों को मिलाके ऐसे साधन या पुरुष व्यभिचार हुआ।

(१) इस वाक्य का पाठ सर्वार्थसिद्धि की दोनों आवृत्तियों में तत्वार्थराजवार्तिक तथा राजवार्तिक दोनों अनुवादों में एकसा है। श्लोकवार्तिक में एक 'स' अधिक है और 'पितेति' वाक्य की संधि नहीं की 'पिता इति' ऐसे रूप में है अर्थात् एहि मन्ये रथेन यास्यसि न हि यास्यसि स यातस्ते पिता इति" ऐसा पाठ है। पं॰ जयचन्द्र जी की वचनिकामें "न" अधिक है और 'इति' नहीं है अर्थात् 'एहि मन्ये रथेन यास्यसि नहि यास्यसि न यातस्ते पिता" है।

(२) "एहि" अदादि द्वितीय गण के इ वा ई गमन अर्थवाली धातु से लोट लकार का आज्ञाद्योतक क्रिया के मध्यम पुरुषका एकवचन रूप है इसका अर्थ "एहि कहिये तू आउ (=तू आउ) यथा॰ तृतीयावृत्ति पृष्ठ २१४ एहि त्वमागच्छ (=तू आउ) सर्वार्थ प्र॰ संस्करण पृ॰ १३८ टिप्पणी द्वितीय आवृत्ति पृ॰ ८० टिप्पणी। 'एहि मन्ये रथेन यास्यसि न हि यास्यसि यातस्ते पिता। अर्थात् आओ मैं ऐसा समझता हूं कि तुम रथसे जाओगे परन्तु अब न जाओगे तुम्हारा पिता चलागया। इस वाक्य के शब्दोंका अर्थ तो यह होता है। पं॰गजाधरलालजी अनुवादित तत्वार्थराजवार्तिक प॰ ४३८ अब हमको यह बात निश्चय करनाहै कि एहि"वाक्य का अर्थ कौनसा ठीक है अर्थात् 'तू आउ' अथवा तू आओ।

() इ ण्वादि प्रथम गण परस्मैपद और आत्मने पद का धातु 'जाना अर्थ में आता है। इ की गुणसंज्ञा ए है व विकरण जोड़कर = अय् + अ बनता है पश्चात् ति–त अन्य पुरुष एकवचन वर्तमान कालके परस्मैपद वा आत्मनेपदका प्रत्यय क्रमसे लगाकर अयति अयते = जाता है बने।

() इ और ई ण्वादि प्रथम अदादि द्वितीय दिवादि चतुर्थ गणों में भिन्न भिन्न अर्थ लिये हुये आते हैं उन सर्व का छोड़ कर यहां पर इ–ई अदादिगण के जाना वा गमन अर्थ में आये हैं (वैयकरण १५,१७ पृ॰) धातु के अन्त का स्वर और आङ् के उपांतक ह्रस्व स्वरके पितसंज्ञक

हिंदी अनुवाद में यदि उक्त पुरुष दूषण हम दूर करदें तो भी ईसीका प्रसग बना रहेगा जैसे मैं जाताहू तू समझता है "मैंरथ चढ़ करि आऊंगा" तू रथ चढ़ करि नहीं आवेगा, तेरा बाप (दादा भी कभी) ऐस गया है ? भावार्थ जो महत्व का कार्य तेरे बाप दादा से नहीं हुआ है तुझ से कैसे हो सकता है कदापि नहीं हो सक्ता है ॥ परन्तु संस्कृत में यदि हम शब्द नयक अनुकूल पुरुष दूषण दूर कर के "एमि मन्यसे रथेन यास्यामि नहि यास्यसि यातस्ते पितेति" करदें तो प्रहास जाता रहेगा और सीधा साधारण संस्कृत वाक्य का यह अर्थ हो जावेगा ॥ जैसे किसी बहुत बूढ़े मनुष्य को कोई बच्चा मिला और दोनों को किसी बरात में जाना है सो उक्त वृद्ध पुरुष कहता है। (यदि तू मेरे साथ चलता है तो चल) 'मैं (तो) जाता हूं तू समझता है 'मैं रथ चढ़ करि आऊंगा' (सो अब) तू (रथ चढ़ करि) नहीं आवेगा। (क्योंकि तू तो अभी ग्राम से आया है, घर भी नहीं पहुंचा है इससे तुझको जानकारी नहीं है कि जो रथ वस्तुतः तेरे घरमें था उस पर तो) तेरा पिता (चढ़ कर बरात को)

(मि सि ति। अम्-स-त्। आमि-आव-आम-तु परस्मैपदी और ए-आवहै-आम है। आत्मनेपदी) प्रत्यय के पहिले गुण सज्ञक आदेश हो जाता है परन्तु शेष क्ङित् सज्ञक प्रत्यय वस्-थस्-तस् हि-तम्-ताम्-त अन्तु इत्यादि के पहिले गुण सज्ञा नहीं होती (धातुचन्द्रिका पृष्ठ७२)इसलिये इ—ई धातुओं का मि पित् संज्ञक प्रत्यय के पहिले गुण संज्ञा होकर ए—ए ऐसा रूप बना। अदादि द्वितीय गण के धातु के साथ कोई विकरण नहीं आता है इसलिये पुरुषगत प्रत्यय धातुओं के साथ तत्काल लगाये जाते हैं॥ एमि—इ धातु का और एमि (ई) ई धातु का उत्तम पुरुष एक वचन परस्मैपद वर्तमान काल की क्रिया का रूप हुआ जिस 'एमि' का अर्थ है (मैं) जाता हू आगे अब हम एहि के स्थान में एमि करेंगे तब यह अर्थ काम देगा॥ हि प्रत्यय क्ङित् सज्ञक है और वह मध्यम पुरुष एक वचन परस्मैपद, लोट वा आज्ञा द्योतक क्रिया का है इसके पहिले अङ्ग के अंत के स्वर और अङ्ग के उपान्त्य ह्रस्व स्वर का गुण सज्ञक आदेश नहीं होता है इसलिये इ+हि ई+हि=इहि=तू आओ ई+हि=तू आओ रूप बने और अर्थ हुआ॥ (देखो धातु चन्द्रिका पृष्ठ ७१)॥ अब प्रश्न यह है कि इन इहि-ईहि रूपों का एहि कैसे बना और क्या अर्थ होगा॥ आङ् उपसर्ग के कई अर्थ होते हुये जब आङ् (=आ) उन क्रियाओं के पहिले आता है जो हरण-चलन-गमन करने इत्यादि अर्थों की द्योतक होती हैं तो उनका अर्थ विपरीत हो जाता है जैसे गम्=जाना आगम्=आना॥ इसी प्रकार आ+इ आ+ई का आद्गुणः सू० (६-१-८७) से ए-ए रूप बने क्योंकि इ-ई की गुण संज्ञा ए है इसमें उपर्युक्त ही प्रत्यय लगाने से एहि-एहि रूप बने। इसलिये 'तू आओ' यह अर्थ हुआ। इससे हमने अनुवाद में तू आओ अर्थ न लिखकर एहि का अर्थ तू आओ अथवा तुम आओ ऐसा किया है॥

चला गया है ॥ श्रीयुत श्रीचन्द्र अनुवादित अष्टाध्यायी पृष्ठ २११ देखो ॥ "एहि मन्ये (१) रथेन यास्यसि, न हि यास्यसि, यातस्ते पितेति" ॥ यह संस्कृत वाक्य हंसी में कहा गया है ॥ यह व्याकरण और व्यवहार नय दोनों के अनुकूल शुद्ध है और लोक व्यवहार में ऐसा प्रयोग होता है और यह ठीक समझा जाता है परन्तु शब्द नय की प्रधानता से उक्त संस्कृत वाक्य का प्रयोग ठीक नहीं है, अयुक्त है दूषित है व्यवहारनय और व्याकरण से यह भलेही ठीक हो। यहां पर तो शब्द नय का प्रकरण है इस से हम उसको दूषित मानते हैं।

(१) हमको इस टिप्पणी में इस बात को सिद्ध करना है कि पाणिनीयकृत अष्टाध्यायी और जैनेन्द्र व्याकरण के भी अनुसार और व्यवहार नय से भी "एहि मन्ये रथेन यास्यसि न हि यास्यसि यातस्ते पितेति" यह वाक्य ठीक है और यदि शब्द नय के अनुकूल मन्ये" उत्तम पुरुष के स्थान में मन्यसे मध्यम पुरुष कर दिया जावे और 'यास्यसि मध्यम पुरुष के स्थान में 'यास्यामि उत्तम पुरुष करदिया जावे तो उक्त वाक्य का सीधा सादा साधारण अर्थ होजायेगा और उपहास वा परिहास का प्रसंग जाता रहेगा परन्तु शब्द नय से जिसको हम यहां पर प्रधान मानते हैं उक्त वाक्य ठीक नहीं है व्याकरण और व्यवहार नय कुछ भी सिद्ध क्यों न करता हो॥ प्रथम हम अष्टाध्यायी के सूत्र का उल्लेख करते हैं। प्रहासे च मन्योपपदे मन्यतेरुत्तमः एकवच्च" १।४।१०६ ॥ =प्रहासे ,। च॰मन्य-उपपदे १।॥ धातोः ,। (सूत्र ८० से लिया है) मध्यमः १। (१०५ वां सूत्र से लिया है) (मन्यति की) मन्यतेः , उत्तमः १। एकवत् ॰ च॰ ॥

प्रहासे । च॰ — और (=च) प्रहास वा हंसी (अर्थ) में अर्थात् जब किसी क्रिया के सम्बन्ध में किसी से प्रहास करने का अभिप्राय हो।

मन्योपपदे ,। धातो १। मध्यम १। = मन्य-उपपद (मन्य धातु जिसके साथ हो ऐसे) धातु से (= धातोः = ऐसी धातु के पीछे) मध्यम पुरुष हो अर्थात् जिस धातु के साथ में मन्य (धातु) उपपद रूप में आई हो तो वह प्रकृतिभूत वा विषय भूत धातु अथवा वह क्रियाद्योतक धातु मध्यम पुरुष में लाई जाती है।

मन्यते। १ उत्तमः १ = और मन्य धातु से (=मन्यतेः–यह मन्यति की पञ्चमी अपादान विभक्ति एकवचन है) उत्तम पुरुष हो।

एकवत् ॰ च॰ = वह एकवचन भी (=च) हो ॥ सारांश यह है कि जब किसी प्राणी से किसी क्रिया जैसे जाना आना चले जाना इत्यादि के सम्बन्धमें हंसी करना हो और मन्य धातु उक्त विषयभूत क्रियाके पास आवे वा पहिले आवे अथवा प्रथम बोला जाय तो इस क्रिया के पीछे मध्यम पुरुष का प्रत्यय लाया जायगा और उक्तमन्य

धातु के पश्चात् प्रथम पुरुष का प्रत्यय लाया जावेगा, वह प्रत्यय एक वचन भी (=त) होगा ॥ जैसे— "एहि मन्ये ओदनं भोक्ष्यसे इति, नहि भोक्ष्यसे, भुक्तः सोऽतिथिभिः" इस वाक्यमें 'भुज' धातु है जिसका अर्थ 'भक्षण करना' है इस 'खाना' क्रिया के संबन्ध में किसी व्यक्तिसे परिहास या हंसी करता है और उक्त वाक्य में मन्य (मन्=समझना, दिवादिगणका य विकरण है) धातु विभक्तियुक्त या प्रकरणमें आई गई 'भुज' धातुसे पहिले आई है, प्रथम बोली गई है, इसलिये इस 'भुज' धातु के पश्चात् स्यसे (=भुज्+स्यसे=भोक्+स्यसे=भोक्ष्यसे=भोक्ष्यसे) मध्यम पुरुषका प्रत्यय लाया गया है और 'मन' धातु जो वाक्यका उपपद (=समीपस्थ, गौण, अमुख्य) है उसके पीछे इ (=मन्+य, विकरण+इ=मन्ये) उत्तम पुरुष एक वचन प्रत्यय लाया गया है । बस यही इस सूत्रका ज्योंका त्यों अर्थ और आशय है ॥ अब इसमें प्रहास यह हुआ मान लीजिये कि एक इस पुरुष के यहां भात अभी भी नहीं बना है और एक न्यून व्यक्ति को भात खाने की बहुतही इच्छा है परस्पर उनमें उपहास भी होता रहता है तो वह दूसरा पुरुष हंसी में कहता है तू ऐसा समझता है "मैं भात खाऊंगा" तू नहीं खायगा वह भात तो महमानों द्वारा खा लिया गया" यहां भात और इत्यादि कुछ भी विद्यमान न थे न था केवल प्रहास और उपहास ही है ॥ ध्यान रहे कि यह हंसीरूप अर्थ तब तक ही सम्भव या ज्ञात होता है जब तक हम शब्दभ्रमके प्रतिकूल 'मन्ये' धातुमें मध्यम पुरुष के स्थानमें जो उत्तम पुरुष है और भोक्ष्यसे उत्तम पुरुषके स्थान में मध्यम पुरुष है बना रहने दें यदि शब्दक्रमके अनुसार हम उक्त उदाहरण को ऐसा करदें एवं मन्यसे ओदनं भोक्ष्ये इति, नहि भोक्ष्यसे, भुक्तः सोऽतिथिभिः अर्थात् मन्ये उत्तम पुरुषके स्थान में मन्यसे मध्यम पुरुष करदें और भोक्ष्यसे मध्यम पुरुष के स्थान में भोक्ष्ये उत्तम पुरुष करदें तो हंसीका विषय जाता रहेगा और उक्त वाक्यका सीधा सादा साधारण अर्थ हो जावेगा वह अर्थ यह होजावेगा कि उक्त उदाहरणमें जब उस पुरुषके यहां भात यथार्थमें बना था और महमान उस भातको सचमुच सब वास्तविकमें खाजाये तो यह सच्ची बात बना किसी हंसीके यह सत्य है कि एसा तू समझता है "मैं भात खाऊंगा, नहीं खायगा, वह (भात तो) महमान खागये ॥ उक्त सूत्र अन्य प्रकारसे पस भी है "प्रहासे मन्य वाचि युष्मन्मन्यतेरस्मदेकवच्च" अर्थात् प्रहास (अर्थ) में मन्यवाच (मन्य धातु जिसके वाचक या पक्षमें हो पसे) धातुसे युष्मद् (मध्यम पुरुष) हो और मन्य धातुसे अस्मद् (उत्तम पुरुष) हो और वह (अस्मद्) एक वचन भी हो ॥

कहा गया है ॥ श्रीयुत श्रीचन्द्र अनुवादित अष्टाध्यायी पृष्ठ २११ देखो ॥ "एहि मन्ये (१) रथेन यास्यसि, न हि यास्यसि, यातस्ते पितेति" ॥ यह संस्कृत वाक्य हंसी में कहा गया है ॥ यह व्याकरण और व्यवहार नय दोनों के अनुकूल शुद्ध है और लोक व्यवहार में ऐसा प्रयोग होता है और यह ठीक समझा जाता है परन्तु शब्द नय की प्रधानता से उक्त संस्कृत वाक्य का प्रयोग ठीक नहीं है, अयुक्त है दूषित है व्यवहारनय और व्याकरण से यह भले ही ठीक हो। यहां पर तो शब्द नय का प्रकरण है इस से हम उसको दूषित मानते हैं।

(१) हमको इस टिप्पणी में इस बात को सिद्ध करना है कि पाणिनीयकृत अष्टाध्यायी और जैनेन्द्र व्याकरण के भी अनुसार और व्यवहार नय से भी 'एहि मन्य रथेन यास्यसि न हि यास्यसि यातस्ते पितेति' यह वाक्य ठीक है और यदि शब्द नय के अनुकूल 'मन्ये" उत्तम पुरुष के स्थान में 'मन्यसे' मध्यम पुरुष कर दिया जावे और यास्यसि मध्यम पुरुष के स्थान में 'यास्यामि' उत्तम पुरुष करदिया जावे तो उक्त वाक्य का सीधा सादा साधारण अर्थ होजावैगा और उपहास या परिहास का प्रसंग जाता रहैगा परन्तु शब्द नय से जिसका हम यहां पर प्रधान मानते हैं उक्त वाक्य ठीक नहीं है व्याकरण और व्यवहार नय कुछ भी सिद्ध क्यों न करता हो॥ प्रथम हम अष्टाध्यायी के सूत्र का उद्धरण करते हैं। "प्रहासे च मन्योपपदे मन्यतेरुत्तम एकवच्च" १।४।१०६ ॥ =प्रहासे ,। च॰मन्य-उपपदे ,॥ धातो ,। (सूत्र ८० से लिया है) मध्यमः ,। (१०५ वां सूत्र से लिया है) (मन्यति की) मन्यतेः , उत्तमः ।। एकवत्॰ च॰ ॥

प्रहासे ।। च ॰ = और (=च) प्रहास या हंसी (अर्थ) में अर्थात् जब किसी क्रिया के सम्बन्ध में किसी से प्रहास करने का अभिप्राय हो।

मन्योपपदे ,। धातो ।। मध्यम ।। = मन्य-उपपद (मन्य धातु जिसके साथ हो ऐसे) धातु से (= धातोः = उसी धातु के पीछे) मध्यम पुरुष हो अर्थात जिस धातु के साथ में मन्य (धातु) उपपद रूप में आई हो तो वह प्रकृतिभूत या नित्य भूत धातु अथवा वह क्रियाद्योतक धातु मध्यम पुरुष में लाई जाती है।

मन्यते। ।। उत्तमः। = और मन्य धातु से (=मन्यतेः यह मन्यति की पंचमी अपादान विभक्ति एकवचन है) उत्तम पुरुष हो।

एकवत्॰ च॰ = वह एकवचन भी (=च)हो ॥ सारांश यह है कि जब किसी प्राणी से किसी क्रिया जैसे खाना जाना नहाने खानाइत्यादि के सम्बन्धमें हंसी करना हो और मन्य धातु उक्त क्रियामूल क्रियाके पास हो? या पहिले आवे अथवा अथवा बोला जाय तो इस क्रिया के पीछे मध्यम पुरुष का प्रत्यय लाया जायगा और उत्तमत्व

काल व्यभिचारके दोनों उदाहरण व्याकरण और व्यवहारनय से ठीकहैं परंतु शब्दनयसे दूषित हैं जैसाकि तत्त्वार्थ श्लोक

ते ।। हि वैयाकरणा व्यवहारनय मनुरोधेन ।।।	—वे व्याकरणवाले व्यवहारनयके अनुसरणसे (पाणिनीय अष्टाध्यायी ३-४-१)
"धातुसंबन्धे प्रत्ययाः ।" इति सूत्रम् ।।। आरभ्य+	—ऐसे सूत्रको कि "धात्वर्थ संबन्ध में अयथाकालोंमें भी प्रत्यय हो" आरम्भकरि अर्थात् धात्वर्थ संबन्धी प्रत्यय जिस कालमें कहे गये हैं उनसे भिन्न कालमें भी होते हैं ऐसे अर्थवाले सूत्रका निर्माण कर
विश्वदृश्वाअस्य पुत्रः । जनिताT भाविकृत्यम् ।।।आसीत्T	—विश्वको जिसने देख लिया है ऐसा इसके पुत्र उत्पन्न होगा, होनहार कार्य हुआ
इति अत्र कालभेदे ।। अपि एकपदार्थम् आदृताः ।।।।	—इस प्रकार यहां काल भेद (होने) पर भी एक पदार्थ को मानतेहैं । जो विश्व को
दृक्ष्यति । सः ।। अपि पुत्रः ।। जनिताT इति भविष्यत्कालेन	—देखेगा सा ही (=अपि) पुत्र उत्पन्न होगा ऐसा अनागत कालकरि
अतीतकालस्य ।। अभेदः ।। अभिमतः ।। तथा+	—अतीत कालका अभेद माना गया है और (=तथा)
व्यवहार-दर्शनात् ।।। इति+	—लोक व्यवहारमें ऐसा देखा होता है अर्थात् संसारमें ऐसा देखा जाता है भावार्थ धात्वर्थ संबन्धी प्रत्यय जिस कालमें कहे गये हैं उनसे भिन्न कालमें भी होते हैं

ऐसे अर्थवाले सूत्रका निर्माण कर विश्वदृश्वास्य पुत्रो जनिता भाविकृत्यमासीत' यहां पर जो भविष्यत् कालके कार्य को भूतकालमें मानने से कालका भेद रहने पर भी भविष्यत् और अतीतकाल को वैयाकरण एक मानते हैं और दोनों कालोंके अभेद मानने में यह हेतु देते हैं कि संसार में ऐसा व्यवहार होता है । (परंतु)

तत् ।।। न+ श्रेयम् ।।। (तत्र श्रेयः)	—वह (व्यवहाराधीन भविष्यत् और अतीतकालोंका अभेदरूप सिद्धांत) अच्छा नहीं है
(पाठान्तरम्-तत्र+ वा ।।)	—[अन्य पाठ-वहां जो (व्यवहाराधीन भविष्यत् और अतीतकालोंका अभेदरूप सिद्धांतहै सो,]
परीक्षायां ।।। मूलक्षतेः ।। कालभेदे ।। अपि अर्थस्य ।।	—परीक्षा (करने)से जड़से जाता रहता है । क्योंकि कालभेद रहने पर भी (भिन्न २) पदार्थका
अभेदे ।। अति प्रसंगात् ।।	—एक माननेमें नियमके अतिव्याप्ति आता है (=अतिप्रसंगात्-(देखो पंचकोश पृ० १०) कि
रावणशंखचक्रवर्तिनोः ।। अपि+	—रावण और शंखचक्रवर्तीके भी (जो गया संकल्प और अनुक्रम से)
अतीत अनागतकालयोः ।। एकत्व-आपत्तेः ।।।	—अतीत और भविष्यत् कालमें (हुआ और होने वाला है दोनोंमें) एकता आपड़ती है अर्थात् दोनोंमें एकता हुई जाती है अथवा दोनों एक हुए जाते हैं

कालव्यभिचार¹—विश्वदृश्वाऽस्य पुत्रो जनिता। भावि कृत्यमासीदिति ॥

कालव्यभिचारः ,। विश्वदृश्वा ,। पुत्रः ,। अस्य ,। जनिता²	=कालव्यभिचार (जैसे) समस्त लोक को जिसने देखलिया है या जान लिया है ऐसा =पुत्र इसके उत्पन्न होगा (=जनिता) अर्थात यहां समस्त ब्रह्मांडका देख लेना भविष्यत् कालका कार्य है उसका भूतकालमें होना मान लिया गया है अतः यहां भविष्यत्काल में होनेवाले कार्यके स्थानमें भूतकालमें हुआ कार्य कहदेना कालव्यभिचार है ॥
भावि-कृत्यम् ,।। आसीत्³ इति	=होनहार (=भाविन्) कार्य (कृत्यम्) हुआ ऐसे यहां होनहार कार्य इतनावाक्य आगामि कालका वाचक है और आसीत (=हुआ) यह वाक्य अतीतकालका वाचक है इसलिये यहां अनागत कालमें या आगे होनेवाले कालमें भूतकालकी (प्रकाशक) विभक्ति या क्रियाका प्रत्यय लगाया है (=भविष्यत्कालेऽतीतकालविभक्तिः) ॥

क्योंकि संसारमें हम उक्त प्रकारके वाक्यों द्वारा प्रचार या व्यवहार देखते हैं इसलिये व्याकरणशास्त्रसे भी यदि भव्य येन' इत्यादि वाक्य ठीक है। अब हम शब्दनयकी प्रधानता मानकर और व्यवहारको गौण करके यह दिखलाना चाहते हैं कि यदि युष्मद् मध्यम पुरुषके स्थानमें अस्मद् उत्तम पुरुष करदिया जावे और अस्मद् उत्तम पुरुषके स्थानमें युष्मद् मध्यम पुरुष करदिया जावे तो यह शब्दनयसे ठीक न होगा क्योंकि साधनका भेद रहते भी पदार्थोंको एक माना जावेगा तो अहं पचामि त्वं पचसि' (मैं पकाता हूं तू पकाता है) यहांपर भी युष्मद् अस्मद् रूप साधनोंका भेद है इसलिये यहांपर भी एक मानना पड़ेगा फिर भिन्न भिन्न रूपसे जो जो प्रयोग होते हैं वे न हो सकेंगे अतः साधन व्यभिचारके दूर करनेके लिये जो वैयाकरणोंने समाधान किया है वह अयुक्त है। (देखो तत्वार्थ श्लो० वार्तिक पृष्ठ २७३)

(१) इस वाक्यमें विश्वदृश्वा जो पुत्रका विशेषण है इसके द्वारा भूतकाल प्रगट किया है और द्वितीय वाक्यमें आसीत् अनद्यतनभूत क्रिया द्वारा अतीतकाल प्रगट किया है॥ दृश्वा शब्द दृशन्का प्रथमा विभक्ति एक वचन पुल्लिंग है॥

(२)जनिता—जन्=उत्पन्न होना, दिवादिगण आत्मनेपदी अकर्मक, सेट् धातु है, जन+इ और ता लुट् भविष्यत् अर्थ प्रथम पुरुष, एक वचन आत्मनेपदी क्रियाका प्रत्यय लगानेसे "जनिता (=उत्पन्न होगा) यह बना॥ (३) आसीत्—अस् अदादि द्वितीयगण, अकर्मक परस्मैपदी, सट् धातु 'हाना' अर्थ में यहां आया है अनद्यतनभूत कालकी क्रियामें 'अ' आगम 'ई' आगम आया फिर 'त्' प्रथम पुरुष, एक वचन, उक्त भूतकालका परस्मैपद प्रत्यय लगाने से (अ+अस+ई+त्)=आसीत् (=हुआ) बना॥

उपग्रहव्यभिचारः—सन्तिष्ठते प्रतिष्ठते

उपग्रह व्यभिचारः ३[1]	= उपग्रह गृहण अथवा उपसर्ग व्यभिचारः—(जैसे)
सन्तिष्ठते T	= संतिष्ठते (= वह अपनी प्रतिज्ञानुसार चलता है या प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहता है)
प्रतिष्ठते T	= प्रतिष्ठते (= वह चल देता है अथवा वह गमन करता है अर्थात् 'स्था'

(१) हमको इस टिप्पणी में यह दिखलाना है कि यहाँ पर 'उपग्रह' शब्द का अर्थ 'उपसर्ग' कैसे हुआ। उपग्रह शब्द के सात अर्थ हैं (क) कारागार, कारागृह बन्धनागार, बन्दीगृह, बन्धनालय, (ख) बन्दीगृह में डालना (ग) बन्दीगृह में रहने वाला बन्धुआ (घ) दया (ङ धूमकेतुग्रह, राहुकेतुग्रह (देखो पद्मचन्द्रकोश ७१, वैद्यकोश ११६ पृ०) (च) सहायता (छ) किसी वस्तु को किसी वस्तुके साथ जोड़ना या लगाना (वैद्यकोश ११६ पृ०)उपग्रह शब्द इस अन्तके अर्थमें मेरी समझमें लिया गया है अर्थात् यहाँ एक वस्तु जो उपसर्ग है उसको दूसरी वस्तु जो 'स्था धातु है उसके साथ जोड़ना अथवा लगाना। क्योंकि निपातोंमेंसे प्र—परा—अप—सम्—अव—अनु—निस्—निर्—दुस—दुर्—वि—आङ् नि —अधि—अपि—अति—सु—उत्—अभि—प्रति—परि—उप बाईस निपात उपसर्ग तब ही कहलाते हैं जब किसी क्रिया के साथ आवें नहीं तो इन निपातों को उपसर्ग कदापि नहीं कह सकते इसलिये इस समानता के हेतु से 'उपग्रह'' का अर्थ 'उपसर्ग' मान लिया है या ले लिया है, यही अर्थ निम्न उल्लेखित वाक्यों से निकला है "सो उपग्रह कहिये उपसर्ग (व्यभिचार) है "पं पन्नालाल दूनी वाले राजवार्तिक पृ० २१५॥ ऐसे उपसर्ग के वशतें आत्मनेपदी धातु का परस्मैपद वचन भया। बहुरि परस्मैपदीका आत्मनेपदी भया। ऐसे उपग्रह व्यभिचार है" 'पं० जय०चन्द्रजि० पृष्ठ २०४ "बहुरि आत्मनेपदीकू परस्मैपद भया ऐसे ही उपसर्ग व्यभिचारकूं व्यवहारनय न्याय मानी है तथापि शब्द नय का यही विषय है" अर्थ प्रकाशिका पृ० ८५ (भावार्थ दूसरे तीसरे वाक्य का यह है कि व्यवहार नय उपसर्ग व्यभिचार को न्याय मानती है परन्तु शब्द नय उसको अन्याय ठहराता है परन्तु हमारी समझ में यह नहीं आया कि सत्यानुशासित राजवार्तिक पृष्ठ ४७१ में " उपग्रह का अर्थ परस्मैपद या आत्मने पद है 'ऐसा अर्थ उपग्रह शब्द का कहाँ से लिया है और कैसे हो गया॥

(२) स्था (ष्ठा) गति निवृत्तौ इति अत्र परस्मैपदोपग्रहः। समवप्रविभ्यः स्थः अष्टाध्यायी १-३-२२। इति व्यभिचार सूत्रम्॥ सम्अव प्रात् स्थः। जैनेन्द्र व्याकरणम् १ अध्यायः २ पादः २१तम सूत्रम्॥ इति व्यभिचार सूत्रम्॥

स्था ३ गतिनिवृत्तौ इति अत्र परस्मैपद—उपग्रहः = स्था धातु से गमन निवृत्ति(= ठहरना) अर्थ में परस्मैपदका लगाना होता है। सम्—अव—प्र—विभ्यः ३ स्थः ३ (आत्मने पदम्) = (परन्तु)—सम्—अव—प्र—वि पूर्वक 'स्था' धातु से आत्मनेपद।

वार्तिक के पृष्ठ २७२, २७३ से सिद्ध है जिसका शब्दशः अनुवाद हम टिप्पणी में देते हैं

आसीत् राघवः राजा शंखचक्रवर्ती भविष्यति इति
शब्दयोः भिन्नविषयत्वात् एकार्थता
न इति चेत्

तत् एव
विश्वदृश्वा जनिता इति
अनयोः
अपि मा भूत्
विश्वं दृष्टवान्
इति नहि
विश्वदृश्वा इति शब्दस्य अर्थः अतीतकालस्य
जनिता इति शब्दस्य अनागतकालः
पुत्रस्य भाविनः अतीतत्व विरोधात्
अतीतकालस्य अपि अनागतत्व अध्यारोपात्

एकार्थता अभिमता इति चेत्
तर्हि न परमार्थतः कालभेदे अपि
अभिन्न-अर्थ-व्यवस्था ॥

—(प्रश्न) राघव राजा हो चुका शंखचक्रवर्ती भविष्यत् कालमें होगा ऐसे
—दोनों (राघव और शंख) शब्दोंके भिन्न भिन्न विषय होने से एक पदार्थपनासे
—रहित (=न) है ऐसा ही (=इति) यदि (=चेत्) माने तो अर्थात् राघव और शंखको भिन्न २ मानना चाहिये एक मानना बाधित है ॥
—(उत्तर) तैसेही (=तत् एव)
—विश्वदृश्वा (जो होचुका) और जनिता (जो आगे होगा) ऐसे
—दोनों (शब्द जो एक दूसरे से भिन्न भिन्न हैं एकार्थतारूप एक अभिप्राय वाले)
—भी (=अपि) नहीं (=मा) हो (सके) थे (=भूत्)
—(विश्वदृश्वा वाक्यका अर्थ) विश्वको आगामी कालमें देखने वाला (=विश्वं दृष्टवान्)
—ऐसा (अर्थ) कदापि नहीं होसकता है(=नहि)वा किसी प्रकारसे नहीं होसकता है(=नहि)॥
—विश्वदृश्वा ऐसे शब्दका जो अर्थ है सो अतीतकालका वाचक है
—जनिता ऐसे शब्दका (अर्थ) अनागतकाल है (दोनों शब्दोंका भिन्न भिन्न अर्थ है)
=अतः भविष्यत्कालका होनेवाला (=भाविनः) पुत्र अतीतकालमें हुआ (यह) विरोध है
=(प्रश्न) भूतकालके भी भविष्यत्कालका आरोप करनेसे
(भविष्यत्कालमें होने वाला पुत्ररूप कार्य अतीतकालमें हुआ दोनोंकी)
=एक पदार्थता है यदि (=चेत्) ऐसा मान लिया जाय (=अभिमता) तो। (उत्तर)
=इस (उपचार की) अवस्था में (=तर्हि) कालभेद रहते पर भी यथार्थतः (=परमार्थतः)
=एक पदार्थरूप (=अभिन्नार्थ) का अभेदरूप व्यवस्था नहीं (मानी जा सकती) अर्थात् उपचारसे कालका अभेद मानकर भ.का.व. कालके कार्य को भूत कालका कार्य मान भी लिया जाय तब भी,वह यथार्थ रूपसे एक नहीं माना जासकता औपचारिक ही रहेगा।

विरमत्युपरमतीति ॥

'स्था धातु के ग्यारह अर्थों में से यहां हम 'तिष्ठति' के अर्थ वह ठहरता है या वह रहता है केवल दो लेते हैं। सम् और प्र उपसर्गोंके लगने से उस 'तिष्ठति' परस्मैपद का (अष्टाध्यायी १ ३ २२ वां सूत्र से) आत्मने पद होकर सम्—तिष्ठते और प्र—तिष्ठते, सन्तिष्ठते और प्रतिष्ठते दोनों रूप क्रम से बन गये। ऐसे सम् और प्र दो उपसर्गों द्वारा परस्मैपद 'स्था' धातु का आत्मने पदी होकर उक्त धातु व्यभिचरित (= नियत नियमसे शून्य) हो गया। अब इस को उपसर्ग व्यभिचार कहते हैं। ऐसे ही

विरमति T उपरमति T इति * = वह ठहरता है (या विश्राम करता है) ॥ वह (इंद्रियों के विषयों से) हटाता है अर्थात् रम् अथवा रमु का आत्मने पदी धातु है उसमें अ विकरण और ते आत्मनेपदी वर्तमान काल का प्रत्यय लगाने से रमते (= वह रमता है) बनता है परन्तु वि और उप लगाने से परस्मैपद हो जाता है।

संतिष्ठेत अवतिष्ठेत इत्यादि = संतिष्ठेत (= वचन के अनुसार चले) अवतिष्ठेत (= वह दृढ़ रहे) इत्यादिक

उपग्रह भेदने हैं॥ = उपग्रह (व्यभिचार) के भेद हैं। अतः एक उपसर्ग के स्थान में दूसरा भिन्नार्थक उपसर्ग लाना भी उपसर्ग व्यभिचार है ऐसे दो अर्थ उपग्रह व्यभिचार के हुए।

(१) विरमति उपरमति के अनुवाद के सम्बन्ध में और अन्य अन्य बातों के सम्बन्ध में भी हमारी वही समालोचना है जिसको कि हमने संतिष्ठते प्रतिष्ठते के सम्बन्ध में पृष्ठ ५२३, ५१० में दी है॥ विरमति उपरमति वाक्य श्लोक वार्तिक में हमको कहा पर नहीं मिले अतः "श्लोक वार्तिक कार भी प्रतिष्ठते स्थान पर अवतिष्ठते कहना और विरमति जगह पर उपरमति कहना उपग्रह व्यभिचार मानते हैं" संस्था के राज० पृष्ठ ५८० की यह टिप्पणी ठीक नहीं है (देखो श्लोक वा० पृष्ठ २७३) जहां तथा संतिष्ठते अवतिष्ठते इति" यह उल्लेख है जिसका अनुवाद अनुवादक महाशय ने स्वयं पृष्ठ ५८७ पर "तथा संतिष्ठते की जगह पर अवतिष्ठते कहना उपग्रह व्यभिचार है" ऐसा किया है॥

(२) रमुक्रीडायामित्यात्मनेपदोपग्रहः ॥ व्याङ्परिभ्यो रमः । उपाच्च ॥ अष्टाध्यायी प्रथमाध्याये तृतीयापादे ८३ ८४ सूत्रे इति व्यभिचारसूत्र ॥ व्याङ्परि रमः ।१।२।८५। उपात् ।१।२।८६ जैनेन्द्र व्याकरणम् इति व्यभिचारसूत्रेऽपि ॥ देवदत्तमुपरमति ॥

रमु-क्रीडायाम् इति अत्र आत्मनेपद-उपग्रह = रम् (भ्वादि प्रथमगण के) धातु से क्रीडा (अर्थ) में यहां आत्मनेपद का जोड़ना होता है

वि—आङ—परिभ्यो च उपात् रमः = (परन्तु) वि—आङ—परि और (= च) उप (उपसर्गों) से आगे रम् धातु रहने पर

धातुभ्वादि गणपगण (यहाँ पर) परस्मैपदका है। इस धातुका रूप बहुधा प्रयोगोंमें प्रथमपुरुष, एकवचन, परस्मैपद, वर्तमानकालकी क्रिया का 'ति' प्रत्यय जोड़कर 'तिष्ठति' बन जाता है॥

महाध्यायी ने॥ १-३-२२ इति' व्यभिचार-सूत्रम् ने॥	=महाध्यायी के अध्याय प्रथम, पादतीन, सूत्र बाईसवें से हो ऐसे (यह) =व्यभिचाररूप सूत्र है अर्थात् एक नियत नियम को पलटने वाला सूत्र है भावार्थ 'स्था' धातु से नियमकरि परस्मैपदका प्रयोग होता है उस नियम को इस सूत्र मे उक्त धातु के प्रथम सम्—अव—प्र—वि उपसर्ग लाकर पलट दिया और आत्मने पद का प्रयोग नियुक्त किया॥ (इसही प्रकार)
सम्—वि—अव—प्रात् ' स्था ने (आत्मने पदम्) जैनेन्द्र व्याकरणम् १—२—२१ इति व्यभिचार-सूत्रम्॥	=सम्—वि—अव प्र पूर्वक स्था' धातुके परे आत्मने पद =जैनेन्द्र व्याकरण के प्रथम अध्याय द्वितीय पाद, इक्कीसवां सूत्र से हो =ऐसे यह (भी) नियत नियम को पलटने वाला (=व्यभिचाररूप) सूत्र है

(1) "संतिष्ठते प्रतिष्ठते विरमत्युपरमत्युपग्रह व्यभिचारः" (राजवार्तिक पृष्ठ १८)=उपग्रह व्यभिचारः संतिष्ठते प्रतिष्ठते विरमति उपरमति बस यही पाठ सर्वार्थसिद्धिमें है केवल अन्तमें 'इति' अधिक है सो पाद पूरण के लिये है इसका कोई अर्थ विशेष रूप से नहीं है इसका अर्थ (पं० पन्नालाल दूनी के अनुवाद पृष्ठ २२४ में ऐसे हैं कि अर संतिष्ठते की स्थान में प्रतिष्ठते कहै तथा विरमति के स्थान में उपरमति कहै सो उपग्रह कहिये उपसर्ग व्यभिचार है॥ इस अनुवाद से उनका यह अभिप्राय जान पड़ता है कि उपसर्ग जो क्रिया के साथ बोलने में कोई मनुष्य जोड़ता है वा लगाता है वो ठीक नहीं लगाता है अशुद्ध उपसर्ग लाता है अर्थात् जहाँ सम् उपसर्ग लाना चाहिये वहाँ प्र उपसर्ग लगाता है और रम् धातु के साथ भी जहाँ वि उपसर्ग लाना चाहिये वहाँ उप उपसर्ग लाता है ऐसे एक उपसर्ग के स्थान में दूसरा भिन्नार्थक उपसर्ग लाने के कारण उपसर्ग व्यभिचार हुआ वा उपसर्ग सम्बन्धीय दूषण हुआ कोई किसी प्रकार का उल्लेख उक्त अनुवादक ने परस्मैपद और आत्मनेपद के सम्बन्ध में नहीं किया। आगे पाठकगण विचारलें॥

इसी प्रकार 'संतिष्ठते अवतिष्ठते इति' (तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृष्ठ २७२) वाक्य का अनुवाद पं० गजाधर जी ने पृष्ठ ५८७ में यह किया है कि 'संतिष्ठते की जगह पर अवतिष्ठते कहना उपग्रह व्यभिचार है॥ 'संतिष्ठेतावतिष्ठेतेत्याद्युपग्रहभेदतो' तत्त्वार्थश्लोक वार्तिक २७२

अतः समान लिंग समान वचन समान साधनादि शब्दों का ही आपस में संबंध होता है। इस बातका ज्ञापक शब्दनय है

इस संबंधमें पं० जयचंद जी की वचनिका मुद्रित पृष्ठ २०५, हस्तलिखित पृष्ठ ८५ का पूर्ण लेख शब्दशः ऐसे है "बहुरि कारकव्यभिचार सेनापर्वतमधिवसति' यहां सेना पर्वतके समीप बसे है ऐसा आधार है, सो सप्तमी विभक्ति चाहिये, यहां द्वितीया कही। तातें कारकव्यभिचार भया) या प्रकार व्यवहारनय है ताहि अन्याय माने है। जातें अन्य अर्थ का अन्य अर्थकरि संबंध होय नाहीं। जो अन्य अर्थका अन्यते संबंध होय, तो घटका पट होय जाय पटका महल होय जाय। तातें जैसा लिंग आदि होय तैसाही न्याय है। यहां कोई कहै। लोक विषै तथा शास्त्र विषै विरोध आवैगा। ताकूं कहिये, विरोध आवै तो आवो, यहां तो यथार्थस्वरूप लिया गया है। औषधी रोगीके इच्छा के अनुसार तो है नाहीं॥

ऊपर के लेख में वाक्यरूपसे 'ताहि' शब्द कारकव्यभिचार की ओर संकेत करने वाला मानकर कह सकते हैं कि ताहि अर्थात् तिस कारक व्यभिचार को तब अर्थ हुआ कि या प्रकार व्यवहारनय है तिस (कारकव्यभिचार) को अन्याय माने है" इस अर्थके समर्थनमें हमारे एक मित्र अर्थप्रकाशिका पृष्ठ ८५ के इस वाक्य का कि "ऐसेही उपसर्ग व्यभिचारकूं व्यवहारनय अन्याय माने है" हमारे समक्ष रखते हैं और कहते हैं कि पं० जयचंदजीने कारकव्यभिचार अलमें कहा है और पं० सदासुखजीने उपसर्गव्यभिचारका वर्णन अलमें किया है इसलिये पं० जयचंद जी ने ताहि (=तिसको) का अर्थ कारकव्यभिचार लिया है और अर्थप्रकाशिका में उपसर्गव्यभिचार लिया है इससे कोई अंतर नहीं पड़ता है॥ और यह भी कहते हैं कि आप भी ठीक हैं इस हेतु से कि 'कारक व्यभिचार को और उपसर्ग व्यभिचार को' अर्थात् 'सेना पर्वतमधिवसति' 'सन्तिष्ठते प्रतिष्ठते' विरमति उपरमति इन वाक्यों को दोषरूप कहना, व्यभिचार इसका नाम रखना व्यवहारनयके अनुकूल या अपेक्षासे अन्याय है अयुक्त है और ऐसे प्रयोग व्यवहार में तो आते ही हैं।

(उत्तर) अर्थप्रकाशिकाके पृष्ठ ८५ में न्याय शब्दके स्थानमें अन्याय शब्द अशुद्ध मुद्रित होगया है। सदासुखजी का शुद्ध पाठ ऐसे है कि "बहुरि आत्मने पदीकूं परस्मैपद भया ऐसेही उपसर्गव्यभिचारकूं व्यवहार नय न्याय माने है तथापि शब्दनयका यही विषय है।" इसका तात्पर्य यह है कि आत्मने पद धातु में उपसर्ग लग जाने से प्रयोगमें परस्मैपद धातु होजाती है और परस्मैपद धातुमें उपसर्ग लग जाने से आत्मने पदी (धातु) हो जाती है इसको व्याकरण, लोक प्रयोग व्यवहारनय न्याय मानते हैं तो भी शब्दनयका यही विषय है कि इन सब प्रयोगोंको जो व्यवहार में प्रचलित हैं व्यभिचरित या दूषित मान। अतः आपका कथन ठीक नहीं है॥ उपर्युक्त कारकव्यभिचार और उपसर्गव्यभिचार व्यवहारनय की अपेक्षासे अयुक्त। अन्याय कहा है आपकी यह धारणा ठीक नहीं। परन्तु ये व्यभिचार व्याकरणके अनुकूल और व्यवहार नयके अनुकूल हैं इससे व्यवहार चलता है परन्तु शब्दनय इसको दूषित मानती है॥"

एवम्प्रकार व्यवहारनयमन्याय्य मन्यते । अन्यार्थस्यार्थेन सम्बन्धाभावात् ।

एवम्-प्रकारम् ३¹	= इसप्रकार (शब्द नय या शब्द नय का अनुयायी या शब्द नयका मानने वाला,)
व्यवहार नयम् ३¹ अन्याय्यम् ३¹ मन्यते T	= व्यवहारनयको अन्याय्य या अनुचित या न्यायबहिर्भूत मानता है
अन्य-अर्थस्य ३¹ अन्य अर्थेन ३¹ सम्बन्ध-अभावात् ३¹	= क्योंकि भिन्न पदार्थ का भिन्न पदार्थ से संयोग या मेल नहीं हो सकता है

[यह सिद्धांत सिद्ध बात है] ॥ भावार्थ उक्त सब व्यभिचार और इस प्रकार के और भी व्यभिचारों को व्यवहारनयवाले ठीक समझता है उस नय की अपेक्षा से वैसे प्रयोग किये जा सकते हैं व्याकरण भी उन्हीं प्रयोगों के अनुसार सिद्धि करता है परन्तु शब्द नय की प्रधानता से वे प्रयोग ठीक नहीं है शब्द नय उनको अन्याय्य या अयुक्तरूप मानता है ॥ क्योंकि यदि अन्य पदार्थ का अन्य पदार्थ के साथ सम्बन्ध हो जाय तो घट का पट हो जाय पट का गृह हो जाय या मठ हो जाय इत्यादि ।

[परस्मैपदम्]	= परस्मैपद हो [८३, ८४ सूत्रों में ७८ वां सूत्र से परस्मैपदम् अनुवर्तता है]
अष्टाध्यायी प्रथम—अध्याये तृतीय पादे ८३।८४	= अष्टाध्यायी के पहिले अध्याय में तीसरे पाद में ८३ वां ८४ वां सूत्र है
इति व्यभिचार सूत्रे	= ऐसे दोनों सूत्र [= सूत्रे] व्यभिचार रूप हैं [= नियत नियम के विरोधक हैं]
वि-आङ्-परि उप रमः । अर्थात् (रमः परस्मैपदम्)	= वि—आङ्—परि (= य) उप (उपसर्गों) पूर्वक रम् धातु से परस्मैपद हो
जैनेन्द्र व्याकरण प्रथमाध्याये तृतीय पादे । ८५	= जैनेन्द्रव्याकरण के पहिले अध्यायके तीसरे पाद में ८५ वां
८६ । इति व्यभिचार सूत्रे ऽपि	= ८६ वां (सूत्र) हैं । ऐसे दोनों सूत्र भी (= सूत्रेऽपि) व्यभिचार रूप हैं ॥
देवदत्तम् उपरमति	= देवदत्त को हटाता है अर्थात् देवदत्त को (विषयों से या किसी ऐसी ही वस्तु से) रोकता है ॥ यहां परस्मैपद क्रिया हेतु अर्थ में है । उपरमति के साथ अर्थ देती है। यह एक प्रकार का क्रिया का उदाहरण है जिसमें हेतुगीतक प्रत्ययणिच् (इ का प्रभाव सम्मिलित हो ॥

(१) इस "एवम्प्रकार व्यवहारनयम् अन्याय्यं मन्यते" वाक्य का अर्थ स्पष्ट है परन्तु हमको यह टिप्पणी इस लिये लिखनी पड़ती है कि सर्वार्थसिद्धि के द्वितीय संस्करण के एवम्प्रकारं व्यवहारनयं न्याय्यं मन्यते पाठ पर समालोचना करें, यद्यपि प्रथमावृत्ति में 'एवम्प्रकार व्यवहार नयमन्याय्य मन्यते ऐसा पाठ वर्तमान है ॥ पं० जयचन्द्रजी ने पृष्ठ २०५ में इस वाक्य की यह वचनिका की है कि "या प्रकार व्यवहार नय है ताहि अन्याय मानै हैं"= या प्रकार व्यवहारनय है (तिस (व्यवहारनय) को = ताहि) अन्याय माने है (प्रश्न) कौन अन्याय माने है ? (उत्तर) शब्दनय या शब्दनय का अनुयायी मानी ।

अतः समान लिंग समान वचन समान साधनादि शब्दों का ही आपस में संबंध होता है। इस भावका ज्ञापक शब्दनय है

इस संबंधमें पं० जयचंद जी की वचनिका मुद्रित पृष्ठ २०५, हस्तलिखित पृष्ठ ८५ का पूर्ण लेख शब्दशः ऐसे हैं "बहुरि कारकव्यभिचार 'सेनापर्वतमधिवसति' इहां सेना पर्वतके समीप वसे है ऐसा आधार है, सो सप्तमी विभक्ति चाहिये, इहां द्वितीया करी। तातैं कारकव्यभिचार भया) या प्रकार व्यवहारनय है ताहि अन्याय माने है। जातैं अन्य अर्थ का अन्य अर्थकरि संबंध होय नाहीं। जो अन्य अर्थका अन्यते संबंध होय, तो घटका पट होय जाय घटका महल होय जाय। तातैं जैसा लिंग आदि होय तैसाही न्याय है। इहां कोई कहैं। लोक विषै तथा शास्त्र विषै विरोध आवैगा। ताकूं कहिये, विरोध आवै तो आवो, इहां तो यथार्थस्वरूप विचा रये है। औषधी रोगीके इच्छा के अनुसार तो है नां ही॥

ऊपर के लेख में वाक्यरूपसे 'ताहि' शब्द कारकव्यभिचार की ओर संकेत करते वाक्य मानकर कह सके है कि ताहि अर्थात् तिस कारक व्यभिचार को तब अर्थ हुआ कि या प्रकार व्यवहारनय है तिस (कारकव्यभिचार) को अन्याय माने है" इस अर्थके समर्थनमें हमारे एक मित्र अर्थप्रकाशिका पृष्ठ ८५ के इस वाक्य का कि "ऐसेही उपसर्ग व्यभिचारकू व्यवहारनय अन्याय माने हैं" हमारे समक्ष रखते हैं, और कहते हैं कि पं० जयचंदजीने कारकव्यभिचार अतमें कहा है और पं० सदासुखजीने उपसर्गव्यभिचारका वर्णन अतमें किया है इसलिये पं० जयचंद जी ने ताहि (=तिसको) का अर्थ कारकव्यभिचार लिया है और अर्थप्रकाशिका में उपसर्गव्यभिचार लिया है इसस कोई अंतर नहीं पड़ता है॥ और यह भी कहते हैं कि भाव भी ठीक है इस हेतु स कि 'कारक व्यभिचार का और उपसर्ग व्यभिचार को' अर्थात् 'सेना पर्वतमधिवसति' 'सन्तिष्ठते प्रतिष्ठते' विरमति उपरमति इन वाक्यों को दोषरूप कहना, व्यभिचार इनका नाम रखना व्यवहारनयके अनुकूल वा अपेक्षासे अन्याय है अयुक्त है और ऐसे प्रमाम व्यवहार में तो आते ही हैं॥

(उत्तर) अर्थप्रकाशिकाके पृष्ठ ८५ में न्याय शब्दके स्थानमें अन्याय शब्द अशुद्ध मुद्रित होगया है। सदासुखजी का शुद्ध पाठ ऐसे है कि "बहुरि आत्मने पदीकूं परस्मैपद भया ऐसेही उपसर्गव्यभिचारकूं व्यवहार नय न्याय माने है तथापि शब्दनयका यही विषय है।" इसका तात्पर्य यह है कि आत्मने पद धातु में उपसर्ग लग जाने से प्रयोगमें परस्मैपद धातु होजाती है और परस्मैपद धातुमें उपसर्ग लग जाने से आत्मने पदी (धातु) हो जाती है इसको व्याकरण, लोक प्रयोग, व्यवहारनय न्याय मानते हैं तो भी शब्दनयका यही विषय है कि इन सब प्रयोगोंको जो व्यवहार में प्रचलित हैं व्यभिचरित या दूषित माने। अतः आपका कथन ठीक नहीं है॥ उपर्युक्त कारकव्यभिचार और उपसर्गव्यभिचार व्यवहारनय की अपेक्षासे अयुक्त (अन्याय रू) है आपकी यह धारणा ठीक नहीं। वरन ये व्यभिचार व्याकरणके अनुकूल और व्यवहार नयके अनुकूल है इससे व्यवहार चलता है परन्तु शब्दनय इनको दूषित मानती है॥"

लोकसमयविरोध इति चेत्। विरुध्यताम्। तत्वमिह मीमांस्यते न भैषज्यमातुरेच्छानुवर्ति।

लोक-समय-विरोधः ₁। इति॰ चेत्॰	=जगत् या संसार और शास्त्रमें यदि (=चेत्) ऐसा है तो विरोध आवेगा ? अर्थात् जो प्रयोग व्यवहारनय और व्याकरणके अनुकूल हैं परंतु शब्दनयसे वे दूषित हैं उनको यदि दोषरूप मानोगे तो ऐसा मानना संसार और शास्त्रके विरुद्ध होगा। उत्तरमें कहतेहैं कि—
विरुध्यताम्॰ तत्वम् ₁।।। इह॰ मीमांस्यते॰	=विरोध किया जाउ। यहां तो=यथार्थस्वरूप (तत्त्वम्) विचारा गयाहै परीक्षा किया गयाहै
न॰ भैषज्यम् ₁।।। आतुर-इच्छा-अनुवर्ति ₁।।।	=क्योंकि औषधि रोगी की इच्छा के अनुसार नहीं होती है

कई कोशोंमें हमको 'प्रकार' 'व्यवहारनय' 'न्याय' (अधिक व्याख्या आगे लिखेंगे है) पुल्लिंग ही मिले बहुत सो ढंढोल की परंतु नपुंसक लिंगी नहीं मिले (देखो—प्रकार॰ अमर कोष वर्ग ११ श्लोक १६१; आपटे कृत संस्कृत कोष पृष्ठ १२८ शब्दकल्पद्रुम् कोष पृष्ठ २४८, पैयसंस्कृतालक कोष ६५३; नीति=(न्याय) नयः अमरकोष वर्ग १२ श्लोक ९; इसी सूत्रमें सात आठ स्थानों पर नय शब्द आया, पद्य॰ पृष्ठ २०८; वेद॰ पृष्ठ ३७०) उक्त वाक्यमें प्रकारं व्यवहारनयम् (=व्यवहारनयको) दोनों शब्द द्वितीया विभक्ति या कर्मकारकमें हैं॥ मन् दिवादि चतुर्थ गणका धातु जाननेके अर्थ है ए इस पदका विकरण है 'ते' अन्य पुरुष एक वचन आत्मने पदी वर्तमान क्रियाका द्योतक प्रत्यय है अतः मन्यते बना अर्थ मानता है यहां पर कर्तरि प्रयोग है। बस यही तीन विशेष शब्द हैं जिनसे वाक्यका अर्थ निकलता है अतः शब्दशः अर्थ हुआ कि "इस प्रकार (वह) व्यवहारनयको अन्याय मानता है॥ प्रथम इसके कि हम द्वितीय आवृत्ति के पाठ पर कुछ समालोचना करें हम बातको दिखाना चाहते हैं कि सर्वार्थसिद्धि वृत्तिके नीचेके चार वाक्योंके अर्थका कैसा घनिष्ठ संबन्ध या प्रसंग मिलता है "इस प्रकार (शब्दनय) व्यवहारनयको अन्याय मानता है" इसके अनन्तर ही वाक्यमें इस प्रथम वाक्यका हेतु दिया है कि अन्य पदार्थका अन्य पदार्थकरि सम्बन्ध नहीं होसक्ता है॥ तीसरे वाक्य में इस हेतु पर प्रश्न करदिया कि यदि शब्दनय व्यवहारनयको अन्याय मानैगे तो लोक (व्यवहार)के विरोध और शास्त्र (=समय अर्थात् व्याकरण) के विरोध होगा क्योंकि कालभेद, संख्या, साधन, कारक, काल और उपसर्गके संबन्धमें जो उदाहरण दिये हैं और उनको शब्दनयकी अपेक्षासे व्यभिचार माना है वे समस्त ही लोक व्यवहारकी अपेक्षासे ठीक हैं उन सबका लोकमें व्यवहार होता है प्रयोग होता है लोकशास्त्रमें माने हैं और व्याकरणके नियमोंके अनुकूल हैं॥ इसके उत्तरमें चौथा वाक्य दिया कि "विरुध्यताम्" लोक और शास्त्रके विरुद्ध होने दो कुछ चिंता नहीं। फिर इस कथनका भी हेतु दिया कि इस स्थानमें तत्व (पदार्थके यथार्थ स्वरूप) का निर्णय है लोक विरुद्ध और व्याकरणशास्त्र वा अन्य शास्त्रके विरुद्ध हुआ करो क्योंकि औषधि चाहे कड़ी हो-मीठी हो-कड़वी हो-कसैली इत्यादि हो रोग को दूर करने वाली गुण की

ही आवेगी न कि दोनोंकी इच्छाके अनुकूल इसके समर्थनमें देखो पं०जयचंदजीका लेख पिछला पृष्ठ१२३, राजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ३८ सस्था द्वारा प्रकाशित राजवार्तिक पृष्ठ ४८० ४८१ पं०पन्नालालजी वाले अनुवादित राजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ १९३, अब यह समझमें नहीं आता कि "एवम्प्रकारं व्यवहारनय न्याय्यं मन्यते" इस वाक्यका ऐसा किस प्रकारका अनुवाद करे कि जो शब्दार्थ हो और विभक्त्यर्थ सहित हो और वृत्तिके उपयुक्त चार वाक्योंसे संबंध भी कर आय और साथ ही साथ द्वितीयावृत्तिके संपादक की 'अपं पततीति एकत्व० आपः पतन्तीति व्यवहारो जायते इत्यादि' टिप्पणीके भी अनुकूल होजाय यद्यपि यह टिप्पणी सर्वार्थसिद्धिके प्रथम संस्करण में नहीं है और वृत्ति पाठमें भी "न्याय्यं" के स्थानमें प्रथम आवृत्तिमें "अन्याय्यं" है ॥

उपर्युक्त वाक्यका शब्दार्थ और विभक्त्यर्थ अनुवाद यह है कि 'इस प्रकार (यह) व्यवहारनयका न्याय या उचित मानता है" कौन और किस प्रकार व्यवहारनयको न्याय मानता है। वैयाकरण 'सन्तिष्ठते, प्रतिष्ठते, विरमति उपरमति, ऐसे प्रयोगों को जो लोक व्यवहार में भी आते हैं व्याकरण और व्यवहारनयकी अपेक्षा न्याय मानता है यदि यह अर्थ लिया जावे तो सर्वार्थसिद्धि वृत्तिके नीचेके दो से पांच सख्या तकके वाक्योंका संबंध उपर्युक्त अनुवादसे मेल नहीं खाता है॥ इस लिये हमारी समझ में प्रथमावृत्तिका पाठ ठीक और शुद्ध है द्वितीय संस्करणमें व्यर्थ 'अन्याय्यम' शब्दके स्थानमें 'न्याय्यम्' कर दिया है॥ उपर्युक्त पूर्व टिप्पणी का अनुवाद यह है कि—

() अम्म पततीति एकत्वे आपः पतन्तीति व्यवहारो जायते अत्राप्शब्दोत्तरं बहुत्वाभिधायकप्रत्ययापनिबन्धनं वस्तुतो निरर्थकमेव, बहुत्वस्य जले अन्वयायोगात्। तथापि शब्दानुशासनं शास्त्रमहिम्ना बहुत्ववाचकप्रत्ययसमभिव्याहारः कर्तव्यएवभवति

अम्म ।। पततिT इति एकत्वे ।। आपः ।। पतन्तिT इति	—पानी गिरता है इस प्रकार कहने पर आप (बहुत से जल) गिरते हैं ऐसा
व्यवहारः ।। जायतेT अत्र अप् शब्दोत्तरं बहुत्वाभिधायक-	—व्यवहार होता है। यहां अप् शब्द के आगे बहुत्ववाचक
प्रत्यय-उपनिबन्धनं ।। वस्तुतः निरर्थकम् ।। एव जले ।।	—प्रत्यय का लगाना यथार्थतः या यथार्थरूपसे अर्थरहित ही है क्योंकि जलयिर्षे
बहुत्वस्य ।।। अन्वय-अयोगात् ।। तथापि शब्दानुशासनं	—बहुत्वका सम्बन्ध या जोड़ अयुक्त है। तो भी व्याकरण (—शब्द अनुशासन)
शास्त्रमहिम्ना ।। बहुत्ववाचक प्रत्ययसमभिव्याहारः ।।	—शास्त्र के प्रभावसे बहुवचन वाची प्रत्ययका संबन्ध (अर्थात् प्रयोग)
कर्तव्य ।। एव भवति T	—करना ही होता है

नानार्थसमभिरोहणात् समभिरूढः ।

नाना-अर्थ-समभिरोहणात् ५॥ समभिरूढः १।	=बहुत अर्थोंमेंसे एक अर्थको प्राप्त होनेसे (=समभिरोहणात्) समभिरूढ है

(१) समभिरूढनयकी उपर्युक्त परिभाषा तथा तत्त्वार्थ राजवार्तिकमें दी हुई परिभाषा वाक्योंका पाठ शब्दशः एक है ॥
सम-अभि-रोहणात्-रोहण (पुंल्लिङ्ग पर्वत-पठार (म०) चढ़ना, उगना (पाइअसद्दमहण्णव पृष्ठ३२३, वैद्यकोश पृष्ठ११५)में है, यहांपर नपुंसक लिंगमें आया है ॥
(२) नानार्थसमभिरोहणात्— नानार्थसमभिरोहणात्" इस वाक्य का अनुवाद "नानाअर्थान्समतीत्यैकमर्थम् रूढः" ऐसा वाक्य है। (प्रश्न) 'समतीत्य=छोड़कर, उल्लंघकर' ऐसा अनुवाद समभिरोहणात् वाक्यका कैसे हुआ? (उत्तर) पाणिनीय अष्टाध्यायीके प्रथम अध्याय चतुर्थपादके इकतीसवें सूत्र "भुवः प्रभवः" =भुवः कर्तुः प्रभव' अपादानम्-अपादानकी अनुवृत्ति चौबीसवें और कर्तुः की तीसवेंसूत्रसे की है

=भू=होना, धातुके कर्ताका जो प्रभव (=उत्पत्तिस्थान) वह कारक अपादान संज्ञक हो। जैसे हिमवतः गङ्गा प्रभवति=हिमालय (पर्वत,से गंगाजी निकलती है। के नीचे लिखे उल्लेखित वार्तिक भी हुए है उसके निमित्तसे 'उल्लंघकर' ऐसा अनुवाद हुआ॥ ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च" =ल्यब्लोपे कर्मणि अधिकरणे च पञ्चमी विभक्तिर्भवति=पांचवीं विभक्ति (का प्रत्यय) कर्म (कारक) और (=च) अधिकरण कारकके सूचित करनेमें वा निर्देश करनेमें आता है जबकि ल्यबन्त (ल्यप्+अ, अन्त) संबन्धक सूचक भूतकृदन्त का (देखो पृष्ठ (१) अर्थात् वह संबन्धसूचक भूतकृदन्त का जिसके अन्तमें य हो (जैसे अनुभूय) लोप किया जावे जैसे प्रासादम् आरुह्य प्रेक्षते (राजभवनको (पे) चढ़कर देखता है)=प्रासादात् प्रेक्षते=राजभवनसे देखता है॥ अधिकरणका उदाहरण, आसने उपविश्य प्रेक्षते (आसनपर प्रवेश होकर देखता है)=आसनात् प्रेक्षते=आसनसे देखता है॥
(प्रश्न) ऊपरके प्रथम उदाहरणमें 'प्रासादम्' कर्मकारकके सूचित करनेमें उसी शब्द प्रासाद् का अपादान कारकमें आये हैं जैसे "नानार्थान्समतीत्यैकमर्थमाभिमुख्येन रूढः समभिरूढः' विग्रह वाक्यमें समभिरोहण" =पदको कर्मकारकमें नहीं आये इसलिये अष्टाध्यायीका वार्तिक लागू नहीं है॥ (उत्तर पूज्यपाद स्वामीने नानार्थसमभिरोहणात् 'का इसके लगता ही वाक्यमें तात्पर्य दे दिया है। उपर्युक्त वार्तिकके अनुकूल विग्रह इस प्रकार हो सका है 'नानार्थसमभिरोहणम् समतीत्य समभिरूढः'=नानार्थसमभिरोहणात् समभिरूढः" अर्थात् नाना अर्थकी प्राप्तिका (=समभिरोहणम्) या चढ़नेको (=समभिरोहणम्) उल्लंघकर (=समतीत्य) या छोड़कर (=समतीत्य) एक ही अर्थमें रूढ हो (=समभिरूढ) एक ही अर्थमें प्रसिद्ध हो (=समभिरूढ) सो नानार्थसमभिरोहणात् समभिरूढ है॥ इसलिये 'प्रासादम् आरुह्य प्रेक्षते=प्रासादात् प्रेक्षते' है अर्थात् प्रासादम् आरुह्यके स्थानमें 'प्रासादात्' पंचमी विभक्ति हो गई इसी प्रकार 'नानार्थसमभिरोहणम् समतीत्य समभिरूढः' वाक्यके 'नानार्थसमभिरोहणम् समतीत्य के स्थानमें 'नानार्थसमभिरोहणात्' पंचमी विभक्ति होगई अतः उक्तवार्तिक और उसका कर्मकारक का उदाहरण सर्व प्रकारसे लागू होगया॥

यतो नानार्थान्समतीत्यैकमर्थमाभिमुख्येन रूढः समभिरूढ ॥ गौरित्यय शब्दो वागादिषु अर्थेषु वर्तमान पशावभिरूढः । अथवा अर्थगत्यर्थं शब्दप्रयोग । तत्रैकस्यार्थस्यैकेन गतार्थत्वात्पर्यायशब्दप्रयोगोऽनर्थक ॥ शब्द भेदश्चेदस्ति अर्थभेदेनाप्यवश्य भवितव्यम्

यतः॥ नानार्थान्॥ सम्-अतीत्य-एकम्॥ अर्थम्॥	=(अर्थात्) जहां (=यतः) अनेक अर्थों को उल्लघन करि एक अर्थ को (अर्थ में)
अभिमुख्येन ॥ रूढः ॥ समभिरूढः ॥	=प्रधानता से (=अभिमुख्येन) रूढ हो प्रसिद्ध हो सो समभिरूढ है ॥
	(इसलिये शब्दके अनेक अर्थोंमेंसे एकही अर्थको जो जाने या कहे सो समभिरूढनय है)
गौः॥ इति॥ अयम्॥ शब्दः॥ वाग् आदिषु॥	=गो ऐसा यह शब्द वचन (पृथ्वी, वाणी, गमन, तारे, आकाश, हीरा, किरण) आदि
अर्थेषु ॥ वर्तमानः ॥ पशौ ॥ अभिरूढः ॥	=अर्थोंमें विद्यमान है (तोभी) चोपाये (अर्थ) में अति प्रसिद्ध (=अभि-रूढ) है अर्थात् गो
	बैलनामा पशुके अर्थ में चलते फिरते सोवते बैठते उठते खाते पीते, अकडते, अगते
	इत्यादि सब अवस्थाओंमें ग्रहण किया जाता है ॥
अथवा॥ शब्दप्रयोगः ॥ अर्थगति-	=या शब्दोका प्रयोग (किया जाता) है सो अर्थज्ञान (=अर्थगति) के या अर्थप्राप्ति (=अर्थगति) के
अर्थः ॥ तत्र॥ एकस्य ॥ अर्थस्य ॥ एकेन ॥	=लिये (=अर्थ) है । वहां एक अर्थका एक (शब्दके प्रयोग) से
गतार्थत्वात् ॥ पर्याय	=अभिप्राय सिद्ध होजानेसे (=गतार्थत्वात्-गतार्थपणासे) (दूसरे) समानार्थ बोधक
शब्दप्रयोगः ॥ अनर्थकः ॥	=शब्दका अनुष्ठान, या काममें लाना निष्प्रयोजन है भावार्थ शब्दोंका जो प्रयोग किया
	जाता है वह अर्थज्ञानके लिये किया जाता है यदि वह अर्थज्ञान एकही शब्दके प्रयोगसे
	सिद्ध हो जाय तो फिर दूसरे पर्याय शब्दका कहना व्यर्थ है
शब्दभेदः॥ चेत्॥ अस्ति॥ अर्थभेदेन॥ अपि॥	=(प्रश्न) जो (=चेत्) शब्द भेद है तो ? (उत्तर) अर्थभेद (सहित) भी
अवश्यम् ॥ भवितव्यम् ॥	=अवश्य होना चाहिये । उपर्युक्त प्रश्नोत्तरका तात्पर्य यह है कि यदि यह

(१) समर्थात्य:-यह सर्वपदघुचक मूलवस्तु है (२) आभिमुख्येन-यह पुल्लिंग और नपुंसकलिंग दोनों में होसकता है ॥

नानार्थसमभिरोहणात् समभिरूढः ।

नाना-अर्थ-समभिरोहणात् ५।। समभिरूढः १। =बहुत अर्थोंमेंसे एक अर्थको प्राप्त होनेसे (=समभिरोहणात्) समभिरूढ है

---

(१) समभिरूढनयकी उपर्युक्त परिभाषा तथा तत्त्वार्थ राजवार्तिकमें दी हुई परिभाषा दोनोंका पाठ शब्दशः एक है।
सम-अभि-रोहणात् रोहण (पु०एक पर्वत-पहाड़ (न०) चढ़ना, उगना (पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ४६, वैद्यकोश पृष्ठ६१६)में है, यहांपर नपुंसक लिंगमें आया है॥

(२) नानार्थसमभिरोहणात्— "नानार्थसमभिरोहणात्" इस वाक्य का अनुवाद "नानार्थान्समतीत्यैकमर्थम् रूढः" ऐसा वाक्य है। (प्रश्न) 'समतीत्य=छोड़कर, उल्लंघकर' ऐसा अनुवाद समभिरोहणात् वाक्यका कैसे हुआ? (उत्तर) पाणिनीय अष्टाध्यायीके प्रथम अध्याय चतुर्थपादके इकतीसवां सूत्र "भुवः प्रभवः =भुवः कर्तुः प्रभव' अपादानम्-अपादानकी अनुवृत्ति चौबीसवां और कर्तुः की तीसवांसूत्रसे की है

=भू=होना, धातुके कर्ताका जो प्रभव (=उत्पत्तिस्थान) वह कारक अपादान संज्ञक हो। जैसे हिमवतः गङ्गा प्रभवति=हिमालय (पर्वत,से गंगाजी निकलती है। के नीचे भिन्न उल्लेखित वार्तिक दी हुई है इसके निमित्तसे 'उल्लंघकर' ऐसा अनुवाद हुआ॥ ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च" =ल्यब्लोपे कर्मणि अधिकरणे च पञ्चमी विभक्तिर्भवति=पांचवीं विभक्ति (का प्रत्यय) कर्म (कारक) और (=च) अधिकरण कारकको सूचित करनेमें वा निर्देश करनेमें आता है जबकि ल्यबन्त (ल्यप्=य, अन्त) संबन्धक सूचक भूतकृदन्त का (देखो पृष्ठ १६) अर्थात् वह संबन्धसूचक भूतकृदन्त का जिसके अन्तमें य हो (जैसे अनुभूय) लोप किया जावे जैसे प्रासादम् आरुह्य प्रेक्षते (राजभवनको (पे) चढ़कर देखता है)=प्रासादात् प्रेक्षते=राजभवनसे देखता है॥ अधिकरणका उदाहरण, आसने उपविश्य प्रेक्षते (आसनपर प्रवेश होकर देखता है)=आसनात् प्रेक्षते=आसनसे देखता है॥

(प्रश्न) ऊपरके प्रथम उदाहरणमें 'प्रासादम्' कर्मकारकको सूचित करनेमें उसी शब्द प्रासाद का अपादान कारकमें लाये हैं वैसे "नानार्थान्समतीत्यैकमर्थमाभिमुख्येन रूढः समभिरूढः' विग्रह वाक्यमें समभिरोहण शब्दको कर्मकारकमें नहीं लाये इसलिये अष्टाध्यायीका वार्तिक लागू नहीं है॥ (उत्तर पूज्यपाद स्वामीने नानार्थसमभिरोहणात् 'का इसके समता ही वाक्यमें तात्पर्य दे दिया है। उपर्युक्त वार्तिकके अनुकूल विग्रह इस प्रकार हो सकता है 'नानार्थसमभिरोहणम् समतीत्य समभिरूढः'=नानार्थसमभिरोहणात् समभिरूढः" अर्थात् नाना अर्थकी प्राप्तिका (=समभिरोहणम्) उल्लंघनकर (=समतीत्य) वा छोड़कर (=समतीत्य) एक ही अर्थमें रूढ हो (=समभिरूढ) एक ही अर्थमें प्रसिद्ध हो (=समभिरूढ) सो नानार्थसमभिरोहणात् समभिरूढ है॥ इसलिये प्रासादम् आरुह्य प्रेक्षते=प्रासादात् प्रेक्षते' है अर्थात् प्रासादम् आरुह्यके स्थानमें 'प्रासादात्' पंचमी विभक्ति हो गई इसी प्रकार 'नानार्थसमभिरोहणम् समतीत्य समभिरूढः' वाक्यके 'नानार्थसमभिरोहणम् समतीत्य' के स्थानमें 'नानार्थसमभिरोहणात्' पंचमी विभक्ति होगई अतः उक्तवार्तिक और उसका कर्मकारक का उदाहरण सर्व प्रकारसे लागू होगया॥

अथवा यो यत्राभिरूढः स तत्र समेत्याभिमुख्येनारोहणात्समभिरूढः। यथा क्व भवानास्ते। आत्मनीति। कुत। वस्त्वन्तरे वृत्त्यभावात् ॥ यद्यन्यस्यान्यत्र वृत्ति स्यात्, ज्ञानादीना रूपादीना चाकाशे वृत्तिःस्यात्॥६॥ येनात्मना भूतस्तेनैवाध्यवसाययतीति एवम्भूतः ॥

अथवा॰ यः॥ यत्र अभिरूढः॥ सः॥ तत्र अभिमुख्येन॥	=अथवा जो जहां (=यत्र) अभिरूढ है या प्राप्त है सो तहां प्रधानतासे
आरोहणात् ॥ समेति। (सम-एति)	=प्राप्तहोकरि (=आरोहणात्) वसता है (=समेति) वर्तता है (=समेति) रहता है
समभिरूढः॥ यथा॰क्व॰ भवान्॥ आस्ते॥ आत्मनि॥	=(तिससे) समभिरूढ है ॥ जैसे कहां आप तिष्ठते हैं ? आत्मामें (तिष्ठता हूं)
इति॰ कुतः॥	=ऐसे (समभिरूढ) है। (प्रश्न) क्योंकर (आत्मामें वा निजरूपमें तिष्ठते हो)
वस्तु-अन्तरे॰ वृत्ति-अभावात् ॥	=(उत्तर) अन्य वस्तुमें प्रवृत्तिका वा स्थितिका अभावसे अर्थात् भिन्न वस्तुका भिन्न वस्तुमें ठहरना नहीं होसकता है। प्रधानतासे आत्माका रहना आत्मामें ही है दूसरे पदार्थोंमें उसका रहना नहीं हो सकता है (और)
यदि॰ अन्यस्य॥ अन्यत्र॰ वृत्तिः॥ स्यात्	=जो (=यदि) अन्य (पदार्थ) का अन्य स्थानविर्षे स्थिति वा प्रवृत्ति वा रहना हो
ज्ञानादीनाम् ॥ रूपादीनाम् ॥ च॰	=तो ज्ञानादिकोंका (जो आत्मगुण हैं) और रूपादिकोंका (जो पुद्गलके गुण हैं)
आकाशे ॥ वृत्तिः ॥ स्यात्	=आकाशमें प्रवृत्ति वा स्थिति वा प्रवर्त्तना वा रहना होजाय(सो आकाशमें है नहीं)
( ) येन ॥ आत्मना ॥ भूतः॥	=जिस स्वरूपकरि (अर्थात् अर्थ क्रियासे कोई पदार्थ परिणत) हो
तेन ॥ एव॰ अध्यवसाययति	=उस ही (स्वरूप अर्थ क्रिया परिणाम) से निश्चय कराता है वा प्रतीति कराता है
इति॰ एवम्भूतः॥	=ऐसा एवम्भूत (नय) है ॥ (एवंभूतः भी ठीक है देखो टिप्पणी पृष्ठ ५४०,५४१)
	(इसी एवंभूत की परिभाषाका भाव इसके लगता ही वाक्यमें दिया है (देखो पृष्ठ ५४२)

(१) समेति=सम+एति 'इ' अदादि दूसरेगण परस्मैपदका धातु यहां जाना अर्थमें आया है। 'ति' पर् सार्वक प्रत्ययके (देखो पृष्ठ ५२२, ५२३) पहिले 'इ' धातु भी गुणसंज्ञा होकर 'ए' हो जाताहै। 'एति' प्रथम पुरुष एक वचन परस्मैपद वर्तमान कालका प्रयोग आजानेसे एति—बन जाताहै इसमें 'सम्' उपसर्ग लगाने से (सम+एति) समेति बन जाताहै। समेति=वह साथ साथ रहताहै अर्थात् आत्मा आत्मामें रहता है वसताहै तिष्ठताहै

(२) पूज्यपाद स्वामी की इसी एवंभूतनयकी परिभाषाको श्रीमत् तत्त्वार्थ राजवार्तिकके व्याख्याने ग्रहण कीहै (देखो तत्त्वार्थ० मुद्रित पृष्ठ ४८)

इति नानार्थसमभिरोहणात्समभिरूढ ॥ इन्दनादिन्द्र शकनाच्छक्र पूर्दारणात्पुरन्दर इत्येव सर्वत्र ॥

कहा जाय कि एक अर्थ के प्रतिपादन करने वाले अनेक शब्द भी होवे हैं इसलिये अर्थ एक ही रहता है परंतु शब्द भेद बहा रहता है उसका उत्तर यह है कि यदि शब्द भेद होगा तो अर्थ भेद भी नियम से होगा क्योंकि जितने शब्द भेद हैं उतने ही उनके अर्थ हैं यह नियम है । उक्तंच—"जित्तिय मित्ता सद्दा तित्तिय मित्ताणि होंति परमत्था" यावन्मात्राः शब्दाः तावन्मात्राः परमार्था भवन्ति जितने शब्द होवे हैं उतने ही उनके उचित (=परम) अर्थ होवे हैं ॥

इति नाना-अर्थ-समभिरोहणात् ५। समभिरूढः १।	=ऐसे नाना अर्थोंमें से एक अर्थ को प्राप्त होन से (=समभिरोहणात्) समभिरूढ है (और अनेक अर्थोंमें से एक विशेष गृहीत अर्थ को कहन वाला अथवा जानने वाला है सो समभिरूढनय है ॥ जैसे
इन्दनात् ५।। इन्द्रः १।	=परम ऐश्वर्यरूप क्रिया करन (के हेतु) से इन्द्र है अर्थात जब परमैश्वर्यरूप क्रिया करे तब इन्द्र है ।
शकनात् ५।। शक्रः १। पूर्-दारणात् ५।।	=समर्थरूप प्रवर्तने से शक्र है, पुर (नगरादि) के भेदन करने से
पुरन्दरः १। इत्येवम्० सर्वत्र०	=पुरन्दर है ॥ इस प्रकार ही सब स्थानोंमें (जाना जाता) है (ऐसे समभिरूढनय इन अर्थोंमेंसे एक ही अर्थ को ग्रहण करि प्रवर्तती है)

भावार्थ— यद्यपि इन्द्र शक्र पुरंदर आदि शब्द एक ही शचीपति-इन्द्र अर्थके कहने वाले हैं तथापि परमैश्वर्यका भोक्ता होनेसे इन्द्र सामर्थ्यवान् होनेसे शक्र और पुर नगरादिका विदारण करनेसे पुरंदर इस प्रकार इन भिन्न भिन्न शब्दोंकि भिन्न भिन्न अर्थ हैं । इस रीतिसे पर्यायोंकि अनुसार इन्द्र शब्दके अनेक अर्थ रहते भी यह रूढ इन्द्र (शचीपति) अर्थ में ही है और इस रूढ अर्थ को ही समभिरूढ नय विषय करता है यहां पर यह बात समझलेनी चाहिये कि चाहे इन्द्र परमैश्वर्यका भोग करे वा न करे किसी भी अवस्थामें हो तब भी यह समभिरूढ नयका विषय है ।

(१ धारस द स्व वैराकोश पृष्ठ ३३० में नपुंसकलिंगमें दिया है इसलिये इन्दन, शकन भी भाव द्योतक होने से नपुंसक लिंगमें है ।

जैसे यशान्स्+इ = यशांसि यह यशांसि यश् नपुंसकलिंगीका बहुवचन है यहाँ पर अपदान्त नका अनुस्वार होगया ॥ बहुत यश = यशांसि
आक्रंस्यते = आ+क्रम्+स्यते क्रम् धातुके मका अनुस्वार होगया ॥ आक्रंस्यते = वह पकड़ेगा (वह) विजयकरेगा जीतेगा ॥

(४) अपदान्त अनुस्वारः—अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः ८।४।५८ = अनुस्वारस्य परसवर्णः ययि=अनुस्वार के स्थान में परसवर्ण हो यदि (उक्त अनुस्वार के) परे में यय् प्रत्याहार के अक्षरों में से कोई भी आवे अर्थात् अनुस्वार के पश्चात् में क-ख-ग-घ-ङ। च-छ-ज-झ-ञ। ट-ठ-ड-ढ-ण्। त-थ-द-ध-न्। प-फ-ब-भ-म्। य-र-ल-व अक्षरों में से कोई भी एक अक्षर आवे तो उक्त अनुस्वार के स्थान में परसवर्ण (= ङ-ञ-ण-न-म-ल) हो जावे जैसे शान्तः यहाँ नश्चापदान्तस्य झलि उपयुक्त सूत्र से नका अनुस्वार होकर शांतः पाठ हुआ फिर इस सूत्र से परअक्षर त उस तकार का सवर्णीय न् होकर शान्तः रूप बना। ऐसेही अङ्कितः = झुकगया गड़गया ॥ अञ्चितः = पूजाकिया गया आदर किया गया सिकोड़ लिया गया। कुण्ठितः = प्रतिघात किया गया गुम्फितः = गूथागया रचागया गांठागया रूपबनगये ॥ शान्तः का अर्थ शामयुक्त वा शान्त वाला है कुर्वन्ति = वे करते हैं। कृषन्ति – वे उत्पन्न करने के योग्य हैं वे सीखते हैं ॥ इन दोनों शब्दों के न् पहिले नश्चापदान्तस्य झलि उक्त सूत्र से अनुस्वार में परिवर्तित हो जाते हैं पश्चात् इस सूत्र से उन के पश्चात् त होने के कारण न् परसवर्ण रूप में पलट जाते हैं।

(५) पदान्त अनुस्वारः— वा पदान्तस्य" ८।४।५९ =(पदान्तस्य अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः) वा इस सूत्र में अट्ठावनवां सूत्रकी अनुवृत्ति आती है। पदान्तस्य अनुस्वारस्य परसवर्णः वा ययि = पदान्त अनुस्वारका परसवर्ण विकल्पसे हो (चाहे परसवर्ण करो मनन चाहे मतकरो) यदि (उक्त पदान्त अनुस्वारके) पश्चात् ऊपर कहे हुये २६ व्यंजनों में से कोई एक व्यंजन आवे तो। जैसे त्वम् करोषि यहाँ 'मोऽनुस्वार' सूत्र से म् को अनुस्वार किया तो त्वं करोषि बना फिर अब सवर्ण हुआ तो त्वङ्करोषि, तू करता है। ऐसा रूप बना नहीं तो त्वं करोषि रूपही बना ॥ ऐसेही त्वम् चिनोषि से त्वंचिनोषि रूप हुआ फिर त्वञ्चिनोषि रूप बना नहीं त्वं चिनोषि रहा तू चुनता है ॥ ( ) त्वम् डीयसे = तू उड़ताहै, = त्वं डीयसे फिर वा पदान्तस्य से त्वण्डीयसे रूप बना। डी धातु गमन का आत्मने पदी अकर्मक धातु है। त्वम् पण्डितः (तू पण्डित है) त्वं पण्डितः 'मोऽनुस्वार' से हुआ फिर 'वा पदान्तस्य' से त्वम्पण्डितः रूप बना नहीं तो त्वं पण्डितः ही, रूप रहा ॥ ( ) त्वम् धनाढ्यः (तू धनवान् है) 'मोऽनुस्वार' सूत्र से त्वं धनाढ्यः रूप हुआ अब 'वा पदान्तस्य" द्वारा त्वन्धनाढ्यः रूप बना नहीं त्वं धनाढ्यः ॥ ( ) तं कथं चित्रपदं व्रजमानं नभः स्थं पुरुषोऽवधीत् = तङ्कथञ्चित्रपदं व्रजमानन्नभःस्थम्पुरुषोऽवधीत्। आकाश में (= नभः स्थं) उड़ते हुये (= व्रजमानं) उस (= तं) चित्र विचित्र पर वाले पखेरू को (चित्र पदं) पुरुष ने कैसे मारा (= अवधीत्) ? ॥

इस बात पर हम एक पूर्व टिप्पणी लिखते हैं कि पदान्त म-म् और अपदान्त म् न् की अवस्था में क्या क्या परिवर्तन होते हैं और दोनों प्रकार के अनुस्वार पदान्त और अपदान्त में क्या क्या परिवर्तन होते हैं

(१) पदान्त म—मोऽनुस्वारः (अष्टाध्यायी ८ । ३ । २३) इस सूत्रमें 'पदस्य' की अनुवृत्ति अष्टाध्यायी अध्याय ८ पाद १ सूत्र १६ में (पदस्य) से है और हलि शब्दकी अनुवृत्ति 'हलि सर्वेषाम्' ८ । ३ । २२सूत्रसे आई है इसलिये 'मोऽनुस्वार' (=पदस्य ' मः ' अनुस्वार ' हलि ') का अर्थ मकारान्त पदको अनुस्वार हो यदि कोई हल् (अर्थात् व्यंजन) पश्चात् म हो तो (ऐसा होता है)। जैसे हरिम् वन्दे में म् पदान्त है और व्यंजन पश्चात् में है इसलिये हरिं वन्दे हुआ ऐसेही एवम्भूतः में म् पदान्त है स् उसके पीछे व्यंजन है अतः एवंभूतः होगया इसलिये एवम्भूत और एवंभूत दोनों रूप ठीक हैं (इस सूत्रकी विशेष व्याख्या के लिये देखो पृष्ठ ५, ६)॥ 'गम्यते' (=वह गया है) यहां म् अपदान्त है इस से अनुस्वार न हुआ ॥

(२) पदान्त म—अन्तका न् जब उसके पश्चात् च-छ-ट-ठ-त-थ आवे तो (वह म्) अनुस्वार और विसर्ग में पलट जाता है जैसे बिडालान् ताडयति पुरुषः (=यह मनुष्य बिल्लियों को मारता है) =बिडालां ताडयति पुरुषः अब यह विसर्ग निम्न उल्लेखित नियमसे स् में परिवर्तित होजाता है अतः बिडालांस्ताडयति पुरुषः ऐसा हुआ (नियमः—विसर्ग के पश्चात् यदि च-छ हो तो श् में यदि ट ठ हो तो ष् में यदि त-थ हो तो स् में यह विसर्ग पलट जाता है)

(३) अपदान्त म्-न्॥ 'नश्चापदान्तस्य झलि' यह अष्टाध्यायी के आठवां अध्याय का तीसरे पादका चौबीसवां सूत्र है ८-३-२४ । इस सूत्रसे पहिले का सूत्र 'मोऽनुस्वार' उपर्युक्त तेईसवां है इससे अनुस्वार की अनुवृत्ति चौबीसवां सूत्र में आती है तब चौबीसवां सूत्रका रूप इस प्रकार होजाता है कि " नः च अपदान्तस्य झलि (अनुस्वार) च से तेईसवां सूत्र के मः (=मः) का आकर्षण होता है इसलिये ऐसा रूप हुआ कि "नः मः अपदान्तस्य झलि अनुस्वारः" झलि प्रत्याहार है और उसमें झलके मध्यके अक्षर झ सहित सर्व आजाते हैं अर्थात् क ख-ग-घ च छ-ज-झ । ट-ठ ड-ढ । त-थ-द ध । प-फ-ब-भ । श-ष-स ह । 'झलि' का अर्थ है इन चौबीस अक्षरोंके पहिले आने वाला । अपदान्त—विभक्ति या कारक जिसके अंतमें न हो । सूत्र का अर्थ यह हुआ अपदान्त न् अथवा अपदान्त म के स्थान में अनुस्वार होवे यदि न् अथवा म् पूर्वोक्त चौबीस अक्षरों में से किसी अक्षर के पहिले हो इसलिये 'मन्तव्य' के न् का अनुस्वार होकर मंतव्य होगया और 'वन्दे' का 'वंदे' होगया क्योंकि दोनों के न् के पश्चात् क्रमसे त-द है ॥

न स्थितो न शयित इति ॥ अथवा येनात्मनायेन ज्ञानेन भूत परिणतस्तेनैवाध्यवसाययति । यथेन्द्राग्निज्ञानपरिणत आत्मैवेन्द्रोऽग्निश्चेति ॥

न * स्थित' न * शयितः इति *	=न बैठा हुआ था न ठहरा हुआ गो (बैल) है (और) न शयन करता हुआ गो (बैल) है
अथवा *	=अथवा (एवम्भूतनयकी उक्त परिभाषा में आये हुये शब्द)
येन आत्मना येन ज्ञानेन भूतः ।	="येनात्मना भूतः" (कहिये किसी पदार्थके) ज्ञानयुक्त (=ज्ञानेन) हुआ
परिणतः तेन एव * अध्यवसाययति T	=परिणया (आत्माको) तिस (ज्ञान) युक्त ही निश्चय कराता है या प्रतीति कराता है (=ऐसा एवम्भूत–नयहै) अर्थात् उक्त परिभाषा में 'आत्मन्' शब्दका अर्थ पहिले अभिप्रेत क्रिया लिया' अब 'ज्ञान' अर्थ लिया (आत्मना =ज्ञानेन) इसलिये आत्मा जिस क्षण में जिस पदार्थ के ज्ञान से युक्त हो उसे वही कहना एवम्भूतनयका विषय है ॥
यथा*इन्द्रज्ञानपरिणतः अग्निज्ञानपरिणतः	=जैसे इन्द्र(का आकाररूप) ज्ञान और अग्नि(का आकाररूप) ज्ञान परिणया
आत्मा एव * इन्द्रः च * अग्निः इति *	=आत्माही इन्द्र और अग्नि एसे (क्रमसे)है अर्थात् जैसे जिस क्षणमें आत्मा इन्द्र पदार्थके ज्ञान से परिणत हो रहा है उसे इन्द्र कहदेना या जिस समय अग्नि पदार्थ के ज्ञान से परिणत हो रहा है उसे अग्नि कह देना एवं भूत नयका विषय है ॥

ऐसे व्याकरणके रूपका अनुवाद बैल होना चाहिये या गऊ होना चाहिये "न स्थितः न शयितः इस वाक्य में स्थितः शब्द और शयितः शब्द पुलिंग में आये है इस से स्पष्ट है कि बैल से तात्पर्य है अतः "गौः" का अनुवाद गौ (बैल) किया है यदि स्थितः के स्थान में 'स्थिता' होता जो स्त्रीलिंग है और शयितः के स्थान में 'शयिता' स्त्री लिंग होता तो अनुवाद गौः रुप का गाय (गऊ) होता।

(१) इन्द्र ज्ञान परिणत आत्मा इन्द्र उच्यते । अग्नि ज्ञान परिणत त्वात्मा अग्नि श्चेति एवम्भूतनयलक्षणम् ॥

इन्द्र ज्ञान परिणतः आत्मा इन्द्रः उच्यते T = इन्द्रका (आकार रुप) ज्ञान परिणया आत्मा इन्द्र कहा जाता है
च*अग्निज्ञान परिणत त्वात् आत्मा अग्निः = और अग्निके ज्ञान परिणमन से आत्मा अग्नि (कहलाता) है
इति * एवम्भूतनयलक्षणम् = ऐसा एवम्भूतनयका विषय (=लक्षण) है । अब शंका यह है कि

स्वाभिधेयक्रियापरिणतिक्षणे एव स शब्दो युक्तो नान्यदेति । यदैवेन्दति तदैवेन्द्रो नाभिषेचको न पूजक इति । यदैव गच्छति तदैव गौः ।

स्व-अभिधेय-क्रिया परणतिक्षणः एव * =(जो शब्द) अपने अर्थ (=अभिधेय) क्रियासे जिस समय ही (=एव) परिणत हो
सः शब्दः युक्तः न * अन्यदा * इति * =वह शब्द (प्रयोग उस ही समय) उचित है न कि और समय (=अन्यदा)
भावार्थ जिस वस्तुको जिस नामकरि कहै उसही अर्थ की क्रियारूप वह वस्तु परिणमती हो सो तिसही काल उस वस्तुको उस नाम से कहै अन्य काल नहीं वस्तु अन्य परिणतिरूप परिणमै तौ पूर्व उक्त नाम से उस वस्तुको न कहै
यदा एव * इन्दति T तदा एव * इन्द्रः । =जैसे जब ही परमैश्वर्यरूप क्रिया करता है तब ही इन्द्र है ।
न * अभिषेचकः । न * पूजकः इति * । =न कि (वह ही प्राणी) अभिषेक करने वाला न पूजा करने वाला ऐसा (इन्द्र) है
अर्थात् इन्द्र शब्द का अर्थ परमेश्वर है जिस समय वह परमैश्वर्य का भोग कर रहा था उसी समय उसका इन्द्र कहना यह एवं भूतनयका विषय है किंतु जिसका केवल नाम मात्र इन्द्र है (नाम निक्षेप) वा जहां पर किसी पदार्थमें इन्द्रकी स्थापना है (स्थापना निक्षेप) वा जो इस समय इन्द्र नहीं आगे जाकर इन्द्र होने वाला है(=द्रव्य निक्षेप)वह एव भूतनयका विषय नहीं क्योंकि उपर्युक्त तीनों अवस्थाओंमें परमैश्वर्यका भोग नहीं हो रहा है । इसी प्रकार गो इत्यादि अन्य शब्दों में भी जिस जिस क्षणमें उनकी जिस जिस अर्थ क्रियाका परिणमन हो रहा है उस उस क्षणके उस उस परिणमनकी अपेक्षा से एवं भूतनयकी योजना कर लेनी चाहिये यदि अर्थ क्रियाकी परणतिका दूसरा दूसरा काल होगा तो वे एवंभूतनयके विषय नहीं हो सके(देखोनीचे गोकादृष्टान्त)
यदा एव * गच्छति तदा एव * गौः =जब(=यदा) ही (=एव) गमन करता है तब ही गो है (बैल है)

(१) गो-इस शब्द के बीस अर्थ से भी अधिक हैं यह पुल्लिंग और स्त्रीलिंग में आता है (वैद्यकोश पृष्ठ २५० देखो) गो पुल्लिंग में बैल-वृषभ (पशु) के अर्थमें यहां लिया गया है और उस की प्रथमा विभक्ति एक वचन पुल्लिंग गौः है और गो जब गऊ-गाय के अर्थ में स्त्रीलिंग है तब भी उसका प्रथमा विभक्ति एक वचन स्त्रीलिंगकारूप पुल्लिंग के सदृश गौः (ही) होता है इस लिये प्रश्न यह उठता है कि वृत्ति में दियेहुयेगौः

नैगमनयके पीछे संग्रहनय कही गई है सो इसका विषय सद्द्रव्यत्व आदिही है इसके परस्पर विरोधरूप असत् आदि यह विषय नहीं है इसलिये नैगमनयसे संग्रहनय अल्प विषयक या थोड़ी विषय वाली है

पयम्॰उत्तरत्र॰अपि॰योज्यम्

=इस प्रकार यहां से आगे (=उत्तरत्र) भी लगाओ या लगाने योग्य है अर्थात् संग्रहनयके पश्चात् व्यवहार नय है सो इसका विषय संग्रहनयके विषयका भेद है वहाँ अभेद विषय रहगये अतः संग्रहनयसे व्यवहारनय अल्प विषय वाली है

व्यवहारनय के पश्चात् ऋजुसूत्र है सो इसका विषय वस्तुका वर्तमान पर्याय मात्र है अतीत अनागत पर्यायें रहगईं अतः व्यवहारनयसे ऋजुसूत्रनयका थोड़ा विषय है॥

ऋजुसूत्रनय लिंग संख्या साधन कारक उपग्रह आदिका भेद नकरके केवल वर्तमान पर्यायको विषय करता है परन्तु शब्दनय उस एक पर्यायमें भी लिंग संख्या साधन कारक उपग्रह काल आदिके भेदसे अर्थका भेद प्रकाशन करता है इसलिये ऋजुसूत्रनयकी अपेक्षासे शब्दनयका अल्प विषय है अर्थात् ऋजुसूत्रनय अर्थ पर्याय और शब्दपर्याय सबको ही विषय करता है परन्तु शब्दनय केवल शब्द पर्याय को ही विषय करता है इसलिये ऋजुसूत्रनयका विषय शब्दनयसे अधिकतर है॥

इसके पश्चात् समभिरूढ नय कहागया है सो एक वस्तु के अनेक नाम हैं जिनको पर्यायशब्द कहते हैं जिन पर्याय शब्दोंका एकही अर्थ मानने वाली तो शब्द नय है परन्तु समभिरूढनय जिस शब्दको ग्रहण करता है तिसही अर्थरूपको कहता है क्योंकि उन पर्याय शब्दोंके जुदे जुदे अर्थ भी हैं॥ जैसे इन्द्र शक्र पुरन्दर आदि ये तीन शब्द एक ही शचीपति अर्थके कहने वाले हैं तथापि परमैश्वर्यता का भाग होने से इन्द्र सामर्थ्यवान् होनेसे शक्र और पुर नगर विदारण करने से पुरंदर इस प्रकार इन भिन्न भिन्न शब्दों के भिन्न भिन्न अर्थ हैं इस रीतिसे पर्यायों के अनुसार इन्द्र शब्दके अनेक अर्थ रहते भी वह रूढ इन्द्र (शचीपति) अर्थ में ही है और इस रूढ अर्थको ही

उक्ता नैगमाद्यो नया । T उत्तरोत्तरसूक्ष्मविषयत्वात्

नैगम – आद्यः नया ।	=नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजु सूत्र, शब्द, समभिरूढ़, (१) एवभूत (ये सात) नय
उक्ताः । उत्तरोत्तर–सूक्ष्मविषयत्वात् ।	=कहेगये हैं ॥ आगे आगेकी (नय एक दूसरेसे) अल्प विषय (वाले) होने से

टिप्पणी–यदि अग्नि ज्ञानसे परिणत आत्माको एवभूतनयकी अपेक्षासे अग्नि कहा जायगा तो जलाना, रान्धना, पकाना आदि जितने धर्म अग्नि में हैं व सब आत्मा में भी मानने पड़ेंगे इस लिये आत्मा अग्नि नहीं कहा जा सकता ? (उत्तर) नाम वा स्थना आदि जिस स्वरूप स कहे जाते हैं वे उस से अभिन्न रहते हैं और जिस पदार्थ के जो जो धर्म होते हैं वे नियमित रूप से उसी में रहते हैं। आत्मा का जो अग्नि नाम है उसका आत्मा के साथ अभेद है परन्तु अग्निके जो जलाना पकाना आदि धर्म हैं वे अग्निमें ही रहतेहैं आत्मा में नहीं हो सकते इस लिये नो आगम भाव अर्थात् साक्षात् अग्नि में रहने वाला दाहकपन। आगमभाव अर्थात् औपचारिक अग्नि में नहीं हो सकता। इस रीतिसे यदि आत्मा का नाम अग्नि माना जायगा तो अग्नि दाहकत्व आदि धर्म आत्मा में मानने पड़ेंग यह जो ऊपर शंका की गई थी वह निर्मूल सिद्ध हो चुकी।

(१) यहां पर 'एवंभूयत इति' 'ऐसा होना' इस एवभूतनय के अर्थकी प्रतीति या निश्चय शब्द से होती है इसलिये शब्द ही एवभूतनय माना है कारणमें कार्यका उपचार है अर्थात् एवंभूतनयके अर्थकी प्रतीति में कारण शब्दहै और कार्य एवं भूतनय है

(T नैगमात्संग्रहोऽल्पविषयः तन्मात्रग्राहित्वात् । नैगमस्तु भावाभावविषयाद्बहुविषयः । यथैव हि भावे सङ्कल्पस्तथाऽभावे नैगमस्य सङ्कल्पः । एवमुत्तरत्रापि योज्यम् ॥

नैगमात् संग्रहः अल्पविषयः ।	=नैगम नयसे संग्रहनय थोड़ी विषय वाली है
तन्मात्र (= तद् – मात्र) ग्राहित्वात् ।	=क्योंकि केवल उतने विषयकी अर्थात् केवल स्वल्पविषयकी (= तन्मात्र) ग्राही है
नैगम तु * भाव - अभाव विषयात् ।	=और (=तु) नैगमनय सत् (रूप) और असत् (रूप) ग्रहण करने (के हेतु) से
बहु विषय	=महाविषय वाली या बहुत विषयक है। (बहु विषय=बहुत है विषय जिसका)
यथा * एव * हि * भाव सङ्कल्पः ।	=क्योंकि (=हि) जैसा ही सत् (रूप) में सङ्कल्प है अर्थात् सत् रूप में मानना है
तथा * अभावे नैगमस्य सङ्कल्पः ।	=वैसा असत् (रूप) में नैगमनयका सङ्कल्प या मानना है भावार्थ ।

"तन्त्वादय इवेति विषम उपन्यास । तन्त्वादयो निरपेक्षा अपि काश्चिदर्थमात्रा जनयन्ति। भवति हि कश्चित्प्रत्येक तन्तुस्त्वक्त्राणे समर्थ । एकश्च बल्वजो बन्धने समर्थ । इमे पुनर्नया निरपेक्षा सन्तो न काश्चिदपि सम्यग्दर्शनमात्रा प्रादुर्भावयन्तीति ॥" नैष दोष । अभिहितानवबोधात् । अभिहितमर्थमनवबुध्य परेणेदमुपालभ्यते ।

"तन्त्वादय इव ~ " इति॰ विषम ॥ उपन्यास ॥	=(प्रश्न) "तन्त्वादय इव ~ " ऐसा (उपर्युक्त) उदाहरण अनमेल है
तन्त्वादय ॥ निरपेक्षाः ॥ अपि ॰	=(क्योंकि) तारादिक (एक दूसरेकी) अपेक्षारहित भी (एक तार दूसरे से भिन्न
काश्चित्॰ (=कान्+चित्) अर्थ-मात्राम् ३॥	=भिन्न रहने परभी) कई एक (= काश्चित्) प्रयोजनमात्राओंका (=अर्थमात्रान्)
जनयन्ति । कश्चित्॰ प्रत्येकम्॰ तन्तुः ॥	=उत्पन्नकरतेहैं । कोई एक (= कश्चित्) पृथक् पृथक् (=प्रत्येकम्) तार
त्वच् - त्राणे १॥ समर्थः ॥ भवति । हि॰	=त्वचाके रक्षा करन में (अर्थात् सीवनें इत्यादि में) समर्थ होता ही (=हि) है
एक ॥ च ॰ बल्वजः ॥	=और (=च) कोई एक (तार) जो बल्वजसे उपजाहै वा अ माहै अर्थात् बल्वजका तार
बन्धन १॥ समर्थः ॥	=(भार-मनुष्य आदिक के) बांधने में समर्थ है
पुनः ॰ इमे ॥ नयाः ॥ निरपेक्षाः ॥ सन्तः ॥	=बहुरि (=पुनः) य (=इमे-परस्पर) अपेक्षारहित विद्यमान (=सन्तः) नय
काश्चित् ॰ अपि ॰ सम्यग्दर्शनमात्राम् ३॥	=किन्हीं भी (=अपि) सम्यक्त्वकी मात्राओंको या सम्यग्दर्शन के अंशोंको
न॰प्रादुर्भावयन्ति । इति॰ । न ॰ एषः ॥ दोषः ॥	=प्रकाश वा प्रगट नहीं करती हैं ऐसी (शंकापर कहतेहैं कि) यह दूषण नहीं है ।
अभिहित-अनवबोधात् ॥ अभिहितम् ॥	=कथितका बोध न होने (के हेतु) स (अर्थात्) कहे हुये के (=अभिहितम्)
अर्थम् ॥ अनवबुध्य—परेण ॥ इदम्॰ उपालभ्यते ।	=तात्पर्य को न समझ करि प्रत्यर्थीसे (=परेण) यह उलहना दिया गया है

(१) भवति हि कश्चित्प्रत्येकं तन्तुस्त्वक्त्राण समर्थः=होता ही है कोई एक भिन्न भिन्न तन्तु त्वचाके रक्षाकरने (सीवने आदि) में समर्थ॥ प्रश्नकर्ता अपने प्रश्नकी दृढ़ता में पूर्णतया विश्वास करके शब्दों पर अत्यन्त बल देकर उपर्युक्त वाक्यका कहता है और इस गौरव उच्चारण में भवति हि को प्रथम लाकर समर्थः ' अन्त में लाता है अतः इस वाक्य का शब्दशः अनुवाद जो टिप्पणी में दिया है यही होगा।

(२) बल्क बल्कल (पु०न०)बल्कुव (न०)=छाल,बल्कज बल्कलज बल्कुवज=छाल से उपजा छालका,बल्व वा बल्वजकोशमें नहीं मिला अतः द्वितीया वृत्तिमें अशुद्ध छपगयाहै॥(३)अन् अवबुध्य संबन्ध सूचक अव्ययान्तहै। पर(पु०)शब्दके अर्थमें है परंतु यहां शत्रुके अर्थमें आयाहै॥

न एते गुणप्रधानतया परस्परतन्त्रा सम्यग्दर्शनहेतवः पुरुषार्थक्रियासाधनसामर्थ्यात्तन्त्वादय इव यथोपाय विनिवेश्यमानाः पटादिसंज्ञाः स्वतन्त्राश्चासमर्थाः ॥

पुरुषार्थ क्रिया-साधनसामर्थ्यात् इव	=पुरुषार्थरूप क्रियाके साधनस्वरूप शक्तिसे जैसे
तन्तु आदयः यथा-उपायम् अभिनिवेश्यमानाः	=सूतके तागआदिक यथायोग्य उपायद्वारा नियतकिये हुये वा पायेहुये
पटादि संज्ञा च	=पटादिक नाम पानेवाले होते हैं और (=च)
स्वतन्त्राः	=(सूतके) स्वतन्त्रतार अर्थात् परस्पर अपेक्षारहित न्यारे न्यारे तार
असमर्थाः न एते	=(वस्त्रादि नाम पानेवाले) नहीं होसक्ते हैं। (तैसे) ते इतने (नय)
गुण प्रधानतया	=गौण मुख्यपनाकरि वा प्रधान अप्रधानरूपसे
परस्परतन्त्राः	=आपसमें सापेक्षरूप हुये वा परस्पर एकदूसरेके आधीन रूप हुये (आश्रय)
सम्यग्दर्शन-हेतवः	=सम्यग्दर्शन [के उत्पन्न होने] का कारण होते हैं

[और यदि ये एक नय परस्पर अपेक्षारहित हों तो सम्यक्त्वके उत्पत्तिका कारण कदापि नहीं होसक्ते भिन्नभिन्नपृथक् तारोंके सदृश कार्यकारी नहीं होते]

भावार्थ जिसप्रकार आपसमें एक दूसरेकी अपेक्षा करनेवाले सूतकेतार जिस समय बुनजाते हैं उस समय उनकी पटादि संज्ञा हो जाती है और प्राणियोंके शीत निवारण लज्जानिवारण आदि प्रयोजनीय कार्यों के सिद्ध करने में समर्थ होजाते हैं किन्तु वेही तार जब भिन्न भिन्न रहते हैं तब किसी भी प्रयोजनीय कार्यको सिद्ध नहीं करसक्ते उसी प्रकार परस्पर सापेक्ष आपसमें एक दूसरेकी अपेक्षा रखनेवाले और [1]कहीं गौण तो कहीं प्रधानरूपसे विवक्षित ही नय सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके कारण हैं। यदि ये [नय] परस्पर सापेक्ष न होंगे तो भिन्न भिन्न वा न्यारे न्यारे सूतके तारोंके समान कभी भी कार्यकारी न होंगे और सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके कारण भी नहीं होंगे ॥

(१ गुण—ज्ञान विनय आदि गुण, जन्त आदि व बद्ध अर्थोंसे अभिन्न अर्थोंमें यह शब्द आता है यहांपर अप्रधान वा गौण अर्थमें है (पद्म० कोश १३३)
(२ निरपेक्षा नया मिथ्या सापेक्षा वस्तु तेऽर्थकृत् देवागम १०८) परस्पर निरपेक्षनय मिथ्या हैं परस्पर सापेक्ष नय कार्यकारी हैं ॥

हेतुस्वपरिणतिसद्भावात् शक्त्याऽऽत्मनाऽस्तित्वमिति साम्यमेवोपन्यासस्य ॥

हेतुस्व-परिणति-सद्भावात् ५।	=कारण उनका विशेष रूप परिणमनके सद्भाव से
शक्त्या ३ ॥ आत्मना ३। अस्तित्वम् १ ॥	=शक्ति(=शक्त्या) रूप (=आत्मना) करि अस्तित्वहै-सापेक्ष-निरपेक्ष नयों में भी उन के नाम और ज्ञान के कारण से सम्यक्त्व के कारण पनेका शक्तिरूप से अस्तित्व है
इति० उपन्यासस्य ६।	=ऐसे दृष्टान्तकी (कि जैसे पुरुषके उपायसे तन्तु आदि परस्पर मिलन पर पटादि वस्तुओंको उपजाते हैं वैसे ही उक्त सात नय परस्पर सापेक्ष होकर
साम्यम् १ ॥ एव ०	=सम्यक्त्व को उपजाते हैं। समानताही है (विषमता या अनमेलता नहीं है) ॥

"अथ तन्त्वादिषु ··· न्यासस्य" वाक्य का तात्पर्यः—वादीकी इस शंकापर कि निरपेक्ष वस्तुओं में शक्तिकी अपेक्षा पटादि कार्य करनकी सामर्थ्य है इस लिये निरपेक्षवस्तु वस्त्रादि कार्य स्वरूप कहे जा सकते हैं (वैसे नयों की निरपेक्ष रूप में शक्ति नहीं है) इस के समाधानमें कहते हैं कि निरपेक्ष नयोंका भिन्न भिन्न नाम और उन का न्यारा न्यारा ज्ञान भी सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति में कारण रूप शक्ति रखता ही है ॥ इस लिये निरपेक्ष नय भी सम्यक्त्वके कारण बन सकते हैं इस रीति से दृष्टांत और दार्ष्टांत दोनों में समानता रहने से वादीके उक्त उदाहरणको विषम या अनमेल उदाहरण बतलाना असंगत है ॥

ध्यान रहे कि यथार्थ में किसी अभिप्राय विशेषको नय कहते हैं जितने अभिप्राय हो सकते हैं उतने ही नय कहे जा सक्ते हैं अत अभिप्रायों के भेद अनन्त होने से नयवाद भी अनंत हैं। वे स्थूल रूपसे परिगणित किये जाते हैं इसलिये संख्याते नय हैं ॥

(१) जिस पदार्थको जाना जाताहै वह विषयहै और जिसके द्वारा जाना जाताहै वह विषयीहै। निक्षेप विषय हैं नय विषयी हैं। नाम स्थापना-द्रव्य निक्षेप द्रव्यार्थिक नयके विषय भूतहैं अर्थात् ग्रहण किये जातेहैं और भाव निक्षेप पर्यायार्थिक नयका विषय भूत है॥ समभिरूढ नय और एवं भूतके अन्तर या भेद देखनेलिये देखा पृष्ठ५००।अतीत अनागत दोनो पर्यायोंको छोड़कर वर्तमान पर्यायोंको ग्रहणकरे सो ऋजु सूत्रनयहै।,यह सूक्ष्म ऋजुसूत्र और स्थूलऋजु सूत्र से दो भेद रूपहै॥ एक समय वर्ती पर्याय जो अवाच्यहै और जिसको अर्थ पर्याय कहतेहैं (क्योंकि वस्तु समय समय परिणमैहै)सूक्ष्म ऋजुसूत्रनयका विषयहै,और एक पर्यायके आरम्भसेअन्त तक ग्रहण करैसो स्थूल ऋजुसूत्रहै जैसे मनुष्यादि पर्यायेंसो अपने अपने आयु परिमाण रहती हैं॥ ऋजुसूत्र नय और समभिरूढनय में भेद यह है कि ऋजुसूत्रनय वर्तमान उक्त पर्यायोंका ही ग्रहण करता है॥

एतदुक्तं निरपेक्षेषु तन्त्वादिषु पटादिकार्यं नास्तीति ॥ यत्तु तेनोपदर्शितं न तत्पटादिकार्यं, किं तर्हि केवलं तन्त्वादिकार्यं, तन्त्वादिकार्यमपि तन्त्वाद्यवयवेषु निरपेक्षेषु नास्त्येवेत्यस्मत्पक्षसिद्धिरेव ॥ अथ तन्त्वादिषु पटादिकार्यंशक्त्यपेक्षया अस्तीत्युच्यते । नयेष्वपि निरपेक्षेषु बुद्ध्यभिधानरूपेषु कारणवशात्सम्यग्दर्शन

एतद् ॥ उक्तम् ॥ निरपेक्षेषु ॥ तन्त्वादिषु =यह कहा है (कि) परस्पर अपेक्षा रहित तारादिकों में
पट–आदिकार्यम् ॥ न॰ अस्ति । इति ॰ =वस्त्रादिक कारज (अर्थात् वस्त्र–निवाड़–इत्यादि बुनने रूप कार्य) नहीं होता है
यत् ॥ (=यद् ॥) तु॰ तेन । उपदर्शितम् ॥ =और (=तु) जो (कार्य) तिस (तार) करि (वादीद्वारा) बतलाया गया है
न॰ तत् ॥ पटादिकार्यम् ॥ किंतर्हि॰ =वह वस्त्रादि कार्य नहीं है परन्तु (=किं तर्हि) या किन्तु (=किं तर्हि)
केवलम् ॥ तन्त्वादिकार्यम् ॥, तन्त्वादिकार्यम् ॥ =केवल तारा दिकोंका (न्यारा) कार्य है। तारादिकोंका (वादीद्वारा उपदर्शित) कार्य
अपि तन्त्वादि–अवयवेषु ,। निरपेक्षेषु न अस्ति एव =भी तारादिकोंके अंशोमें परस्पर अपेक्षारहित ही (=एव) नहीं है
अर्थात् तारादिकोंका (वस्त्रादिक बुननेके कार्यसे न्यारा वादीद्वारा वर्णित) कार्य भी कितने ही धागे या तार परस्पर यथा याग्य मिलनेहैं तभी होताहै अन्यथा नहीं ॥
इति॰ अस्मद्-पक्ष (=अस्मत्पक्ष)–सिद्धिः ॥ एव॰ =इस प्रकार हमारा (=अस्मद्) पक्ष (कि सापेक्ष ही कार्य उत्पन्न करते हैं परस्पर निरपेक्ष रहने पर कोई भी कार्य नहीं हो सक्ता) सिद्धि ही (=एव) है
अथ॰ तन्त्वादिषु ।। पटादि– =परन्तु (=अथ) (निरपेक्ष) तन्तु आदिक (के अवयवनि)में वस्त्रादिक (बुनजाने) का
कार्यम् ॥ शक्ति अपेक्षया ॥ अस्ति । इति उच्यते । =कार्य शक्तिकी विवक्षा से है ऐसें कहिये है
निरपेक्षेषु ,। अपि॰ बुद्धि– =(उपर) परस्पर अपेक्षारहित नयों में भी (उनके भिन्न भिन्न) ज्ञान और
अभिधान रूपेषु ,। कारणवशात् ,। सम्यग्दर्शन– =(उन के न्यारे न्यारे) नाम के कारण वशसे सम्यग्दर्शन के

पद निरखी मनकरमाय .... और विस्तर्य सहित .... अनुवाद अध्याय १ सूत्र १ से ८ तक

शुद्धाशुद्ध पत्र (स्वाध्याय से पहिले इन अशुद्धियों को शुद्ध कर लीजिये)

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५	१	ॐ	श्रम
११	११	५	४
११	३	अशुद्ध	भी शुद्ध
१४	११	० १०८ के पश्चात्	'मुनिराजिकजमध्ये सन्निवन्न'
१८	१७	मिथ्यात्वनाम् के बीच	के बीच
१०	१	विशेष	विशेष मतलब
२५	१०	लावे	बताये
१०	८	प्रकाश	प्रकाश मात्र
१०	३	अनेन ३॥	अनेन ३॥
१०	११	वचने अनेन ३	वर्तते अनेन ३॥
१०	१५	तत्	तत च
२८	०	विस्तारी	मेर विस्तारी
२८	१७	अपि	अपि मये ३।
२८	११	अर्थो ,	अर्थो ३।
३१	५,८	...... वा	व्यक्तित —
३०	१	पूर्वकत्वात् ३	पूर्वकत्वाने ३
३१	८	अर्थ ३,.........	अर्थ ३, ...
३१	१०	......	पश्चात
३४	१४	....	......
३४	१४	.... ३	.... ३
३५	१२	सम्यग्दर्शन ३	सम्यग्दर्शन ३
३८	११	अर्थ ३	अपम ३
४४	५,१०	अर्थ ३ क्रिया	...... ३ क्रिया
४६	१	जो धर्म द्रव्य जीव है	जो धर्म जो आगम द्रव्य जीव है
५२	२१	लिए	लिए,

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५४	०	के(विस्तारकादयादि)	(सम्यग्दर्शनादि और सात तत्त्वों) के विस्तारों का
५४	१०	अपेक्षा से	अपेक्षा से श्वे० दिग० सम्प्रदायों में
५५	१०,११	यथार्थ यथार्थ	यथार्थ यथार्थ
५७	६,१५	], इत्येवं ३	] परिणाम के, इत्येवं ३
६१	२, १४	औपशमिक, उप	वशमिक, उप
७२	७, १०	मनेश्वपानां ३ आहारकनके	मनेश्वपानां ३, आहारकों के
७३	१०	प्रमतिमि ।	प्रमुतिभि
८३	१७,१८ । , नयविषया ३		] इति ० , नयविषया ३।
८१	१२	मार्गीनि ३॥	मार्गीनि ३
८१	५,	विशेषेण ३	विशेषेण ३।
८१	०	मिथ्यादृष्टि जीवा ३	जीवा ३ मिथ्यादृष्टय ३
८२	१३,१८ (जीव) (जीव)		(मनुष्य) (मनुष्य)
६८	११	जीवों की	मनुष्यों की
९९	१	जीव हैं	मनुष्य हैं
१०१	३,१३	भाग-(जीव)	भाग-(मनुष्य)
१०२	१५	भावार्थ—नहीं होसकती	इसको मत पढ़ो क्योंकि भ्रमरूप है
१०३	१०	अर्थात्—वास्तव में न रही	इसको न पढ़िये क्योंकि भ्रमरूप है
१०४	१५	बावन तेरह करोड़ है	[और दूसरेसे पांचवां तक प्रत्येक
१०५	१से ८	वा न तेरह करोड़	[वेपल्यका असंख्यातवां भाग है
१०५	११	बावन करोड़ हैं	पल्य का असंख्यातवां भाग है
१०६	८	बावन करोड़ हैं	इसको न पढ़िये
१०७	११,१६,	आठ,आठ तेरह करोड़	प्रत्येकपल्यके असंख्यातवां भाग हैं
१०८	१	तेरह करोड़ हैं	पल्यके असंख्यातवां भाग हैं
१०८	१५	बावनकरोड़,पचासीचार करोड़, बावीस करोड़	और प्रत्येक गुणस्थान में पल्य का असंख्यातवां भाग है

ज्ञानदर्शनयोस्तत्त्वं । नयानां चैव लक्षणम् ॥ ज्ञानस्य च प्रमाणत्वं । अध्यायेऽस्मिन्निरूपितम् ॥ १ ॥ ॥ इति तत्त्वार्थवृत्तौ सर्वार्थसिद्धिसञ्ज्ञायां प्रथमोऽध्यायः ॥

ज्ञानदर्शनयोः ६।। तत्त्वम् १।। नयानाम् ६। च०	=ज्ञान और दर्शनका यथार्थ स्वरूप वा ज्योंकात्यों स्वरूप और(=च) नयोंका
एव० लक्षणम् १।। ज्ञानस्य ६।। च०प्रमाणत्वम् १।।	=ही (=एव) लक्षण, और (=च) (पांच) ज्ञानके प्रमाणता (ज्ञान का ही प्रमाणता सिद्ध करना)
अध्याये ७। अस्मिन् ७। निरूपितम् १ ।। ।।१।।	=इस (प्रथम) अध्याय में वर्णन कियगये हैं ॥दोहा, "दर्शन बोध यथार्थता नयलक्षण परमाण ॥ ज्ञान पचके मानता। कही आदि अध्याय 'अय०२२१
इति० सर्वार्थसिद्धिसञ्ज्ञायाम् ७।।	=इस प्रकार सर्वार्थ सिद्धिनाम (ग्रन्थ) में
तत्त्वार्थवृत्तौ ७।। प्रथमः १। अध्यायः १।	=तत्त्वार्थके विवरण में पहिला अध्याय (समाप्त वा पूर्ण) हुआ

परंतु समभिरूढनय उस शब्द से प्रगट होने वाले अर्थको ही ग्रहण करताहै जैसे ऋजुसूत्रनय उत्पन्न होने से मरण पर्यन्त इन्द्र पद धारण करने वाले शची पतीको इन्द्र कहताहै परन्तु समभिरूढनय इन्दन शील ऐश्वर्यवान होतेहुये कोही इन्द्र कहताहै इन्द्र जिस समय पूजा करता है उस समय ऋजुसूत्रनय से इन्द्र है परन्तु समभिरूढ नय से इन्द्र नहीं है ॥

ऋजु सूत्र और एवम्भूतनयों में यह अन्तरहै कि ऋजु सूत्र नय वस्तुकी वर्तमान कालकी पर्याय को ग्रहण करताहै परन्तु एवम्भूतनय जिस कालमें जो क्रिया करता हो वा क्रिया कर रहा हो उसको उस काल में उसी नाम से प्रगट करताहै वा कहताहै जैसे ऋजु सूत्र नय उत्पन्न होने से मरण पर्यंत इन्द्र पद धारण करने वाले शची पतिको इन्द्र कहताहै चाहै वह किसी समय कोई भी कार्य कर रहा हो परन्तु एवम्भूतनय देवों के पतिका परम ऐश्वर्य सहित हो उसी अवस्था में इन्द्र कहताहै पूजन अभिषेकादि करते हुये को इन्द्र नहीं कहेगा इसी प्रकार जिस समय वह शक्तिरूप क्रिया को करे उसी समय शक्र कहेगा अन्य समय में शक्र नहीं कहेगा। न इन्द्र कहेगा जब कि वह शक्ति रूप क्रिया कर रहा हो ॥

() ऋजुसूत्र-समभिरूढ और एवम्भूत नयों में यह अन्तरहै कि ऋजु सूत्रनय वस्तुकी एक समय मात्र पर्याय का अथवा आरम्भसे अन्त तक एक पर्यायका ग्राही है समभिरूढनय नाना अर्थोंका उल्लंघन करके जो एक ही अर्थ में रूढ (प्रसिद्ध) हो उसका ग्राही है परन्तु एवम्भूतनय जो जिस समय जो क्रिया कर रहा हो उसको उस कालमें उस क्रियाही के संबंध वा संयोग से प्रगट करता है जैसे गाय पर्याय लीजिये तो ऋजुसूत्रनय जन्म से लेकर मरण पर्यंत उसको गाय समझताहै। समभिरूढनय गाय शब्दके पृथिवी माता वचन इत्यादि अनेक अर्थोंको छोड़कर जिसमें चलने की शक्ति हो ऐसे गाय (पशु) को कहताहै वह चलती हो बैठी हो सोती हो जागती हो सब अवस्था में समभिरूढनयकी अपेक्षा से वह गाय (पशु)ही है परन्तु एवम्भूतनय जिस समय वह चले फिरे उस समय गाय कहेगी सोते बैठी हुई को गाय न कहेगी चाहे उसमें चलने फिरनेकी शक्ति हो परन्तु [illegible] गाय नहीं कहेगा ॥

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२१०	१	त्रीणि १॥, पल्यापमानि १॥	त्रीणि १॥, पल्योपमानि १॥
२१०	३	कोटि	कोटी
२११	१३	मिथ्यादृष्टया १ नानाजीव	मिथ्यादृष्टेः १ नानाजीव अपेक्षया ३॥ सामान्य वत् ●
२११	१७	अपेक्षया ३॥सामान्यवत् ●	
२१४	१५,	सागरोपमसहस्रं,	सागरोपमसहस्र १॥
२१४	१५	पूर्वकोटि	पूर्वकोटी
२१६	३,१५	नहीं, कायिकानां ६	ही कायिकानां ६
२१८	२	मानसयोगिनां	मानसयोगिनां,
२१८	१४	नानाजीव १॥	नानाजीव—
२४०	१	नानाजीव १॥	नानाजीव
२४१	●	जघन्यम् १॥	जघन्यम् १॥ च
२४४	२१	जघन्यम् १॥	जघन्यम् १॥ च ●
२७१	१३	४१३४१२६३०३०८०	४१३४१२६३०३०८२०
२७१	२१	भावोका दिया जाता है	भावका, किया जाता है
२७८	१,	केवलिना, आद्दमो	केवलिनां, ओदृमो
२८०	१३,१०	गुणस्थान मोहनीयकर्म	गुणस्थान में, मोहनीय कर्मका
२८३	११,१३	औदयिक-भावा १, तत	औदयिका १ भावा १, तत्
२९२	२३	प्रथमम् १॥	प्रथमम् १॥ अनुवादस्य १ प्रथमम्
२९५	१४,२०	॥ चार मिस्सासिर ।	॥, मिस्सासिरदा
२९६	११	असंख्यातगुणे	संख्यातगुणे
२९६	२०	संख्यातगुणे	असंख्यातगुणे
२९९	३, १०	,, अवर्ती	गुणस्थानवर्ती, से अप्रमत्तसंयमी
३०८	८,१,१०	अयोग केवलिन, हैं कहते	।, अयोगको केवलिन कहते हैं
३१५	१७,	पच, क्षपक, उपशम	पद्, क्षपक, उपशम
३१५	१८	क्षपक	क्षपक
३१५	२०	अमत्त संयमेमियो,	अप्रमत्त, संयमियो,
३१६	४	औपशमिक सम्यग्दृष्टिनां	औपशमिक सम्यग्दृष्टीनां
३१६	१३	सम्यग्दृष्टयः	सम्यग्दृष्टयः
३२२	५,११	अ त, जाता (है = मनुते)	श्रुत, जानता है (= मनुते)
३२३	२,५	अ पते, अ पते	अपते, अपते
३३०	८	भय (= भय)	भय (= भय)
३३१	११	फलम् १॥ इव १॥	फलम् १॥ इव १॥
३३१	११	प्रमाणकाफलही	(प्रमाणका) फल इव है
३३२	७,	वस्तुकाज्ञान	वस्तुका ज्ञान (= अधिगम),
३३७	२,४	उपमानार्थापत्त्या अर्थापत्ति	उपमानार्थापत्त्या, अर्थापत्ति
३३७	६,१२	अन्तरभावात् १, प्रत्यक्षम् १॥	अन्तर्भावात् १। प्रत्यक्षम् १॥
३३८	१८	प्रयो १॥	प्रयो. १॥
३४१	६,२०	प्रत्यक्षम् १॥, उत्पन्न हो	प्रत्यक्षम् १॥, उत्पन्न हो
३४२	११,१४	प १, प्राप्नोति T	पप्र १ प्राप्नोति T
३४२	५	पूर्वकापेक्षाणां कल्पते,	पूर्वक अपेक्षाणां कल्प्यते
३४३	८	उत्पात	उत्पाद्
३४५	११,२३	लिङ्गम् १॥, स्यात्	लिङ्गम् १॥ स्यात् ?
३५१	४ १८	भावार्थ, सहति	भावार्थ, स्मृति
३५=	१४,२०	तत्, स्पर्शन—आदि १॥	तत्—स्पर्शन-, आदि १॥
३५४	३,२१	(= मत्) तथा,	(= मत्) न तथा
३५८	२१	लिङ्गम् १।, तैसे,	लिङ्गम् १॥ अपिकृत् १॥, नहीं तैसे
३६०	६,१०	न●, नहीं है, प्रतिपेध १।	(न) ,नहीं है) प्रतिषेधः १॥ नास्ति
३६०	११	अन्त्यः करणम् १॥	(अन्तःकरणम् १॥)
३६०	११	वा मंत्ताकरण वा मन	(वा अन्तः करण वा मन)
३६१	५,१४,२०	अर्थम, तद तो	अर्थम्, तद्, जो
३६२	११	आपाय,	अपाय

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०२	११	बावन करोड़	पल्यके असंख्या तवां भाग है
१०३	१२	एकसौ बार करोड़	पल्यके असंख्यातवां भाग है
१०४	१२	छासमरव है	पल्यके असंख्यातवां भाग है
११०	११	पणा संखय बावन करोड़ एकसौ बार करोड़, सात सौ करोड़ तेरह करोड़	इन प्रत्येकगुणस्थानोंकी जीवों की संख्या पल्यके असंख्यातवां भाग है
११२	१६	सातमरव तेरहकरोड़	प्रत्येक में पल्यके असंख्यातवेंभाग
११३	११	बावन करोड़,	पल्यके असंख्यातवां भाग
११३	११	एक सौ बार करोड़	पल्यके असंख्यातवां भाग,
११४	१०	बावन करोड़	पल्यके असंख्यातवा भाग
११४	११	सातसौ करोड़	पल्यके असंख्यातवां भाग
१३३	२१	अपेक्षया ३।।।	अपेक्षया ३।।
१३७	२०	असंयत	असंयत करि,
१४८	११	असमाधात ३।।	असमाधात् ३।।
१५१	३	कायनम् ३।।।	कथनम् ३।।।
१६०	१५,१६	विशुद्धे पदचतुष्टयहीना	विशुद्धे परमो, पद् चतुर्थहीना
१६१	६,१२]	कथनात् ३।।।	] इति कथनात् ३।।।
१६४	२१	देवाना ३।।	देवाना ३।। विहारवत्
१७५	६	परिणतै इतावत्	परिणतैरेतावत्
१७८	१६	मिथ्या त्वकाल ३।।	मिथ्यात्वकाला ३।। असम्येषु ३।।
१८१	११	उत्कष्टस्य ३।।	उत्कृष्टस्य ३।
१८२	२१	अवि, अविकल सम्पत्ति	औनि, प्यविकलसम्पत्ति
१८३	५,१६	वेदसमप्यत्त अथम ३।।	वेदसमसमत्त, अथम् ३।
१८५	६,२०	मिथ्यात्वं मिथ्यात्वं	मिथ्यात्वे मिथ्यात्वे
१८७	१२,१५	सत्त,सम्मतति,सद्गणा	दुख, सम्मत्ति इत्तिक, सत्ता

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१८८	५	एकजीवम् ३।।पति	एकजीवम् ३। प्रति
१८९	३	एक जीवम् ३।। प्रति	एकजीवम् ३। प्रति
१९१	५	तियग्मातौ ३।।	तियग्मतौ ३।।
१९४	१४,१५	देवगतौ ३ सर्वः ३।।।	देवगतौ ,।। सर्वः ३।
१९६	४	परिणामानि ३।।।सः	परिणामानि ३।।
१९७	१४	पपकश्रे ३।। एकादे ३	अपकश्रे ३। एकादे ३।
२०१	५	पल्योपमपृथक्त्वम्	पल्योपमशतपृथक्त्वम्
२०१	२०	पल्य + उपम पृथक्त्वम्	पल्य + उपमशतपृथक्त्वम्
२०१	२०	पल्य के बराबर है	सौ पल्य के बराबर है
२०३,	७,१२,	वेदोत्पत्त, बाद	वेदोत्पाद, पीछे
२०६	११	मतिज्ञानी	मतिअज्ञानी
२११	१४	से, कुछ	स, कुछ
२१२	१६	अपेक्षया ३।।	अपेक्षया ३।।
२१३	२	नानाजीवापेक्षया	नानाजीवापेक्षया
२२०	३	अब क्षेपा संक्षेपा	सर्वक्षयार्थक्षेपा
२२१	४	शेषाणां ३।।	शुषाणां ३।
२२२	३	समया ३।।	समया ३।
२२३	१०,११	अपेक्षया ३।।। आती है	अपेक्षया ३।आतीहैकिसीकिमकोहै
२२३	१७	विसति प्राद्युषा ३।।	विसति प्राद्युषाः ३।
२२४	३,१५,	पल्योपमका असंख्यातवां ३।।	पल्योपम, असंख्यातवां ३।
२२४	१६,	अपेक्षया ३।।	अपेक्षया ३।।
२२५	१७	असंयतसम्यग्दृष्टयो ३।।	असंयत सम्यग्दृष्टयो ३।।
२२६	१८,२०	तिर × श्चां अतो	तिर्यक्षां, अतो
२२७	११ १२	आयुष्कः ३।। (—स)	आयुष्कः ३।। (—स)
२२८	५,१	मायुष्कः मिथ्या दृष्टे ३।।	मायुष्का मिथ्या दृष्टे ३।

एकनिवासी अगरूपसहाय वकीलकृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः हिंदी अनुवाद । अध्याय १

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४३०	२० २१	धातु मेर अक्ष	धातुमें अक्षर
४३२	२४	निमित्तस्य निमित्तत्वम्	निमित्तस्य न निमित्तत्वम् न
४३५	८,१५	निरक मति, कराड़	नरकगति कराड़
४३८	१३ १८	ज्ञानम् शेपाणाम्	ज्ञान शेषाणां
४३६	१३ १८	तिर्यञ्च न, सैमा	तिर्यञ्चः न सैनी
४४२	३ १६	असख्येय असख्येयमणात्	आसख्येय ।। असंख्येयमागात्
४५०	६,११	अमूत्तकाय होतसता	अमजकाय होलसता
४५१	३,७	अन्य मृत्ति उकमेद	अप्यमृत्ति उक्तः ।। मेद
४५३	१२,१८	शरीर वा शक्तिमपेक्षा	शरीरका, ममका सम्बन्ध
४५४	८,१५	आत्रिमिः ।। आदिभिः ।।	आत्रिमिः ।। आदिभिः ।।
४५५	४ ७	मानपालर विशुद्ध	मानपोत्तर विशुद्धय
४५८	५	विशुद्धया ।। तावत	विशुद्धया ।। तावत्
४५६	३,८	स्वामिना विपयत्वात	स्वामिनां विषयत्वात्
४५६	१०	प्रसग अर्पात	प्रसग अर्थात्
४५६	१३,	अप्रतिपातन । स्वामिनाम	अप्रतिपातन ।। स्वामिनाम्
४६१	६,१२	भावाम् विशुद्ध है ।।	भावाम् विशुद्ध है
४६२	२,४	विशेपो, विपयत्वात	विषयो विषयत्वात
४६४	४१ २२	अन्यतम केपुचित तथा	अन्यतम कर्याचत् तथा
४६५	१३,	स्वामी विशेप संयम महण	स्वामी-विशेष संयम-ग्रहणं
४६५	१४	"प्रकृष्ट चारित्र गुणोपेतेपु'	"प्रकृष्टचारित्रगुणोपेतेषु 'वाक्य
४६७	३ १४	मिथ्यो,माल	निर्ग्रन्थो भक्ति
४६७	२०	यथानस्+ ह, यथाक्षि	यथान्स+ ह यथांसि

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४६६	२० २१	श्रुत (जो इन्द्रिय) अभाव	(श्रुत) जो इन्द्रिय अभाव
४७०	४ १३	ततस नहीं है	ततस् ही है
४७०	१७	श्रुतमति पूर्व द्व्यनेकद्वादशभेद	श्रुतं मतिपूर्वं द्व्यनेकद्वादशभेद
४७१	४ १७	अवधः "कपिमवचे ।	अवधेः कपिमवचे।
४७३	६ ०	विपुल विभक्त्यर्थ	विपुल विभक्त्यर्थं
४७४	११	(अन्यअर्थ)	(अन्यअर्थ)
४७५	४ ५	सब नन्तानन्त	सब, अनन्तानन्त
४७५	१० १३	द्वियाद्ध द्विया	द्विठ्या ह्न द्विठ्या
४७५	१७ १८	(परन्तु अपद्रव्यात्मक	(परन्तु) अपद्रव्यात्मकत्व
४७६	६ १४	भी केवल ज्ञान क	(भी) (केवल ज्ञान) के
४७८	६	(अथवा	(अथवा यदि सूत्र में 'एक' शब्द को असख्या असहाय प्रधानअर्थों में न लें तो
४७६	१० १४	यही अनेकार्थ ये हैं अर्थमें	यही।अनेकार्थ नीचे लिखते हैं अर्थो
४८०	१३ १४	यहां पर, अर्थ मे है	यहां पर, अर्थ में भी ह। सत्य
४८१	१०	११८५ १८१ पद	१८५ १८१ पद
४८३	३, १७	ज्ञानस्यपरेषाम् ।। य	।ज्ञानस्यपरेषाम् ।। यह
४८४	१३ १६	न शब्द अन्य अन्य के	न शब्द अव्यय अव्ययके
४८६	६,	सवप मे कथन है	समय से कथन है
४८८	१८	विपर्ययकी सीम है	विपर्यय की की गई है
४८६	७ ११	क ? अध्यवसति	कमी, अध्यवसाति
४८६	१३ १५	अनना दसा स उसक	अपनी, देसा से उसके

पद्मानिवासी जगरूपसहाय वकील कृत स्फोट और विभक्ति सहित सर्वार्थसिद्धि का सम्पूर्ण हिन्दी अनुवाद अध्याय १ सूत्र १२ ।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१५५	३,१८	भवपुद्गीते, प्रामाण्य	भवपुद्गलपुद्गीते, प्रामाण्य
१५५	१६	वचनम् ३॥	वचनम् १॥ पुष्प
१५८	२,३	विशेषादि, सैषेय,	विशेषादि, सैषेये
१७८	२,	(जो छूट गई है,तदपेक्षे है)	अवमहादया क्रिया विशेषा मकुताः
			तदपेक्षोऽयं कर्म निर्देशः ।
			बह्वादीनां सेतराणामिति ।
१८	४ १४	बहनाम्, महेण	बहूनाम्, प्रहणेन
१८१	३,१४	प्रवस्य रेहा	भुवस्य रेहा
१८२	१०	भावी ३।	भावी २।
१८३	१३-१५	सत्यम् ३। विशिष्टस्य यहां	सत्यम् २।, विशिष्टस्य । यहां
१९१	१५,१७,११	विशेषा, विशविशद	विशेषा विशद्विशद, विशद्‌व्यापक
१९	२०	रेहा-मात्य ३। रहा,	रेहा-मात्या २।, रेहा
१९४	१० १३,१७	रेहा मत्त, व्यंजन,	रेहारूप, भिन्न व्यञ्जनका
१९६	४,१६,	कणमप्य त्व+पम	कणमप्य त्व=पम,
१९६	११	(स्रोकिम)+क्रिया,	(स्रीकिम)=क्रिया,
१९७	११,१८,	'पस्य' अनेकों	'पस्य' अनेकों
१९८	२,३,	वसेयम्,वजयित्वा निवद	वसेयम्, वर्जयित्वा, निर्दिष्ट,
१९८	म,११	मगावत् वक्तव्या ३।	मनीवत्, वक्तव्याः २।
१९८	११	मतज्ञान	मतज्ञान
१९८	१७,१८	सार्व, व्याधि, वृद्धि,	सर्व व्याधि वृद्धि,
१९८	१४	विरति	विरति
१९८	११	पुरु+मा-वात, गुरुवायात्,	पुरु+मी=वात्, पुरु_वोवात्
१९४,५,६,१०		प्रथम, मतज्ञान,वनितायाम	भुतम्, भुतज्ञान के अनुसार,
१९४	१७,२१,	कवि, कार्य	कवि, कार्य
१९४	११	स्याख्यान, वक्तव्य	अस्याख्यान वक्तव्य
५००	१५	कलिम ५. तालि	कलिम लिए तीति

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५००	०	कुरु-उत्तर, ग्राम,काश। है	कुरुक्षेत्र-पाल, ग्राम, कोश
५०१	३,४	मतिपूर्वम्, मात्मकम् २॥	मतिः २॥ पूर्वम, मात्मकम् ३॥
५०२	२०	मपामाण्यम २॥	पुरुषकृतत्वात् ३॥ मप्रामाण्यम् ३॥
५०३	१,१२	मति, मपेक्षया ३॥	मिति मपेक्षया २॥
५०३	१७,२२	करतेवाला, मर्यादा	करनेवाला, मर्यादा
५०४	४,८	प्रतमिष्यते सम्यक्त्वस्य	भुतमिष्यते, सम्यक्त्वस्य ३॥
५०५	११	सम्यक्त्व मान्तरम्	सम्यगिव मान्तरम्
५०५	१	पुद्गलस्य,	पुरुष
५०५	७।	वाक्यादि० भावात् ३।	वाक्यादि-भावात् २।
५०५	११	अन्यसंयोग	अन्यसंयोग,
५०८	२,२,४	समाम्नाय, सु,पूर्व,	समाम्नाया, सूत्र, पूर्व
५०९	७,८,११,	पदि,पर्यायवरण,प्राभृत,	पदि, पर्यायावरण, प्राभृत
५११	१२,११	त्रिसंयोगी, एक	त्रिसंयोगी, एक
५१४	२५,२१	एकाही, २[१४]	एकाही २[१४]
५१६	८,१०	संज्ञा शालम्यार्ग, संख्या	वर्णेन शाखिस्योगानां संख्या
५१६	१८	समाप्त पद्काक्षीर्ये हैं,	क्षीये हैं,
५१६	११	और में, अक्षरों,	और पुनाक्षप में, अक्षरों का,
५१७	८	२०१४३११८५७,	२०१८३११८५७
५१७	१२	१२११११२११८१४४	११११११२११८१४४
५१८	३,१०	पुरुष, मायुधर्मकथा २॥	पुरुषक, मात्मधर्म कथा २॥
५२०	११,११	(क) मा प्रजप्ति, ज्यूद्वीप	(क) मात्मपुकप्ति, जम्बूद्वीप
५२१	४	पृष्ठ ४२१,४२२	पृष्ठ ४२१, ४२२, ४२३,
५२२		चूलिका	चूलिका
		(ख)	(क)
५२७	३	=भेद	भेद,
५२८	१	अकबायालीकात् १। इति०=	(इत्यनेका)थेयकी कक्षिये नारोंसे विशेष
५२८	०	विशेषेण १।	विशेषण २।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४९०	१७ १९	(और) पुद्गिगो	(और) पुद्गिगी,
४९१	७१ ११	कार्यस्य॥ आरम्भका॥,०	कार्यस्य॥ आरम्भका॥
४९३	३, ८	दैवम्मूतां (सत)मया।	दैवम्मूता (सत) मया।
४९३	१५ २२	एवं मूतामया परिशेषी,	एवंमूता मया., परिशेषी
४९४		असमानजातीय असद्भूत	असमानजातीय असद्भूत,
४९४		समीमरू	समभिरू
४९५	१० ११	पारमाणा, मापेक्षमार्व	परिमाणा मापेक्षभाव
४९६	८, १०	स्तुका बहप्रदेशी	वस्तुका, बहुप्रदेशी
४९९	४ ५	होतुकमक, माषा,	होतुकमेके, भावो,
४९९	१९ २०	पर्याप अतात, पर्यायक,	पर्याय अतीत, पर्यायका,
५००	१४ २१	बाकी परमैश्वर्यका	बाद परमैश्वर्यका
५०१	४ ८,९	न (त्यों) पदा, पदार्थ	इव (नयो), पदार्थ पदार्थ
५०३	१० १७	अर्पते, पाद,	अर्पते परि
५०४	१ ७	अर्थनन द्रव्यविक,	अर्थनम् द्रव्यार्थिक
५०५	१०	कुशलो	कुशलो
५०६	६, १८	आराध्यम् भविष्यत	आराध्यम् भविष्यत्
५०७	८, २१	मूगनैगम भूतकैगम	भूतनैगमस्य भूतकमस्य,
५१०	२०	=आनुपूर्वेण) देखो	=आनुपूर्वेण (देखो
५११	२१	नाप स्थापना	नाम, स्थापना
५११	३, ११	विंशदाग् ऋजुसूत्र	विंशद्भाग ऋजुसूत्र
५१४	३,	सप्यवहार! सर्वनयसमूह साराः चेत।	सव्यवहार चेत्
५१६	९, १०	मार कथंचित समानतान,	और कथंचित् समाधान,
५१७	१ १७	ऋतु विम व्यभिचार	ऋतु लिङ्ग-व्यभिचार

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५१८	१९, २२	करयोरभद कर्तृ-कर्मणो।	करणयोरभेद, कर्तृ-कर्मणो।
५१९	७८,१९	वन प्रथम वसती है	वन प्रथम, वसती है)
५२३	१२	धातुओका ऐसा रूप बना	धातुओंके ऐसे रूप बने
५२७	१२	मन्य-उपपदे॥	मन्योपपदे ।।
५२५	६ १६,१७	व्यत्क मावये मोक्ष्य,प्रहास	व्यत्यय, मोक्ष्ये मोक्ष्ये प्रहासे
५२५	१७	मन्यवाषपुष्पमन्यतरस्मदेकवच	मन्यवाधि पुष्पमस्यतरस्मदेकवच
५३१	१४ २१	कहां आकाश-परिस्य	कहीं आकाश-परिस्पा
५३१	४ १७ १८	प्रयम उपरमति	प्रयोग उपरमयति
५३४	१ १९,२१	ती=पपार्थ, लाक, लोक	ती यथार्थ, लोक, लोक
५३५	३, ४	अनुवादि व्यवहारनय	अनुवादित, व्यवहारनयें,
५३६	५, ९	(पु०) १ १ ह	(पु०) ३२१, हुआ
५३७	७	शब्दक अनक, अर्थोमेस	शब्दके अनेक अर्थोमेंसे
५३७	१० १७	पशुक, जलत, गतार्थत्वात्	पशुके जलते गतार्थत्वात्
५३९	३, १९	पुष्पमावात्, पत्	पुष्पमावात् पित्
५४१	२, ८	परवतिवके परिक्ष में।	परवतिवेप, परिक्षमें
५४३	८,१७ २०	पहिले रूप परिवत्वा	पहिले(पृष्ठ५३६में) रूप परिवर्तस्वात्
५४४	३, १०	कारपना, अग्नि	कल्पना अग्निके
५४५	१९, २७	भामे सेति, इत्यर्थः	(गाथा) भामे रौति इत्यर्थः।
५४८	२० २१	तत्त देवागम १०८)	तत्तु, (देवागम १०८)
५४९	२२	अतः द्वितीया वृत्ति में अशुद्ध छपगया है	लिखित प्रतिमें मिला, अतः दोनों पाठ दिये गये हैं
५५०	१ १८	कार्य अपि	कार्ये भवेत्॥ अपि
५५१	१० १३,१५	सकते ह वार्तांत अंता	सकते हैं वार्तांत अता
५५२	१८,१६,२१	सर्वार्थविध, अतीत भवृ	सर्वार्थसिद्धि अतीत [illegible]